प्रकाशक

पण्डित काशीनाथ जैन

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य विरचित

आदिनाथ-चरित्र

अनुवादक

पूज्यपाद प्रतापमुनिजी महाराज

प्रकाशक

बृहद् (बड़) गच्छीय-श्रीपूज्य जैनाचार्य श्री चन्द्रसिंह
सूरीश्वर चरणोपासक शिष्य

पण्डित काशीनाथ जैन

नं० २०१ हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथमवार २५००] १९२४ [मूल्य सजि० ५) अजि० ४)

कलकत्ता
२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
पण्डित काशीनाथ जैन,
द्वारा मुद्रित।

प्राग्वचन

जैन ग्रन्थोंमें जो ज्ञानका अक्षय भण्डार भरा पड़ा है, उसके चार विभाग किये गये हैं—द्रव्यानुयोग, कथानुयोग, गणितानुयोग और चरणकरणानुयोग। द्रव्यानुयोग फ़िलासफ़ी अर्थात् दर्शनको कहते हैं। इससे वस्तुओं-के स्वरूपका ज्ञान प्राप्त होता है। जीव-सम्बन्धी विचार, षड्द्रव्य सम्बन्धी विचार, कर्म-सम्बन्धी विचार—सारांश यह, कि सभी वस्तुओंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशका तात्त्विक बोध इसमें भरा हुआ है। यह अनुयोग बड़ा ही कठिन है और बड़े-बड़े आचार्योंने इसे सरल करनेकी भी बड़ी चेष्टा की है। इस अनु-योगमें अतीन्द्रिय विषयोंका भी समावेश हो जाता है, इसलिये इसके रहस्य समझनेमें कठिनाई का होना स्वभाविक ही है। इसके बाद ही कथानुयोगका नम्बर आता है। इस ज्ञाननिधिमें महात्मा पुरुषोंके जीवनचरित्र और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली शिक्षाएं भरी हैं। तीसरे अनुयोगमें गणितका विषय है। इसमें गणित और ज्योतिषके सारे विषय भरे है। चौथे अनुयोगमें चरण-सत्तरी और करण-सत्तरीका वर्णन और तत्सम्बन्धी

विधियाँ दी हुई हैं। इन चारों अनुयोगों पर बहुतसे सूत्रों और ग्रन्थोंकी रचना हुई है। इनमेंसे बहुतेरे तो नष्ट हो चुके हैं। तो भी अभीतक बहुत से जैन ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनमें किसीमें तो एक और किसी-किसीमें एकसे अधिक अनुयोगोंका विवेचन किया गया है।

वर्त्तमान ग्रन्थ चरितानुयोगका है। इस तरहके ग्रन्थोंसे साधारण व्यक्तियोंसे लेकर विद्वान् तक एक समान लाभ उठा सकते हैं। सब मनुष्योंका बुद्धिबल एकसा काम नहीं कर सकता। खास करके द्रव्यानुयोगके गहन विषयोंको तो सर्वसाधारण भली भाँति समझ भी नहीं पाते इसके विपरीत कथा-कहानियोंमें सबका जी लगता है। बड़े-बड़े पण्डितोंसे लेकर गँवई-गाँवके रहनेवाले अनपढ़ किसान तक कथा-कहानी कहते, सुनते और पढ़ते हैं। प्रायः देखा जाता है, कि कोई धार्मिक या राजनीतिक व्याख्यान सुनकर घर लौटने पर उसकी कुल बातें मुश्किलसे ही याद रहती हैं; लेकिन कहींसे कोई कथा सुनकर आओ, तो रातको दस-पाँच आदमियोंको तुम स्वयं उसकी आवृत्ति करके सुना सकते हो। मनुष्य-स्वभावका परिचय रखनेवाले शास्त्रकारोंने यही देखकर इससे लाभ उठानेका तरीक़ा निकाला और कथाके छलसे धर्म, ज्ञान, व्यवहार, नीति, चारित्र सम्बन्धी जीवनको उत्तम बनानेवाले नियमोंको मनुष्य-समाजमें प्रचारित करना आरम्भ किया। बड़े-बड़े महात्माओं और महापुरुषोंने किस ढंगसे जीवन व्यतीत कर संसारमें सब तरहके सुख पाये, किन-किन

गुणोंका अवलम्बन करनेसे उनका जीवन आदर्श बन गया, यही सब बातें बतलाकर मनुष्यके चरित्रकी उन्नति करनेका प्रयास किया गया। इसी चेष्टाके परिणाम-स्वरूप कथा-शास्त्र और इतिहासोंकी सृष्टि हुई। इन शास्त्रीय कथाओंमें सभी तरहके गहन विषयोंको सरलताके साथ सर्वसाधारणमें प्रचलित करनेकी चेष्टा की गयी। संस्कृत-साहित्यमें ऐसे अनेक गद्य-पद्यमय ग्रन्थ हैं। प्राकृतमें भी बहुतसे ऐसे ग्रन्थ बने। इस कथानुयोग द्वारा मनुष्य-समाजका बड़ा उपकार हुआ है और आगे भी होता रहेगा।

कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य जैन-धर्मके एक बड़े भारी आचार्य होगये हैं। उन्होंने ही कुमारपाल राजाको धर्मोपदेश देकर जैनी बनाया था और समस्त देशमें जैन-धर्मकी विजयपताका फहरायोथी। उनके नामसे जैन-धर्मावलम्बी-मात्र भली भाँति परिचित हैं। इन्हीं आचार्य महोदयने राजा कुमारपालके अनुरोधसे 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चरित्र' नामका एक बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ, लोक-कल्याणके निमित्त, लिख डाला। जिस ग्रन्थके रचयिता कलिकाल सर्वज्ञकी पदवी धारण करनेवाले श्री हेमचन्द्राचार्य हों और जो राजा कुमारपाल जैसे श्रेष्ठ आर्हत राजाके बोधके निमित्त लिखा गया हो, उसकी उत्तमता, काव्य-चमत्कार और विषयकी उपयोगिताके सम्बन्धमें भला किसे सन्देह हो सकता है ?

आचार्य हेमचन्द्रने इस ग्रन्थमें इतने चरित्रोंका इस खूबीसे समावेश किया है, उनके लिखनेका ढंग ऐसा रोचक और प्रभावोत्पादक है, कि पाठकों और श्रोताओंको उनकी बुद्धिकी विशा-

लता, वर्णनकी शक्ति और प्रतिभाकी अलौकिकता देखकर आश्चर्यमें डूब जाना पड़ता है। आचार्यने इस ग्रन्थको दस भागोंमें बाँटा है। प्रत्येक भाग पर्व कहलाता है। इन पर्वोंमें आचार्यने जैन-सिद्धान्तके सारे रहस्योंको कूट-कूटकर भर दिया है। भिन्न-भिन्न प्रभुओंकी देशनामें नयका स्वरूप, क्षेत्र-समास, जीव-विचार, कर्मस्वरूप, आत्माके अस्तित्व, बारह भावना, संसारसे वैराग्य, जीवनकी चञ्चलता और बोध तथा ज्ञानके सभी छोटे-बड़े विषयोंका इस सरलता और मनोरञ्जकताके साथ इसमें समावेश किया गया है, कि कथानुयोगकी महत्ता और प्रभावोत्पादकता स्पष्टही विदित हो जाती है। इन सब बातोंको पढ़-सुनकर पाठकों और श्रोताओंके मनपर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उनकी कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत हो जाती है। इस ग्रन्थकी बड़े-बड़े पाश्चात्य विद्वानोंने भी प्रशंसा की है। यह संवत् १२२० में अर्थात् आजसे प्रायः आठसौ वर्ष पहले लिखा गया था।

वर्त्तमान ग्रन्थ उसी 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित्र' नामक महाकाव्यके प्रथम पर्वका अनुवाद है। इसमें ६ सर्ग हैं। पहले सर्गमें श्री ऋषभदेवके प्रथमके १२ भावोंका वर्णन है, जिसमें धर्मघोष सूरिकी देशना ख़ास करके देखने लायक़ है। महाबल राजाकी सभामें मंत्रियोंका धार्मिक संवाद भी ख़ूब ग़ौरके साथ पढ़नेकी चीज़ है। अन्तमें मुनियोंकी उपार्जित लब्धियों तथा २० स्थानकोंका वर्णन भी पाठ करने योग्य है।

दूसरे सर्गमें कुलधारोत्पत्ति और श्री ऋषभदेव भगवान्‌के

जन्मसे लेकर दीक्षा लेनेकी इच्छा उत्पन्न होनेतक की कथा लिखी है। प्रारम्भमें कुलकर विमलवाहनके पूर्वभवकी—सागरचन्द्र-की—कथा पढ़ने योग्य है। इसमें दुष्टोंको दुष्टता और सतीके सतीत्व और दृढ़ताका अच्छा चित्र अङ्कित किया गया है। देव-देवियोंके द्वारा किये हुए प्रभुके जन्मोत्सव और प्रभु तथा सुन-न्दाके रूपका वर्णन बड़े विस्तारके साथ किया गया है। देव-ताओंने भगवान्‌के विवाहका जो महोत्सव किया था, उसका और वसन्त ऋतुका जो ख़ासा वर्णन इसमें किया गया है, वह कविके गौरवका सच्चा चित्र है।

तीसरे सर्गमें प्रभुके दीक्षा-महोत्सव, केवल-ज्ञान और देश-नाका समावेश किया गया है। चौथेमें भरतचक्रीके दिग्विजयका वर्णन है। यह कथा बड़ी ही मनोरञ्जक है। पाँचवें सर्गमें बाहु-बलिके साथ विग्रहकी कथा है। इसी प्रसङ्गमें सुवेगका दौत्य भी दर्शनीय है। उस ज़मानेके युद्धोंका इसमें ख़ासा चित्र अङ्कित किया गया है। छठे सर्ग में भगवान्‌के केवली हो जाने पर विहार करनेका वर्णन है। भगवान् तथा भरतचक्रीके निर्वाण तककी कथा इसमें लिखी गयी है। इसमें अष्टापद और शत्रुञ्जय तथा अष्टा-पद्‌के ऊपर भरतचक्रीके बनाये हुए सिंह-निषद्या-प्रसादका वर्णन ख़ास कर पढ़ने योग्य है।

प्रत्येक सर्गमें जहाँ जहाँ इन्द्र तथा भरतचक्री आदिने प्रभुकी स्तुति की है, वह ध्यान देकर पढ़ने योग्य है; क्योंकि उसमें बहुत सी बातें बतलायी गयी हैं।

आज हम पाठकोंके सामने इस महोपकारी ग्रन्थका हिन्दी-अनुवाद उपस्थित करते हुए आशा करते हैं, कि हमारा यह उद्योग उनकी सहायता, उदारता और कृपाका भाजन हो सकेगा। अबतक हिन्दी-भाषामें इस ग्रन्थका कोई अनुवाद नहीं था, इसलिये लोग बड़े ही लालायित थे। इस कार्यमें हमें बहुत सा श्रम और व्यय उठाना पड़ा है। आशा है, कि इस ग्रन्थ को अपनाकर हमें इसके अन्यान्य पर्वोंको प्रकाशित करनेके लिये उत्साहित करेंगे।

इस पुस्तक में दृष्टि दोष से अनेक अशुद्धियों एवम् दोषोंका रह जाना संभव है, अतएव मैं आप लोगोंसे इसके लिये क्षमा याचना पूर्वक इसकी त्रुटियोंको सुधार कर पढ़ने के लिये प्रार्थना करता हूँ।

शेष में हम अपनी परम माननीया साध्वी शिरोमणि सोहनश्रीजी तथा विदुषी विनयश्रीजी के पूर्ण उपकृत हैं, जिन्होंने इस पुस्तकके निमित्त पहले से ग्राहक बनानेकी कृपा की है। अस्तु।

ता० २५ जनवरी १९२४
"नरसिंह प्रेस"
२०१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका—
काशीनाथ जैन।

समर्पण

श्रावक कुल भूषण, जैन धर्मानुरागी,
दानवीर, देवलोकगत, नररत्न श्रेष्ठी वर्य

बाबू लक्ष्मीचन्द जी

करणावटकी पवित्र स्मृति
में सादर समर्पित है।

आपका
काशीनाथ जैन।

स्वर्गीय बाबू लक्ष्मीचन्दजी करणावट

हनुमानसिंहजी लक्ष्मीचंदजी की फार्म के अध्यक्ष

परलोक गत श्रीमान् बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी करणावट के
बृहद् पुत्र बाबू छन्नुलालजी करणावट के पुत्ररत्न
बाबू रिखबदासजी

प्रेमोपहार
श्रीमान्

आदिनाथ चरित्र

सकलार्हत्प्रतिष्ठानमधिष्ठानं शिव श्रियः।
भूर्भुवः स्वस्त्रयीशानमार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ॥१॥

सारे तीर्थङ्करोंकी प्रतिष्ठा—महिमाके कारण, मोक्षके आधार, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—इन तीनों लोकों के स्वामी "अरिहन्त-पद" का हम ध्यान करते हैं।

खुलासा—जो "अरिहन्त-पद" समस्त तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठा का कारण है, जो अरिहन्त मोक्ष या परमपद का आश्रय है, जो स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल लोक—इन तीनों लोकों का स्वामी है, हम उसी अरिहन्त-पद का ध्यान करते हैं; अर्थात् हम अनन्त ज्ञानादिक अन्दरूनी विभूति और समवसरण आदि बाहरी विभूति का ध्यान करते हैं।

नामाकृतिद्रव्यभावैः, पुनतास्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्व्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ॥२॥

समस्त लोकों और सब कालों में, अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—इन चार निक्षेपों के द्वारा, संसार के प्राणियों को पवित्र करने वाले तीर्थङ्करों की उपासना हम अच्छी तरह से करते हैं।

खुलासा—तीर्थङ्कर क्या करते हैं? तीर्थङ्कर जगत्‌के प्राणियोंको पापमुक्त या पवित्र करते हैं। हाँ, तीनों लोक और तीनों कालों में तीर्थङ्कर प्राणियों को पवित्र करते हैं, उनको पापों—दु:खों से छुड़ाते हैं। तीर्थङ्कर किसके द्वारा प्राणियों को पवित्र करते हैं? अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों † द्वारा। ऐसे संसार को पवित्र करनेवाले तीथङ्करों की उपासना या अराधना सभी लोगों को करनी चाहिए। ग्रन्थकार महाशय कहते हैं, जो

†नाम=नाम अरिहन्त=किसी व्यक्ति की अरिहन्त संज्ञा। स्थापना=स्थापना अरिहन्त=अरिहन्त का चित्र या मूर्त्ति। द्रव्य=द्रव्य अरिहन्त=जो अरिहन्त पद पा चुका या पानेवाला है। भाव=भाव अरिहन्त=जो वर्त्तमान काल में अरिहन्त-पद का अनुभव कर रहा है। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—ये शब्द के विभाग है। इन विभागों को ही "निक्षेप" कहते हैं।

इन चारों निक्षेपों द्वारा तीर्थङ्कर प्राणियोंको पवित्र करते हैं। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि, हम जगत् के प्राणी अरिहन्तों के नाम, अरिहन्त की मूर्त्तियों या तस्वीरों, अरिहन्त-पद पा चुकने वाले या पाने ही वाले और वर्त्तमान समयमें अरिहन्त-पदका अनुभव करनेवालों द्वारा पवित्र होते हैं।

तीर्थङ्कर जगत् के प्राणियों को पवित्र करते हैं, हम सुन्दर विधि से उन्हीं की उपासना करते हैं।

आदिमं पृथिवीनाथमादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभस्वामिनं स्तुमः ॥३॥

जो इस अवसर्पिणी कालमें पहला ही राजा, पहला ही त्यागी मुनि और पहला ही तीर्थङ्कर हुआ है, उस ऋषभदेव स्वामी की हम स्तुति करते हैं।

खुलासा—इस महीका पहला महीपति कौन हुआ? ऋषभदेव स्वामी! इस पृथ्वी पर पहला त्यागी कौन हुआ? ऋषभदेव स्वामी! पहला तीर्थ नाथ या तीर्थङ्कर कौन हुआ? ऋषभदेव स्वामी! ग्रन्थकर्त्ता-आचार्य कहते हैं—इस ससार के पहले राजा, पहले त्यागी और पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेवजी हुए हैं। हम उन्हीं सब से पहले नरेश, सब से पहले त्यागी और सब से पहले तीर्थङ्कर की स्तुति करते हैं।

अर्हन्तमजितं विश्व कमलाकर भास्करम् ।
अम्लान केवलादर्श सक्रान्त जगतं स्तुवे ॥४॥

जिस तरह सूर्य्य से कमल-वन आनन्दित होता है; उसी तरह जिस से यह सारा जगत् आनन्दित या प्रफुल्लित है, जिसके केवल ज्ञान रूपी निर्मल दर्पण में सारे लोकों का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस अजितनाथ प्रभु की हम स्तुति करते हैं।

देवताओं के भी स्वामी हैं। और सबको छोड़कर, केवल उन्हींके चरणोंमें मस्तक झुकाओ, उन्हींकी वन्दना, आराधना और उपासना करो। वे देव देवेश तुम्हारी अभिलाषाओं को पूर्ण करेंगे।

पद्मप्रभप्रभोर्देहभासः पुष्णन्तु वः शिवम् ।
अन्तरंगारिमथन कोपाटोपादिवारुणाः ॥८॥

शरीर के अन्दर रहनेवाले शत्रुओ को दूर भगाने के लिए भगवान् पद्मप्रभ स्वामी ने इतना कोप किया कि, उनके शरीर की कान्ति लाल हो गई। भगवान् की वही कान्ति तुम्हारी सम्पत्ति की वृद्धि करे।

खुलासा—बाहर के शत्रुओं की अपेक्षा भीतर के शत्रुओं को अपने वश में करना, और उन्हें पराजित करके बाहर निकाल देना परमावश्यक है। बाहरी शत्रुओं से हमारी उतनी हानि नहीं है, जितनी कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भीतरी शत्रुओं से है। ये शत्रु प्राणी के इहलोक के सुख और मोक्ष-पद लाभ करने में पूर्ण रूप से बाधक हैं। इनके शरीर में रहने से प्राणी का हर तरह अनिष्ट साधन ही होता है। उसे सिद्धि किसी हालत में भी नहीं मिल सकती। इसी से सिद्धि चाहनेवाले को इन्हें शरीर से निकाल देना चाहिये। ग्रन्थकार कहता है, इन भीतरी शत्रुओं के शरीर रूपी किले से बाहर निकाल देने के लिए भगवान् ने इतना क्रोध किया, कि क्रोध के मारे उनके शरीर का रंग लाल होगया। भगवान् की वही लाल रंग की कान्ति तुम्हारी सम्पत्ति को बढ़ावे !

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय महेन्द्रमहितांघ्रये ।
नमश्चतुर्वर्णसंघ गगनाभोगभास्वते ॥६॥

जिस तरह सूर्य्य से आकाश शोभायमान होता है; उसी तरह जिन भगवान् सुपार्श्व नाथ से साधु-साध्वी एवं श्रावक और श्राविका रूपी चार प्रकार का संघ शोभायमान होता है, जिनके चरणों की बड़े-बड़े इन्द्रों या महेन्द्रों ने पूजा की हैं, उन्हीं भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र को हमारा नमस्कार है।

खुलासा—जिस तरह सूर्य्य आकाश में शोभित होता है, उसी तरह भगवान् सुपार्श्वनाथ साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं के सघ रूपी आकाश में शोभित होते हैं। जिस तरह सूर्य्य आकाश में रौशनी फैला देता और वहाँ का अन्धकार हर लेता है; उसी तरह भगवान् पार्श्वनाथ साधु-स्वाधी और ※ श्रावक-श्राविकाओं के अन्धकार-पूर्ण हृदयों में रोशनी करते और उनके अज्ञान अन्धकार को हरण कर लेते हैं. बड़े बड़े इन्द्र उन की चरण-वदना करते हैं। ऐसे भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ जी को हमारा नमस्कार है।

चन्द्रप्रभप्रभोश्चन्द्रमरीचिनिचयोज्ज्वला ।
मूर्त्तिर्मूर्त्तसितध्यान निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ॥१०॥

भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी देह चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल या निर्मल है। इसलिये, ऐसा मालूम होता है, मानों वह

※ साधु=ससार त्यागी पुरुष। साध्वी=संसारत्यागनेवाली स्त्री। श्रावक=उपदेश सुननेवाला। श्राविका=उपदेश सुननेवाली।

मूर्त्तिमान शुक्लध्यान से बनी है। भगवान् की स्वभावसे ही सुन्दर देह तुम सब का कल्याण करे!

करामलकवद्विश्वं, कलयन् केवलश्रिया।
अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः,सुविधिर्बोधयेऽस्तुवः॥११॥

जो अपने केवल-ज्ञान से, समस्त संसार को, हाथ में रक्खे हुए आँवलेकी तरह, साफ देखनेवाले हैं, जो* अचिन्तनीय माहात्म्य या प्रभाव के ख़ज़ाने हैं, वे सुविधिनाथ भगवान् तुम्हारे-सम्यक्त्व पाने में सहायक हों!

खुलासा—जिन सुविधिनाथ भगवान् को सारा भूमण्डल, उन के केवल-ज्ञान के बल से, हाथ में रखे हुए आँवले † की तरह, हरतरफ से साफ दिखाई देता है, और जो अचिन्तनीय‡ प्रभाव के भण्डार हैं, वेही सुविधिनाथ भगवान् आप लोगों के §सम्यक्त्व—पूर्णता—सत्य के प्राप्त करने में सहायक हों, अर्थात् उनकी कृपा या सहायता से आप लोगों को सत्य की प्राप्ति होजाय।

---

* अचिन्तनीय माहात्म्य=ख़याल में भी न आने योग्य महिमा या शक्ति।

† जिस तरह मनुष्य को हाथ में रखे हुए आँवले को हर पहलू से देख सकना आसान है; उसी तरह भगवान् को सारे संसार को देख लेना आसान है। मनुष्य अपने चर्मचक्षुओं से हाथ के आँवले को स्पष्ट देख सकता है, भगवान् सुविधिनाथ अपने केवल-ज्ञान से ससार को स्पष्ट देख सकते हैं।

‡ अचिन्तनीय=जिसका ख़याल भी न किया जासके, जिसकी कल्पना भी न हो सके।

§ सम्यक्त्व=सत्य, पूर्णता, पूर्ण ज्ञान।

सत्वानां परमानन्दकन्दोद्भेदनवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृतनिष्यन्दी शीतलः पातुवोजिनः ॥१२॥

जो प्राणियों के परमानन्द रूपी अङ्कुर को प्रकट करनेके लिए नवीन मेघ के समान हैं और जो स्याद्वाद रूपी अमृत की वर्षा करने वाले हैं, वेही भगवान् श्री शीतलनाथजी तुम्हारी रक्षा करें !

खुलासा—जिस तरह नवीन मेघके बरसनेसे अङ्कुर प्रकट होते हैं; उसी तरह भगवान् श्री शीतलनाथजी के उपदेशामृत की वर्षा करने से ससारी प्राणियों के हृदयों में परमानन्द या परम सुखका अङ्कुर प्रकट होता है। ग्रन्थ-कार कहता है, जिन भगवान् के उपदेशों से प्राणियों के हृदय में परमानन्द का उदय होता है, वे ही भगवान् आप लोगों को सब प्रकार के दुःख, क्लेश, कष्ट और आपदाओं से बचावें ; कुपथ से हटा कर सुपथ पर लावें और पाप-ताप के गढ्हों में गिरने से रोकें।

भवरोगार्त्तजन्तुनामगदंकारदर्शनः ।
निःश्रेयसश्रीरमणः श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु वः॥१३॥

जिस तरह चिकित्सक या वैद्य का दर्शन रोगियों को आनन्द देने वाला है; उसी तरह संसार के दुःख और क्लेशों से दुखी प्राणियों को जिन भगवान् श्रेयांसनाथका दर्शन आनन्द देने वाला है, और जो मोक्ष-लक्ष्मी के स्वामी हैं, वे ही श्रेयांसनाथ स्वामी तुम्हारा कल्याण करें !

खुलासा—जिस तरह वैद्य को देखते ही रोगी को आनन्द होता है, रोग-शत्रु से पीछा छूट जाने की आशा से खुशी होती है; उसी तरह संसार रूपी रोग से पीड़ित प्राणियों को भगवान् श्रेयांसनाथ के दर्शनों से प्रसन्नता होती है, उनको पाप-ताप के भय और भयङ्कर चिन्ताग्नि से रिहाई मिलती है, उनके मुर्झाये हुए हृदय-कमल खिल उठते हैं; क्योंकि भगवान् मोक्ष-लक्ष्मी-रमण या मोक्ष के स्वामी हैं। वे दुखिया प्राणियों का दुःख-गर्त्त से उद्धार कर सकते हैं, उन्हें जन्म-मरण के घोर दुःखों से छुड़ा सकते हैं, उन्हें परम पद या मोक्ष दे सकते हैं। ग्रन्थकार कहता है, ऐसे ही परमानन्द के दाता और मोक्ष* के स्वामी भगवान्, श्रेयांसनाथ, आप लोगों का कल्याण करें!

विश्वोपकारकीभूततीर्थकृत्कर्मनिर्मितिः ।
सुरासुरनरैः पूज्यो वासुपुज्यः पुनातु वः ॥१४॥

जिन्होंने जगत् के उपकार करनेवाले तीर्थङ्कर नाम-कर्मको बाँधा है; जो सुर, असुर और मनुष्यों द्वारा पूजने योग्य हैं; वे वासुपूज्य भगवान् तुम्हें पवित्र करें!

विमलः स्वामिनो वाचः कतकक्षोदसोदराः ।
जयन्ति त्रिजगच्चेतोजलनैर्मल्यहेतवः ॥१५॥

---

* मोक्ष=जन्म से रहित। जिस की मोक्ष हो जाती है, उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। जिस का जन्म नहीं होता, उसकी मृत्यु भी नहीं हो सकती। जन्म-मरण से पीछा छूट जाने को ही मोक्ष होना कहते हैं।

जिस तरह निर्मली का चूर्ण जल में घोल देने से जल को निर्मल या साफ कर देता है ; उसी तरह भगवान् विमलनाथ की वाणी तीनों जगत् के प्राणियों के अन्त:करणों का मैल दूर करके उन्हें पवित्र करती है। आप की अलौकिक वाणी की सर्वत्र जय हो रही है!

खुलासा—निर्मली एक प्रकारकी वनस्पति होती है। उसको पीसकर गदले से गदले पानी में घोल देने से जल बिल्लौरी शीशे की तरह साफ होजाता है। ग्रन्थकार कहता है, भगवान् विमलनाथ के उपदेश या वचन भी निर्मली की तरह ही तीनों लोकों के प्राणियों के मैले अन्तःकरणों को शुद्ध और साफ कर देते हैं ; यानी उन के अन्तः करणों पर जो काम क्रोध, लोभ, मोह और ईर्षा-द्वेष प्रभृति का मैल जमा रहता है, वह भगवान् के उपदेशों से दूर हो जाता है, और अन्तः करण निर्मल आइने की तरह स्वच्छ और साफ हो जाते हैं। भगवान् की ऐसी लोकोत्तर वाणी की सर्वत्र जय जयकार हो रही है। संसार उन के उपदेशों को श्रद्धा और भक्ति से सुनता और उन पर अमल करता है।

स्वयंभूरमणस्पर्द्धिकरुणारसवारिणा।
अनंत जिदनंतां वः प्रयच्छतु सुखश्रियम् ॥१६॥

जिस तरह स्वयं-भूरमण नामक समुद्र में अनन्त जलराशि है ; उसी तरह श्री अनन्तनाथ स्वामी में अनन्त—अपार दया है। वही अनन्तनाथ प्रभु अपनी अपार दया से तुम्हें अनन्त सुख-सम्पत्ति दें!

खुलासा—श्री अनन्तनाथ स्वामी स्वयभूरमण—समुद्र से स्पर्धा करते हैं। जिस तरह उस समन्दर में अनन्त जल भरा है, उसी तरह भगवान् में

अनन्त—अपार दया-जल है। जिन भगवान्‌में अनन्त दया है, वही भगवान् दया करके आपलोगों को अनन्त अक्षय सुखैश्वर्य्य प्रदान करें, यही ग्रन्थ-कारका आशय है।

कल्पद्रुमसधर्माणमिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम्।
चतुर्धाधर्मदेष्टारं धर्मनाथमुपास्महे ॥१७॥

जो भगवान् प्राणियों को उनके मन-चाहे पदार्थ देने में कल्प-वृक्ष के समान हैं और जो चार प्रकार के धर्म का उपदेश देनेवाले हैं, उन भगवान् श्री धर्मनाथजी की हम उपासना करते हैं।

खुलासा—कल्पवृक्ष या कल्पद्रुम में यह गुण है, कि उससे जो कोई जिस पदार्थकी कामना करता है, उसे वह वही पदार्थ आसानी से दे देता है। भगवान् धर्मनाथजी ससार के प्राणियों के लिए *कल्पवृक्ष हैं। संसारी लोग उन भगवान् से जो चीज़ माँगते हैं, भगवान् उन्हें वही चीज, सहज में दे देते हैं। इस के सिवा वे दान, शील, तप और भाव रूपी चार प्रकार के धर्म का उपदेश भी देते हैं। हम उन्हीं कल्पतरु के समान मनवांछित फल दाता भगवान् की उपासना करते हैं।

सुधासोदरवाग्ज्योत्स्ना निर्मलीकृतदिङ्मुखः।
मृगलक्ष्मा तमः शांत्यै शांतिनाथजिनोऽस्तुवः॥१८॥

---

*कल्पवृक्ष—एक वृक्ष का नाम है, जो माँगने पर मन-चाहे पदार्थ देता है, यानी उससे जो माँगा जाता है, वही देता है। भगवान् भी भक्तों के लिए कल्पतरु हैं, उनसे प्राणी जो माँगते हैं, उन्हें वह वही देते हैं, स्त्री चाहने वाले को स्त्री, पुत्र-कामी को पुत्र और धन-कामी को धन प्रभृति।

जिन्होंने अमृत-समान वाणी रूपी चाँदनी से दिशाओंके मुखों को निर्मल कर दिया है और जिन में हिरन का लाञ्छन है, वह शान्तिनाथ जिनेश्वर तुम्हारे तमोगुण अज्ञान को दूर करें !

खुलासा—जिस तरह सुधाकर—चन्द्रमा की सुधामय किरण की चाँदनी से दिशायें प्रसन्न हो उठती हैं; उसी तरह श्रीशान्तिनाथ स्वामीके सुधा-समान उपदेशों से सुनने वालों के मुख प्रसन्न हो उठते हैं। जिस तरह चन्द्रमाके उदय होने से, उसकी निर्मल चांदनी छिटकने से दशों दिशाओं का घोर अन्धकार दूर हो जाता है; उसी तरह भगवान् शान्तिनाथ के अमृतमय वचनों के सुनने से श्रोताओं के हृदयकमल खिल उठते हैं, उन के हृदयों का अज्ञान-अन्धकार दूर हो जाता है, उनके शोक-सन्तप्त हृदयों में सुशीतल शान्ति का सञ्चार हो उठता है, वे हिरन के लाञ्छन वाले भगवान् आप लोगों के अज्ञान-अन्धकार को उसी तरह नष्ट करें, जिसतरह चन्द्रमा जगत् के अन्धकार को नष्ट करता है।

श्रीकुंथुनाथो भगवान् सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः ।
सुरासुरनृनाथानामेकनाथोऽस्तु वःश्रिये ॥१६॥

जिस के पास अतिशयों की ऋद्धि या सम्पत्ति है और जो देवताओं, राक्षसों और मनुष्यों के राजाओं का एक स्वामी है, श्रीकुन्थुनाथ भगवान् तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा करें !

खुलासा—जो श्रीकुन्थुनाथ भगवान् चौंतीस अतिशयों की सम्पत्ति के स्वामी और देवेन्द्र, दनुजेन्द्र तथा नरेन्द्रोंके भी नाथ हैं, वही भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।

अरनाथस्स: भगवांश्चतुर्थारनभोरविः।
चतुर्थपुरुषार्थश्रीविलासं वितनोतु वः ॥२०॥

जो भगवान् श्री अरनाथजी चौथे आरे* में उसी तरह शोभायमान थे, जिस तरह आकाश में सूर्य शोभायमान् होता है, वह भगवान् तुम्हें मोक्ष दें।

* काल-चक्र के दो भाग होते हैं :—(१) उत्सर्पिणी, और (२) अवसर्पिणी, इन दोनों मुख्य भागोंके छह-छह हिस्से होते हैं। इन हिस्सों को ही "आरे" कहते हैं।

सुरासुरनराधीशमयूरनववारिदम्।
कर्मद्रून्मूलने हस्तिमल्लं मल्लिभिष्टुमः ॥२१॥

जिन भगवान् को देखकर सुरपति, असुरपति और नरपति उसी तरह प्रसन्न हुए, जिस तरह नवीन मेघको देखकर मोर प्रसन्न होते हैं और जो भगवान् कर्म-रूपी वृक्षको निर्मूल करनेमें ऐरावत हाथी के समान हैं, उन्हीं मल्लीनाथ भगवान् की हम स्तुति करते हैं।

* कर्म-बन्धनमें बँधे रहनेसे प्राणी का जन्म-मरणसे पीछा नहीं छूटता। जब तक कर्मों की जड़ नाश नहीं होती, तब तक प्राणी को बारम्बार जन्म लेना और मरना पड़ता है। जो कर्म को जड़ से उखाड़ फेंकते हैं, वे मोक्ष लाभ करते हैं, उन्हें फिर जनमना और मरना नहीं पड़ता।

जगन्महामोहनिद्रा प्रत्यूषसमयोपमम्।
मुनिसुव्रतनाथस्य देशनावचनं स्तुमः ॥२२॥

श्रीमुनिसुव्रत स्वामीका उपदेश, जो जगत्‌को महान् अज्ञान-रूपी निद्रा के नाश करने के लिए प्रातःकाल के समान है, हम उसकी स्तुति करते हैं।

खुलासा—यह जगत् मिथ्या और असार है। आयु फटे घड़े के छेद से पानी निकलने की तरह दिन-दिन घटती जाती है, मौत सिर पर मँडराया करती है, लक्ष्मी और स्त्री पुत्रादि सब चपला की समान चञ्चल हैं; फिर भी प्राणियों को होश नहीं होता; क्योंकि वे जगत् की महामोहमयी निद्रा में मग्न हैं। उन मोहनिद्रा में सोने वालों को जगाने के लिए, श्री मुनिसुव्रत स्वामी का उपदेश-वचन प्रातः काल के समान है। जिस तरह प्रातःकाल होने से प्राणी निद्रा त्याग कर उठ बैठते हैं; उसी तरह सुव्रत स्वामी जी महाराज के उपदेशों को सुन कर, मोहनिद्रा में गर्क रहने वाले चैतन्य लाभ करते और कर्म बन्धन काटने की चेष्टा करते हैं। ग्रन्थकार कहता है, हम उन्हीं मुनि महाराज के उपदेश-वचनों की स्तुति या प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वे मोहनिद्रा दूर करने में अव्यर्थ महौषधि के समान हैं।

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि निर्मलीकार कारणम्।
वारिप्लवा इव नमेः, पान्तु पादनखांशवः ॥२३॥

श्रीनेमिनाथ भगवान् के चरणोंके नाखूनों की किरणें, उन के चरणों में सिर नवानेवालों के सिर पर जल-प्रवाह की भाँति पड़तीं और उन्हें पवित्र करती हैं। भगवान्‌के नाखूनों की वे ही किरणें तुम्हारी रक्षा करें!

खुलासा—जो प्राणी भगवान् नेमिनाथ के चरण-कमलों में सिर झुकाते है, उनकी पदवन्दना करते है उनके सिरों पर भगवान् के चरणों के नाखूनों की किरणे गिरतीं और उन्हे पापमुक्त करती हैं। जिन किरणों का ऐसा प्रभाव है, वे किरणे आप की रक्षा करे!

यदुवंशसमुद्रेन्दुः , कर्मकक्षहुताशनः।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्वोऽरिष्टनाशनः॥२४॥

जो यदुवंश-रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमाके समान और कर्म रूपी वन के लिए अग्नि के समान थे, वह श्री नेमिनाथ भगवान् तुम्हारे अरिष्ट को नष्ट करें।

खुलासा—जिस तरह चन्द्रमा के प्रभाव से समुद्र बढ़ता है; उसी तरह जिन भगवान् के प्रभाव से यदुवंश की वृद्धि हुई और जिन्होंने कर्मों को उसी तरह भस्म कर दिया, जिस तरह आग वन को जला कर भस्म कर देती है, वही अरिष्टनेमि भगवान् श्री नेमिनाथ स्वामी आप का अनिष्ट नाश करें!

कमठेधरणेन्द्रे च, स्वोचितंकर्मकुर्वति ।
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः,पार्श्वनाथ श्रियेऽस्तु वः ॥२५

अपने अपने स्वभाव के अनुसार आचरण करनेवाले कमठ नामक दैत्य और धरणेन्द्र नामक असुरकुमार—वैरी और सेवक पर जिनकी मनोवृत्ति समान रही, वही भगवान् पार्श्वनाथ तुम्हारी सम्पत्ति के कारण हों!

खुलासा—पूर्वभव में भगवान् पार्श्वनाथने धरणेन्द्र की अग्नि से रक्षा की थी, इससे इस जन्म में वह उनकी भक्ति करता और उपसर्ग बचाता था; किन्तु कमठ उनका वैरी था; वह उपसर्ग करता था यानी उनपर आपदायें लाता था, पर भगवान् समदर्शी थे, उनकी नजरों में शत्रु-मित्र समान थे, वे शत्रु और सेवक दोनों पर समभाव रखते थे। ग्रन्थकार कहता है, वेही समदर्शी भगवान् पार्श्वनाथ तुम्हारी सुख-सम्पत्ति की वृद्धि करें—तुम्हारा कल्याण करें!

कृतापराधेऽपिजने, कृपामन्थर तारयोः ।
ईषद्वाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीर जिननेत्रयोः ॥२६॥

श्रीमहावीर प्रभु में दया की मात्रा इतनी अधिक थी, कि उन्हें पूर्ण रूप से सताने और दुःख देनेवाले 'संगम'* नामक देव

* एक समय महावीर भगवान् तप करते थे। उस समय संगम नामक देवने उन पर ६ मास तक उपसर्ग किया; मगर प्रभु विचलित न हुए। भगवान् की दृढ़ता देखकर, देवने स्वर्ग जाने की इच्छा से कहा—"हे देव!

पर उन्हें दया आगई, इससे उनकी आँखों की पुतलियाँ उस पर झुक गईं—इतना ही नहीं, आँसुओं से उनकी आँखें तक तर होगईं। ऐसे दया-भाव पूर्ण प्रभु के नेत्रों का कल्याण हो।

खुलासा—भगवान् इतने दयालु थे कि, उन्हें अपने अनिष्ट-कारियों पर भी दया आती थी। वे अपने कष्टों को भूल कर, सतानेवाले के कष्टों की ही फिक्र करते थे।

अब आप स्वेच्छा-पूर्वक आहार के लिए भ्रमण कीजिये। मैं आपको उपसर्ग नहीं करूँगा। भगवान् ने जवाब दिया—"मैं तो अपनी इच्छा से ही भ्रमण करता हूं, किसी के कहने या दबाव डालने से नहीं।" जिस समय देव वहां से चलने लगा, तब भगवान् की आंखों में यह सोच कर आंसू आगये कि, इस बेचारे ने जो अनिष्ट कर्म किये हैं, उनके कारण इसे दुःख होगा। प्रभु की इस दृष्टि को लक्ष्य में रख कर ही कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने इस स्तुति-श्लोक की रचना की है।

पहला भव

ऊपर जिन तीर्थङ्करों को नमस्कार किया गया है, उन्हीं के समय और उन्हीं के तीर्थों में १२ चक्रवर्ती, ६ अर्द्ध चक्री—वासुदेव, ६ बलदेव और ६ प्रति वासुदेव हुए हैं। ये सब महा पुरुष त्रिषस्ठि शलाका* पुरुषों के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें से कितने ही मोक्ष-लाभ कर चुके हैं और कितने ही लाभ करने वाले हैं। इन्होंने अवसर्पिणी कालमें जन्म लेकर भरतक्षेत्र को पवित्र किया है। शलाका पुरुषत्व से सुशोभित इन्हीं पुरुष रत्नों के चरित्रों का वर्णन हम करते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका कीर्त्तन कल्याण और मोक्षके देनेवाला होता है। हम सबसे पहले भगवान् श्री ऋषभदेव स्वामी का जीवन चरित्र, "उस भवसे जिसमें उन्हें सम्यक्त्व प्राप्त हुवा था" लिखते हैं।

---

*ये सब उसी भवमें अथवा आगामी भव में निश्चयतः मोक्ष-गामी होने से शलाका पुरुष कहलाते हैं।

असंख्य समुद्र और असंख्य द्वीपरूपी कंकणों एवं वज्रवेदिका से परिवेष्ठित एक द्वीप है। उसका नाम जम्बूद्वीप है। वह अनेक नदियों और †वर्षधर-पर्वतों से सुशोभित है। उस द्वीप के बीच मे स्वर्ण-रत्नमय मेरु नामक पर्वत है। वह उसकी नाभि के समान शोभायमान है और वह एक लाख योजन ऊँचा है। तीन ‡मेखलायें उसकी शोभा बढ़ाती हैं। उसपर चालीस योजन की चूलिका-समतल भूमि है। वह श्री अर्हन्तोंके मन्दिरों से जगमगा रही है। उसके पश्चिम ओर विदेह-क्षेत्र है। उस क्षेत्रमें भूमण्डलके भूषण-समान क्षिति-प्रतिष्ठितपुर नामका एक नगर है।

उस नगर मे, किसी समय में, प्रसन्नचन्द्र नामका राजा राज्य करता था। वह नरपति धर्म-कर्म में आलस्य-रहित था। महान ऋद्धियों के कारण, वह इन्द्र की भाँति शोभायमान था। उस राजा के नगर मे धन नामका एक साहूकार था। जिस तरह अनेकों नदियाँ समुद्र में आकर आश्रय लेती हैं; उसी तरह नाना प्रकार की धनराशियोंने उसकेयहाँ आश्रय ग्रहण किया था। उसके पास अनन्त धन-सम्पत्ति थी, जो चन्द्रकी चन्द्रिका की तरह छोटे-बड़े, नीचे-ऊँचे सभी का उपकार साधन करती थी; अर्थात् उसकी सम्पत्ति परोपकार के कामों में ही ख़र्च होती थी।

---

†वर्ष-क्षेत्र उसको अलग करने वाला वर्षधर—पर्वत।

‡पहली मेखला में नन्दन वन, दूसरी मेखला में सोमनस वन और तीसरी मेखलामें पांडुक वन है।

जिस तरह महावेगवती नदीके प्रवाह में पर्वत अचल और अटल रहता है; उसी तरह धन सेठ, सदाचार रूपिणी नदी के प्रवाह में, पर्वत के समान अचल और अटल था। वह सत्पथ से विचलित होने वाला नहीं था। बहुत क्या—वह सारी पृथ्वी को पवित्र करने वाला सेठ सभी से पूजा जाने योग्य था। उसमें यशरूपी वृक्षके अमोघ बीज के समान औदार्य्य, गाम्भीर्य्य और धैर्य्य आदि गुण थे। अनाज की ढेरियों की तरह उसके घरमें रत्नों की ढेरियाँ थीं। जिस तरह शरीर में प्राण-वायु मुख्य होता है; उसी तरह वह धन सेठ धनवान, गुणवान् और कीर्त्तिमान लोगों में मुख्य था। जिस तरह बड़े भारी तालाब के आसपास की ज़मीन उसके सोतों से तर रहती है; उसी तरह उस सेठ के धनसे उसके नौकर-चाकर प्रभृति तर रहते थे।

वसन्तपुर जानेकी तैयारी

एक, दिन मूर्त्तिमान उत्साह की तरह, उस साहूकारने किराना लेकर वसन्तपुर जानेका इरादा किया। उसने नगरमें अपने आदमियों द्वारा यह डौंडी पिटवादी—"धन सेठ वसन्तपुर जाने वाले हैं। जिस किसी को वसन्तपुर चलना हो, वह उनके साथ होले। जिसके पास चढ़ने को सवारी न होगी, उसे वह सवारी देंगे। जिसके पास खाने-पीने के बर्तन न होंगे, उसे वह बर्तन देंगे। जिसके पास राह-खर्च न होगा, उसे वह राह-खर्च देंगे। राहमें चोरों और डाकूओं तथा सिंह व्याघ्र आदि हिंसक

पशुओं से सबकी रक्षा करेंगे। जो कोई अशक्त होगा, उसकी पालना वह अपने बन्धुओंकी तरह करेंगे।"इस तरह डौंडी पिट-जाने पर, कुलाङ्गनाओने उसका प्रस्थान-मंगल किया। इसके बाद वह आचार युक्त सार्थवाह सेठ, शुभ मुहूर्त्त मे, रथमे बैठ कर, शहर के बाहर चला। सेठ के कूँच करने के समय जो भेरी बजी, उसको वसन्तपुर-निवासियोंने अपने बुलाने वाला हरकारा समझा। भेरी-नाद सुन-सुनकर, सभी लोग तैयार हो गये और नगर के बाहर आगये।

धर्मघोष आचार्य्य।

इसी समय अपनी साधुचर्य्या और धर्माचरण से पृथ्वी को पवित्र करने वाले एक धर्मघोष नामक आचार्य्य उस साहूकार के पास आये। उन्हें देखते ही वह साहूकार विस्मित होकर अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उन सूर्यके समान तेजस्वी और कान्तिमान् आचार्य को नमस्कार किया और उनसे पधारनेका कारण पूछा। आचार्य महाराज ने कहा—"हम तुम्हारे साथ वसन्तपुर चलेंगे।" सार्थवाह बोला—"महाराज! आज मैं धन्य हूँ, कि आप जैसे साथ चलने-योग्य महापुरुष मेरे साथ चलने को पधारे हैं। आप सानन्द मेरे साथ चलिये।" इसके बाद उसने रसोई बनाने वालोंसे कहा कि, तुम लोग महाराजके लिए अन्न पानादि खाने पीनेके समान सदा तैयार रखना। सार्थवाह की यह आज्ञा सुनते ही आचार्य्य ने कहा—"साधुओं

इसके बाद सार्थवाह बड़ी-बड़ी तरंगों वाले समुद्रकी तरह अपने चञ्चल घोड़े,
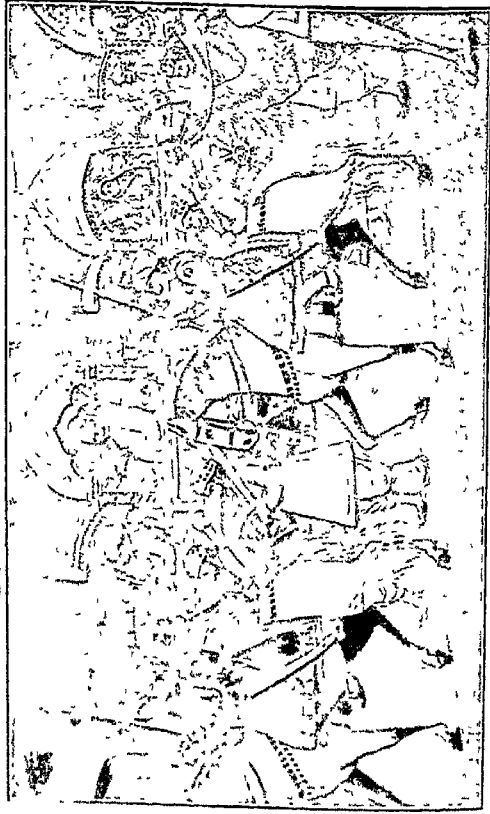
को वही आहार ग्रहण करना चाहिये, जो न तो उनके लिए तैयार किया गया हो, न कराया गया हो और न संकल्प ही किया गया हो। सेठ जी! जिनेन्द्र-शासन मे साधुओ के लिए कूप, बावडी और तालाब का जल पीने की भी मनाही है; क्योंकि वह अग्नि वगेरः शस्त्रोंसे अचित किया हुआ नही होता।" ये बातें हो ही रही थीं कि, इतने मे किसी पुरुष ने आकर सन्ध्या कालके बादलों के समान, सुन्दर रंगवाले, पके हुए आमोंसे भरा हुआ एक थाल सार्थवाह के पास रख दिया। धन सार्थवाहने, अतीव प्रसन्न चित्तसे, आचार्य्य से कहा—"आप इन फलोंको ग्रहण करें, तो मुझपर बड़ी कृपा हो।" आचार्य्य ने कहा—"हे श्रद्धालु! साधुओ के लिए सचित्त फलोंके छूने तक की मनाही है, खाना तो बड़ी दूर की बात है।" सार्थवाह ने कहा—"आप महा दुष्कर व्रत धारण करते है। प्रमादी यदि चतुर भी हो, तोभी ऐसा व्रत एक दिन भी नही पाल सकता। खैर, आप साथ चलिये। आप को जो अन्न-पानादि ग्राह्य होंगे, मैं वही आपको दूंगा।" इस तरह कहकर और नमस्कार करके, उसने उनको विदा किया।

सेठ का पन्थगमन।

इसके बाद सार्थवाह बड़ी-बड़ी तरङ्गों वाले समुद्रकी तरह अपने चञ्चल घोड़े, ऊँट, गाड़ी और बैलोंके सहित चलने लगा। आचार्य महाराज भी मानो मूर्त्तिमान मूल गुण और उत्तर गुण हों, ऐसे साधुओं से घिर कर चलने लगे। सारे संघके

आगे-आगे धन सार्थवाह चलता था। उसके पीछे-पीछे उसका मित्र मणिभद्र चलता था। उनके दोनों ओर सवारोंका दल चलता था। उस समय सार्थवाह के सफेद छत्रोंके देखने से शरद् ऋतुके बादलों का और मोरकी पूँछ के छातों से वर्षा ऋतुके मेघों का भान होता था; यानी जब सफेद छातों पर नज़र जाती थी, तब आकाश शरद् के मेघोंसे और जब मयूर-पुच्छ के छातों पर दृष्टि पड़ती थी, तब वर्षा-काल के बादलों से व्याप्त मालूम होता था। घनवात यानी पृथ्वी की आधारभूत वायु जिस तरह पृथ्वी को वहन करती है; उसी तरह सार्थवाह के ऊँट, बलध, साँड, खच्चर और गधे उसके कठिन से ढोने योग्य सामान को ढो रहे थे। वे इतनी तेज़ी से चल रहे थे कि, उनके क़दम ज़मीन को छूते मालूम न होते थे। ऐसा जान पड़ता था, गोया हिरनों की पीठों पर गौनें लाद दी गई हैं। ऊँट इतनी तेज़ी से चल रहे थे कि, ऊँची-ऊँची पंखों वाले पक्षीसे मालूम होते थे। अन्दर बैठे हुए जवानों के क्रीड़ा करने योग्य गाड़ियाँ ऐसी मालूम होती थीं, मानों चलते-फिरते घर हों। विशालकाय मोटे-मोटे कन्धों वाले भैंसे, आकाश से पृथ्वी पर आये हुए बादलों के समान, जल को ढोते और लोगोंकी प्यास बुझाते थे। गाड़ियों के पहियोंके चूँ चूँ शब्दों से ऐसा मालूम होता था, मानो सार्थवाह के सामान के बोझ से दबी हुई पृथ्वी चीत्कार कर रही हो। बैल, ऊँट और घोड़ों के पैरोंसे उड़ी हुई धूलि आकाश में ऐसी छा गई थी, कि सूचीभेद अन्धकार हो गया था—हाथ को हाथ न सूझता

था। दिशाओं के मुख-भाग को बहरे करने वाली, बैलों के गलों की घण्टियों की टनकार दूर से ही सुनकर, चमरी मृगोंने बच्चों समेत अपने कान खड़े कर लिये और डरने लगे। भारी बोझको ढोने वाले ऊँट चलते-चलते भी अपनी गर्दनों को घुमा-घुमाकर बारम्बार वृक्षों के अगले भागोंको चाटने लगते थे। मालसे भरे बोरोंसे लदे हुए गधे अपने कान ऊँचे और गर्दनें सीधी करके एक दूसरे को दाँतों से काटते और पीछे रह जाते थे। हर ओर हथियारबन्द रक्षकों से घिरा हुआ वह संघ, वज्रके पींजरे में रखे हुए की तरह, मार्ग में चलता था। महासूल्यवान् मणिको धारण करने वाले सर्पके पास लोग जिस तरह नहीं जाते, उसी तरह ढेर धन वहन करने वाले इस संघके पास चोर नहीं आते थे—दूर ही रहते थे। निर्धन और धनवान् दोनों को एक नज़र से देखने वाला, दोनों की ही रक्षा का समान रूपसे उद्योग करने वाला सेठ सार्थवाह सब को साथ लेकर *उसी तरह चलने लगा; जिस तरह यूथपति हाथी अपने साथ* के सब हाथियों को लेकर चलता है। नयनों को प्रफुल्लित करके, लोगों से सम्मान पाता हुआ धन-सार्थवाह सूर्य की तरह रोज़ रोज़ चलने लगा।

ग्रीष्म-वर्णन।

उसी समय नदियों और सरोवरों के जल को, रात्रियों को तरह, संकुचित करने वाली, पथिकों के लिए भयङ्कर और महा

उत्कट ग्रीष्म ऋतु आगई। भट्टी के अन्दर की लकड़ियों से निकलने वाले उत्ताप के जैसा, घोर दुःसह पवन चलने लगा। सूर्य अपनी अग्नि-कणों के समान जलती हुई तेज़ धूपको चारों ओर फैलाने लगा। उस समय, संघ के पथिक, गरमी से घबरा कर, मार्ग में आने वाले अगल-बग़ल के वृक्षोंके नीचे विश्राम करने और प्याऊओं में जल पी-पीकर लेट लगाने लगे। गरमी के मारे, भैंसे अपनी जीभें बाहर निकालने और कोड़ों की मार की परवा न करके नदी की कीचड़ में घुसने लगे। बैलों पर तड़ातड़ चाबुक पड़ते थे, तोभी वे अपने हाँकने वालों का निरादर और मार की पर्वा न करके, बारम्बार कुमार्ग के वृक्षो के नीचे जाते थे। सूर्य की तपाई हुई, लोहे की सूइयों-जैसी, किरणों की तपतसे मनुष्य; और पशुओं के शरीर मोम की तरह गलने लगे। सूर्य नित्य ही अपनी किरणों को तपाये हुए लोहेके फलो जैसी करने लगा। पृथ्वी की धूलि, मार्ग में फैंकी हुई कण्डों की आग की तरह, विषम होने लगी। संघ की स्त्रियाँ राह मे आने वाली नदियों में घुस-घुसकर और कमलनाल तोड़-तोड़कर अपने-अपने गलों मे डालने लगीं। सेठ सार्थवाह की स्त्रियाँ पसीनों से तरबतर कपड़ो से, जल में भीगी हुई की तरह, राहमे बहुत ही अच्छी जान पड़ने लगीं। कितने ही पथिक ढाक-पलाश, ताड़ और कमल प्रभृति के पत्तों के पंखे बना-बनाकर धूप से हुए श्रम को दूर करने लगे।

वर्षा-वर्णन ।

इसके बाद, ग्रीष्म ऋतु की तरह, प्रवासियों की चाल को रोकने वाली, मेघ-चिह्न-स्वरूपिणी, वर्षा ऋतु आगई। आकाश में यक्ष के समान धनुष को धारण करके, धारा रूपी बाणों की वृष्टि करता हुआ मेघ चढ़ आया। उससे संघ के लोगों को बड़ा कष्ट हुआ, वह मेघ सिलगाये हुए फूली की भाँति बिजली को घुमा-घुमाकर, बालको की तरह, संघके सभी लोगों को डराने लगा; अर्थात् बालक जिस तरह घास की पुले को जलाकर घुमाते और लोगों को डराते हैं; उसी तरह वह मेघ बिजली को चमका-चमका कर संघवालों को भयभीत करने लगा। आकाश तक गये हुए और फैले हुए जलके प्रवाहने, पथिकों के हृदयों की तरह, नदियों के विशाल तटों—किनारों को तोड़ डाला। वर्षा के पानी ने पृथिवी के ऊँचे-नीचे भागो को समान कर दिया। क्योंकि जड़ पुरुषों का उदय होने पर भी, उनमे विवेक कहाँ आता है? अर्थात् मूर्खो का अभ्युदय होने पर भी उनमे विवेक या विचार का अभाव ही रहता है। पानी, कीचड़ तथा काँटों से दुर्गम हुए मार्ग मे एक कोस राह चलना चार सौ कोस के समान मालूम होने लगा। घुटनों तक कीचड़ में फँसे हुए लोग, जेल से छूटे हुए कैदियों की तरह, धीरे-धीरे चलने लगे। जल-प्रवाह को देखकर ऐसा भान होता था, मानो दुष्ट दैव ने, प्रत्येक राह में, प्रवाह के मिष से, अपनी भुजा-रूपी आगल लोगों के रोकने के

लिए फैलादी है। उस समय, कीचड़में गाड़ियों के फँसने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो चिरकाल से मर्दन होती हुई पृथ्वी ने क्रोध करके उनको पकड़ लिया हो। ऊँटों के चलाने वाले राह में नीचे उतर कर, रस्सियाँ पकड़-पकड़, कर ऊँटों को खींचने लगे; पर ऊँटों के पैर, ज़मीन पर न टिकने की वजह से, फिसलने लगे और वे पद-पद्पर गिरने लगे। धन-सार्थवाह ने वर्षा-कालमें राह की कठिनाइयों का अनुभव करके, उस घोर वनमें तम्बू तनवा दिये। संघके लोगों ने भी यह समझ कर कि, वर्षा ऋतु यहीं काटनी होगी, अपनी-अपनी झोंपड़ियाँ बनाली, क्योंकि देश-कालका उचित विचार करने वालों को दुखी होना नहीं पड़ता हैं। मणिभद्रने निर्जन्तु स्थान में बनी हुई एक झोंपड़ी या उपाश्रय दिखलाया। उसमें साधुओं-सहित आचार्य महाराज रहने लगे। संघमें बहुत लोगों के होने और वर्षा-कालका लम्बा समय होनेसे, सब का खाने-पीने का सामान और पशुओं के खाने के घास प्रभृति पदार्थ समाप्त हो गये। इसलिये संघ के लोग भूखके मारे, मलिन वस्त्रवाले तपस्वियों की तरह, कन्दमूल और फल-फूल प्रभृति खाने के लिए इधर-उधर भटकने लगे। संघके लोगों की ऐसी बुरी हालत देखकर, सार्थवाह के मित्र मणिभद्र ने, एक दिन, सन्ध्या-समय, ये सारा वृत्तान्त सार्थवाह से निवेदन किया। संघके लोगों की तकलीफों की बात सुनकर, सार्थवाह उनकी दुःख-चिन्ता से इस तरह निश्चल हो गया; जिस तरह, पवन-रहित समय में, समुद्र निष्कम्प हो जाता है। इस

तरह चिन्ता में डूबे हुए सार्थवाह को क्षणभर में नींद आगई। "जिसे अति दुःख या अति सुख होता है, उसे तत्काल नींद आजाती है; क्योंकि ये दोनों निद्रा के मुख्य कारण हैं।" जब रात के चौथे पहर का आरम्भ हुआ, तब अश्वशाला के एक उत्तम आशयवाले पहरेदार ने नीचे लिखी हुई बातें कहीं:—

धनसेठकी उद्विग्नता।

"हमारे स्वामी, जिनकी कीर्त्ति दशों दिशाओं में फैल रही है, स्वयं वे संकटापन्न अवस्था में होनेपर भी, अपने शरणागतों का पालन भले प्रकार करते हैं।" पहरेदार की उपरोक्त बात सुनकर सार्थवाह ने विचार किया कि, किसी शख्स ने ऐसी बात कहकर मुझे उलाहना दिया है। मेरे संघ में दुखी कौन है? अरे! मुझे अब ख़याल आता है, कि मेरे साथ धर्मघोष आचार्य्य आये हैं। वे अकृत, अकारित और प्रासुक भिक्षा से ही उदर-पोषण करते हैं। कन्दमूल और फलफूल आदि को तो वे छूते भी नहीं। इस कठिन समय में, वे कैसे रहते होंगे? इस दुःख की अवस्था में उनकी गुज़र कैसे होती होगी? ओह! जिन आचार्य्य को, राहमे सब तरह की सहायता देने की बात कहकर, मैं अपने साथ इस सफर में लाया हूं, उनकी मैं आज ही याद करता हूँ। मुझ मूर्ख ने यह क्या किया! आज तक जिनका मैंने वाणीमात्र से भी कभी सत्कार नहीं किया, उनको आज मैं किस तरह मुँह दिखलाऊँगा? खैर! गया समय हाथ नहीं

आता। फिर भी, मैं आज उनके दर्शन करके अपने पापो को तो धो डालूँ। वे इच्छा रहित-निस्पृह पुरुष हैं। उन्हें किसी भी वस्तु की चाहना नहीं। ऐसे पुरुष का मैं कौनसा काम करूं? ऐसी चिन्ता में, मुनि-दर्शनोंके लिए उत्सुक, सार्थवाह को रातका शेष रहा हुआ चौथा पहर दूसरी रातके समान मालूम हुआ।

सेठका आचार्य्य के पास जाना।

इसके बाद जब रात बीत गई और सवेरा हो गया, तब सार्थवाह उज्ज्वल वस्त्राभूषण पहन कर, अपने मुख्य आदमियों को साथ लेकर, सूरि के आश्रम की तरफ चला। वहाँ जाकर उसने ढाकके पत्तोंसे छाई हुई, छेदो वाली, निर्जीव भूमि पर बनी हुइ झोपड़ी में प्रवेश किया। उसमें उसने पापरूपी समुद्र को मथने वाले, मोक्ष के मार्ग, धर्म के मण्डप और तेज के आगार-जैसे धर्म घोष मुनि को देखा। वे कषाय रूपी गुल्म में हिमवत, कल्याण-लक्ष्मी के हार समान और संघ के अद्वैत भूषण-समान तथा मोक्ष-कामी लोगों के लिए कल्पवृक्ष के समान मालूम होते थे। वे एकत्र हुए तप, मूर्त्तिमान आगम और तीर्थों को प्रवर्त्तानेवाले तीर्थङ्करों की तरह शोभित थे। उनके आस-पास और मुनि लोग बैठे थे। उनमें से कोई आत्मध्यान में मग्न हो रहा था, कोई मौनव्रत अवलम्बन किये हुए था, कोई कार्योत्सर्ग में लगा हुआ था, कोई आगम-शास्त्र का अध्ययन कर रहा था कोई उपदेश दे रहा था, कोई भूमि प्रमार्जन कर रहा था, को

सार्थवाह ने सबसे पहले आचार्य्य महाराज को और पीछे अनुक्रम से समस्त मुनियों को वन्दना किया। उन्होंने उसे पाप नाश करनेवाला "धर्मलाभ" दिया।

[पृष्ठ ३१]

गुरु को वन्दना कर रहा था, कोई धर्म-कथा कह रहा था, कोई श्रुतका उद्देश अनुसन्धान कर रहा था, कोई अनुज्ञा दे रहा था और कोई तत्त्व कह रहा था। सार्थवाह ने सबसे पहले आचार्य्य महाराज को और पीछे अनुक्रम से अन्यान्य मुनियों को वंदना किया। उन्होंने उसे पाप नाश करनेवाला "धर्मलाभ" दिया। इसके बाद-आचार्य के चरण-कमलो के पास, राजहंस की तरह, बैठकर सार्थवाह ने, आनन्द के साथ, नीचे लिखी बातें कहनी आरम्भ कीं:--

क्षमा प्रार्थना।

"हे भगवन्! जिस समय मैंने आप को मेरे साथ आने के लिये कहा था, उस समय मैंने शरद् ऋतुके मेघ की गर्जना के समान मिथ्या संभ्रम दिखाया था; क्योंकि उस दिन से आज-तक न तो मैं आपको वन्दना करने आया और न अन्नपान तथा वस्त्रादिक से आपका सत्कार ही किया। जाग्रतावस्था में रहते हुए भी, सुप्तावस्था में रहने वाले के समान, मैंने यह क्या किया? मैंने आपकी अवज्ञा की और अपना वचन भङ्ग किया। इसलिए हे महाराज! आप मेरे इस प्रमादाचरण के लिए मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। महात्मा लोग सब कुछ सहनेसे ही हमेशा "सर्वसह"* की उपमा को पाये हुए हैं।

* पृथ्वी को "सर्वसहनी" इसीलिये कहते हैं, कि उसे ससार खूँदता है और उसपर अनेक प्रकार के अत्याचार करता है; परन्तु वह चुपचाप सब सहती है। महापुरुष भी पृथ्वी की तरह ही सब कुछ सहनेवाले होते हैं, इसीसे उन्हें "सर्वसह" की उपमा मिली है।

धन सार्थवाहका मुनिदान ।

सार्थवाह की ये बातें सुनकर सूरि ने कहा—"सार्थवाह ! मार्ग में हिंसक पशुओं और चोर डाकूओं से तुमने हमारी रक्षा की है। तुमने हमारा सब तरह से सत्कार किया है। तुम्हारे संघके लोगों ने हमें योग्य अन्नपानादि दिये हैं; इसलिए हमें किसी प्रकार का भी दुःख या क्लेश नहीं हुआ है। तुम हमारे लिए ज़रा भी चिन्ता या खेद मत करो।" सार्थवाह ने कहा—"सत्पुरुष निरन्तर गुणों को ही देखते हैं; इसीसे, मेरे दोष सहित होने पर भी, आप मुझे ऐसा कहते हैं; यानी सदोष होनेपर भी मुझे निर्दोष मानते हैं। आप चाहें, जो कहें, मेरा तो अपने प्रमाद के कारण सिर नीचा हुआ जाता है। सचमुच ही, इस समय मैं अतीव लज्जित हूँ। अतः आप प्रसन्न हूजिये और साधुओं को मेरे पास आहार लाने को भेजिये; जिससे मैं इच्छानुसार आहार दूँ।" सूरि बोले—"तुम जानते हो कि, वर्तमान योग द्वारा जो अन्नादिक अकृत, अकारित और अचित्त होते हैं, वे ही हमारे उपयोग में आते हैं।" सूरि के ऐसा कहने पर सार्थवाह ने कहा—"जो चीज़ आपके उपयोग में आयेगी, मैं उसे ही साधुओं को दूँगा।" यह कहकर धन-सार्थवाह अपने आवास-स्थान को चला गया। उसके पीछे-पीछे ही दो साधु भिक्षा उपार्जनार्थ उसके डेरे पर गये, पर दैवयोगसे, उस समय, उसके घरमें साधुओंको देने योग्य कुछ भी नहीं था। वह इधर-उधर देखने लगा। एक जगह

उसे अपने निर्मल अन्तः करण के समान ताज़ा घी दीख गया। उसने कहा—'क्या यह आपके ग्रहण करने योग्य है?' साधुओं ने उत्तर दिया—'हाँ, इसे हम ग्रहण कर सकते हैं। यह हमारे उपयोग में आ जायगा। इसके लेनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं।' यह कहते हुए उन्होंने अपना पात्र रख दिया। मैं धन्य हुआ, मैं कृतकृत्य हुआ, मैं पुण्यात्मा हुआ, ऐसा विचार करते-करते उसे रोमाञ्च हो आया और उसने साधुओं को घी दे दिया। आनन्द के आँसुओं द्वारा पुण्याङ्कुर को बढ़ाते हुए, सार्थवाह ने घृत दान करने के बाद मुनियों को नमस्कार किया। मुनि भी सब प्रकार के कल्याणों की सिद्धि में सिद्ध मंत्र के समान 'धर्मलाभ' देकर अपने आश्रम को चले गये। इस दान के प्रभाव से, सार्थवाह को, मोक्षवृक्ष का बीज-रूप, अतीव दुर्लभ बोधिबीज—समकित प्राप्त हुआ; अर्थात् उसे मोक्ष लाभ करने का पूर्ण ज्ञान हो गया। रातके समय सार्थवाह फिर मुनियों के आश्रम में गया; आज्ञा लेकर और गुरु महाराज को वन्दना करके उनके सामने बैठ गया। इसके बाद, धर्मघोष सूरि ने उसे, मेघकी जैसी वाणी द्वारा, नीचे लिखी 'देशना' दी :—

धर्मघोष सूरिका उपदेश।

धर्मकी महिमा।

"धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है। धर्म ही स्वर्ग और मोक्ष का दाता है। धर्म ही संसार रूपी वनको पार करने की राह दिखलाने

वाला है। धर्म माता की तरह पालन-पोषण करता है, पिता की तरह रक्षा करता है, मित्र की तरह प्रसन्न करता है, बन्धु की तरह स्नेह रखता है, गुरु की तरह उज्ज्वल गुणो का समावेश कराता है और स्वामी की तरह उत्कृष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कराता है। वह सुखका महा हर्म्य है, शत्रु-संकट मे वर्म है, शीत से पैदा हुई जड़ता के नाश करने के लिए धर्म और पाप के मर्म को जानने वाला है। धर्म से जीव राज़ी होता है, धर्म से बलदेव होता है, धर्म से अर्द्धचक्री—वासुदेव होता है, धर्म से चक्रवर्ती होता है, धर्म से देव और इन्द्र होता है, धर्म से ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान मे अहमिंद्र देवत्व मिलता है ; धर्म से तीर्थङ्कर-पंद तक मिल जाता है। जगत् मे, धर्म से सब तरह की सिद्धियाँ मिलती हैं।

चार प्रकार का धर्म।

दुर्गति में पड़े हुए जन्तुओं को धारण करता है, इस से उसे 'धर्म' कहते हैं। वह धर्म-दान, शील, तप और भाव के भेदसे चार प्रकार का है। धर्मके चार भेदों मे जो 'दान धर्म' है, वह ज्ञान-दान, अभय-दान और धर्मोपग्रह दान,—इन नामो से तीन प्रकार का कहा है।

ज्ञान-दान।

धर्म को नही जानने वाले लोगों को देशना—उपदेश देने, वाचना देने अथवा ज्ञान-प्राप्ति के साधन देने को 'ज्ञान-दान' कहते हैं। इस से प्राणी को अपने हिताहित या भले-बुरे का ज्ञान हो जाता है और जीव आदि तत्त्वों को जान जानेसे विरक्ति हो जाती है। ज्ञानदान से प्राणी को उज्ज्वल 'केवल-ज्ञान'

की प्राप्ति होती है और वह सब लोगों पर अनुग्रह करता हुआ, लोकाग्र पर आरूढ़ होता और मोक्ष-पद लाभ करता है।

अभय-दान।

अभयदान—मन, वचन और काया से जीव-हिंसा न करना, न कराना और करने वाले का अनुमोदन न करना 'अभय दान' है।

जीव दो प्रकार के होते हैं:—(१) स्थावर, और (२) त्रस।

स्थावर भी दो प्रकार के होते हैं:—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त।

पर्याप्त की कारण-रूप छः पर्याप्तियाँ होती हैं। उनके नाम ये हैं:—(१) आहार, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) श्वासोच्छ्वास, (५) भाषा, और (६) मन। एकेन्द्रिय के चार, विकलेन्द्रिय के पाँच और पञ्चेन्द्रिय के छः पर्य्याप्तियाँ होती हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये एकेन्द्रिय स्थावर कहलाते हैं। इनमें से पहले चार के 'सूक्ष्म और बादर' दो भेद हैं। वनस्पति के 'प्रत्येक और साधारण' दो भेद हैं। उनमें से साधारण वनस्पति के भी 'सूक्ष्म और बादर' दो भेद हैं।

त्रस जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—इस तरह चार प्रकार के होते हैं। पञ्चेन्द्रिय के 'संज्ञी और असंज्ञी' ये दो भेद हैं। जो मन और प्राण को प्रवृत्त करके शिक्षा, उपदेश और आलाप को समझते हैं, उनको "संज्ञी" कहते हैं। जो इनके विपरीत होते हैं, वे "असंज्ञी" कहलाते हैं।

स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र,—ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—ये अनुक्रम से इन्द्रियों के विषय हैं।

कृमि, शंख, जौंक, कौड़ी, सीप एवं छीपो वगेरः विविध आकृति वाले प्राणी 'द्वीन्द्रिय' कहलाते हैं। जूँ, मकड़ी, चींटी, और लीख वगेरः को 'त्रीन्द्रिय जन्तु' कहते हैं। पतंग, मक्खी, भौंरा और डाँस प्रभृति 'चार इन्द्रिय वाले' हैं। बाक़ी जलचर, थलचर, नभचर पशु-पक्षी, नारकी, मनुष्य और देव—इन सब को 'पञ्चेन्द्रिय जीव' कहते हैं। इतने प्रकार के जीवों के पर्य्याय यानी आयुष्य को क्षय करना, उन्हें दुःख देना और क्लेश उत्पन्न करना,—तीन प्रकार का 'वध' कहलाता है। इन तीनों प्रकार के जीव-वध को त्याग देना—'अभय-दान' कहलाता है। जो अभय-दान देता है,—वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारो पुरुषार्थों को देता है, क्योंकि वध से बचा हुआ जीव, यदि जीता है, तो, चार पुरुषार्थ प्राप्त कर सकता है; यानी जीव का जीवन रहने से उसे चार पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। प्राणी को राज्य, साम्राज्य और देवराज्य की अपेक्षा जीवित रहना अधिक प्यारा है, इसीसे अशुचि या नरक में रहने वाले कीड़े और स्वर्ग में रहने वाले इन्द्र,—दोनों को ही प्राणनाश का भय समान है। इसवास्ते, बुद्धिमान पुरुष को, निरन्तर, सब जगत् के इष्ट अभयदान में, अप्रमत्त होकर, प्रवृत्त होना चाहिए।

अभयदान देनेसे मनुष्य परभव या जन्मान्तर में मनोहर, दीर्घायु, आरोग्यवान, रूपवान, लावण्यवान और बलवान होता है।

धर्मोपग्रह दान।

दायकशुद्ध, ग्राहकशुद्ध, देयशुद्ध, कालशुद्ध और भावशुद्ध,—इस तरह 'धर्मोपग्रह दान' पाँच प्रकार का होता है। उसमें न्यायोपार्जित द्रव्यवाला, अच्छी बुद्धि वाला, इच्छा-रहित और दान देकर पश्चात्ताप नहींकरने वाला मनुष्य जो दान देता है,वह 'दायक शुद्ध दान' कहलाता है। ऐसा चित्त और ऐसा पात्र मुझे प्राप्त हुआ, इसलिए मैं कृतार्थ हुआ,—जो ऐसा मानने वाला हो, वह 'दायक शुद्ध' होता है; सावद्य योग से विरक्त, तीन गौरव से वर्जित, तीन गुप्ति धारक, पाँच समिति पालक, रागद्वेष से रहित, नगर-वस्ती-शरीर-उपकरण आदि में निर्मम, अठारह हज़ार शीलांग के धारक, ज्ञान, दर्शन और चारित्र-रूप रत्नत्रय के धारक, धीर, सोने और लोहे को समान समझने वाले, दो शुभ ध्यान (धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान) को धारण करने वाले, जितेन्द्रिय, उदर-पूर्त्ति जितना ही आहार लेने वाले, निरन्तर यथा-शक्ति अनेक प्रकार के तप करने वाले, अखण्ड रूपसे सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाले, अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य्य का आचरण करने वाले ग्राहक को दान देना—'ग्राहक शुद्ध दान' कहलाता है। बयालीस दोष-रहित; असन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र और संथारा आदि का दान—'देयशुद्ध दान' कहलाता है। योग्य समय पर, पात्र को दान देना—'काल शुद्ध दान' कहलाता है और कामना-रहित श्रद्धा-पूर्व्वक जो दान दिया जाता है,—वह 'भाव शुद्ध दान' कहलाता है। देह के बिना धर्म नहीं होता और अन्नादिक के बिना देह नहीं

रहती; अतः हमेशा 'धर्मोपग्रह दान' करना चाहिए। जो मनुष्य अशन पानादि धर्मोपग्रह दान सुपात्र को देता है,वह तीर्थको अविच्छेद करता और परमपद पाता है।

शीलव्रत।

सावद्य योगोंका जो प्रत्याख्यान है, उसे "शील" कहते है। वह देश-विरति तथा सर्व विरति ऐसे दो प्रकार का है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—इस तरह सब मिलाकर देश-विरति के बारह प्रकार होते हैं। स्थूल, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच प्रकार अणुव्रत के हैं। दिगविरति, भोगोपभोग विरति, अनर्थ दण्ड विरति—ये तीन गुणव्रत हैं और सामायिक, देशावकाशिक, पौषध तथा अतिथि संविभाग—ये चार शिक्षाव्रत हैं। इस प्रकार का यह देश-विरति-गुण शुश्रूषा आदि गुणवाले,—यति-धर्म के अनुरागी,—धर्म-पथ्य-भोजन के अर्थी, शम-संवेग, निर्वेद, करुणा और आस्तिक्य,—इन पाँच लक्षण-युक्त, सम्यक्त्व को पाये हुए मिथ्यात्व रहित और सानुबन्ध क्रोधके उदय से रहित गृहस्थी महात्माओं को, चारित्र मोहनी का नाश होने से, प्राप्त होता है। त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा के वर्जने को सर्वविरति कहते हैं। यह सिद्धिरूपी महल के ऊपर चढ़ने के लिए नसैनी-स्वरूप है। यह सर्वविरति गुण—प्रकृति से अल्प कषायवाले, संसार-सुख से विरक्त और विनय आदि गुण वाले महात्मा मुनियों को प्राप्त होता है।

तप-महिमा ।

जो कर्म को तपाता है, उसे 'तप' कहते हैं। उसके 'बाह्य और अभ्यन्तर' ये दो भेद हैं। अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति संक्षेप, रस-त्याग, कायक्लेश और संलीनता—ये छः प्रकार के 'बाह्य तप' हैं और प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, स्वाध्याय, विनय, कायोत्सर्ग और शुभ ध्यान,—ये छः प्रकार के 'अभ्यन्तर तप' हैं।

देशनाकी समाप्ति ।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रय को धारण करने वाले में अद्वितीय भक्ति रखना, उसका कार्य करना, शुभ की ही चिन्ता करना और संसार की निन्दा करना—इन चार को 'भावना' कहते हैं। यह चार प्रकार का धर्म निस्सीम फल—मोक्ष-फलके प्राप्त करने में साधन-रूप है; इसवास्ते संसार-भ्रमण से डरे हुए मनुष्यों को, सावधान होकर, इसकी साधना करनी चाहिए।"

पुनः मार्ग-गमन ।

वसन्तपुर पहुँचना ।

देह-त्याग ।

इस प्रकार देशना सुनकर धन-सेठ बोला—'स्वामिन्! यह धर्म बहुत दिनों के बाद आज मेरे सुनने में आया है; इसलिए इतने दिनो तक मैं अपने कर्मों से ठगाता रहा,' वह इस तरह कहकर,

गुरु के चरण-कमलों तथा अन्य मुनियों को वन्दना कर के, अपने आत्माको धन्य मानता हुआ अपने निवास-स्थानको गया। इस प्रकार की धर्म-देशना से परमानन्द में मग्न सार्थवाह ने वह रात एक क्षण के समान बिता दी। सोकर उठे हुए उस सार्थवाह के समीप-भाग में, प्रातः काल के समय, कोई मंगलपाठक शंख-जैसी गंभीर और मधुर ध्वनिके साथ इस प्रकार बोला:—"घोर अन्धकार से मलीन, पद्मिनीकी शोभाको चुरानेवाली और पुरुषोंके व्यवसाय को हरने वाली रात—वर्षाऋतु की तरह—चली गई है। जिस में तेजस्वी और प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य उदय हुआ है और जो व्यवसाय कराने में सुहृद् के समान है, ऐसा यह प्रातः काल, शरद् ऋतु के समय की माफ़िक़, वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। जिस तरह तत्त्वज्ञान से बुद्धिमानों के मन निर्मल हो जाते हैं; उसी तरह इस शरद् ऋतु में, सरोवरऔर नदियोंके जल निर्मल होने लग गये हैं। जिस तरह आचार्य के उपदेश से ग्रन्थ संशय-रहित हो जाते हैं, उसी तरह, सूर्य की किरणों से कीचड़ सूख जाने के कारण, राहें साफ हो गई हैं। मार्ग के चीलो और चक्रधारा के बीच में जिस तरह गाड़ियाँ चलती हैं; उसी तरह नदियाँ अपने दोनों किनारों के बीच में बहने लग गई हैं और मार्ग—पके हुए तुच्छ धान्य, सावाँ, नीवार, वालुंकऔर कुंवल आदि से—पथिकों का आतिथ्य-सत्कार करते हुए से मालूम हो रहे हैं। शरद् ऋतु, वायु से हिलते हुए गन्नों के शब्द से, प्रवासियों को सवारियों पर चढ़ने के समय की सूचना सी देती मालूम हो रही है। सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे झुलसे

हुए पथिकोंके लिए बादल, क्षण भर को, छातोंका काम करने लगे हैं। सङ्घके सॉंड अपने खुरोंसे ज़मीनको खोद रहे हैं ; मालूम होता है, सुख-पूर्व्वक चलनेके लिए, वे ज़मीनको हमवार या चौरस कर रहे हैं। पहले जो मार्गके प्रवाह गर्जना करते और पृथ्वी पर उछलते हुए दिखाई देते थे, वे इस समय—वर्षाकालके बादलोंकी तरह—नष्ट हो गये हैं। फलों के भार से झुकी हुई डालियों और क़दम-क़दम पर मिलने वाले साफ़ पानी के झरनोंसे, पथिकगण, मार्ग में बिना किसी प्रकार के यत्नके ही, पाथेयवाले हो गये हैं। उत्साह-पूर्ण चित्तवाले उद्यमी लोग, राजहंस की तरह, देशान्तर जाने के लिए उतावल कर रहे हैं।' मङ्गल-पाठक की उपरोक्त बातें सुन कर, 'इसने मुझे प्रयाण-समय की सूचना दी है' ऐसा विचार कर, सार्थवाहने प्रयाण-भेरी बजवा दी। गोपालोंके गोश्रृङ्गनादसे जिस तरह गायों का झुण्ड चलता है; उसी तरह पृथ्वी और आकाशके मध्य भाग को पूर देने वाले भेरी-नाद से सारा सार्थ वहाँ से चल दिया। भव्य प्राणी-रूपी कमलों को बोध करने में दक्ष, मुनियों से घिरे हुए आचार्य्य ने भी—किरणों से घिरे हुए भास्करकी तरह—वहाँ से विहार किया। सङ्घ की रक्षा के लिए, आगे-पीछे और दोनों बाज़ू, रक्षा करने वाले सवारों को तैनात करके, धन सेठने वहाँसे कूँच किया। सार्थवाह जब उस घोर वन को पार कर गया, तब उस से आज्ञा लेकर, धर्मघोष आचार्य्य अन्यत्र विहार कर गये। जिस तरह नदियों का समूह समुद्र में पहुँच जाता है, उसी तरह सार्थवाह भी, बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के, मार्ग को तय

कर के, वसन्तपुर पहुँच गया। वहाँ पर उसने, थोड़े ही समय में, कितना ही माल बेच दिया और कितना ही ख़रीद लिया। इस के बाद, जिस तरह मेघ समुद्र से जल भर लाता है; उसी तरह धन-सेठ, खूब धन-सम्पत्ति भरकर, फिर क्षितिप्रतिष्ठितपुरमें आया और कुछ समय के बाद, उम्र पूरी होने पर, काल-धर्म को प्राप्त हुआ, अर्थात् पञ्चत्व को प्राप्त हुआ—इस संसार से चल बसा।
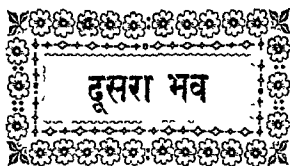
सेठ का पुनर्जन्म।

युगलियों का वर्णन।

मुनि-दान के प्रभाव से, वह, उत्तर कुरुक्षेत्र में, सीता नदी के उत्तर तट की ओर, जम्बूवृक्ष के पूर्व अञ्चल में, जहाँ सर्वदा एकान्त सुषम नामक आरा वर्तता है, युगलियारूप में, उत्पन्न हुआ।

युगलिये तीन-तीन दिन के बाद खाने की इच्छा करने वाले; दो सौ छप्पन पृष्ठ करण्डक या पसलियोंवाले, तीन कोसके शरीर वाले, तीन पल्य की आयुवाले, अल्प कषाय वाले और ममता-हीन

होते हैं। उनके—आयुष्य के अन्तमे—मरने के किनारे होने पर, एक समय प्रसव होता है; और पैदा होता है एक अपत्यका जोड़ा; यानी जोड़ली सन्तान। उस संतानका ४६ दिन तक पालन-पोषण करके, वे मरजाते हैं। उस देहको त्यागनेके वाद, वे देवगतिमें, उत्तर कुरु-क्षेत्र मे, उत्पन्न होते हैं। उस उत्तर कुरुक्षेत्र में स्वभावसे ही शक्कर-जैसी स्वादिष्ट रेती है। शरद् ऋतु की चन्द्रिका के समान स्वच्छ निर्मल जल और रमणीक भूमि है। उस क्षेत्र में मद्याङ्ग प्रभृति दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो युगलियों को मनवांछित पदार्थ देते हैं। उन में से मद्याङ्ग नामक कल्पवृक्ष मद्य देते हैं, भृङ्गाङ्ग नामक कल्प-वृक्ष पात्र देते हैं, तूर्याङ्ग नामक कल्पवृक्ष मधुर रव से बजनेवाले अनेक प्रकार के बाजे देते हैं, दीप-शिखाङ्ग और ज्योतिष्काङ्ग नामक कल्पवृक्ष अद्भुत प्रकाश या रोशनी देते हैं, चित्राङ्ग नाम के कल्पवृक्ष फूलमालाएँ देते हैं, चित्ररस नाम के कल्पवृक्ष भोजन देते हैं, मण्यङ्ग नामक कल्पवृक्ष गहने और ज़ेवर देते हैं, गेहा-कार कल्पवृक्ष गेह या घर देते हैं एव अनग्न नाम के कल्पवृक्ष दिव्य वस्त्र देते हैं। ये कल्पवृक्ष नियत और अनियत दोनों प्रकारके पदार्थ देते हैं। और कल्पवृक्ष भी सब तरह के मन-चाहे पदार्थ देते हैं। वहाँ पर सब तरह के मन-चाहे पदार्थ देने वाले कल्पवृक्षो की भरमार होने से, धन-सेठ का जीव, युगुलिया-रूप में, स्वर्ग के समान विषय-सुखो को भोगने लगा।

तीसरा और चौथा भव

देवलोक में जन्म ।

युगलिया जन्म की उम्र पूरी करके, धन सेठ का जीव, पूर्व-जन्म के दान के फल-स्वरूप, देवलोकमें देवता हुआ। वहाँ से चव कर, वह पश्चिम महाविदेह-स्थित गन्धिलावती विजय में, वैताढ्य पर्वतके ऊपर, गाँधार देशके गन्धसमृद्धि नामक नगरमें, विद्याधर-शिरोमणि शतबल नाम के राजा की चन्द्रकान्ता नाम की भार्य्या की कोख से. पुत्र-रूप में उत्पन्न हुआ। शक्तिमान् होने के कारण, उस का नाम महाबल रखा गया। रक्षकों द्वारा रक्षित और लालित-पालित कुमार महाबल, क्रम-क्रम से, वृक्ष की तरह बढ़ने लगा। चन्द्रमा की तरह, अनुक्रम से. सब कलाओं से पूर्ण होकर, कुमार महाबल लोगों के नेत्रों को उत्सव-रूप हो गया। उचित समय आने पर, अवसर को समझने वाले माता-पिताने, मूर्त्तिमती लक्ष्मी के समान विनयवती कन्या के साथ, उस का विवाह कर दिया। वह कामदेव के तीक्ष्ण शस्त्र-रूप, कामिनियों के कर्मण-रूप और रतिके लीलावनके समान यौवनको प्राप्त हुआ। उसके पैर अनुक्रम

से कछुए की तरह ऊँचे और समान तलुएवाले थे। उसके शरीर का मध्य भाग सिंहके मध्य भागको तिरस्कृत करने वालोंमें अगुआ था। उसकी छाती पर्वतकी शिलाके समान थी। उसके ऊँचे-ऊँचे कन्धे बैलके कन्धोंकी तरह शोभायमान होने लगे। उसकी भुजाएं शेषनागके फणोंसी शोभित होने लगीं। उसका ललाट पूर्णिमा के आधे उगे हुए चन्द्रमा की लीला को ग्रहण करने लगा और उसकी स्थिर आकृति—मणियों के समान दन्तश्रेणी, नखों और स्वर्ण-तुल्य कान्तियुक्त शरीर से—मेरुपर्वत की समस्त लक्ष्मी की तुलना करने लगी।

राजा शतबलके उच्च विचार।

कुमार का अभिषेक।

एक दिन सुबुद्धिमान, पराक्रमी और तत्वज्ञ विद्याधर-पति राजा शतबल, एकान्त स्थलमें, विचार करने लगा:—'अहो! यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है; इसे ऊपर से नये-नये गहनों और कपड़ों से कबतक गोपन रख सकते हैं? अनेक प्रकार से सत्कार करते रहने पर भी, यदि एक बार सत्कार नहीं किया जाता, तो, खल पुरुष की तरह, यह देह तत्काल विकार को प्राप्त हो जाती है। बाहर पड़े हुए विष्ठा, मूत्र और कफ वगैरः पदार्थों से लोग घृणा करते हैं; किन्तु शरीर के भीतर वे ही सब पदार्थ भरे पड़े हैं, पर लोग उनसे घृणा नहीं करते! जीर्ण हुए वृक्षके कोटर मे, जिस तरह सर्प विच्छू वगैरः क्रूर प्राणी उत्पन्न होते हैं; उसी

तरह इस शरीर में, पीड़ा करने वाले अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। शरद् ऋतु के मेघ की तरह यह काया, स्वभाव से ही, नाशमान् है। यौवन भी देखते-देखते, बिजली की तरह, नाश हो जाने वाला है। आयुष्य पताका की तरह चञ्चल है। सम्पत्ति तरगों की तरह तरल है। भोग भुजङ्ग के फण की तरह विषम हैं। संगम स्वप्न की तरह मिथ्या है। शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा, काम क्रोधादिक तापों से तपकर, पुटपाक की तरह, रात-दिन सीजता रहता है। अहो! आश्चर्य्य की बात है कि, इन दुखदायी विषयों में सुख मानने वाले प्राणियों को, नरक के अपवित्र कीड़े की तरह, ज़रा भी विरक्ति नहीं होती। अन्धा आदमी जिस तरह अपने सामने के कूए को नहीं देखता, उसी तरह, दुरन्त विषयों के पञ्जे मे फँसा हुआ मनुष्य अपने सामने खड़ी हुई मृत्यु को नहीं देखता। ज़रा सी देरके लिए, विष के समान मीठे लगने वाले विषयों से, आत्मा मूर्च्छित हो जाता है, उसके होश-हवास ठिकाने नहीं रहते; इसीसे अपनी भलाई या हितका कुछ भी विचार नहीं कर सकता। चारों पुरुषार्थों के बराबर होने पर भी, आत्मा पापरूप 'अर्थ और काम' में ही प्रवृत्त होता है; यानी धर्म और मोक्ष का ख़याल भुलाकर, केवल धन और स्त्री का ही ध्यान रखता है—धर्म और मोक्ष की प्राप्ति में प्रवृत्त नहीं होता। प्राणियों को, इस अपार संसार रूपी समुद्र में, अमूल्य रत्न के समान, मनुष्यभव मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। कदाचित मनुष्य-भव प्राप्त हो भी जाय, तोभी उसमें भगवान् अरहन्तदेव और सुसाधु गुरु तो

पुण्य-योग से ही मिलते हैं। जो अपने मनुष्यभव का फल ग्रहण नहीं करता, वह बस्तीवाले शहर मे चोरो से लुटे हुए के समान है। इसवास्ते कवचधारी महाबल कुमार को राज्य-भार सौंप कर—उसे गद्दी पर बिठाकर, मैं अपनी इच्छा पूरी करूँ।' मन-ही-मन ऐसे विचार करके, राजा शतबल ने अपने पुत्र—कुमार महाबल—को अपने निकट बुलवाया और उस विनीत-नम्र, सुशील राजकुमार को राज्य-भार ग्रहण करने—राजकी बागडोर अपने हाथों मे लेने का आदेश किया। महात्मा पुरुष गुरुजनों की आज्ञा भंग करने में बहुत डरते हैं, इस काम मे वे पूरे कायर होते हैं; अतः राजकुमार ने, पिता की आज्ञा से, राजकाज हाथ मे लेना और चलाना मंजूर कर लिया। राजा शतबलने, कुमार को सिंहासनारूढ़ करके, उसका अभिषेक और तिलक-मंगल अपने ही हाथों से किया। मुचकुन्द के पुष्पों की सी कान्तिवाले चन्दन के तिलक से, जो उसके ललाट पर लगाया गया था, नवीन राजा ऐसा सुन्दर मालूम होता था, जैसा कि चन्द्रमा के उदय होनेसे उदयाचल मालूम होता है। हंस के पखों के समान, पिता के छत्र के सिरपर फिरने से वह ऐसा शोभने लगा, जैसा कि शरद् ऋतु के बादलों से गिरिराज शोभता है। निर्मल बगुलों की जोड़ी से मेघ जैसा शोभता है, दो सुन्दर चलायमान चॅवरों से वह वैसा ही शोभने लगा। चन्द्रोदय के समय, समुद्र जिस तरह गम्भीर गरजना करने लगता है; उसके अभिषेक के समय, दशों दिशाओ को गुँजाने वाली, मंङ्गल ध्वनि उसी तरह गम्भीर शब्द

करने लगी। 'यह शतबल राजा का ही रूपान्तर है, उसका ही दूसरा रूप है, उसी की आत्मा की छाया है,—ऐसा समझ कर, सामन्त और मंत्री—अमीर-उमराव और वज़ीर लोग उसकी इज़्ज़त, उसकी प्रतिष्ठा और उसका आदर-सत्कार एवं मान करने लगे।

शतबलका दीक्षाग्रहण।

स्वर्गारोहण।

इस तरह पुत्र को राज्यपद पर बैठाकर, शतबल राजा ने, आचार्य्य के चरणों के समीप जाकर, शमसाम्राज्य—चारित्र ग्रहण किया। उसने असार विषयों को त्यागकर, साररूप रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चारित्र को धारण किया; तथापि उसकी समचित्तता अखण्ड रही। उस जितेन्द्रिय पुरुष ने कषायों को इस तरह जड़ से नष्ट कर दिया; जिस तरह नदी अपने किनारे के वृक्षों को समूल उखाड फैंकती है। वह महात्मा मनको आत्मस्वरूप में लीनकर, वाणी को नियम में रख, काया से चेष्टा करता हुआ, दुःसह परिषहों को सहन करने लगा। मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ,—इन चार भावनाओ से जिस की ध्यान-सन्तति वृद्धि को प्राप्त हो गई है, ऐसा वह शतबल राजर्षि, मुक्ति में ही हो इस तरह, अमन्द आनन्द में मग्न रहने लगा। ध्यान और तप द्वारा, अपने आयुष्य को लीलामात्र में ही शेष करके, वह महात्मा देवताओं के स्थान को प्राप्त हुआ, यानी देवलोक में गया।

महाबल की राज्यस्थिति ।

कुमार की विषया सक्ति ।

महाबल कुमार भी, अपने बलवान विद्याधरों के साहाय्य से, इन्द्र के समान अखण्ड शासन से, पृथ्वी का राज्य करने लगा। जिस तरह हंस कमलिनी के खण्डों में क्रीड़ा करता है; उसी तरह वह, रमणियों से घिरा हुआ, सुन्दर बागीचों की पंक्तियों मे सुख से क्रीडा करने लगा। उसके नगर में हमेशा होनेवाले संगीत की प्रतिध्वनि से वैताढ्य पर्वत की गुफायें, मानो संगीत का अनुवाद करती हों इस तरह, प्रतिध्वनित होने या गूँजने लगीं। अगल-बग़ल में स्त्रियों से घिरा हुआ, वह मूर्त्तिमान शृङ्गार रसके जैसा दीखने लगा। स्वच्छन्दता से विषय-क्रीड़ा में आसक्त हुए महाबल राजा के लिए, विषुवत् के समान, रात और दिन समान होने लगे।

राजसभा ।

एक दिन, दूसरे मणिस्तम्भ हों ऐसे अनेक मंत्री और सामन्तों से अलंकृत, सभा में कुमार बैठा हुआ था; और उसको नमस्कार करके सारे सभासद भी अपने-अपने योग्य स्थानों पर बैठे हुए थे। वे राजकुमार के विषय में, एकाग्र नेत्रों से, मानो योग की लीला धारण करते हों, ऐसे दिखाई देते थे। स्वयं बुद्धि, संभिन्नमति, शतमति और महामति—ये चार मंत्री भी आकर वहाँ बैठे हुए थे। उनमें से स्वामी की भक्ति में अमृत-सिन्धु-तुल्य, बुद्धि-

रूपी रत्नमें रोहणाचल पर्वत के समान और सम्यग्दृष्टि स्वयं-बुद्धमंत्री, उस समय, इस प्रकार विचार करने लगाः—

स्वयंबुद्धमंत्री की स्वामिभक्ति।

"अहो ! हमारे देखते देखते विषयासक्त हमारे स्वामी का, दुष्ट अश्वों की तरह, इन्द्रियों द्वारा हरण हो रहा है : अर्थात् दुष्ट घोड़े जिस तरह अपने रथी को कुराहों में ले जाकर नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं; उसी तरह दुष्ट इन्द्रियाँ हमारे विषयों मे फँसे हुए स्वामी का सत्यानाश कर रही हैं ! हम सब लोग देख रहे हैं, पर कुछ करते-धरते नहीं। क्या यह शर्म की बात नहीं है ? इसकी उपेक्षा करने वाले, हम लोगों को धिक्कार है ! विषय-विनोद मे लगे हुए हमारे स्वामी का जन्म व्यर्थ जा रहा है,—इस बात को जान-कर, मेरा मन उसी तरह तड़फता और छटपटाता है; जिस तरह कि अल्प जलमें मछली तड़फती और छटपटाती है। अगर हमारे जैसे मंत्रियों से भी कुमार उच्च पदको प्राप्त न हो, कुराह को त्यागकर सुराह पर न आवे, विषयों को विषवत् न त्यागे, तो हम में और मसखरों में क्या तफावत होगा ? इसलिए स्वामी से अनुनय-विनय करके उन्हें हितमार्ग पर लाना चाहिए। नम्रता-पूर्व्वक विषय-भोगों की बुराइयाँ समझा-बुझाकर, उन्हें कुराह से हटाकर सुराह पर लाना चाहिये। क्योंकि राजा लोग, सारणी की तरह, जिधर प्रधान या मंत्रीगण ले जाते हैं, उधरही जाते हैं। सम्भव है, स्वामी के व्यसनों से जीवन निर्वाह करने वाले, स्वामी

को विषय-भोगों में लगाकर ज़िन्दगी बसर करने और गुलछर्रे उड़ाने वाले विरोध करें, हमारे अच्छे काम में विघ्न-बाधा उपस्थित करें, लेकिन हमको तो स्वामी के हितकी बात कहनी ही चाहिये। क्या हिरनो के डर से कोई खेत मे अनाज बोना बन्द कर देता है? स्वामी के सच्चे शुभचिन्तक सेवक को विरोधियों के भय और हज़ारो आपदाओं की सम्भावना होने पर भी, अपने पवित्र कर्त्तव्य या फर्ज़ के अदा करने मे आनाकानी न करनी चाहिए। स्वयंबुद्ध मंत्री ने, जो सारे बुद्धिमानों मे अग्रणी या अगुआ था, इस प्रकार विचार कर और अञ्जलिबद्ध होकर अर्थात् हाथ जोड़ कर राजा से कहा—

स्वयंबुद्ध मंत्री का सदुपदेश।

"हे राजन्! यह संसार समुद्र के समान है। नदियों के जल से जिस तरह समुद्र की तृप्ति नही होती, समुद्र के जल से जिस तरह बड़वानल की तृप्ति नहीं होती; प्राणियों से जिस तरह यमराज की तृप्ति नहीं होती, काष्ठ-समूह से जिस तरह अग्नि की तृप्ति नहीं होती; उसी तरह, इस जगत् मे, विषय-सुखों से, किसी दशामे भी आत्मा की तृप्ति नहीं होती। प्राणी ज्यों-ज्यों विषयों को भोगता है, त्यों त्यों उसकी उनके भोगने की इच्छा और भी बलवती होती है। नदी-किनारे की छाया, दुर्जन, विषय और सर्पादिक विषधर प्राणी, अत्यन्त सेवन करनेसे, विपत्ति के कारण ही होते हैं। सारांश यह कि, ये जितने ही अधिक सेवन

किये जाते हैं ; उतने ही अधिक दुःख और आपदाओं के देनेवाले होते हैं। इनका परिणाम भला नहीं। ये सदा दुःख के मूल हैं। कामदेव, सेवन करने से, तत्काल सुख के देनेवाला जान पड़ता है; परन्तु परिणाम में वह विरस है। खुजाने से जिस तरह दाद बढ़ता है ; सेवन करनेसे उसी तरह कामदेव भी बढ़ता है। दाद में एक प्रकार की खुजली चला करती है, उसमें मनुष्य को अपूर्व आनन्द आता है, उस आनन्द की बात लिखकर बता नहीं सकते। ज्यों ज्यों खुजाते हैं, खुजाते रहने की इच्छा होती है ; खुजाने से तृप्ति नहीं होती; पर परिणाम उसका बुरा होता है; दाद बढ़ जाता है, जिससे नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। दाद की सी ही हालत कामदेव की है। स्त्री-सेवन से तत्काल एक प्रकार का अपूर्व्व आनन्द आता है ; उस आनन्द पर पुरुष मुग्ध हो जाता है। निरन्तर स्त्री सेवन करने से मनकी तृप्ति नहीं होती। वह अधिकाधिक स्त्री-सेवन चाहता है, परन्तु परिणाम इसका भी दाद की तरह ख़राब ही होता है। मनुष्य का बन्धन और दुःखों से पीछा नहीं छूटता ; क्योंकि कामदेव नरक का दूत, व्यसनों का समुद्र, विपत्ति-रूपी लता का अङ्कुर और पाप-वृक्ष का क्यारा है। कामदेव के वश में हुआ पुरुष, मद्य के वश में हुए की तरह, सदाचार रूपी मार्ग से भ्रष्ट होकर, संसार रूपी खड्डे मे गिरता है। जहाँ कामदेव की तूती बोलती है, जहाँ कामदेव का आधिपत्य रहता है, वहाँ से सदाचार शीघ्र ही नौ दो ग्यारह होता है। कामदेव पुरुष के सर्व्वनाश में कोई बात उठा नहीं रखता। जिस तरह गृहस्थ के घर में चूहा

घुसकर अनेक स्थानों को खोद डालता है ; उसी तरह कामदेव मनुष्य-शरीर में घुस कर अर्थ, धर्म और मोक्ष को खोद बहाता है। स्त्रियाँ देखने, छूने और भोगने से, विषवल्ली की तरह, अत्यन्त व्यामोह-पीड़ा उत्पन्न करती हैं। वे कामरूपी लुब्धक—पारधि या शिकारी की जाल हैं; इसलिये हिरन के समान पुरुषों के लिए अनर्थकारिणी होती हैं। जो मसखरे मित्र हैं, वे तो केवल खाने-पीने और स्त्री-विलास के मित्र हैं। इससे वे अपने स्वामी के, परलोक-सम्बन्धी हित का विचार नहीं करते। स्वार्थियों को स्वामी के हित से क्या मतलब ? स्वामी के हित का विचार करने से उनके अपने स्वार्थ में बाधा पड़ती है। उनकी मौज़ में फ़र्क़ आता है। ये स्वार्थ-तत्पर नीच, लम्पट और खुशामदी होकर, अपने स्वामी को स्त्रियों की बातों, नाच, गाने और दिल्लगी से मोहित करते हैं। बेर के झाड़ के सम्बन्ध से जिस तरह केले का वृक्ष कभी सुखी नहीं होता, उसी तरह कुसंग से कुलीन पुरुषों का कभी भी अभ्युदय नहीं होता—अधःपतन ही होता है। इसलिए हे कुलवान स्वामी! प्रसन्न हूजिये। आप स्वयं विज्ञ हैं; इसलिये मोह को त्यागिये और व्यसनों से विरक्त होकर धर्म में मन लगाइये। छाया-हीन वृक्ष, जल-रहित सरोवर, सुगन्ध-विहीन पुष्प, दन्त-बिना हस्ती, लावण्य-रहित रूप, मंत्री बिना राज्य, देव-मूर्त्ति बिना मन्दिर, चन्द्र बिना यामिनी, चारित्र बिना साधु, शस्त्र-रहित सैन्य और नेत्र रहित मुख जिस तरह अच्छा नहीं लगता, उसी तरह धर्म-

रहित पुरुष भी अच्छा नहीं लगता—बुरा मालूम होता है। चक्रवर्त्ती भी यदि अधर्म्मी होता है, तो उसको पर भव मे ऐसा जन्म मिलता है, जिस मे खराब अन्न भी राज्य-लक्ष्मी के समान समझा जाता है। यदि मनुष्य बड़े कुल में पैदा होकर भी धर्मोपार्जन नहीं करता है ; तो दूसरे भव में, कुत्ते की तरह, दूसरे के जूठे भोजन को खाने वाला होता है। ब्राह्मण भी यदि धर्म-हीन होता है, तो वह नित्य पाप का बन्धन करता है और बिल्ली के समान दुष्ट चेष्ठा वाला होकर म्लेच्छ-योनि मे जन्म लेता है। धर्म-हीन भव्य प्राणी भी बिल्ली, सर्प, सिंह, बाज़ और गिद्ध प्रभृति की नीच योनियों मे अनेकानेक जन्मों तक उत्पन्न होता और वहाँ से नरक मे जाता है और वहाँ, मानो वैर से कुपित हो रहे हों ऐसे, परमाधार्म्मिक देवताओं से अनेक प्रकार की कदर्थना पाता है। सीसे का गोला जिस तरह अग्नि में पिघलता है, उसी तरह अनेक व्यसनो की आवेग रूपी अग्नि के भीतर रहने वाले अधर्म्मी प्राणियों के शरीर क्षीण होते रहते हैं ; अतः ऐसे प्राणियों को धिक्कार है! परम बन्धु की तरह, धर्म से सुख की प्राप्ति होतीहै। नाव की तरह, धर्म से आपत्ति रूपी नदियाँ पार की जा सकती हैं। जो धर्मोपार्जन मे तत्पर रहते हैं, वे पुरुषों मे शिरोमणि होते हैं। लताएँ जिस तरह वृक्षों का आश्रय लेती हैं, सम्पत्तियाँ उसी तरह धर्मात्माओं का आश्रय ग्रहण करती हैं ; यानी लक्ष्मी धर्मात्माओं के पास आती है। जिस तरह जल से अग्नि नष्ट हो जाती है ; उसी तरह धर्म से आधि, व्याधि और उपाधि, जोकि पीड़ा की

हेतु हैं, तत्काल नष्ट हो जाती हैं। परिपूर्ण पराक्रम से किया हुआ धर्म, दूसरे जन्म में, कल्याण-सम्पत्ति देने के लिए ज़ामिन रूप होता है। हे स्वामिन्! बहुत क्या कहूँ? नसैनी से जिस तरह मनुष्य महल के सर्वोच्च भाग पर चढ़ जाता है; उसी तरह प्राणी बलवान धर्म से लोकाग्र—मोक्ष—को प्राप्त होता है। आप धर्म ही से विद्याधरों के स्वामी हुए हैं; इसलिये, उत्कृष्ट लाभ के लिये, अब भी धर्म का ही आश्रय लें।

नास्तिक मत-निरूपण।

वाद-विवाद।

स्वयंबुद्ध मन्त्री के उपरोक्त बातें कहने के बाद, अमावस्या, की रात्रि के समान मिथ्यात्वरूपी अन्धकार की खान रूप और विष-समान विषम बुद्धिवाला संभिन्नमति नाम का मन्त्री बोला—"अरे स्वयंबुद्ध तुम धन्य हो! तुम अपने स्वामी की अतीव हितकामना करते हो! डकार से जिस तरह आहार का अनुभव होता है; उसी तरह तुम्हारी वाणी से तुम्हारे अभिप्राय का पता चलता है। सदा सरल और प्रसन्न रहने वाले स्वामी के सुख के लिये, तुम्हारे जैसे कुलीन मंत्री ही ऐसी बातें कह सकते हैं, दूसरा तो कोई कह नहीं सकता! किस कठोर-स्वभाव के उपाध्याय ने तुम्हें पढ़ाया है; जिससे असमय में वज्र पात-जैसे वचन तुमने स्वामी से कहे। सेवक जब अपने भोग के लिएही स्वामी की सेवा करते हैं; तब वे अपने स्वामी से—"आप भोग

न भोगें" ऐसा किस तरह कह सकते हैं ? जो इस भव-सम्बन्धी भोगों को त्याग कर, परलोकके लिये चेष्टा करते हैं, वे, हथेली में रक्खे हुए चाटने-योग्य लेह्य पदार्थ को छोड़कर, कोहनी चाटनेवाले का सा काम करते हैं। धर्म से परलोक में फल की प्राप्ति होती है, ऐसी बात जो कही जाती है, वह असङ्गत है; क्योंकि पर-लोकी जनों का अभाव है, इसलिये परलोक भी नहीं है। जिस तरह गुड़, पिष्ट और जल वगैरः पदार्थों से मद्-शक्ति उत्पन्न होती है; उसी तरह पृथ्वी, जल, तेज और वायु से चेतना-शक्ति उत्पन्न होती है। शरीर से जुदा कोई शरीरधारी प्राणी नहीं है, जो इस शरीर को त्याग कर परलोक में जाय, इसलिये विषय-सुख को बेखटके भोगना चाहिये, विषयों के भोगने में निःशङ्क रहना चाहिये और अपने आत्मा को ठगना नहीं चाहिए; क्योंकि स्वार्थ भ्रंश करना मूर्खता है। धर्म और अधर्म—पुण्य औप पाप की तो शङ्का ही नहीं करनी चाहिए; क्योंकि सुखादिक में—वे विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाले हैं; और फिर; गधे के सींगों की तरह वे कोई चीज़ हैं भी नहीं। स्नान, विलेपन, पुष्प और वस्त्राभू-षण प्रभृति से जिस पत्थर को पूजते हैं, उसने क्या पुण्य किया है? और जिस पत्थर पर बैठकर लोग मल-मूत्र त्याग करते हैं, उसने क्या पाप किया है ? अगर प्राणी कर्म से उत्पन्न होते और मरते हैं; तो पानी के बुलबुले किस कर्म से उत्पन्न और नष्ट होते हैं? जबतक चेतन अपनी इच्छा से चेष्टा करता है, तब तक वह चेतन कहलाता है और जब वह चेतन नष्ट हो जाता है, तब उसका

पुनर्जन्म नहीं होता। जो प्राणी मरते हैं, वे ही फिर जन्म लेते हैं, ऐसा कहना सर्वथा युक्तिशून्य है.—कहने भर की बात है। इस बात में कुछ भी तथ्य नहीं है। सिरस के फूल-जैसी कोमल शय्या पर, रूपलावण्यवती सुन्दरी रमणियों के साथ, निःशङ्क रमण करते हुए और अमृत-समान भोज्य और पेय पदार्थों को यथा-रुचि आस्वादन करते हुए अपने स्वामी को जो कोई रोकता है—इन सब भोगों के भोगने का निषेध करता है, उसे स्वामी का वैरी समझना चाहिए। हे स्वामिन्! मानो आप सौरभ्य—सुगन्ध ही से पैदा हुए हों, इस तरह आप कपूर, चन्दन, अगर, कस्तूरी और चन्दनादि से रात-दिन व्याप्त रहिये—दिवारात उन्हीं का आनन्द उपभोग कीजिये। हे राजन्! नेत्ररञ्जन करने या आँखो को सुख देने के लिए उद्यान, वाहन, क़िला और चित्रशाला प्रभृति जो जो पदार्थ सुन्दर और मनोमुग्धकर हो, उनको वारम्वार देखिये। हे स्वामिन्! वीणा, वेणु, मृदंग, आदि वाजों के साथ गाये जानेवाले गीतों का मधुर शब्द अपने कानों में, रसायन की तरह, ढालते रहिये। जबतक जीवन रहे, तब तक विषय-सुख भोगते हुए जीना चाहिए और धर्म-कार्य के लिए छटपटाना न चाहिये; क्योंकि धर्म-अधर्म का कुछ भी फल नहीं है; अर्थात् धर्म-अधर्म कोई चीज़ नहीं; अतः इनका फल भी नहीं। जितने दिन ज़िन्दगी रहे, उतने दिन मौज करनी चाहिये। आनन्दमग्न रहकर जीवन यापन करना चाहिये।

नास्तिक मत-खण्डन।

संभिन्नमति मंत्री की ऐसी बातें सुनकर, स्वयंबुद्ध बोला—"अरे! अपने और पराये शत्रु-रूप नास्तिकों—धर्म्माधर्म और ईश्वर को न मानने वालों—को धिक्कार है! क्योंकि वे जिस तरह अन्धा अन्धे को खींचकर खड्डे मे गिराते हैं; उसी तरह मनुष्यो को खींच-कर—अपनी लच्छेदार बातों मे उलझाकर—अधोगति में गिराते हैं। जिस तरह सुख-दुःख स्वसंवेदना से जाने जा सकते हैं; उसी तरह आत्मा भी स्वसंवेदना से जानने-योग्य है। उस स्वसं-वेदना में बाधा का अभाव होनेके कारण, आत्मा का निषेध कोई भी नहीं कर सकता। 'मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ'—ऐसी अबाधित प्रतीति आत्मा के सिवा और किसी को भी नहीं हो सकती; अर्थात् सुख और दुःख का अनुभव आत्मा के सिवा और किसी भी पदार्थ को हो नहीं सकता। एकमात्र आत्मा मे ही दुःख-सुख के अनुभव करने की शक्ति है। इस तरह के ज्ञानसे, जिस तरह अपने शरीर मे आत्मा का होना सिद्ध होता है; उसी तरह, अनुमान से, पराये शरीर में भी आत्मा का होना सिद्ध हो सकता है। सर्वत्र, बुद्धि-पूर्व्वक, क्रिया की प्राप्ति देख-नेसे, इस बात का निश्चय होता है कि, पराये शरीर मे भी आत्मा है। जो मरता है, वही फिर जन्म लेता है, इससे इस बात के मानने में कोई संशय नहीं रह जाता, कि चेतन का परलोक भी है। जिस तरह चेतन बालक से जवान और और जवान से बूढ़ा

होता है; उसी तरह वह एक जन्म के बाद दूसरा जन्म पाता है; अर्थात् जिस तरह चेतन की बाल, युवा और जरा अवस्थायें होती हैं; उसी तरह उसका मरने के बाद फिर जन्म भी होता है। जिस तरह वह बाल, युवा और वृद्धावस्था को प्राप्त होता है; उसी तरह वह मरण और पुनर्जन्म की अवस्था को भी प्राप्त होता है। पूर्व जन्म की, अनुवृत्ति के बिना, हाल का पैदा हुआ बच्चा, बिना सिखाये, माता के स्तनों पर मुँह कैसे लगाता है? बालक को, पहले जन्म की, स्तनपान करने की बात याद रहती है; इसी से वह पैदा होते ही, बिना किसी के सिखाये, अपनी भूख शान्त करने के लिए, माता के स्तन ढूँढता और पाते ही सीखे-सिखाये की तरह उन्हें पीने लगता है। फिर यह बात भी विचारने योग्य है, कि जब इस जगत् में कारण के अनुरूप ही कार्य होता है—जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य्य होता है—तब अचेतन भूतों या तत्त्वों से चेतन किस तरह पैदा हो सकता है? अचेतन से अचेतन ही पैदा हो सकता है—चेतन नहीं। हे संभिन्नमति! मैं तुमसे पूछता हूँ कि, चेतन प्रत्येक भूत से पैदा होता है या सब के संयोग से? प्रत्येक भूत या तत्त्व से चेतन उत्पन्न होता है, अगर इस प्रथम पक्षकी बातको मान ले, तो उतनी ही चेतना होनी चाहिये। अगर दूसरे पक्षको ग्रहण करते हैं, इस बात को मान लेते हैं कि, सब भूतों के संयोग से चेतन उत्पन्न होता है, तब यह संशय खड़ा हो जाता है कि, भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले भूतों से एक स्वभाव वाला चेतन कैसे पैदा

हो सकता है? ये सब बातें विचार करने लायक़ हैं। रूप, रस, गंध और स्पर्श—ये चार गुण पृथ्वी में हैं। रूप, स्पर्श और रस—ये तीन गुण जल में हैं। रूप और स्पर्श—ये दो गुण तेज या अग्नि मे हैं और एक स्पर्श गुण वायु में है। इस तरह इन भूतो के भिन्न-भिन्न स्वभाव सव को मालूम ही हैं। अगर तू यह कहे कि, जिस तरह जलसे विसदृश मोती पैदा होते देखा जाता है, उसी तरह अचेतन भूतों से चेतन की भी उत्पत्ति होती है, तो तेरा यह कहना भी उचित और ठीक नहीं है; क्योंकि मोती प्रभृति में भी जल दीखता है तथा मोती और जल दोनों पौद्गलिक हैं; अतः उनमें विसदृशता नहीं है। पिष्ट, गुड़ और जल आदि से होनेवाली मद-शक्ति का तू दृष्टान्त देता है; परन्तु वह मदशक्ति भी तो अचेतन है; इसलिए चेतन में वह दृष्टान्त घट नहीं सकता। देह और आत्मा का ऐक्य कदापि कहा नहीं जा सकता; क्योंकि मरे हुए शरीर में चेतन—आत्मा उपलब्ध नही होता। एक पत्थर पूज्य है और दूसरे पर मल मूत्र आदिका लेपन होता है,—यह दृष्टान्त भी असत् है; क्योंकि पत्थर अचेतन है। उसे सुख-दुःख का अनुभव ही कैसे हो सकता है? इसलिए, इस देहसे भिन्न परलोक में जानेवाला आत्मा है और धर्म-अधर्म भी हैं : क्योंकि उनका कारण-रूप परलोक सिद्ध होता है। आग की गरमी से जिस तरह मक्खन पिघल जाता है; उसी तरह स्त्रियों के आलिंगन से मनुष्यों का विवेक सब तरह से नष्ट हो जाता है। अनर्गल और बहुत रसवाले आहार-

पुद्गलों को खानेवाला मनुष्य, उन्मत्त पशु की तरह, उचित कर्म को जानता ही नहीं। चन्दन, अगर, कस्तूरी और कपूर प्रभृति की सुगन्ध से, सर्पादिकी तरह, कामदेव मनुष्यों पर आक्रमण करता है। काँटों की बाड़ में उलझे हुए कपड़े के पल्ले से जिस तरह मनुष्य की गति स्खलित हो जाती है; उसी तरह स्त्री आदि के रूपमें संलग्न हुए नेत्रों से पुरुष स्खलित हो जाता है। धूर्त मनुष्य की मित्रता जिस तरह थोड़ी देर के लिए सुखकारी होती है; उसी तरह बारम्बार मोहित करने वाला संगीत हमेशा कल्याणकारी नहीं होता। इसलिए, हे स्वामिन्! पाप के मित्र, धर्म के विरोधी और नरक में आकर्षण करने के लिए पापरूप विषयों को दूर से ही त्याग दो; क्योंकि एक तो सेव्य होता है और दूसरा सेवक होता है; एक याचक होता है और दूसरा दाता होता है; एक वाहन होता है और दूसरा उसके ऊपर चढ़ने वाला होता है; एक अभय माँगनेवाला होता है और दूसरा अभयदान देनेवाला होता है,—इत्यादिक बातों से इस लोक में ही, धर्म-अधर्म का बड़ा भारी फल देखने में आता है। यदि धर्म-अधर्म का फल प्राणी को न भोगना पड़ता, तो इस जगत् में हम सब को समान देखते। किसी को मालिक और किसी को नौकर, एक को भिखारी और दूसरे को दाता, एक को सवारी और दूसरे को सवार तथा एक को अभय माँगनेवाला और दूसरे को अभयदान देनेवाला न देखते। सारांश यह, जो जैसा भला या बुरा कर्म करता है; उसे वैसा ही फल मिलता

है और उस फल के भोगने के लिए, कर्म करनेवाले को, मरकर, फिर जन्म लेना पड़ता है। इस जगत् में, ये सब आँखों से देखने पर भी, जो मनुष्य परलोक और धर्म-अधर्म को नहीं मानते, उन बुद्धिमानों का भी भला हो! अब और अधिक क्या कहूँ? हे राजन्! आपको असत् वाणी के समान दुःख देनेवाले अधर्म का त्याग करना चाहिये और सत् वाणी के समान सुख के अद्वितीय कारण-रूप धर्म को ग्रहण करना चाहिये।"

क्षणिक मत का नैराश्य।

ये बातें सुनकर शतमति नामक मंत्री बोला—'प्रतिक्षण भंगुर पदार्थ विषय के ज्ञान के सिवाय दूसरी ऐसी कोई आत्मा नहीं है; और वस्तुओं में जो स्थिरता की बुद्धि है, उसका मूल कारण वासना है; इसलिये पहले और दूसरे क्षणों का वासनारूप एकत्व वास्तविक है—क्षणों का एकत्व वास्तविक नहीं।"

स्वयंबुद्ध ने कहा—'कोई भी वस्तु अन्वय—परम्परा—रहित नहीं है। जिस तरह जल और घास वगैरः की, गायों में दूध के लिए, कल्पना की जाती है; उसी तरह आकाश-कुसुम समान और कछुए के रोम के समान, इस लोक में, कोई भी पदार्थ अन्वय-रहित नहीं है। इसलिए क्षणभंगुरता की बुद्धि व्यर्थ है। यदि वस्तु क्षणभंगुर है, तो सन्तान परम्परा भी क्षणभंगुर—क्षण में नाश होनेवाली—क्यों नहीं कहलाती? अगर सन्तान की नित्यता को मानते हैं, तो समस्त पदार्थ क्षणिक—

क्षणस्थायी किस तरह हो सकते हैं? यदि सब पदार्थों को अनित्य—सदा न रहने वाले—मानते हैं; तो सौंपी हुई धरोहर का वापस माँगना, पहली बात की याद करना और अभिज्ञान करना,—ये सब किस तरह हो सकते हैं? अगर जन्म होनेके पीछे क्षणभर में ही नाश हो जाय, तो दूसरे क्षण में हुआ पुत्र पहले के माता-पिता का पुत्र नहीं कहलावेगा और पुत्र के पहले क्षण मे हुए माता-पिता वे माता-पिता न कहलायेंगे। इसलिये वैसा कहना असंगत है। अगर विवाह के समय, पिछले क्षण में, दम्पति क्षणनाशवन्त हों, तो उस स्त्री का वह पति नही और उस पति की वह स्त्री नही ऐसा होय यह कहना अनुचित है। एक क्षण मे जो अशुभ कर्म करे, वही दूसरे क्षण में उसका फल न भोगे और उसको दूसरा ही भोगे; तो इससे किये हुए का नाश और न किये हुए का आगम या प्राप्ति—ये दो बड़े दोष होते हैं।"

इसके बाद महामति मंत्री बोला—"यह सब माया है; वास्तव मे कुछ भी नही। ये सब पदार्थ जो दिखाई देते है, स्वप्न और मृगतृष्णा के समान मिथ्या हैं। गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, धर्म-अधर्म और अपना-पराया—ये सब व्यवहार से देखने में आते हैं; लेकिन वास्तव में कुछ भी नही है। जो इस लोक के सुख को छोड़ कर परलोक के लिये दौड़ते हैं, वे—उस स्यार की तरह, जो अपने लाये हुए मांस को नदी-तीर पर छोड़ कर, मछली के लिए पानी में दौड़ा; मछली पानी में चली गई और

उस मांस को गिद्ध पक्षी लेकर उड़ गया—उभयभ्रष्ट होकर अपने आत्मा को ठगते हैं या पाखण्डियों की खोटी शिक्षा को सुनकर और नरक से डरकर, मोहाधीन प्राणी व्रत प्रभृति से अपने शरीर को दण्ड देते हैं। और लावक पक्षी पृथ्वी पर गिरने की शंका से जिस तरह एक पाँव से नाचता है; उसी तरह मनुष्य नरकपात की शंका से तप करता है।"

स्वयं बुद्ध बोला—'अगर वस्तु सत्य न हो, तो इससे अपने कामके करनेवाला अपने कामका कर्त्ता किस तरह हो सकता है? यदि माया है, तो सुपने में देखा हुआ हाथी काम क्यों नहीं करता? अगर तुम पदार्थों के कार्यकारण-भाव को सच नहीं मानते, तो गिरने वाले वज्र से क्यों डरते हो? अगर यही बात है, तो तुम और मैं—वाच्य और वाचक कुछ भी नहीं हैं। इस दशा में, व्यवहार को करने वाली इष्ट की प्रतिपत्ति भी किस तरह हो सकती है? हे देव! इन वितण्डवाद में पण्डित, सुपरिणाम से पराङ्मुख, और विषयाभिलाषी लोगों से आप ठगे गये हैं; इसलिये विवेक का अवलम्बन करके विषयों को त्यागिये एवं इस लोक और परलोक के सुख के लिऐ धर्म का आश्रय लीजिये।'

इस तरह मन्त्रियों के अलग-अलग भाषण सुनकर, प्रसाद से सुन्दर मुँहवाले राजा ने कहा—"हे महाबुद्धि स्वयंबुद्ध! तुमने बहुत अच्छी बातें कहीं। तुमने धर्म ग्रहण करने की सलाह दी है, वह युक्ति-युक्त और उचित है। हम भी धर्म-

द्वेषी नही हैं: परन्तु युद्धमे जिस तरह अवसर आने से मन्त्रास्त्र ग्रहण किया जाता है; उसी तरह अवसर आने पर धर्मको ग्रहण करना उचित है। वहुत दिनों में आये हुए मित्र की तरह यौवन की प्रतिपत्ति किये विना, कौन उसकी उपेक्षा कर सकता है? तुमने जो धर्म का उपदेश दिया है, वह अयोग्य अवसर पर दिया है: अर्थात् वे-मौके दिया है; क्योंकि वीणा के बजते समय वेद का उच्चार अच्छा नहीं लगता। धर्म का फल परलोक है, इस मे सन्देह है। इसलिये तुम इस लोक के सुखास्वाद का निषेध क्यों करते हो? अर्थात् इस दुनिया के मज़े लूटने से मुझे क्यों रोकते हो?'

राजा की उपरोक्त बाते सुनकर स्वयंबुद्ध हाथ जोड़ कर बोला—"आवश्यक धर्म के फलमें कभी भी शंका करना उचित नहीं, आपको याद होगा कि, बाल्यावस्था मे आप एक दिन नन्दन वन में गये थे। वहाँ एक सुन्दर कान्तिवान देव को देखा था। उस समय देव ने प्रसन्न होकर आप से कहा था—'मैं अतिवल नामक तुम्हारा पितामह हूँ। क्रूर मित्र के समान विषय-सुखों से उद्विग्न होकर, मैंने तिनकेकी तरह राज्य छोड़ दिया और रत्न-त्रय को ग्रहण किया। अन्तावस्था में भी, व्रत रूपी महल के कलश रूप त्याग-भाव को मैंने ग्रहण किया था। उसके प्रभाव से मैं लान्तकाधिपति देव हुआ हूँ। इसलिये तुम भी असार संसार में प्रमादी होकर मत रहना।' इस प्रकार कहकर, बिजली की तरह आकाश को प्रकाशित करता हुआ, वह देव अन्तर्धान हो

गया। अतः हे महाराज! आप अपने पितामह की कही उन बातों को याद करके, परलोक का अस्तित्व मानिये; क्योंकि जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण हो, वहाँ और प्रमाणों की कल्पना की क्या जरूरत ?'

स्वयंबुद्ध का कहा हुआ पिछला इतिहास।

राजा ने कहा—'तुमने मुझे पितामह की कही हुई बातों की याद दिलाई,—यह बहुत अच्छा काम किया। अब मैं धर्म-अधर्म जिसके कारण हैं, उस परलोक को दिलसे मानता हूँ। राजा की आस्तिकता-पूर्ण बातें सुनकर, ठीक मौक़ा देखकर, मिथ्यादृष्टियों की बाणी-रूप धूल में मेघ की तरह, स्वयंबुद्ध मंत्री ने इस तरह कहना आरम्भ किया:—'हे महाराज! पहले आपके वंश में कुरुचन्द्र नामका राजा हुआ था। उस के कुरुमती नाम की एक स्त्री और हरिश्चन्द्र नामका एक पुत्र था। वह राजा क्रूरकर्म्मी, परिग्रहकर्त्ता, अनार्यकार्य में अग्रसर, यम-राज के समान निर्दयी, दुराचारी और भयङ्कर था; तोभी उसने बहुत समय तक राज्य भोगा। क्योंकि पूर्व्वोपार्जित पुण्य का फल अप्रतिम होता है। उस राजा को, अवसान-काल में, धातुविपर्यय का रोग हो गया और वह निकट आये हुए नरक के क्लेशों का नमूना हो गया। इस रोग से, उसकी रूई की भरी हुई शय्या काँटों की सेज के समान हो गई। नरम गुदगुदा पलँग शूलों की तरह चुभने लगा। सरस भोजन नीम के रस

की तरह नीरस लगने लगा। चन्दन, अगर, कस्तूरी प्रभृति सुगन्धित पदार्थ दुर्गन्धित मालूम होने लगे। पुत्र और स्त्री, शत्रु की तरह, दृष्टि में उद्वेगकारी हो गये। मधुर और सरस गान—गधे, ऊँट और स्यारों के भयङ्कर शब्दों की तरह—कानों को क्लेशकारी लगने लगा। जिसके पुण्यों का विच्छेद होता है, जिसके सुकर्मों का छोर आजाता है, उसके लिये सभी विपरीत हो जाते हैं। कुरुमती और हरिश्चन्द्र, परिणाम में दुःखकारी, पर क्षण-भर के लिए सुखकारी विषयों का उपचार करते हुए गुप्त रीति से जागने लगे। अङ्गारों से चुम्बन किये गये की तरह, उसके प्रत्येक अङ्ग में दाह पैदा हो गया। दाह के मारे उसका शरीर जलने लगा। शेष में; वह दाह से हाय-हाय करता हुआ, रौद्रपरायण होकर, इस दुनिया से कूँच कर गया। मृतक की अग्निसंस्कार आदि किया करके, सदाचार रूपी मार्ग का पथिक बनकर, उसका पुत्र हरिश्चन्द्र विधिवत् राज्यशासन् और प्रजापालन करने लगा। अपने पिता की पाप के फल-स्वरूप हुई मृत्यु को देखकर, वह ग्रहों में सूर्य की तरह, सब पुरुषार्थों में मुख्य धर्म की स्तुति करने लगा। एक दिन उसने अपने सुबुद्धि नामक श्रावक—बालसखा को यह आज्ञा दी कि, तुम नित्य धर्मवेत्ताओं से धर्मोपदेश सुनकर मुझे सुनाया करो। सुबुद्धि भी अत्यन्त तत्पर होकर राजाज्ञा को पालन करने लगा। नित्य धर्म-कथा सुनकर राजा को सुनाने लगा। अनुकूल अधिकारी की आज्ञा सत्पुरुषों के उत्साह-वर्द्धन मे सहायक होती

है; अर्थात् अनुकूल अधिकारी की आज्ञा से भले आदमियों को उत्साह होता है। रोग से डरा हुआ मनुष्य जिस तरह औषधि पर श्रद्धा रखता है; पाप से डरा हुआ हरिश्चन्द्र उसी तरह सुबुद्धि के कहे हुए धर्म पर श्रद्धा रखता था।'

एक दिन नगर के बाहर के बगीचे मे रहनेवाले शीलंधर नामक महामुनि को केवलज्ञान हुआ; इससे देवता अर्चन करने के लिए वहाँ जारहे थे। यह वृत्तान्त सुबुद्धि ने हरिश्चन्द्र से कहा। यह समाचार पाते ही वह शुद्ध-हृदय राजा, घोड़े पर चढ़कर मुनीन्द्र के पास पहुँचा और उन्हे नमस्कार करके वहाँ बैठ गया। महामुनि ने कुमति रूपी अन्धकार में चन्द्रिका के समान धर्म-देशना उसे दी। देशना के शेष होने पर, राजा ने हाथ जोड़ कर मुनिराज से पूछा—'महाराज! मेरा पिता मरकर किस गति मे गया है?' त्रिकालदर्शी मुनि ने कहा—'राजन! आप का पिता सातमी नरक में गया है। उसके जैसे को और स्थान ही नहीं है।' इस बात के सुनते ही राजा को वैराग्य* उत्पन्न हो

* विषयों के भोगने में रोगोंका, कुल में दोषों का, धन में राज का, मौन रहने में दीनता का, बल में शत्रुओं का, सौन्दर्य्य में बुढ़ापे का, गुणों में दुष्टों का और शरीर में मौत का भय है। संसार और संसार के सभी कामों में भय है। अगर भय नहीं है, तो एक मात्र वैराग्य में नही है, जिस वैराग्य में भय का नाम भी नहीं है और जिसमें सच्ची सुख शान्ति लबालब भरी है, यदि आप को उसी वैराग्य विषय पर सर्वोत्तम ग्रन्थ देखना है, तो आप हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता से सचित्र "वैराग्य शतक" मँगाकर

गया। मुनि को नमस्कार कर के और वहाँ से उठकर वह तत्काल अपने स्थान को गया। वहाँ पहुँचते ही उसने अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठा कर सुबुद्धि से कहा कि, मैं दीक्षा ग्रहण करूँगा। इसलिए मेरी तरह ही मेरे पुत्र को भी तुम नित्य धर्मोपदेश देते रहना। सुबुद्धि ने कहा—'महाराज! मैं भी आप के साथ वृत ग्रहण करूँगा और मेरी तरह मेरा पुत्र आप के पुत्र को धर्मोपदेश सुनावेगा।' इसके वाद राजा और सुबुद्धि मन्त्रीने कर्मरूपी पर्वत के भेदने में वज्र के समान व्रत ग्रहण किया और दीर्घकाल तक उसका पालन करके मोक्ष लाभ किया।

हे राजन! तुम्हारे वंश मे दूसरा एक दण्डक नाम का राजा हुआ है। उस राजा का शासन प्रचण्ड था और वह शत्रुओं के लिए साक्षात् यमराज था। उसके मणिमाली नाम का एक प्रसिद्ध पुत्र था। वह अपने तेज से, सूर्य की तरह, दशों दिशाओं को प्रकाशित करता था। दण्डक राजपुत्र, मित्र, स्त्री, रत्न, सुवर्ण और धन मे अत्यन्त फँसा हुआ था। वह इन सबको अपने प्राणो से भी अधिक चाहता था। आयुष्य पूर्ण होने पर, आर्त्तध्यान में ही लगा रहनेवाला वह राजा, मरकर, अपने ही भण्डार में दुर्धर

देखिये। मनुष्य-मात्र के देखने योग्य ग्रंथ है। उसमें ऐसे-ऐसे भावपूर्ण २६ चित्र है, जिनके देखने मात्र से अभिमानियों का मद ज्वर की तरह उतर जाता है, ससार स्वप्नवत् प्रतीत होता है और विषय विषवत् बुरे लगने लगते हैं। पृष्ठ-सख्या ४८० सुनहरी अक्षरों की रेशमी जिल्द-बधी पुस्तक का मूल्य ५) डाक-खर्च ।≈)

अजगर हुआ। जो भण्डार में जाता, उसे ही वह अग्नि के समान सर्वभक्षी और दुरात्मा अजगर निगल जाता। एक दिन उस अजगरने मणिमाली को भण्डार में घुसते देखा। पूर्वजन्म की बात याद रहने से, उसने उसे "यह मेरा पुत्र है" इस तरह पहचान लिया। मूर्त्तिमान् स्नेह की तरह अजगर की शान्त मूर्त्ति को देख कर, मणिमालीने अपने मन मे समझ लिया कि, यह मेरा कोई पूर्वजन्म का बन्धु है। फिर ज्ञानी मुनि से यह जान कर कि, यह मेरा अपना पिता है, उसने उसे जैनधर्म सुनाया। अजगरने भी अर्हंत धर्मको जानकर संवेगभाव धारण किया; शेषमें शुभध्यान-परायण होकर देह त्याग की और देवत्व लाभ किया। उस देवताने, पुत्र-प्रेम के लिए, स्वर्ग से आकर, एक दिव्य मोतियों का हार मणिमाली को दिया, जो आज तक आप के हृदय पर मौजूद है। आप हरिश्चन्द्र के वंश में पैदा हुए हैं और मैं सुबुद्धि के वंश में जन्मा हूँ। इसलिये, क्रम से आये हुए इस प्रभाव से, आप धर्म में मन लगाइये—धर्माचरण कीजिये। अब मैंने आपको, विना अवसर, जो धर्म करने की सलाह दी है, उस का कारण भी सुनिये। आज नन्दन वन में, मैंने दो चारण मुनि देखे। जगत् के प्रकाश को उत्पन्न करने वाले और महामोह रूपी अन्धकार को नाश करने वाले वे दोनों मुनि एकत्र ऐसे मालूम होते थे, गोया चन्द्र-सूर्य ही मिले हों। अपूर्व ज्ञान से शोभायमान दोनों महात्मा धर्म-देशना देते थे। उस समय मैंने उनसे आप की आयुष्यका प्रमाण पूछा। उन्होंने आप का आयुष्य एक मास का ही बाक़ी बताया।

हे महामति! यही कारण है कि, मैं आप से धर्माचरण करने की जल्दी कर रहा हूँ।

महाबल राजा ने कहा:—'हे स्वयंबुद्ध! हे बुद्धिनिधान! तू ही एक मात्र मेरा बन्धु है,जो मेरे हित के लिये—मेरी भलाई के लिए तड़फा करता है। विषयों से आकर्षित और मोह-निद्रा में निद्रित अथवा विषयों के फन्दे में फँसे हुए और मोह की नींद में सोये हुए मुझ को जगाकर तुमने बहुत अच्छा किया। अब मुझे यह बताओ कि, मैं किस तरह धर्मकी साधना करूँ। आयु थोड़ी रह गई है, इतने समयमें मुझे कितना धर्म साधन करना चाहिए? आग लग जानेपर तत्काल कूआं किस किस तरह खोदा जाता है?

स्वयंबुद्धने कहा—'महाराज!-आप खेद न करें और दृढ़ रहें। आप, परलोक में मित्र के समान, यतिधर्म का आश्रय लें। एक दिनकी भी दीक्षा पालने वाला मनुष्य मोक्ष लाभ कर सकता है; तब स्वर्ग की तो बात ही क्या है?' फिर महाबल राजा ने उस की बात मंजूर कर के, आचार्य जिस तरह मन्दिरमें मूर्त्ति की स्थापना करते हैं; उसी तरह पुत्र को अपनी पदवी पर स्थापन किया ; यानी उसे राजगद्दी सौंपी। इस के बाद उसने दीन और अनाथ लोगों को ऐसा अनुकम्पादान दिया कि, उस नगर में कोई मँगता ही न रह गया। दूसरे इन्द्र की तरह उसने चैत्यों में विचित्र प्रकार के वस्त्र, माणिक, सुवर्ण और फूल वगैरः से पूजा की। बाद में;स्वजन और परिजनोंसे क्षमा माँड, मुनीन्द्रके चरणों में जा, उसने उनसे मोहलक्ष्मी की सखी-रूपा दीक्षा अङ्गीकार की।

सब सावद्य योगों की विरति के साथ साथ उस राजर्षि ने चार प्रकार के आहारों का भी प्रत्याख्यान किया और समाधि रूप अमृत के झरने में निरन्तर निमग्न होकर, कमलिनी की तरह ज़रा भी ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु वह महासत्व-शिरोमणि मानो खाने के पदार्थों को खाता और पीने के पदार्थों को पीता हो, इस तरह अक्षीण कान्तिवाला दीखने लगा; अर्थात् उसके भूखे-प्यासे रहने पर भी—कुछ भी न खाने पीने पर भी, उस की कान्ति क्षीण और मलीन न हुई। बाइस दिनों तक अनशन पालन कर—भूखा-प्यासा रह, अन्त में पञ्च परमेष्ठि नमस्कार को स्मरण करते हुए उसने अपना शरीर त्याग दिया।

पाँचवाँ भव
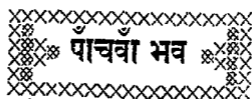
वहाँ से, सञ्चित किये पुण्य-बलसे, दिव्य घोड़े की तरह वह तत्काल दुर्लभ ईशानकल्प यानी अन्य देवलोक मे पहुँचा। वहाँ श्रीप्रभ नामके विमान में, वह उसी तरह उत्पन्न हुआ, जिस तरह मेघ के गर्भ में विद्युत्पुञ्ज उत्पन्न होता है। उसकी आकृति दिव्य थी। उसका शरीर सप्त धातुओं से रहित था। उसमें सिरसके फूल जैसी सुकुमारता थी और दिशाओं को आक्रान्त करने वाली कान्ति थी। उसकी देह वज्र के समान

थी। उसमे प्रभूत उत्साह, सब तरह के पुण्य-लक्षण, इच्छानुसार रूप धारण करने की क्षमता, अवधिज्ञान, सब तरह के विज्ञान में पारङ्गतता, अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ निर्दोषता, और अचिन्त्य वैभव प्रभृति सब गुण और सुलक्षण थे। वह ललिताङ्ग जैसे नामको सार्थक करने वाला देव हुआ। दोनों पाँवों मे रत्नमय कड़े, कमर मे कर्द्धनी, हाथों में कंगन, भुजाओमे भुजबन्द, छाती पर हार, कानों में कुण्डल, सिर पर फूलों की माला एवं किरीट वगैरः आभूषण, दिव्य वस्त्र और सारे शरीर का भूषण रूप यौवन—ये सब उसके पैदा होनेके समय, उसके साथ ही प्राप्त हुए थे: अर्थात् वह उपरोक्त गहने, कपड़े और जवानी को साथ लेकर जन्मा था। उसके जन्म-समय मे, अपनी प्रतिध्वनि से दिशाओं को प्रतिध्वनित करनेवाली दुँदुभियाँ बजी और 'जगत् को सुखी करो एवं जयलाभ करो' ऐसे शब्द मङ्गल-पाठक कहने लगे। गीत और वाद्य के निर्घोष—गाने बजाने की आवाज़ो तथा बन्दिजनो के कोलाहल से व्याकुल वह विमान अपने स्वामी के आने की खुशी में गरजता हुआ सा मालूम होने लगा। सोकर उठे हुए मनुष्य की तरह उठकर और सामने का दिखावा देखकर, ललिताङ्ग देव इस प्रकार विचार करने लगा —'यह इन्द्रजाल है ? स्वप्न है ? माया है ? क्या है ? ये नाच और गान मेरे उद्देश से क्यों हो रहे हैं ? ये विनीत लोग मुझे अपना स्वामी बनाने के लिये क्यों छटपटा रहे हैं ? इस, लक्ष्मी के मन्दिर रूप, आनन्द-सदन-स्वरूप, सेव्य, प्रिय

और रम्य भुवन में मैं कहाँ से आया हूं?' उसके मनमें इस तरह के तर्क-वितर्क उठ ही रहे थे, कि इतने में प्रतिहार ने उसके पास आकर और हाथ जोड़कर इस प्रकार विज्ञप्ति कीः—

ललितांग देवका प्रतिहारी द्वारा कहा हुआ स्वरूप

"हे नाथ! आप जैसे स्वामी को पाकर आज हम धन्य और सनाथ हुए हैं। इसलिये विनम्र और आज्ञाकारी सेवकों पर अमृत-समान दृष्टि से कृपा कीजिये। सब तरह के मन-चाहे पदार्थ देनेवाला, अक्षय लक्ष्मी वाला और सब सुखों का स्थान—यह ईशान नामका दूसरा देवलोक है। जिस विमान को आप इस समय अलंकृत कर रहे हैं, इस श्रीप्रभ नाम के विमान को आपने पुण्य-बल से पाया है। आप की सभा के मण्डन-रूप ये सब सामानिक देव हैं, जिन में से आप एक हैं; तोभी आप इस विमान में अनेक की तरह दीखते हैं। हे स्वामिन्! मंत्र के के स्थान-रूप ये तेतीस पुरोहित-देव हैं। ये आप की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं; इसलिए आप इनको समयोचित आदेश कीजिये। हँसी-दिल्लगी करनेवाले परिषद् नामक देव हैं, जो लीला और विलास की बातों से आपका दिल बहलायेंगे। निर-

न्तर बख्तर को पहनने वाले, छत्तीस प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले और स्वामी की रक्षा करने में चतुर—ये आपके आत्मरक्षक देवता हैं। आप के नगर की रक्षा करने वाले ये लोकपाल देवता हैं। आपकी सेना में ये रणकला-कुशल धुरन्धर सेनाधिपति हैं। ये पुरवासी और देशवासी प्रकीर्णक देवता आप की प्रजा रूप हैं। ये सब भी आप की निर्माल्य रूप आज्ञा को मस्तक पर धारण करेंगे। ये आभियोग्य देवता आप की दासों की तरह सेवा करने वाले हैं और ये किल्विषक देवता सब प्रकार के मैले काम करने वाले हैं। सुन्दर रमणियों से रमणीक आँगनवाले, मन को प्रसन्न करने वाले और रत्नों से जड़े हुए ये आपके महल हैं। सुवर्ण-कमल की खान जैसी रत्नमय ये वाटिकायें हैं। रत्न और सुवर्ण की चोटी वाले ये तुम्हारे क्रीड़ा-पर्वत हैं। हर्षकारी और स्वच्छ जलवाली ये क्रीड़ा-नदियाँ हैं। नित्य फलफूल देनेवाले ये क्रीड़ा-उद्यान हैं। अपनी कान्ति से दिशाओं के मुख को प्रकाशित करनेवाला सूर्यमण्डल के समान, रत्न और मणियों से बना हुआ यह आप का सभामण्डप है। चमर, दर्पण और पंखेवाली ये वाराङ्गनायें आप की सेवा में ही महोत्सव मानने वाली हैं। चारों प्रकार के बाजे बजाने में दक्ष ये गन्धर्व आप के सामने गाना करने को सजे हुए खड़े हैं।' प्रतिहारी के ऐसा कहने के बाद, ललितांग देव को, अवधिज्ञान से जिस तरह पिछले दिन की बात याद आजाती है उस तरह, पूर्व जन्म की बात याद आगई। 'अहो!

पहले जन्म में, मैं विद्याधरों का स्वामी था। मुझे धर्म मित्र जैसे स्वयंबुद्ध मंत्री ने जैनेन्द्र धर्म का बोध कराया था। उससे दीक्षा लेकर मैंने अनशन किया था। उसी से मुझे यह फल मिला है। अहो! धर्म का अचिन्त्य वैभव है।' इस तरह पूर्व जन्म की बातों को यादकर और वहाँ से तत्काल उठकर, उस देवने छड़ीदार के हाथ का सहारा लेकर सिंहासन को अलंकृत किया। उसके सिंहासनारूढ़ होते ही जयध्वनि हुई और देवताओं ने अभिषेक किया। चॅवर डोलने लगे। गन्धर्व मधुर और मंगल गान गाने लगे। इसके बाद, भक्तिभाव-पूर्ण ललिताङ्ग देव ने वहाँ से उठकर, चैत्य में जाकर, शाश्वती अर्हत् प्रतिमा की पूजा की और देवताओं के तीन ग्रामके उद्गार से मधुर और मंगलमय गायनों के साथ, विविध स्तोत्रों से जिनेश्वर की स्तुति की। पीछे ज्ञानदीपक पुस्तकें पढ़ीं और मंडप के खंभे पर रक्खी हुई अरिहन्त की अस्थि—हड्डी की अर्चना की।

स्वयंप्रभा देवी की रूप वर्णना

स्वयंप्रभा का देहान्त।

ललितांग देव का विलाप।

इसके बाद, पूर्णिमा के चन्द्र-जैसे दिव्य छात्र को धारण कर

ने से प्रकाशमान् होकर, वह क्रीड़ा-भवन में गया। वहाँ उसने अपनी प्रभा से विद्यु त-प्रभा को भी भग्न करने वाली स्वयंप्रभा नाम की देवी देखी। उसके नेत्र. मुख और चरण अतीव कोमल थे। उनके मिषसे, वह लावण्य-सिन्धु के बीच में रहने वाली कमल-वाटिकासी जान पड़ती थी। अनुपूर्व से स्थूलऔर गोल उरु से वह ऐसी मालूम होती थी, मानो कामदेव ने वहाँ अपना तर्कस स्थापन किया हो। निर्मल वस्त्र वाले.विशाल नितम्बों—चूतड़ों से वह ऐसी अच्छी लगती थी, जैसी कि किनारो पर राजहंसों के झुण्डों के रहने से नदी लगती है। पुष्ट और उन्नत स्तनो का भार वहन करने से कृश हुए, वज्र के मध्य भाग-जैसे, कृश उदर से वह मनोहारिणी लगती थी। उसका त्रिरेखा-संयुक्त मधुर स्वर बोलने वाला कंठ, कामदेव की विजय-कहानी कहने वाले शंख के जैसा मालूम होता था। बिम्बफल को तिरस्कृत करने वाले होठ और नेत्ररूपी कमल की डंडी की लीला को धारण करने वाली नाक से वह बहुत ही मनोमुग्धकर जान पड़ती थी। पूर्णमासी के अर्द्धचन्द्र की सर्व लक्ष्मी को हरने वाले अपने सुन्दर और स्निग्ध ललाट से वह चित्त को हरे लेती थी। कामदेव के हिंडोले की लीला को चुराने वाले उसके कान थे और पुष्पबाण या मन्मथ के धनुष की शोभा को हरने वाली उसकी भृकुटियाँ थीं। उसके सुन्दर चिकने और काजल के समान श्याम बाल ऐसे मालूम होते थे, मानों मुख-कमल के पीछे भौंरे हों। सब अंगों में रत्नाभरण धारण किये हुए, वह कामलता सी

मालूम होती थी। मनोहर मुखकमल वाली अप्सराओं से घिरी हुई, वह नदियों से घिरी हुई गंगा सी दीखती थी। ललिताङ्ग देवको अपने पास आते देखकर, उसने अतिशय स्नेह के साथ-खड़े होकर, उसका सत्कार किया। इसके बाद, वह श्रीप्रभ विमान का स्वामी उसके साथ एक पलँग पर बैठ गया। जिस तरह एक क्यारे के लता और वृक्ष शोभते हैं; उसी तरह वे दोनों पास पास बैठे हुए शोभने लगे। वेड़ियों से जकड़े हुए के समान, निविड़ प्रेम से नियंत्रित उन दोनों के दिल आपस में लीन हो गये। अविच्छिन प्रेम रूपी सौरभ से पूर्ण ललिताङ्ग देव ने स्वयंप्रभा के साथ क्रीड़ा करते हुए वहुतसा समय एक घड़ीके समान विता दिया। फिर वृक्ष से पत्ता गिरने की तरह, आयुष्य पूरी होने से, स्वयंप्रभा देवी वहाँ से च्युत हुई अर्थात् दूसरी गतिको प्राप्त हुई। आयुष्य पूरी होनेपर, इन्द्र में भी रहने की सामर्थ्य नहीं। प्रिया के विरह-दुःख से वह देव पर्वत से आक्रान्त और वज्राहत की तरह मूर्च्छित हो गया। फिर क्षण-भर में होश में आकर, अपने प्रत्येक शब्द से सारे श्रीप्रभ विमान को रुलाता हुआ वह वारम्वार विलाप करने लगा। उपवन उसे अच्छे न लगते थे। वाटिकाओं से चित्त आनन्दित न होता था। क्रीड़ा-पर्वत से उसे स्वस्थता न होती थी और नन्दन वन से भी उसका दिल खुश न होता था। हे प्रिये! हे प्रिये! तू कहाँ है? इस तरह कह-कहकर विलाप करनेवाला वह देव, सारे संसार को स्वयंप्रभा-मय देखता हुआ, इधर-उधर फिरने लगा।

निर्नामिका का वृत्तान्त।

इधर स्वयंबुद्ध मन्त्री को अपने स्वामी की मृत्यु से वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने श्री सिद्धाचार्य नामक आचार्य से दीक्षा ली। बहुत समय तक अतिचार-रहित व्रत पालन करके वह मर गया और ईशान देवलोकमें इन्द्रका दृढ़धर्मा नामक सामानिक देव हुआ। उस उदार बुद्धिवाले देव का हृदय, पूर्व-जन्म के सम्बन्धसे, बन्धु की तरह, प्रेम से पूर्ण हो उठा। उसने वहाँ आकर, ललिताङ्ग देव को आश्वासन देने के लिए कहा :—"हे महासत्व! केवल स्त्रीके लिए आप ऐसा मोह क्यों करते हैं? धीर पुरुष प्राण-त्याग का समय आ जाने पर भी इस हालत को नहीं पहुँचते।" ललिताङ्ग देव ने कहा :—"हे बन्धु! आप ऐसी बातें क्यों करते हैं? पुरुष प्राणों का विरह तो सह सकता है; पर कान्ता का विरह नहीं सह सकता। इस संसार में एक मात्र मृगनयनी कामिनी ही सारभूत है*; क्योंकि उस एक के बिना सारी सम्पत्तियाँ असार

---

* महाराजा भर्तृहरिकृत श्रृङ्गारशतक में भी एक जगह लिखा है :—

हरिणीप्रेक्षणा यत्र गृहिणी न विलोक्यते।
सेवितं सर्व सम्पद्भिरपि तद् भवनं वनं॥

जिस घर में मृगनयनी गृहिणी नहीं दीखती, वह घर सब सम्पत्तिसम्पन्न होने पर भी वन है।

हो गई हैं।" उस के ऐसे दुःख से ईशान इन्द्र का वह सामानिक देव भी दुखी हो गया। फिर अवधि-ज्ञान का उपयोग कर उसने कहा—"हे महानुभाव! आप खेद न करें। मैंने, ज्ञानवल से, आप की प्रिया कहाँ है, यह वात जान ली हैं। इसलिये आप स्वस्थ हों और सुने:—पृथ्वी पर, धातकी खण्ड के विदेह-क्षेत्र-स्थित नन्दी नामक गाँव में. दरिद्र स्थितिवाला एक नागिल नामक गृहस्थ रहता है। वह पेट भरने के लिए, हमेशा, प्रेत की तरह भटकता है; तोभी भूखा-प्यासा ही सोता और भूखा-प्यासा ही उठता है। द्ररिद्र में भूख की तरह, मन्द-भाग्य में शिरोमणि, नागश्री नामकी स्त्री उस के है। खुजली रोगवाले के जिस तरह खुजली के ऊपर फोड़े फुन्सी और हो जाते हैं; उसी तरह नागिलके ऊपरा-ऊपरी ६ कन्यायें गाँवकी सूअरीकी तरह स्वभाव से ही वहुत खानेवाली, कुरूपा और जगत् में निन्दित होने वाली हुईं। इतने पर भी, उसकी स्त्री फिर गर्भवती हो गई। प्रायः दरिद्रियों को शीघ्र ही गर्भधारण करने वाली स्त्रियाँ मिलती हैं। इस मौके पर नागिल मन में चिन्ता करने लगा—'यह मेरे किस कर्म का

फल है ; जिस से मैं, मनुष्यलोक में रह कर भी, नरक की व्यथा भोगता हूं। मै जन्म से दरिद्री हूँ और मेरे इस दरिद्रका प्रतिकार भी नहीं हो सकता। मैं इस जन्म के प्रतिकार-रहित दरिद्र से उसी तरह क्षीण हो गया हूँ, जिस तरह दीमक से वृक्ष क्षीण हो जाता है। प्रत्यक्ष अलक्ष्मी-स्वरूपा पूर्व्वजन्म की वैरिणी और कुलक्षणा—कन्याओंने मुझे बड़ा कष्ट दिया है। यदि इस बार भी कन्या पैदा हुई, तो मैं कुटुम्ब को त्याग कर देशान्तर में जा रहूँगा'।

निर्नामिका और केवली का समागम।

"वह इस तरह चिन्ता किया करता था कि, इस बीच में उस दरिद्र की घरवाली ने कन्या जनी। कान में सूई घुसने की तरह उस ने कन्या-जन्म की बात सुनी। इस के बाद, दुष्ट बैल जिस तरह भार को छोड़कर चल देता है: उसी तरह वह नागिल कुटुम्ब को छोड़कर चल दिया। उसकी स्त्री को, प्रसव-दुःख के ऊपर, पति के परदेश चले जाने की व्यथा, ताज़ा घाव पर नमक पड़ने के समान प्रतीत हुई। अत्यन्त दुःखिता नागश्रीने उस कन्याका नाम भी न रक्खा ; इसलिये लोग उस कन्या को निर्नामिका नाम से पुकारने लगे। नागश्रीने उस का पालन-पोषण भी अच्छी तरह से नहीं किया ; तोभी वह कन्या बढ़ने लगी। वज्राहत प्राणीकी भी, यदि आयु शेष न हुई हो तो, मृत्यु नही होती। अत्यन्त अभागी और माता को उद्वेग करानेवाली वह कन्या दूसरों के घरों में नीचे काम करके दिन काटने लगी। एक दिन, उत्सव

के समय, किसी धनी के बालक के हाथ में लड्डू देखकर, वह अपनी माँ से लड्डू माँगने लगी। उस समय उसकी माँ ने क्रोधित होकर कहा—"मोदक क्या तेरे बाप होते हैं, जो तू माँगती है? अगर तेरी लड्डू खाने की ही इच्छा है, तो अम्बर तिलक पर्वत पर, काठ की भारी लाने के लिए, रस्सी लेकर जा।" अपनी माता की, जङ्गली कण्डे की आग के समान, दाह करनेवाली बात सुनकर, रोती हुई वह बाला रस्सी लेकर पर्वत की ओर चली। उस समय, उस पर्वत पर, एक रात्रिकी समाधि मे रहे हुए युगन्धर मुनि को केवल ज्ञान हुआ था। इस से निकट रहने वाले देवताओं ने केवल-ज्ञान की महिमा का उत्सव मनाना आरम्भ किया था। पर्वत के पास के नगर और गाँवों के लोग यह समाचार सुनकर, उस मुनीश्वरको नमस्कार करने के लिए जल्दी-जल्दी आ रहे थे। नाना प्रकार के अलङ्कारोंसे भूषित लोगोको आते देखकर, वह निर्नामिका कन्या विस्मित होकर, चित्र-लिखीसी खड़ी रही। फिर बातों ही बातों में लोगों के आने का कारण जानकर, दुःख-रूपी भारी के समान काठ की भारी को वहीं पटक कर, वह भी वहाँ से चल दी और दूसरे लोगों के साथ पहाड़ पर चढ़ गई। तीर्थ सब के लिए खुले रहते हैं। उन मुनिराज के चरणों को कल्पवृक्ष के समान मानने वाली निर्नामिका कन्याने बड़े आनन्द से उन को वन्दना की। कहते हैं कि, गतिकी अनुसारिणी मति होती है; अर्थात् जैसी होनहार होती है, वैसी ही मति हो जाती है। मुनीश्वर ने, मेघवत् गम्भीर वाणी से,

'हे भगवन्! आप राव और रंकमें समदृष्टि रखनेवाले हैं,—ग़रीब और अमीर दोनों ही आपकी नज़र में समान हैं. इसलिए मैं विज्ञप्ति करके पूछती हूँ कि आपने संसार को दु:ख-सदन रूप कहा, परन्तु क्या मुझसे भी अधिक दु:खी कोई है?'

[पृष्ठ ८२]

लोक-समूह को हितकारी और आह्लादकारी धर्म-देशना या धर्मोपदेश दिया। विषयों का सेवन, कच्चे सूत से बने हुए पलँग पर बैठने वाले पुरुष की तरह, संसार-रूपी भूमि पर गिरने के लिए ही है ; अर्थात् कच्चे सूत से बने हुए पलङ्ग पर बैठने वाले का जिस तरह अधःपतन होता है ; उसीतरह विषय-सेवी पुरुष का भी अधः पतन होता है। कच्चे सूत के पलङ्ग पर बैठने वाले को, जिस तरह शेषमे नीचे गिरकर, दुखी होना पड़ता है ; उसी तरह विषय-भोगी को परिणाम में घोर दुःख और कष्ट उठाने पड़ते हैं। जगत् में पुत्र, मित्र और कलत्र वगैरः का समागम एक गाँव में रात्रि-निवास करके और सोकर उठ जाने वाले बटोही के समान है। चौरासी लाख योनियों में घूमने वाले जीवों को जो अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं, वे उनके अपने कर्मों के फल हैं; अर्थात् उनके कर्मों के फल-स्वरूप उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार की देशना या धर्मोपदेश सुनकर, निर्नामिका हाथ जोड़ कर बोली,—'हे भगवन्! आप राव और रंक में समदृष्टि रखने वाले है,—ग़रीब और अमीर दोनो ही आपकी नज़र में समान हैं ; इसलिए मैं विज्ञप्ति करके पूछती हूँ कि, आपने संसार को दुःख-सदन रूप कहा, परन्तु क्या मुझसे भी अधिक दुःखी कोई है ?'

चारों गतियों में दुःख का वर्णन।

"केवली भगवान् ने कहा—'हे दुःखिनी बाला! हे भद्रे ! तुझे

तो क्या दुःख है ? तुझ से भी अधिक दुःखी जीव हैं; उनका हाल सुन। जो अपने दुष्कर्मों के फल-स्वरूप नरक-गति में पैदा होते हैं, उनमें से कितनों ही के शरीर भेदे जाते है और कितनो ही के अङ्ग छेदे जाते हैं और कितनों ही के सिर धड़से अलग किये जाते हैं। उनमे से कितनेही, नरक-गति मे, परमाधामी असुरो द्वारा, तिलों की तरह कोल्हू मे पेरे जाते हैं ; कितने ही लकड़ी की तरह काटे जाते हैं और कितने ही लोहेके वर्तनोंकी तरह कूटे जाते हैं। वे असुर कितनों हीको शूलों की शय्या पर सुलाते हैं, कितनों ही को कपड़ो की तरह पत्थर की शिलाओं पर पछाड़ते हैं और कितनों ही के साग की तरह टुकड़े-टुकड़े करते हैं। उन नारकीय जीवो के शरीर, वैक्रिय होने के कारण, तुरत मिल जाते हैं और वे परमाधार्म्मिक असुर उन्हें फिर पहले की तरह ही तकलीफें देते हैं। इस तरह दुःखों को भोगने वाले वे प्राणी करुण स्वर से चीख़ते-चिल्लाते हैं। वहाँ प्यासे जीवों को बार-म्बार सीसे का रस पिलाया जाता है और छाया चाहने वाले प्राणी, तलवार के से पत्तों वाले, असिपत्र नामक वृक्ष के नीचे बिठाये जाते हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मो का स्मरण करते हुए, वे प्राणी एक मुहूर्त्त-भर भी बिना वेदना के रह नहीं सकते। हे यक्षी ! उन नपुंसक नारकियों को जो-जो दुःख और कष्ट झेलने पड़ते हैं, उनका वर्णन करनेसे भी मनुष्य को दुःख होता है।

इन नारकियों की बात तो दूर रहो, प्रत्यक्ष दिखाई देने

वाले जलचर, थलचर नभचर और तिर्यञ्च प्राणी भी अपने पूर्व-जन्म के कर्मो से अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। जलचर जीवों में से कितने ही तो एक दूसरे को खा जाते हैं। चमड़े के चाहने वाले उनकी खाल उतारते हैं, मांस की तरह वे भूँजे जाते हैं, खाने की इच्छा वाले उन्हें खाते हैं और चरबी की इच्छा वाले उन्हें गलाते हैं। थलचर जन्तुओं में, निर्बल मृग प्रभृति को सबल सिंह वगैरः प्राणी मांस की इच्छा से मार डालते हैं। शिकारी लोग मांस की इच्छा से अथवा क्रीड़ा के लिए, उन निरपराधी प्राणियों को मार डालते हैं। बैल प्रभृति प्राणी भूख-प्यास, सरदी-गरमी सहन करने, अति भार वहन करने और चाबुक,-अंकुश एवं लकड़ी वगैरः की मार खाने से बड़ा दुःख पाते हैं। आकाशमें उड़नेवाले पक्षियों में तीतर, तोता, कबूतर और चिड़िया प्रभृतिको उनका मांस खानेकी इच्छावाले बाज़, शिकरा और गिद्ध वगैरः पक्षी खा जाते हैं तथा शिकारी लोग इन सब को नाना प्रकार के उपायों से पकड़कर और घोर दुःख देकर मार डालते हैं। उन तिर्यञ्चों को अन्य शस्त्र और जल प्रभृति का भी बड़ा डर होता है। अतः अपने-अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का निबन्धन ऐसा है, जिस का प्रसार रुक नहीं सकता। इसी को दूसरे शब्दो मे यों कह सकते हैं, कि कोई भी अपने पूर्वजन्म के कर्मोका भोग भोग-नेसे बच नहीं सकता। अपने-अपने कर्मोका फल सभीको भोगना होता है।

'जिन को मनुष्यत्व मिलता है, जो मनुष्य-योनि में जन्म लेते

हैं, उनमें से कितने ही प्राणी जन्मसे ही अन्धे, बहरे, लूले और कोढ़ी होते हैं ; कितने ही चोरी और जारी करनेवाले प्राणी, नारकीयो की तरह, भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा से निग्रह पाते हैं ; और कितने ही नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होकर अपने पुत्रों से भी तिरस्कृत होते हैं। कितने ही मूल्य से बिके हुए—नौकर, गुलाम वगैरः—खच्चर की तरह अपने स्वामी की ताड़ना, तर्जना और भर्त्सना सहते, बहुतसे बोझ उठाते एवं भूख-प्यास का दुःख सहते हैं।

देशना की समाप्ति।

'परस्पर के पराभव से क्लेश पाये हुए और अपने-अपने स्वामियों के स्वामित्व में बँधे हुए देवताओं को भी निरन्तर दुखी रहना पड़ता है ; स्वभावसे ही दारुण इस संसार में, दुःखों का पार उसी तरह नहीं है। जिस तरह समुद्र में जल-जन्तुओं का पार नहीं है ; जिस तरह भूत-प्रेतादिक से संकलित स्थान में मंत्राक्षर प्रतीकार करनेवाला होता है ; उसी तरह दुःख के स्थान-रूप इस संसार में जैनधर्म प्रतीकार करनेवाला है। बहुत बोझ से जिस तरह नाव समुद्र में डूब जाती है; उसी तरह हिंसा से प्राणी नरक-रूपी समुद्र में डूब जाता है, अतः हिंसा हरगिज़ न करनी चाहिये। निरन्तर असत्यका त्याग करना उचित है, क्योंकि असत्य वचनसे मनुष्य इस संसार में चिरकालतक उसी तरह भ्रमता है ; जिस तरह तिनका हवा

के ववंडर या वगूले में भ्रमता है। किसी की भी विना दी हुई चीज़ न लेनी चाहिये अथवा किसी भी चीज़ की चोरी न करनी चाहिये ; क्योंकि कौंच की फली के छूने के समान अदत्त—विना दिया हुआ पदार्थ लेने से किसी हालत में भी सुख नहीं मिलता। अब्रह्मचर्य्य को त्यागना चाहिये। क्योंकि अब्रह्मचर्य्य रंक की तरह गला पकड़कर मनुष्य को नरकमें ले जाता है। परिग्रह इकट्ठा न करना चाहिये, क्योंकि वहुत वोझ से वैल जिस तरह-कीचड़ में फँस जाता हैं; उसी तरह मनुष्य परिग्रह के वश में पड़कर दुःख में डूब जाता है। जो लोग हिंसा प्रभृति पाँच अव्रतका देशसे भी त्याग करते हैं, वे उत्तरोत्तर कल्याण सम्पत्ति के पात्र होते हैं।'

निर्नामिका का पुनर्जन्म।

ललितांग और स्वयंप्रभा का पुनर्मिलन।

'केवली भगवान् के मुँहसे ऐसी बातें सुनकर निर्नामिका को वैराग्य उत्पन्न हो गया और लोहे के गोले की तरह उस की कर्म-ग्रन्थि भिद गयी। उस ने उस मुनीश्वर के पास से अच्छी तरह सम्यक्त्व ग्रहण किया और परलोक-रूपी मार्ग में पाथेय-तुल्य अहिंसा आदि पाँच अणुव्रत धारण किये। इस के वाद मुनि महाराज को प्रणाम कर, मैं कृतार्थ हुई,—ऐसा मानती हुई, वह निर्नामिका भारी उठाकर अपने घर गई। उस दिन से, वह सुबुद्धिमती वाला अपने नाम की तरह युगंधर मुनि की वाणी को

न भूलकर नाना प्रकार के तप करने लगी। वह युवती हो गई, तोभी उस दुर्भगा के साथ किसी ने विवाह नहीं किया : क्योंकि कड़वी तूम्बी पक जाती है, तोभी उसे कोई नहीं खाता। वर्त्तमान में, वह निर्नामिका विशेष वैराग्य और भाव से युगंधर मुनि के पास अनशन व्रत ग्रहण करके रहती है। इसलिये हे ललिताङ्ग देव! आप वहाँ जाओ और उसे अपने दर्शन दो; जिस से आप पर आसक्त हुई वह मरकर आप की स्त्री हो।" कहा है कि, अन्तमें जैसी मति होती हैं, वैसीही गति होती है। पीछे ललितांग देव ने वैसा ही किया; और उस के ऊपर आसक्त हुई वह सती मरकर स्वयंप्रभा नाम्नी उसकी पत्नी हुई। मानो प्रणय-कोध से रूठ कर गई हुई स्त्री फिर मिल गयी हो; इस तरह अपनी प्यारी को पाकर, ललिताङ्ग देव खूब क्रीड़ा करने लगा : क्योंकि अधिक घाम लगने पर छाया अच्छी लगतीही है।

ललितांगदेव के च्यवन-चिह्न।

इस तरह क्रीड़ा करते हुए कितना ही समय बीत जानेपर ललिताङ्ग देव को अपने च्यवन—पतनके चिह्न नज़र आने लगे। मानो उस के वियोग-भय से रत्नाभरण निस्तेज होने लगे और उस के शरीर के कपड़े भी मैले होने लगे। जब दुःख नज़दीक आता है, तब लक्ष्मीपति भी लक्ष्मी से अलग हो जाते हैं। ऐसे समय में, उसे धर्म से अरुचि और भोग में विशेष आसक्ति हुई। जब अन्त समय आता है, तब प्राणियों की प्रकृति में फेरफार

होता ही है। उसके परिजनोंके मुँह से अपशकुनमय—शोक-कारक और विरस वचन निकलने लगे। कहा है, कि बोलने-वाले के मुख से होनहार के अनुरूप ही बात निकलती है। जन्म-से प्राप्त हुई लक्ष्मी और लज्जारूपी प्रिया ने, मानो उस ने कोई अपराध किया हो इस तरह, उसे छोड़ दिया। चींटी के जिस तरह मृत्यु-समय पंख आ जाते हैं ; उसी तरह, उसके अदीन और निद्रारहित होने पर भी, उसमें दीनता और निद्रा आगई। हृदय के साथ उस के सन्धि-बन्धन ढीले होने लगे। महाबलवान् पुरुषों से भी न हिलनेवाले उस के कल्पवृक्ष काँपने लगे। उसके नीरोगी अङ्ग और उपाङ्गों की सन्धियाँ मानो भविष्य मे आने-वाली वेदना की शङ्का से टूटने लगीं। जिस तरह दूसरों के स्थायी-भाव देखने में असमर्थ हो; उस तरह उस की दृष्टि पदार्थ-ग्रहण करने में असमर्थ होने लगी ; यानी उस की नज़र कम हो गई। मानो गर्भावास में निवास करने के दुःखोंका भय लगता हो, इस तरह उस के सारे अङ्ग काँपने लगे। ऊपर महावत बैठा हो ऐसे गजेन्द्र की तरह, उस ललिताङ्ग देव को रम्य क्रीड़ा-पर्वत, नदी, बावड़ी और बग़ीचे भी प्यारे नहीं लगते थे। उस की ऐसी हालत देखकर देवी स्वयंप्रभा ने कहा,—"हे नाथ! मैंने आप का क्या अपराध किया है, कि आप का मन मुझ से फिरा हुआ सा जान पडता है?"

ललितांग देव का च्यवन।

उसने कहा,—"प्यारी! तैंने कुछ भी अपराध नहीं किया है। हे सुन्दर भौंहोंवाली! अपराध तो मैंने ही किया है, जो पूर्व जन्म में ओछा तप किया। पूर्व जन्म में, मैं विद्याधरों का राजा था। उस समय, मैं भोग-कार्य में जाग्रत और धर्म-कार्य में प्रमादी था। मेरे सौभाग्य से प्रेरित होकर, स्वयंबुद्ध नामक मन्त्री ने आयु का शेषांश बाक़ी रहने पर मुझे जैनधर्म का बोध कराया और मैंने उसे स्वीकार किया। उस ज़रा सी मुद्दत में किये हुए धर्म के प्रभाव से, मैं अबतक श्रीप्रभ विमान का स्वामी रहा; परन्तु अब मेरा च्यवन होगा— मैं इस पदपर न रहूँगा; क्योंकि अलभ्य वस्तु किसी को भी मिल नहीं सकती।" वह इस तरह बातें कर ही रहा था कि, इसी बीच में दृढ़धर्मा नामक देव उन के पास आकर कहने लगा :—"आज ईशान कल्पके स्वामी नन्दीश्वरादिक द्वीप में जिनेन्द्र-प्रतिमा की पूजा करने को जाने-वाले हैं; इसलिये आप भी उन की आज्ञा से चलिये।" यह बात सुनते ही—'अहो! स्वामी ने हुक्म भी समयोचित ही दिया है—' कहते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी प्यारी सहित वहाँको चला। नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, उसने शाश्वती अर्हत्प्रतिमा की पूजा की और खुशी मे अपने च्यवन-काल की बात को भी भूल गया। इस के बाद स्वस्थ चित्तवाला वह देव दूसरे तीर्थों को जा रहा था, कि इसी बीच में आयुष्य

क्षीण होने से, क्षीण तेलवाले दीपक की तरह, राहमें ही पञ्चत्व को प्राप्त हुआ ; यानी देह-त्याग किया।

छठा भव

जम्बूद्वीप में, सागर-समीप-स्थित पूर्व विदेह में, सीता नाम्नी महानदी के उत्तर अञ्चल में, पुष्कलावती नम्म्नी विजय के मध्य-में, लोहार्गल नामक बड़े भारी नगर के सुवर्णजंघ राजा की लक्ष्मी नाम्नी स्त्री की कोख से ललिताङ्ग देव का जीव पुत्र-रूप-में पैदा हुआ। आनन्द से प्रफुल्लित माता-पिता ने प्रसन्न होकर, शुभ दिवस में, उसका नाम वज्रजंघ रखा। ललिताङ्ग देव के विरह से दुःखार्त्त हो, स्वयंप्रभा देवी भी, कितने ही समय तक धर्म-कार्य में लीन रहकर, वहाँ से च्यवी; यानी उस का देहाव-सान हुआ। मरकर वह उसी विजय में, पुण्डरीकिणी नगरी-के वज्रसेन राजा की गुणवती नाम की स्त्रीसे पुत्री-रूप में जन्मी। अतीव सुन्दरी होने के कारण माता-पिता ने उसका नाम श्री-मती रक्खा। जिस तरह उद्यान पालिका—मालिन द्वारा लालित होनेसे लता बढ़ती है ; उसी तरह वह सुन्दर हस्तपल्लव वाली कोमलाङ्गी वाला धायों द्वारा लालित-पालित होकर अनुक्रम से बढ़ने लगी। सुवर्ण की अँगूठी को जिस तरह रत्न प्राप्त होता है; उसी तरह अपनी स्निग्ध-कान्ति से गगन-तल को पल्लवित

करनेवाली उस राजबाला को यौवन प्राप्त हुआ। एक दिन सन्ध्याकी अभ्रलेखा जिस तरह पर्वत पर चढ़ती है; उसी तरह वह अपने सर्वतोभद्र महल पर चढ़ी। उस समय, मनोरम नामक बाग़ीचेमें किसी मुनीश्वर को केवल-ज्ञान प्राप्त होने के कारण, वहाँ जानेवाले देवताओं पर उस की नज़र पड़ी। उन को देखते ही, मैंने पहले भी ऐसा देखा है,—ऐसा विचार करने वाली उस बालाको, रात के स्वप्न की तरह, पूर्वजन्म की बात याद आगई। मानो हृदय में उत्पन्न हुए पूर्वजन्म के ज्ञान का भार वहन न कर सकती हो, इस तरह वह बेहोश होकर ज़मीन-पर गिर पड़ी। सखियों के चन्दन प्रभृति-द्वारा उपचार करने से उसे होश आ गया। उठते ही वह अपने चित्तमें विचार करने लगी—"पूर्वजन्म में ललिताङ्ग देव नामक देव मेरे पति थे। उनका स्वर्गसे पतन हुआ है; परन्तु इस समय वे कहाँ हैं, इस बात की ख़बर न लगनेसे मुझे दुःख हो रहा है। मेरे हृदय पर उन्हीं का प्रतिबिम्ब या अक्स पड़ा हुआ है और वेही मेरे हृदयेश्वर हैं; क्योंकि कपूर के बासन में नमक कौन रखता है? अगर मेरे प्राणपति मुझसे बातचीत न करें, तो मेरा औरों से बातचीत करना वृथा है।' ऐसा विचार करके, उसने मौन धारण कर लिया—बोलना छोड़ दिया।

श्रीमती के पाणिग्रहण के उपाय।

जब वह न बोली, तब सखियाँ दैवदोष की शङ्का से नानाप्रका

आदिक से यथोचित उपचार करने लगी। ऐसे सैकड़ों उपचारों से भी उसने मौन न त्यागा ; क्योंकि बीमारी और हो और दवा और हो, तो आराम नहीं होता। काम पड़ने से, वह अपने कुटुम्बियों को अक्षर लिख कर अथवा भौं और हाथो के इशारेसे अपने मन का भाव जताती थी। एक दिन श्रीमती अपने क्रीड़ा-उद्यान में गई। उस समय एकान्त जानकर उस की पण्डिता नाम्नी धाय ने उस से कहा—"राजपुत्री! जिस हेतु से तैंने मौन धारण किया है, वह हेतु मुझ से कह और दुःखमें मुझे भागीदारन बनाकर अपना दुःख हल्का कर। तेरे दुःख को जानकर मैं उस के दूर करने का उपाय करूँगी ; क्योंकि रोग जाने बिना रोग की चिकित्सा हो नहीं सकती।' इसके बाद जिस तरह प्रायश्चित्त करनेवाला मनुष्य सद्गुरु के सामने अपना यथार्थ वृत्तान्त निवेदन कर देता है ; उसी तरह श्रीमती ने अपने पूर्वजन्म का यथार्थ वृत्तान्त पण्डिता को कह सुनाया। तब उस सारे वृत्तान्त को एक पट्टी पर लिख कर, उपाय करने में चतुर पण्डिता उस पट्टी को लेकर बाहर चली। उसी समय वज्रसेन चक्रवर्त्ती की वर्ष-गाँठ होने के कारण, उस के उत्सव में शामिल होने के लिये, अनेक राजा और राजकुमार आने लगे। उस समय श्रीमती के बड़े भारी मनोरथ की तरह लिखे हुए उस पट को अच्छी तरह फैलाकर पण्डिता राजमार्ग में खड़ी हो गई। कितने ही आगम-शास्त्र जानने वाले शास्त्र के अर्थ-प्रमाण से लिखे हुए नन्दीश्वर द्वीप प्रभृति को देखकर उसकी स्तुति करने

लगे। कितने ही आदमी श्रद्धा से अपनी गर्दन हिलाते हुए, उसमें लिखे हुए श्रीमत् अरहन्त के प्रत्येक बिम्ब का वर्णन करने लगे; कितने ही कला-कौशल-कुशल राहगीर उसे तेज़ नज़र से देखकर, रेखाओं की शुद्धि की बारम्बार तारीफ करने लगे और कितने ही लोग उस पट के अन्दर के काले, सफेद, पीले, नीले और लाल रंगों से, सन्ध्या के बादलों के समान, बनाये हुए रंगों का वर्णन करने लगे। इसी मौक़े पर, यथार्थ नामवाले दुर्दर्शन राजा का दुर्दान्त नामका पुत्र वहाँ आ पहुँचा। वह एक क्षण तक पट को देखकर, बनावटी मूर्च्छा से ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर होश मे आगया हो, इस तरह उठ बैठा। उसके उठने पर लोगो ने जब उससे उसके बेहोश होने का कारण पूछा, तब वह कपट-नाट्य करके अपना वृत्तान्त कहने लगाः—'इस पटमें किसी ने मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त लिखा है। इस के देखने से मुझे जाति-स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ है। यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है।' इस तरह उसमें जो-जो लिखा था, उसने उसी प्रमाण से कहा। इसके बाद पण्डिता ने कहा—'यदि यही बात है, तो इस पट में कौन-कौन स्थान हैं, अंगुली से बताओ।' दुर्दान्त ने कहा—'यह मेरु पर्वत है और यह पुण्डरीकिणी नदी है। 'फिर पण्डिता ने मुनिका नाम पूछा, तब उस ने कहा—'मुनिका नाम मैं भूल गया हूँ।' उसने फिर पूछा—'मंत्रीवर्ग से घिरे हुए इस राजा का नाम क्या है और यह तपस्वी कौन है, यह बताओ।' उसने कहा—'मैं इन

के नाम नहीं जानता।' इन बातों से उसे धूर्त्त-मायावी समझ कर, पण्डिता ने दिल्लगी के साथ कहा—'तेरे कथनानुसार यह तेरा पूर्वजन्म का चरित्र है। ललिताङ्ग देव का जीव तू है और तेरी स्त्री स्वयंप्रभा, इस समय, नन्दीग्राम में, कर्मदोष से लँगड़ी होकर जन्मी है। उसे जाति-स्मरण हुआ है: इससे उसने अपना चरित्र इस पट में लिखकर, जब मैं धातकी खण्ड में गई थी, तब मुझे दे दिया। उस लँगड़ी पर दया आने से मैंने तुझे खोज निकाला; इसलिये अब तू मेरे साथ चल, मैं तुझे उसके पास धातकी खण्ड में ले चलूँ। हे पुत्र! वह ग़रीबनी तेरे वियोग के कारण बड़े दुःख से जीती है। इसलिये वहाँ चलकर, अपनी पूर्वजन्म की प्राणवल्लभा को आश्वासन कर—उसे तसल्ली दे।' ये बातें कहकर ज्योंही पण्डिता चुप हुई कि, उसके समवयस्क या लंगोटिया यारों ने उसकी दिल्लगी करते हुए कहा—'मित्र! आप को स्त्री-रत्न की प्राप्ति हुई है, इस से जान पड़ता है कि, आप के पुण्यका उदय हुआ है। इसलिये आप वहाँ जाकर, उस लूली स्त्री से मिलिये और सदा उसकी परवरिश कीजिये।' मित्रों की ऐसी मसखरी की बातें सुनकर दुर्दान्त लज्जित हो गया और बेची हुई वस्तु में से अवशिष्ट—बाक़ी रही हुई की तरह होकर, वहाँ से चला गया।

श्रीमती का पाणिग्रहण।

वज्रसेन का दीक्षा ग्रहण।

वज्रजंघ और श्रीमती की विदाई।

कुछ देर बाद, लोहार्गल पुर से आया हुआ, वज्रजंघ कुमार भी वहाँ आया। उसने चित्र-लिखा चरित्र देखा और बेहोश हो गया। पंखों से हवा की गई और जल के छींटे मारे गये, तब उसे होश हुआ। इसके बाद मानो स्वर्ग से ही आया हो, इस तरह उसे जाति-स्मरण हुआ। उसी समय पण्डिता ने पूछा-कुमार! पट का लेख देखकर तुम बेहोश क्यों हो गये? "वज्रजंघ ने कहा—"भद्रे! इस पटमे मेरा और मेरी स्त्री का पूर्व जन्म का वृत्तान्त लिखा हुआ है, उसे देख मैं बेहोश हो गया। यह श्रीमान् ईशान कल्प है, उसमें यह श्रीप्रभ विमान है, यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। धातकीखण्ड के नन्दी-ग्राम में, इस घर के अन्दर, महादरिद्री पुरुष की यह निर्नामिका नाम की पुत्री है। वह यहाँ अम्बर तिलक पहाड़ के ऊपर आरूढ़ हुई है और उसने इस युगन्धर मुनि से अनशन व्रत ग्रहण किया है। यहाँ मैं, मुझ पर आसक्त, उसी स्त्री को अपने दर्शन देने आया हूँ और फिर वह यहाँ पञ्चत्व को प्राप्त होकर यानी मरकर, स्वयंप्रभा नाम्नी मेरी देवी के रूप में पैदा हुई है। यहाँ, मैं, नन्दीश्वर द्वीप में, जिनेश्वर देव की अर्चना

वज्रजंघने कहा—"भद्रे! इस पटमें मेरा और मेरी स्त्री का पूर्व जन्म का वृत्तान्त लिखा हुआ है, उसे देख मैं बेहोश हो गया। यह श्रीमान ईशान कल्प है, उसमें यह श्रीप्रभ विमान है, यह मैं ललितांग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। [पृष्ठ ६६]

फल है ; जिस से मैं, मनुष्यलोक में रह कर भी, नरक की व्यथा भोगता हूँ। मै जन्म से दरिद्री हूँ और मेरे इस दरिद्रका प्रतिकार भी नही हो सकता। मैं इस जन्म के प्रतिकार-रहित दरिद्र से उसी तरह क्षीण हो गया हूँ, जिस तरह दीमक से वृक्ष क्षीण हो जाता है। प्रत्यक्ष अलक्ष्मी-स्वरूपा पूर्व्वजन्म की वैरिणी और कुलक्षणा—कन्याओंने मुझे बड़ा कष्ट दिया है। यदि इस बार भी कन्या पैदा हुई, तो मैं कुटुम्ब को त्याग कर देशान्तर मे जा रहूँगा'।

निर्नामिका और केवली का समागम।

"वह इस तरह चिन्ता किया करता था कि, इस बीच में उस दरिद्र की घरवाली ने कन्या जनी। कान में सूई घुसने की तरह उस ने कन्या-जन्म की वात सुनी। इस के बाद, दुष्ट बैल जिस तरह भार को छोड़कर चल देता है; उसी तरह वह नागिल कुटुम्ब को छोड़कर चल दिया। उसकी स्त्री को, प्रसव-दुःख के ऊपर, पति के परदेश चले जाने की व्यथा, ताज़ा घाव पर नमक पड़ने के समान प्रतीत हुई। अत्यन्त दुःखिता नागश्रीने उस कन्याका नाम भी न रक्खा ; इसलिये लोग उस कन्या को निर्नामिका नाम से पुकारने लगे। नागश्रीने उस का पालन-पोषण भी अच्छी तरह से नहीं किया ; तोभी वह कन्या बढ़ने लगी। वज्राहत प्राणीकी भी, यदि आयु शेष न हुई हो तो, मृत्यु नहीं होती। अत्यन्त अभागी और माता को उद्वेग करानेवाली वह कन्या दूसरों के घरों में नीचे काम करके दिन काटने लगी। एक दिन, उत्सव

के समय, किसी धनी के बालक के हाथ में लड्डू देखकर, वह अपनी माँ से लड्डू माँगने लगी। उस समय उसकी माँने क्रोधित होकर कहा—"मोदक क्या तेरे बाप होते हैं, जो तू माँगती है? अगर तेरी लड्डू खाने की ही इच्छा है, तो अम्बर तिलक पर्वत पर, काठ की भारी लाने के लिए, रस्सी लेकर जा।" अपनी माता की, जङ्गली कण्डे की आग के समान, दाह करनेवाली बात सुनकर, रोती हुई वह बाला रस्सी लेकर पर्वत की ओर चली। उस समय, उस पर्वत पर, एक रात्रिकी समाधि में रहे हुए युगन्धर मुनि को केवल ज्ञान हुआ था। इस से निकट रहने वाले देवताओं ने केवल-ज्ञान की महिमा का उत्सव मनाना आरम्भ किया था। पर्वत के पास के नगर और गाँवों के लोग यह समाचार सुनकर, उस मुनीश्वरको नमस्कार करने के लिए जल्दी-जल्दी आ रहे थे। नाना प्रकार के अलङ्कारोंसे भूषित लोगोंको आते देखकर, वह निर्नामिका कन्या विस्मित होकर, चित्र-लिखीसी खड़ी रही। फिर बातों ही बातों में लोगों के आने का कारण जानकर, दुःख-रूपी भारी के समान काठ की भारी को वहीं पटक कर, वह भी वहाँ से चल दी और दूसरे लोगों के साथ पहाड़ पर चढ़ गई। तीर्थ सब के लिए खुले रहते हैं। उन मुनिराज के चरणों को कल्पवृक्ष के समान माननेवाली निर्नामिका कन्याने बड़े आनन्द से उन को वन्दना की। कहते हैं कि, गतिकी अनुसारिणी मति होती है; अर्थात् जैसी होनहार होती है, वैसी ही मति हो जाती है। मुनीश्वर ने, मेघवत् गम्भीर वाणी से,

लोक-समूह को हितकारी और आह्लादकारी धर्म-देशना या धर्मोपदेश दिया। विषयों का सेवन, कच्चे सूत से बने हुए पलँग पर बैठने वाले पुरुष की तरह, संसार-रूपी भूमि पर गिरने के लिए ही हैं ; अर्थात् कच्चे सूत से बने हुए पलङ्ग पर बैठने वाले का जिस तरह अधःपतन होता है ; उसी तरह विषय-सेवी पुरुष का भी अधः पतन होता है। कच्चे सूत के पलङ्ग पर बैठने वाले को, जिस तरह शेषमे नीचे गिरकर, दुखी होना पड़ता है : उसी तरह विषय-भोगी को परिणाम में घोर दुःख और कष्ट उठाने पड़ते हैं। जगत् में पुत्र, मित्र और कलत्र वगैरः का समागम एक गाँव में रात्रि-निवास करके और सोकर उठ जाने वाले बटोही के समान है। चौरासी लाख योनियों में घूमने वाले जीवों को जो अनन्त दुःख भोगने पड़ते है, वे उनके अपने कर्मों के फल हैं; अर्थात् उनके कर्मो के फल-स्वरूप उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार की देशना या धर्मोपदेश सुनकर, निर्नामिका हाथ जोड़ कर बोली,—'हे भगवन्! आप राव और रंक में समदृष्टि रखने वाले हैं,—ग़रीब और अमीर दोनों ही आपकी नज़र में समान हैं : इसलिए मैं विज्ञप्ति करके पूछती हूँ कि, आपने संसार को दुःख-सदन रूप कहा, परन्तु क्या मुझसे भी अधिक दुःखी कोई है ?'

चारों गतियों में दुःख का वर्णन।

"केवली भगवान् ने कहा—'हे दुःखिनी बाला! हे भद्रे! तुझे

तो क्या दुःख है ? तुझ से भी अधिक दुःखी जीव हैं: उनका हाल सुन। जो अपने दुष्कर्मों के फल-स्वरूप नरक-गति में पैदा होते हैं, उनमें से कितनों ही के शरीर भेदे जाते हैं और कितनों ही के अङ्ग छेदे जाते हैं और कितनों ही के सिर धड़से अलग किये जाते हैं। उनमें से कितनेही, नरक-गति में, परमाधामी असुरों द्वारा, तिलों की तरह कोल्हू में पेरे जाते हैं : कितने ही लकड़ी की तरह काटे जाते हैं और कितने ही लोहेके वर्तनोंकी तरह कूटे जाते हैं। वे असुर कितनों हीको शूलों की शय्या पर सुलाते हैं, कितनो ही को कपड़ों की तरह पत्थर की शिलाओं पर पछाड़ते हैं और कितनो ही के साग की तरह टुकड़े-टुकड़े करते हैं। उन नारकीय जीवों के शरीर, वैक्रिय होने के कारण, तुरत मिल जाते हैं और वे परमाधार्म्मिक असुर उन्हें फिर पहले की तरह ही तकलीफें देते हैं। इस तरह दुःखों को भोगने वाले वे प्राणी करुण स्वर से चीख़ते-चिल्लाते हैं। वहाँ प्यासे जीवों को बार-म्बार सीसे का रस पिलाया जाता है और छाया चाहने वाले प्राणी, तलवार के से पत्तों वाले, असिपत्र नामक वृक्ष के नीचे विठाये जाते हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मों का स्मरण करते हुए वे प्राणी एक मुहूर्त्त-भर भी बिना वेदना के रह नहीं सकते। हे बच्ची ! उन नपुसंक नारकियों को जो-जो दुःख और कष्ट झेलने पड़ते है, उनका वर्णन करनेसे भी मनुष्य को दुःख होता है।

इन नारकियों की बात तो दूर रही, प्रत्यक्ष दिखाई देने

वाले जलचर, थलचर नभचर और तिर्यञ्च प्राणी भी अपने पूर्व-जन्म के कर्मो से अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। जलचर जीवों में से कितने ही तो एक दूसरे को खा जाते है। चमड़े के चाहने वाले उनकी खाल उतारते हैं, मांस की तरह वे भूँजे जाते हैं, खाने की इच्छा वाले उन्हें खाते हैं और चरबी की इच्छा वाले उन्हें गलाते हैं। थलचर जन्तुओं में, निर्वल मृग प्रभृति को सवल सिंह वगैरः प्राणी मांस की इच्छा से मार डालते हैं। शिकारी लोग मांस की इच्छा से अथवा क्रीड़ा के लिए, उन निरपराधी प्राणियों को मार डालते है। बैल प्रभृति प्राणी भूख-प्यास, सरदी-गरमी सहन करने, अति भार वहन करने और चाबुक,- अंकुश एवं लकड़ी वगैरः की मार खाने से बड़ा दुःख पाते हैं। आकाशमें उड़नेवाले पक्षियों में तीतर, तोता, कबूतर और चिड़िया प्रभृतिको उनका मांस खानेकी इच्छावाले बाज़, शिकरा और गिद्ध वगैरः पक्षी खा जाते हैं तथा शिकारी लोग इन सब को नाना प्रकार के उपायों से पकड़कर और घोर दुःख देकर मार डालते हैं। उन तिर्यञ्चों को अन्य शस्त्र और जल प्रभृति का भी बड़ा डर होता है। अतः अपने-अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का निबन्धन ऐसा है, जिस का प्रसार रुक नहीं सकता। इसी को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं, कि कोई भी अपने पूर्वजन्म के कर्मोका भोग भोग-नेसे वच नहीं सकता। अपने-अपने कर्मोका फल सभीको भोगना होता है।

'जिन को मनुष्यत्व मिलता है, जो मनुष्य-योनि में जन्म लेते

हैं, उनमें से कितने ही प्राणी जन्मसे ही अन्धे, वहरे, लूले और कोढ़ी होते हैं ; कितने ही चोरी और जारी करनेवाले प्राणी, नारकीयों की तरह, भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा से निग्रह पाते हैं ; और कितने ही नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होकर अपने पुत्रों से भी तिरस्कृत होते हैं। कितने ही मूल्य से विके हुए—नौकर, गुलाम वगैर:—खच्चर की तरह अपने स्वामी की ताड़ना, तर्जना और भर्त्सना सहते, बहुतसे वोझ उठाते एवं भूख-प्यास का दुःख सहते हैं।

देशना की समाप्ति।

'परस्पर के पराभव से क्लेश पाये हुए और अपने-अपने स्वामियों के स्वामित्व में बँधे हुए देवताओं को भी निरन्तर दुखी रहना पड़ता है ; स्वभावसे ही दारुण इस संसार में, दुःखों का पार उसी तरह नहीं है। जिस तरह समुद्र में जल-जन्तुओं का पार नहीं है ; जिस तरह भूत-प्रेतादिक से संकलित स्थान में मंत्राक्षर प्रतीकार करनेवाला होता है ; उसी तरह दुःख के स्थान-रूप इस संसार में जैनधर्म प्रतीकार करनेवाला है। बहुत वोझ से जिस तरह नाव समुद्र में डूब जाती है; उसी तरह हिंसा से प्राणी नरक-रूपी समुद्र में डूब जाता है, अतः हिंसा हरगिज़ न करनी चाहिये। निरन्तर असत्यका त्याग करना उचित है, क्योंकि असत्य वचनसे मनुष्य इस संसार में चिरकालतक उसी तरह भ्रमता है ; जिस तरह तिनका हवा

के ववंडर या वगूले में भ्रमता है। किसी की भी विना दी हुई चीज़ न लेनी चाहिये अथवा किसी भी चीज़ की चोरी न करनी चाहिये : क्योंकि कौंच की फली के छूने के समान अदत्त—विना दिया हुआ पदार्थ लेने से किसी हालत में भी सुख नही मिलता। अब्रह्मचर्य्य को त्यागना चाहिये। क्योंकि अब्रह्मचर्य्य रंक की तरह गला पकड़कर मनुष्य को नरकमें ले जाता है। परिग्रह इकट्ठा न करना चाहिये, क्योंकि वहुत वोझ से वैल जिस तरह-कीचड़ में फँस जाता हैं; उसी तरह मनुष्य परिग्रह के वश मे पड़कर दुःख में डूब जाता है। जो लोग हिंसा प्रभृति पाँच अव्रतका देशसे भी त्याग करते हैं, वे उत्तरोत्तर कल्याण सम्पत्ति के पात्र होते हैं।'

निर्नामिका का पुनर्जन्म।

ललितांग और स्वयंप्रभा का पुनर्मिलन।

'केवली भगवान् के मुँहसे ऐसी वातें सुनकर निर्नामिका को वैराग्य उत्पन्न हो गया और लोहे के गोले की तरह उस की कर्म-ग्रन्थि भिद गयी। उस ने उस मुनीश्वर के पास से अच्छी तरह सम्यक्त्व ग्रहण किया और परलोक-रूपी मार्ग मे पाथेय-तुल्य अहिंसा आदि पाँच अणुव्रत धारण किये। इस के वाद मुनि महाराज को प्रणाम कर, मैं कृतार्थ हुई,—ऐसा मानती हुई, वह निर्नामिका भारी उठाकर अपने घर गई। उस दिन से, वह सुबुद्धिमती वाला अपने नाम की तरह युगंधर मुनि की वाणी को

ललितांग देव का च्यवन।

उसने कहा,—"प्यारी! तैंने कुछ भी अपराध नहीं किया है। हे सुन्दर भौंहोंवाली! अपराध तो मैंने ही किया है, जो पूर्व जन्म में ओछा तप किया। पूर्व जन्म में, मैं विद्याधरों का राजा था। उस समय, मैं भोग-कार्य में जाग्रत और धर्म-कार्य में प्रमादी था। मेरे सौभाग्य से प्रेरित होकर, स्वयंबुद्ध नामक मन्त्री ने आयु का शेषांश बाक़ी रहने पर मुझे जैनधर्म का बोध कराया और मैंने उसे स्वीकार किया। उस ज़रा सी मुद्दत में किये हुए धर्म के प्रभाव से, मैं अबतक श्रीप्रभ विमान का स्वामी रहा; परन्तु अब मेरा च्यवन होगा— मैं इस पदपर न रहूँगा: क्योंकि अलभ्य वस्तु किसी को भी मिल नहीं सकती।" वह इस तरह बातें कर ही रहा था कि, इसी बीच में दृढ़धर्मा नामक देव उन के पास आकर कहने लगा:—"आज ईशान कल्पके स्वामी नन्दीश्वरादिक द्वीप में जिनेन्द्र-प्रतिमा की पूजा करने को जानेवाले हैं; इसलिये आप भी उन की आज्ञा से चलिये।" यह बात सुनते ही—'अहो! स्वामी ने हुक्म भी समयोचित ही दिया है—' कहते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी प्यारी सहित वहाँको चला। नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, उसने शाश्वती अर्हत्प्रतिमा की पूजा की और खुशी में अपने च्यवन-काल की बात को भी भूल गया। इस के बाद स्वस्थ चित्तवाला वह देव दूसरे तीर्थों को जा रहा था, कि इसी बीच में आयुष्य

क्षीण होने से, क्षीण तेलवाले दीपक की तरह, राहमें ही पञ्चत्व को प्राप्त हुआ ; यानी देह-त्याग किया।

छठा भव

जम्बूद्वीप में, सागर-समीप-स्थित पूर्व विदेह में, सीता नाम्नी महानदी के उत्तर अञ्चल में, पुष्कलावती नम्नी विजय के मध्यमें, लोहार्गल नामक बड़े भारी नगर के सुवर्णजंघ राजा की लक्ष्मी नाम्नी स्त्री की कोख से ललिताङ्ग देव का जीव पुत्र-रूपमे पैदा हुआ। आनन्द से प्रफुल्लित माता-पिता ने प्रसन्न होकर, शुभ दिवस में, उसका नाम वज्रजंघ रखा। ललिताङ्ग देव के विरह से दुःखार्त्त हो, स्वयंप्रभा देवी भी, कितने ही समय तक धर्म-कार्य में लीन रहकर, वहाँ से च्यवी: यानी उस का देहावसान हुआ। मरकर वह उसी विजय में, पुण्डरीकिणी नगरीके वज्रसेन राजा की गुणवती नाम की स्त्रीसे पुत्री-रूप में जन्मी। अतीव सुन्दरी होने के कारण माता-पिता ने उसका नाम श्रीमती रक्खा। जिस तरह उद्यान पालिका—मालिन द्वारा लालित होनेसे लता बढ़ती है ; उसी तरह वह सुन्दर हस्तपल्लव वाली कोमलाङ्गी बाला धायों द्वारा लालित-पालित होकर अनुक्रम से बढ़ने लगी। सुवर्ण की अँगूठी को जिस तरह रत्न प्राप्त होता है; उसी तरह अपनी स्निग्ध-कान्ति से गगन-तल को पल्लवित

करनेवाली उस राजबाला को यौवन प्राप्त हुआ। एक दिन, सन्ध्याकी अभ्रलेखा जिस तरह पर्वत पर चढ़ती है ; उसी तरह वह अपने सर्वतोभद्र महल पर चढ़ी। उस समय, मनोरम नामक बाग़ीचेमें किसी मुनीश्वर को केवल-ज्ञान प्राप्त होने के कारण, वहाँ जानेवाले देवताओं पर उस की नज़र पड़ी। उन को देखते ही, मैंने पहले भी ऐसा देखा है,—ऐसा विचार करने वाली उस बालाको, रात के स्वप्न की तरह, पूर्व जन्म की बात याद आगई। मानो हृदय में उत्पन्न हुए पूर्व जन्म के ज्ञान का भार वहन न कर सकती हो, इस तरह वह बेहोश होकर ज़मीन-पर गिर पड़ी। सखियों के चन्दन प्रभृति-द्वारा उपचार करने से उसे होश आ गया। उठते ही वह अपने चित्तमें विचार करने लगी—"पूर्व जन्म में ललिताङ्ग देव नामक देव मेरे पति थे। उनका स्वर्गसे पतन हुआ है ; परन्तु इस समय वे कहाँ हैं, इस बात की ख़बर न लगनेसे मुझे दुःख हो रहा है। मेरे हृदय पर उन्हीं का प्रतिबिम्ब या अक्स पड़ा हुआ है और वेही मेरे हृदयेश्वर हैं ; क्योंकि कपूर के बासन में नमक कौन रखता है ? अगर मेरे प्राणपति मुझसे बातचीत न करें, तो मेरा औरों से बातचीत करना वृथा है।' ऐसा विचार करके, उसने मौन धारण कर लिया—बोलना छोड़ दिया।

श्रीमती के पाणिग्रहण के उपाय।

जब वह न बोली, तब सखियाँ देवदोष की शङ्का से तन्त्रमन्त्र

आदिक से यथोचित उपचार करने लगीं। ऐसे सैकड़ों उपचारों से भी उसने मौन न त्यागा ; क्योंकि बीमारी और हो और दवा और हो, तो आराम नहीं होता। काम पड़ने से, वह अपने कुटुम्बियों को अक्षर लिख कर अथवा भौं और हाथों के इशारेसे अपने मन का भाव जताती थी। एक दिन श्रीमती अपने क्रीड़ा-उद्यान में गई। उस समय एकान्त जानकर उस की पण्डिता नाम्नी धाय ने उस से कहा—"राजपुत्री! जिस हेतु से तैंने मौन धारण किया है, वह हेतु मुझ से कह और दुःखमें मुझे भागीदार बनाकर अपना दुःख हल्का कर। तेरे दुःख को जानकर मैं उस के दूर करने का उपाय करूँगी ; क्योंकि रोग जाने बिना रोग की चिकित्सा हो नहीं सकती।' इसके बाद जिस तरह प्रायश्चित्त करनेवाला मनुष्य सद्‌गुरु के सामने अपना यथार्थ वृत्तान्त निवेदन कर देता है ; उसी तरह श्रीमती ने अपने पूर्वजन्म का यथार्थ वृत्तान्त पण्डिता को कह सुनाया। तब उस सारे वृत्तान्त को एक पट्टी पर लिख कर, उपाय करने में चतुर पण्डिता उस पट्टी को लेकर बाहर चली। उसी समय वज्रसेन चक्रवर्त्ती की वर्ष-गाँठ होने के कारण, उस के उत्सव में शामिल होने के लिये, अनेक राजा और राजकुमार आने लगे। उस समय श्रीमती के बड़े भारी मनोरथ की तरह लिखे हुए उस पट को अच्छी तरह फैलाकर पण्डिता राजमार्ग में खड़ी हो गई। कितने ही आगम-शास्त्र जानने वाले शास्त्र के अर्थ-प्रमाण से लिखे हुए नन्दीश्वर द्वीप प्रभृति को देखकर उसकी स्तुति करने

लगे। कितने ही आदमी श्रद्धा से अपनी गर्दन हिलाते हुए, उसमें लिखे हुए श्रीमत् अरहन्त के प्रत्येक बिम्ब का वर्णन करने लगे; कितने ही कला-कौशल-कुशल राहगीर उसे तेज़ नज़र से देखकर, रेखाओं की शुद्धि की बारम्बार तारीफ करने लगे और कितने ही लोग उस पट के अन्दर के काले, सफेद, पीले, नीले और लाल रंगों से, सन्ध्या के बादलों के समान, बनाये हुए रंगो का वर्णन करने लगे। इसी मौक़े पर, यथार्थ नामवाले दुर्दर्शन राजा का दुर्दान्त नामका पुत्र वहाँ आ पहुँचा। वह एक क्षण तक पट को देखकर, बनावटी मूर्च्छा से ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर होश में आगया हो, इस तरह उठ बैठा। उसके उठने पर लोगों ने जब उससे उसके बेहोश होने का कारण पूछा, तब वह कपट-नाट्य करके अपना वृत्तान्त कहने लगाः—'इस पटमें किसी ने मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त लिखा है। इस के देखने से मुझे जाति-स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ है। यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है।' इस तरह उसमें जो-जो लिखा था, उसने उसी प्रमाण से कहा। इसके बाद पण्डिता ने कहा—'यदि यही बात है, तो इस पट में कौन-कौन स्थान हैं, अँगुली से बताओ।' दुर्दान्त ने कहा—'यह मेरु पर्वत है और यह पुण्डरीकिणी नदी है। 'फिर पण्डिता ने मुनिका नाम पूछा, तब उस ने कहा—'मुनिका नाम मैं भूल गया हूँ।' उसने फिर पूछा—'मंत्रीवर्ग से घिरे हुए इस राजा का नाम क्या है और यह तपस्वी कौन है, यह बताओ।' उसने कहा—'मैं इन

के नाम नहीं जानता।' इन बातों से उसे धूर्त्त-मायावी समझ कर, पण्डिता ने दिल्लगी के साथ कहा—'तेरे कथनानुसार यह तेरा पूर्वजन्म का चरित्र है। ललिताङ्ग देव का जीव तू है और तेरी स्त्री स्वयंप्रभा, इस समय, नन्दीग्राम में, कर्मदोष से लँगड़ी होकर जन्मी है। उसे जाति-स्मरण हुआ है; इससे उसने अपना चरित्र इस पट में लिखकर, जब मैं धातकी खण्ड में गई थी, तब मुझे दे दिया। उस लँगड़ी पर दया आने से मैंने तुझे खोज निकाला; इसलिये अब तू मेरे साथ चल, मैं तुझे उसके पास धातकी खण्ड में ले चलूँ। हे पुत्र! वह ग़रीबनी तेरे वियोग के कारण बड़े दुःख से जीती है। इसलिये वहाँ चलकर, अपनी पूर्वजन्म की प्राणवल्लभा को आश्वासन कर—उसे तसल्ली दे।' ये बातें कहकर ज्योंही पण्डिता चुप हुई कि, उसके समवयस्क या लंगोटिया यारों ने उसकी दिल्लगी करते हुए कहा—'मित्र! आप को स्त्री-रत्न की प्राप्ति हुई है, इस से जान पड़ता है कि, आप के पुण्यका उदय हुआ है। इसलिये आप वहाँ जाकर, उस लूली स्त्री से मिलिये और सदा उसकी परवरिश कीजिये।' मित्रों की ऐसी मसखरी की बातें सुनकर दुर्दान्त लज्जित हो गया और बेची हुई वस्तु में से अवशिष्ट—बाक़ी रही हुई की तरह होकर, वहाँ से चला गया।

श्रीमती का पाणिग्रहण।

वज्रसेन का दीक्षा ग्रहण।

वज्रजंघ और श्रीमती की विदाई।

कुछ देर बाद, लोहार्गल पुर से आया हुआ, वज्रजंघ कुमार भी वहाँ आया। उसने चित्र-लिखा चरित्र देखा और बेहोश हो गया। पंखों से हवा की गई और जल के छींटे मारे गये, तब उसे होश हुआ। इसके बाद मानो स्वर्ग से ही आया हो, इस तरह उसे जाति-स्मरण हुआ। उसी समय पण्डिता ने पूछा-कुमार! पट का लेख देखकर तुम बेहोश क्यों हो गये? "वज्रजंघ ने कहा—"भद्रे! इस पटमें मेरा और मेरी स्त्री का पूर्व जन्म का वृत्तान्त लिखा हुआ है, उसे देख मैं बेहोश हो गया। यह श्रीमान् ईशान कल्प है, उसमें यह श्रीप्रभ विमान है, यह मैं ललिताङ्ग देव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। धातकीखण्ड के नन्दीग्राम में, इस घर के अन्दर, महादरिद्री पुरुष की यह निर्नामिका नाम की पुत्री है। वह यहाँ अम्बर तिलक पहाड़ के ऊपर आरूढ़ हुई है और उसने इस युगन्धर मुनि से अनशन व्रत ग्रहण किया है। यहाँ मैं, मुझ पर आसक्त, उसी स्त्री को अपने दर्शन देने आया हूँ और फिर वह यहाँ पञ्चत्व को प्राप्त होकर यानी मरकर, स्वयंप्रभा नाम्नी मेरी देवी के रूप में पैदा हुई है। यहाँ, मैं, नन्दीश्वर द्वीप में, जिनेश्वर देव की अर्चना

कर राजा वज्रसेन से विज्ञप्ति की—"स्वामिन्! धर्मतीर्थ प्रवर्त्ताओ,
इस के बाद वज्रसेन राजा ने वज्र-जैसे पराक्रमी वज्रनाभ को
गद्दीपर बिठाया और मेघ जिस तरह जल से पृथ्वी को तृप्त
करते हैं; उसी तरह उसने सांवत्सरिक दान से पृथ्वी को तृप्त
कर दिया। देव, असुर और मनुष्यों के स्वामियों ने राजा वज्र-
सेन का निर्गमोत्सव किया और राजा ने, चन्द्रमा के आकाश को
अलकृत करने की तरह, उद्यान को अलंकृत किया; अर्थात्
उस के राज्य छोड़कर जाने का उत्सव देवराज, असुरराज और
नृपालों ने किया और राजा वज्रसेन ने, नगर के बाहर
बग़ीचे मे डेरा डाला और वहाँ ही उन स्वयंबुद्ध भगवान् ने
दीक्षा ली। उसी समय उन को मनःपर्य्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ।
पीछे वह आत्म-स्वभाव मे लीन होनेवाले, समता रूप धन के
धनी, ममताहीन, निष्परिग्रही और नाना प्रकार के अभिग्रहों को
धारण करनेवाले प्रभु पृथ्वीपर विहार करने लगे अर्थात् भूमण्डल
में परिभ्रमण करने लगे। इधर वज्रनाभ ने अपने प्रत्येक भाई को
अलग-अलग देश दे दिये और लोकपालों से जिस तरह इन्द्र
सोहता है, उसी तरह वह भी रोज़ सेवा में उपस्थित रहनेवाले
चारों भाइयों से सोहने लगा। सूर्य के सारथी अरुण की तरह,
सुयशा उस का सारथी हुआ। महारथी पुरुषों को सारथी भी
अपने योग्य ही नियुक्त करना चाहिये।

वज्रनाभ चक्रवर्ती का वर्णन।

वज्रसेन भगवान का आगमन।

वज्रनाभ को वैराग्य।

अब वज्रसेन भगवान् को, आत्मा के ज्ञानादि गुणों को नष्ट करने वाले घाति कर्म* रूपी मल के नाश होने से, दर्पण के ऊपर का मैल नाश होने से जिसतरह दर्पण में उज्ज्वलता होती है, उसी तरह उज्ज्वल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

उसी समय वज्रनाभ राजा की आयुधशाला अथवा अस्त्रागार में, सूर्यका भी तिरस्कार करनेवाले, प्रभाकर की प्रभा को भी नीचा दिखानेवाले, चक्रने प्रवेश किया। और तेरह रत्न भी उन को उसी समय मिल गये। जल के प्रमाण से जिस तरह पद्मिनी ऊँची होती है, उसी तरह सम्पत्ति भी पुण्य के प्रमाण से मिलती है। जल जितना ही ऊँचा होता है, कमलिनी भी उतनीही ऊँची होती है। पुण्य जितना ही अधिक होता है; सम्पत्ति भी उतनी ही अधिक मिलती है। पुण्य जितना ही कम होता है; सम्पत्ति भी उतनी ही कम मिलती है। सुगन्ध से खींचे गये भौंरों की तरह; प्रबल पुण्यों से खींची हुई निधियाँ उस के घर की टहल करने लगीं; अर्थात् पुण्यबल से नौ निधियाँ उसके घर में रहने लगीं।

---

* आत्मा के ज्ञानादि गुणों को घात करने या नष्ट करने वाले, ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी अन्तराय,—ये चार कर्म घाति कर्म कहलाते हैं।

इसके बाद उसने सारी पुष्कलावती जीतली ; तब सब राजाओंने उसके चक्रवर्त्तीपन का अभिषेक किया—उसे चक्रवर्ती माना और उस की वश्यता स्वीकार की—अपने तईं उसके अधीन माना। उस भोगों को भोगनेवाले चक्रवर्त्ती की धर्मबुद्धि दिनोंदिन इस तरह अधिकाधिक बढ़ने लगी, मानो वह उसकी बढ़ती हुई उम्रसे स्पर्द्धा करके बढ़ती हो , अर्थात् ज्यों ज्यों उसकी उम्र बढ़ती थी, त्यों त्यों धर्मबुद्धि उम्रसे पीछे रह जाना नहीं चाहती थी। जिस तरह ढेर जलसे बेल बढ़ती हैं; उसी तरह भव-वैराग्य-सम्पत्ति से उसकी धर्मबुद्धि पुष्ट होने लगी। इसी बीचमें, साक्षात् मोक्ष हो इस तरह परमानन्द करनेवाले भगवान् वज्रसेन घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे और चैत्य वृक्षके नीचे बैठकर उन्होंने धर्मदेशना या धर्मोप-देश देना आरम्भ किया। चक्रवर्त्ती वज्रनाभने ज्योंही प्रभुके आने की ख़बर सुनी, त्योंही वह अपने बन्धुओं सहित—राजहंस की तरह—जगत्बन्धु जिनेश्वर के चरण-कमलों में, बड़ी प्रसन्नता से, जा पहुँचा। तीन प्रदक्षिणा देकर और और जगदीश को नमस्कार करके, छोटा भाई हो इस तरह इन्द्रके पीछे बैठ गया। श्रावकोंमें मुख्य श्रावक वह चक्रवर्त्ती—भव्य प्राणियों के मन-रूपी सीप मे बोध-रूपी मोती पैदा करनेवाली, स्वाति नक्षत्र की वर्षा के समान प्रभु की देशना सुनने लगा। जिस तरह गाना सुनकर हिरनका मन उत्सुक हो उठता है ; उसी तरह वह भगवान् की वाणी को सुनकर उत्सुक-मन हो उठा और इस भाँति विचार करने लगा:—

"यह अपार संसार समुद्र की तरह दुस्तर है—इसका पार करना

कठिन है ; पर इसके पार लगाने वाले लोकनाथ मेरे पिताही हैं। यह अँधेरे की तरह पुरुषों को अत्यन्त अन्धा करनेवाले मोह को सब तरफसे भेदनेवाले जिनेश्वर हैं। चिरकाल से संचित कर्म-राशि असाध्य व्याधि-स्वरूपा है। उसकी चिकित्सा करनेवाले यह पिताही हैं। बहुत क्या कहूँ ? करुणारूपी अमृतके सागर-जैसे यह प्रभु दुःख क्लेशों को नाश करनेवाले और सुखोंके अद्वितीय उत्पन्न करनेवाले हैं ; अर्थात् यह प्रभु करुणासागर हैं। इनके समान दुःखोंके नाश करने और सुखोंके पैदा करनेवाला और दूसरा कोई नहीं है। अहो ! ऐसे स्वामीके होनेपर भी, मोहान्धों में मुख्य मैंने अपने आत्मा को कितने समय तक वंचित किया इस तरह विचार कर, चक्रवर्त्तीने धर्म-चक्रवर्त्ती प्रभुसे भक्ति पूर्वक गद्गद् होकर कहा—"हे नाथ ! घास जिस तरह खेतको ख़राब कर देती है; उसी तरह अर्थसाधन को प्रतिपादन करने वाले नीतिशास्त्रोंने मेरी मति बहुत समय तक भ्रष्ट कर दी। इसी तरह मुझ विषय-लोलुपने नाट्य कर्मसे इस आत्माको, नट की तरह, अनेक बार नचाया ; अर्थात् अनेक प्रकार के रूप धर धर कर, मैंने आत्मा को अनेक नाच नचवाये। यह मेरा साम्राज्य अर्थ और काम को नियन्धन करनेवाला है। इसमें जो धर्म-चिन्तन होता है, वह भी पापानुबंधक होता है। आप जैसे पिता का पुत्र होकर, यदि मैं संसार-समुद्र में भ्रमण करूँ, तो मुझमें और साधारण मनुष्य में क्या भिन्नता होगी ? इसलिये जिस तरह मैंने आपके दिये हुए साम्राज्य का पालन किया ; उसी तरह अब मैं

संयम-साम्राज्य का भी पालन करूँगा ; अतएव आप मुझे उसे दीजिये।"

वज्रनाभ का दीक्षा ग्रहण करना।

वज्रसेन को निर्वाणप्राप्ति।

इसके बाद, अपने वंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान, चक्रवर्त्तीने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, भगवान् से व्रत ग्रहण किया। पिता और बड़े भाई द्वारा ग्रहण किये हुए व्रत को उसके बाहु प्रभृति भाइयोंने भी ग्रहण किया ; क्योंकि उनका कुलक्रम ऐसाही था—उनके कुल में ऐसाही होता आया था। सुयशा सारथी ने भी—धर्मके सारथी की तरह—अपने स्वामी के साथ ही भगवान् से दीक्षा ग्रहण की ; क्योंकि सेवक स्वामी की चालपर चलनेवाले ही होते हैं। वह वज्रनाभ मुनि थोड़े ही समय में शास्त्र-समुद्र के पारगामी होगये ! इससे मानो प्रत्यक्ष एक अङ्गपणे को प्राप्त हुई जंगम द्वादशांगी हो, ऐसे मालूम होने लगे। बाहु वगैर: मुनि भी ग्यारह अङ्गों के पारगामी हुए। 'क्षयोपशमसे विचित्रता को प्राप्त हुई गुण-सम्पत्तियाँ भी विचित्र प्रकारकी ही होती हैं।' अर्थात् पूर्वके क्षयोपशम के प्रमाणसे ही गुण प्राप्त होते हैं। वे सब सन्तोष-रूपी धनके धनी थे, तो भी तीर्थङ्कर की चरण-सेवा और दुष्कर तपश्चर्य्या करने में असन्तुष्ट रहते थे। उन्हें संसारी पदार्थों की तृष्णा न थी, सबमें सन्तोष था ; मगर तीर्थङ्कर की चरण-सेवा और कठिन तप से उन्हें सन्तोष न होता था। वे

इन को जितना करते थे, उतनेसे उन की तृप्ति न होती थी वे इन्हें और भी अधिक करना चाहते थे। वे मासोपवास आदिक तप करते थे, तोभी निरन्तर तीर्थङ्कर के वाणी रूपी अमृत के पान करने से उन्हें ग्लानि न होती थी। भगवान् वज्र-सेन तीर्थङ्कर, उत्तम शुक्ल ध्यान का आश्रय कर, ऐसे निर्वाण-पद को प्राप्त हुए, जिस का देवताओं ने महोत्सव किया।

वज्रनाभ मुनि की महिमा।

अनेक प्रकार की लब्धियां।

अब; धर्म के बन्धु हों जैसे वज्रनाभ मुनि, व्रत धारण करने-वाले मुनियों को साथ लेकर पृथ्वीपर विहार करने लगे अर्थात् पृथ्वी-पर्य्यटन करने लगे। जिस तरह अन्तरात्मा से पाँचों इन्द्रियों सनाथ होती हैं; उसी तरह वज्रनाभ स्वामी से वाहु प्रभृति चारों भाई और सारथी—ये पाँचों मुनि सनाथ होगये। चन्द्रमा की कान्ति से जिस तरह औषधियाँ प्रकट होती हैं; उसी तरह योगके प्रभाव से उन्हें खेलादि लब्धियाँ प्रकट हुई, कोटि-वेध रससे जिस तरह बहुतसा ताम्बा सोना हो जाता है; उसी तरह उनके ज़रासे श्लेष्म की मालिश करने से कोढ़ी की काया सुवर्णवत् कान्तिमती हो जाती थी; अर्थात् उनकी नाक से निकले हुए रहँट की मालिश से कोढ़ी की काया सोने के समान होजाती थी। उन के कान, नाक और अङ्गों का मैल सव तरह के रोगियों के रोगों को नाश करनेवाला और कस्तूरी के समान

सुगन्धित था। अमृत-कुण्ड में स्नान करने से रोगी जिस तरह आरोग्य लाभ करते हैं; उसी तरह उनके शरीर के छूने मात्र से रोगी लोग निरोग होते थे। जिस तरह सूर्यका तेज अन्धकार का नाश करता है ; उसी तरह बरसाती और नदियों का बहने वाला जल उनके संगसे सब रोगो को नाश करता था। गन्ध-हस्ती के मद की गन्धसे जिस तरह और हाथी भाग जाते हैं;उसी तरह उनके शरीर से लगकर आये हुए वायु से विष प्रभृति के दोष दूर भाग जाते थे। यदि, किसी तरह, कोई विष-मिला अन्नादिक पदार्थ उनके मुख या पात्र में आ जाता था, तो अमृतके समान विषहीन हो जाता था। ज़हर उतारने के मन्त्राक्षरो की तरह, उनके वचनों को याद करने से विष-व्याधि से पीड़ित मनुष्यों की पीड़ा नाश हो जाती थी। जिस तरह सीपी का जल मोती हो जाता है ; उसी तरह उनके नाखुन, बाल, दाँतों और उनके शरीर से पैदा हुए मैल प्रभृति पदार्थ औषधि रूप में परिणत हो जाते थे।

फिर सूईके नाके मे भी डोरे की तरह घुस जाने की सामर्थ्य जिससे हो जाती है, वह अणुत्व शक्ति उन को प्राप्त होगई ; अर्थात् इच्छा करने मात्र से वह अपना छोटे-से-छोटा रूप बना सकते थे। उन को अपने शरीरको बड़ा करने की वह महत्वशक्ति प्राप्त होगई, जिससे वह अपने शरीर को इतना बड़ा कर सकते थे, कि जिस से मेरु पर्वत उन के घुटनेतक आवे। उन्हें वह लघुत्व शक्ति प्राप्त होगई, जिस से वह अपने शरीर को हवासे

भी हलका कर सकते थे। उन्हें वह गुरुत्व शक्ति प्राप्त होगई, जिससे वह अपने शरीर को, इन्द्रादि देवताओं के लिए भी असह-नीय, वज्रसे भी भारी बना सकते थे। उन्हें ऐसी प्राप्ति शक्ति प्राप्त होगई; जिस से वह, पृथ्वीपर रहनेपर भी, वृक्षके पत्तों के समान मेरुके अग्रभाग और नक्षत्र आदिकों को छू सकते थे; अर्थात् पृथ्वीपर खड़े हुए वह आकाश के तारों को हाथों से छू सकते थे। उनको ऐसी प्राकाम्य शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह जलमे थलकी तरह चल सकते थे और जलकी तरह पृथ्वीमें उन्मज्जन-निमज्जन कर सकते थे। उन को ऐसी ईशत्व शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह चक्रवर्त्ती और इन्द्र की ऋद्धि को बढ़ा सकते थे। इनको ऐसी अपूर्व वशित्व शक्ति प्राप्त हो गई थी, जिस से वह स्वतंत्र और क्रूर जन्तुओं को भी वश में कर सकते थे। उन्हें ऐसी अप्रतिघाती शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह छेद की तरह पर्वत के बीच से निःशंक गमन कर सकते थे। उन को ऐसी अप्रतिहत अन्तर्धान होने की सामर्थ्य होगई थी कि वह हवा की तरह सब जगह अदृश्य रूप धारण कर सकते थे और ऐसी काम रूपत्व शक्ति प्राप्त होगई थी, जिससे वह एक ही समय में अनेक प्रकार के रूपों से लोक को पूर्ण कर सकते थे।

एक अर्थ रूप बीज से अनेक अर्थ रूप बीज जान सके ऐसी बीज बुद्धि, कोठी में रखे हुए धान्य की तरह, पहले सुने हुए अर्थ को याद किये बिना यथास्थित रहे ऐसी कोष्ट बुद्धि और आदि

अन्त या मध्य का एक पद सुननेसे तत्काल सारे ग्रन्थ का बोध होजाय, ऐसी पदानुसारिणी लब्धि उनको प्राप्त होगई थी। एक वस्तु का उद्धार करके, 'अन्तमुहूर्त्त में समस्त श्रुत समुद्र में अवगाहन करने की सामर्थ्य से वे मनोबली लब्धि वाले हुए थे। एक मुहूर्त्त में मूलाक्षर गिनने की लीला से सब शास्त्र को घोष डालते थे, इसलिये वे वाग्बली भी होगये थे। चिरकालतक समाधि या कायोत्सर्ग में स्थिर रहते थे, किन्तु उन्हें श्रम—थकान और ग्लानि नहीं होती थी; इससे वे कायबली भी हुए थे। उनके पात्र के कुत्सित अन्नमें भी अमृत, क्षीर, मधु और घीका रस आनेसे तथा दुःख से पीड़ित मनुष्यों को उन की वाणी अमृत, क्षीर, मधु और घृत के समान शान्तिदायिनी होती थी, इससे वे अमृत क्षीर मध्वाज्याश्रवि लब्धिवाले हुए थे। उन के पात्र में रखा हुआ थोड़ा सा अन्न भी दान करने से अक्षय होजाता था, इसलिए उन को अक्षीण महानसी लब्धि प्राप्त हो गयी थी। तीर्थङ्कर की सभा की तरह थोड़ी सी जगह में भी वे असंख्य प्राणियों को बिठा सकते थे। इसलिये वे अक्षीण महालय लब्धिवाले थे और एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का विषय भी प्राप्त कर सकते थे, इसलिये वे संभिन्न श्रोत लब्धिवाले थे। उन को जंघाचरण लब्धि प्राप्त हो गई थी: जिससे वे एक क़दम मे रुचकद्वीप पहुँच सकते थे और वहाँ से वापस लौटते समय पहले क़दम मे नन्दीश्वर द्वीप में आते और दूसरे क़दम में जहाँ से चले थे वहाँ आ

सकते थे ; यानी वे अपने तीन डगों में इतना लम्बा सफर तय कर सकते थे। यदि वे ऊँचे जाना चाहते, तो एक डग में मेरु पर्वत-स्थित पांडुक उद्यान में जा सकते थे और वहाँ से वापस लौटते समय एक डग में नन्दन वन में और दूसरे डग में उत्पात भूमि की तरफ आ सकते थे। विद्याचारण लब्धि से वे एक फलाँग में मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरी फलाँग में नन्दीश्वर द्वीप में जा सकते थे और वापस लौटते समय एक फलाँग में पूर्व उत्पात भूमि में आ सकते थे। उर्ध्वगति में, जंघाचरण से विपरीत गमनागमन करने में शक्तिमान थे। उनको आसीविष लब्धि भी प्राप्त हो गई थी, इसके सिवा निग्रह अनुग्रह कर सकने वाली और भी बहुत सी लब्धियाँ उन्हें मिल गई थी; परन्तु इन लब्धियों से वे काम न लेते थे, उन्हें उपयोग मे न लाते थे; क्योंकि मुमुक्षु पुरुषो को मिली हुई चीज़ में भी आकांक्षा नहीं होती।

वीस स्थानकों का स्वरूप।

अब वज्रनाभ स्वामी ने, वीस स्थानकों की आराधना से, तीर्थङ्कर नाम गोत्रकर्म दृढ़ता से उपार्जन किया। उन वीस स्थानकों में पहला स्थानक— अर्हन्त और अरहन्तों की प्रतिमा-पूजा से, उनके अवर्णवाद का निषेध करने से और अद्भुत अर्थ वाली उनकी स्तुति करने से आराधना होती है (अरिहन्त पद)। सिद्धि-स्थान में रहने वाले सिद्धों की भक्ति के लिए जागरण उत्सव करने से तथा यथार्थ रूप से सिद्धत्व का कीर्त्तन करने से दूसरे

स्थान की आराधना होती है (सिद्ध पद)। बाल, ग्लान और नव दीक्षित शिष्य प्रभृति यतियों पर अनुग्रह करने से और प्रवचन या, चतुर्विध संघ का वात्सल्य करने से तीसरे स्थानक की आराधना होती है (प्रवचन पद)। और बहुमान-पूर्व्वक आहार, औषध और कपड़े वगैरः के दान से गुरु का वात्सल्य करना चौथा स्थानक (आचार्य पद) है। बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले पर्यय स्थविर, साठ वर्ष की उम्र वाले (वय स्थविर), और समवायांग के धारण करने वाले (श्रुत स्थविर) की भक्ति करना,—पांचवाँ स्थानक (स्थविर पद) है। अर्थ की अपेक्षा में, अपने से बहुश्रुत धारण करने वालों को अन्न-वस्त्रादि के दान वगैरः से वात्सल्य करना—छठा स्थानक (उपाध्याय पद) है। उत्कृष्ट तप करने वाले मुनियों की भक्ति और विश्रामणा से वात्सल्य करना,—सातवाँ स्थानक (साधु पद) है। प्रश्न और वाचना वगैर: से निरन्तर द्वादशांगी रूप श्रुत का सूत्र, अर्थ और उन दोनों से ज्ञानोपयोग करना,—आठवाँ स्थानक (ज्ञानपद) है। शंका प्रभृति दोष से रहित, स्थैर्य्य प्रभृति गुणों से भूषित और शमादि लक्षण वाला सम्यग्दर्शन—नवाँ स्थानक (दर्शनपद) है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार—इन चार प्रकार के कर्मों को दूर करने वाला विनय,—दसवाँ स्थानक (विनय पद) है। इच्छा मिथ्या करणादिक दशविध समाचारी का योग में और आवश्यक में अतिचार रहित यत्न करना,—ग्यारहवाँ स्थानक

(चारित्र पद) है। अहिंसा आदि मूल गुणों में और समित्यादिक उत्तर गुणों में अतिचार-रहित प्रवृत्ति करना,—बारहवाँ स्थानक (ब्रह्मचर्य्य पद) है। क्षण-क्षण और लव-लव में प्रमाद का परिहार करके, शुभ ध्यान में प्रवर्त्तना,—तेरहवाँ स्थानक (समाधिपद) है। मन और शरीर को पीड़ा न हो, इस तरह यथाशक्ति तप करना,—चौदहवाँ स्थानक (तप पद) है। मन, वचन और काया की शुद्धि-पूर्व्वक तपस्वियों को अन्नादिक का यथाशक्ति दान देना,—पन्द्रहवाँ स्थानक (दानपद) है। आचार्य्य आदिक यानी जिनेश्वर, सूरि, वाचक, मुनि, बाल मुनि, स्थविर-मुनि, ग्लान-मुनि, तपस्वी-मुनि, चैत्य और श्रमणसंघ—इन दशों का अन्न, जल और आसन प्रभृति से वैयावृत्य करना,—सोलहवाँ स्थानक (वैयावच्च पद) है। चतुर्विध संघ के सब विघ्न दूर करने से मन में समाधि उत्पन्न करना,—सत्रहवाँ स्थानक (संयम पद) है। अपूर्व्व सूत्र, अर्थ और उन दोनों को प्रयत्न से ग्रहण करना,—अठारहवाँ स्थानक (अभिनव ज्ञानपद) है। श्रद्धा से, उद्भासन से और अवर्णवाद का नाश करने से श्रुत ज्ञान की भक्ति करना,—उन्नीसवाँ स्थानक (श्रुत पद) है। विद्या, निमित्त, कविता, वाद और धर्म कथा प्रभृति से शासन की प्रभावना करना,—बीसवाँ स्थानक (तीर्थ पद) है।

तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्धन।

बारहवें भव की समाप्ति

इन बीस स्थानकों में से एक-एक पद का आराधन करना भी तीर्थङ्कर नाम-कर्म के बन्ध का कारण है। परन्तु वज्रनाभ भगवान् ने तो इन सब पदों का आराधन करके तीर्थङ्कर नाम-कर्म का बन्ध किया। बाहुमुनि ने साधुओं को वैयावच्च करने से चक्रवर्ती के भोग-फल को देनेवाला कर्म उपार्जन किया। तपस्वी महर्षियों की विश्रामणा करने वाले सुबाहु मुनि ने लोकोत्तर बाहुबल उपार्जन किया। तब वज्रनाभ मुनि ने कहा—'अहो! साधुओं की वैयावच्च और विश्रामणा करने वाले ये बाहु और सुबाहु मुनि धन्य हैं।' उनकी ऐसी प्रशंसा से पीठ और महापीठ मुनि विचार करने लगे—'जो उपकार करने वाले हैं, उन्हीं की यहाँ प्रशंसा होती है; अपन दोनों आगम शास्त्र के अध्ययन और ध्यान में लगे रहने से कुछ भी उपकार न कर सके, इसलिये अपनी प्रशंसा कौन करे? अथवा सब लोग अपने काम करने वाले को ही ग्रहण करते हैं।' इस तरह माया मिथ्यात्व से युक्त ईर्षा करने से बाँधे हुए दुष्कृत्य को आलोचन न करने से, उन्होंने स्त्री नाम कर्म—स्त्रीपने की प्राप्ति रूप कर्म उपार्जन किया। उन छहों महर्षियों ने अतिचार रहित और खड्ग की धारा के

समान प्रव्रज्या को चौदह लाख पूर्व तक पालन किया। पीछे वे छहों धीरमुनि दोनों प्रकार की संलेखना-पूर्व्वक पादोपगमन अनशन अंगीकार करके, सर्व्वार्थ सिद्धि नाम के पाँचवें अनुत्तर विमान में, तेतीस सागरोपम आयुवाले देवता हुए।

दूसरा सर्ग

सागरचन्द्र का वृत्तान्त।

सागरका राजभुवन में सत्कार।

इस जम्बूद्वीप में, पश्चिम महा विदेह के अन्दर, शत्रुओं से अपराजित, अपराजिता नामकी नगरी थी। उस नगरी मे, अपने बल-पराक्रम से जगत् को जीतनेवाला और लक्ष्मी में ईशानेन्द्र के समान ईशानचन्द्र नामक राजा था। वहाँ एक बहुत बड़ा धनी चन्दनदास नामक सेठ रहता था। वह सेठ धर्मात्माओं में अग्रणी और संसार को आनन्दित करने में चन्दन के समान था। उसके जगत् के नेत्रों को सुखी करने वाला सागरचन्द्र नामका पुत्र था। जिस तरह चन्द्रमा समुद्र को आह्लादित और आनन्दित करता है; उसी तरह वह अपने पिता को आनन्दित और आह्लादित करता था। स्वभाव से ही सरल, धार्मिक और विवेकी सागरचन्द्र सारे शहर का

एक मुखमंडन हो रहा था। एक समय जबकि, सामन्त राजा लोग ईशानचन्द्र राजा के दर्शन और चाकरी के लिये आकर उस के इर्द-गिर्द बैठे हुए थे, तब वह राजभवन मे गया। राजा ने भी उस के पिता की तरह उसका आसन और पान इलायची प्रभृति से खूब आदर-सम्मान किया और उसे स्नेह-दृष्टि से देखा।

वसन्तागमन।

उस समय एक मङ्गल-पाठक राजद्वार में आकर, शंखध्वनि-का पराजित करनेवाली वाणी से इस तरह कहने लगा—"हे राजन्! आज आप के बाग़ में उद्यान-पालिका या मालिन की तरह अनेक प्रकार के फूलों को सजानेवाली वसन्त-लक्ष्मी शोभित हो रही है। इन्द्र जिस तरह नन्दन वन को सुशोभित करता है, उसी तरह आप भी खिले हुए फूलों की सुगन्ध से दिशाओं के मुख को सुगन्धित करनेवाले उस बग़ीचे को सुशोभित कीजिये।' मङ्गल-पाठक की उपरोक्त बात सुनकर, राजा ने द्वारापाल को हुकम दिया—"अपने शहर में ऐसी घोषणा करा दो कि, कल सवेरे सब लोग राज-बाग़ में एकत्र हों।" इसके बाद राजाने स्वयं सागरचन्द्र को आज्ञा दी—'आप भी आइयेगा।' स्वामी की प्रसन्नत के यही लक्षण हैं। पीछे राजा से छुट्टी पाकर साहुकार का लड़का बड़ी खुशी के साथ अपने घर आया। वहाँ अकर उसने अशोकदत्त नाम के अपने मित्र से राजाज्ञा-सम्बन्धी सारी बात कही।

सागरचन्द्र "यह क्या है !" कहता हुआ संभ्रमके साथ वहाँ दौड़ गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि, जिस तरह व्याघ्र हिरणीको पकड़ लेता है, उसी तरह बन्दीवानोंने पूर्णभद्र सेठकी प्रियदर्शना नामकी कन्या पकड़ रखी है। जिस तरह साँपकी गर्दन तोड़कर मणिको लेलेते हैं, उसी तरह उसने बन्दीवानके हाथसे छुरि छीन ली। (पृष्ठ १२६)

सागर और अशोक बाग़ में ।

सागरचन्द्र की बहादुरी ।

प्रियदर्शना की रक्षा ।

दूसरे दिन सवेरे ही राजा अपने परिवार-समेत बाग़ में गया। वहाँ नगर के लोग भी आये थे, क्योंकि 'प्रजा राजा का अनुसरण करनेवाली होती है।' मलय पवन के साथ जिस तरह वसन्त ऋतु आती है ; उसी तरह सागरचन्द्र भी अपने मित्र अशोकदत्त के साथ बाग़ मे पहुँचा। कामदेव के शसन में रहने वाले-कामी पुरुष—फूलतोड़-तोड़कर, नाच-गान वगैर. में लग गये। स्थान-स्थान पर इकट्ठे होकर, क्रीड़ा करते हुए नगर-निवासी, निवास किये हुए कामदेव रूपी राजा के पड़ाव की तुलना करने लगे। क़दम-क़दम पर गाने-बजाने की ध्वनि इस तरह उठने लगीं; गोया दूसरी इन्द्रियों के विषयों को जीतने के लिये उठी हों। इतने में, पास के किसी वृक्ष की गुफा में से "रक्षा करो, रक्षा करो" की आवाज़ किसी स्त्री के कंठ से अकस्मात् निकली। उस आवाज़ के कान में पड़ते ही, उस से आकर्षित हुए के समान सागर चन्द्र "यह क्या है!" कहता हुआ संभ्रम के साथ वहाँ दौड़ा गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि, जिस तरह व्याघ्र हिरनी को पकड़ लेता है ; उसी तरह वन्दीवानों ने पूर्णभद्र सेठ की प्रियदर्शना नामकी कन्या पकड़ रखी है। जिस तरह साँप

की गर्दन तोड़कर मणि को ले लेते हैं; उसी तरह उसने एक बन्दीवान के हाथ से छुरी छीन ली। उसका ऐसा पराक्रम देखकर, सब बन्दीवान वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए; क्योंकि 'जलती हुई आग को देखकर व्याघ्र भी भाग जाते हैं।' इस तरह कठियारे लोगों से आम्रलता छुड़ाने की तरह, सागरचन्द्र ने दुष्टों से प्रियदर्शना छुड़ाई। उस समय प्रियदर्शना विचार करने लगी— "परोपकार करने के व्यसनी पुरुषों में मुख्य यह कौन हैं? अहो! मेरे सौभाग्य की सम्पत्ति से खिंचा हुआ यह पुरुष यहाँ आगया, यह बहुत अच्छा हुआ! कामदेवके रूप को तिरस्कार करनेवाला यह पुरुष मेरा पति हो।" इस तरह के विचार करती हुई प्रियदर्शना अपने घर को चली गई। सागरचन्द्र भी प्रियदर्शना को अपने हृदय में बिठाकर, अपने मित्र अशोकदत्तके साथ अपने घर गया।

सागर के पिताका पुत्रको उपदेश देना।

होते-होते यह बात उसके पिता चन्दनदासके कानों तक भी पहुँच गई। ऐसी बात किस तरह छिप सकती है? चन्दनदासने यह हाल जानकर मन-ही-मन विचार किया—'लड़के का दिल प्रियदर्शना से लग गया है, उसे उससे मुहब्बत हो गई है। यह उचित ही है, क्योंकि राजहंस के साथ कमलिनी ही शोभा देती है। परन्तु सागरचन्द्र ने जो उद्भटपना किया वह ठीक नहीं। क्योंकि पराक्रमी होनेपर भी, वणिक लोगों को अपना पराक्रम प्रकाशित न करना चाहिये। फिर; सागर का स्वभाव सरल है।

उसकी मायावी और धूर्त्त अशोकदत्त से मित्रता हुई है। केले के वृक्ष को जिस तरह वेरके झाड़ की संगत हितकारी नहीं होती; उसी तरह सागरके साथ उसकी मैत्री हितकर नहीं।' इस तरह बहुत देरतक विचार करके, उसने सागरचन्द्र को अपने पास बुलाया और जिस तरह उत्तम हाथी को उसका महावत शिक्षा देना आरंभ करता है; उसी तरह मीठे वचनों से उसे शिक्षा देनी आरंभ की :—

"हे वत्से सागरचन्द्र! सारे शास्त्रों का अभ्यास करने से तू व्यवहारकी सारी बातें जानता है; तोभी मैं तुझसे कुछ कहता हूं। अपन वैश्य लोग कला-कौशल से जीविका करनेवाले हैं। अपनके अनुद्भट और मनोहर भेषमें रहनेसे अपनी निन्दा नहीं हो सकती। इसलिये तुझे यौवनावस्था—जवानीमें भी अपने बल-पराक्रमको गुप्त रखना चाहिये। इस संसारमें, वणिक लोग, सामान्य अर्थमें भी, शङ्कायुक्त वृत्तिवाले कहलाते हैं। जिस तरह स्त्रियोंका शरीर ढका रहनेसे ही अच्छा लगता है; उसी तरह अपन लोगोंकी सम्पत्ति, विषय-क्रीड़ा और दान सदा गुप्त रहनेसे ही अच्छे मालूम होते हैं; अर्थात् स्त्रियोंके शरीर, वैश्योंकी धन-सम्पत्ति, विषय-क्रीड़ा और दानकी शोभा गुप्त रहनेमें ही है। जिस तरह ऊँटके पाँवमें बँधा हुआ सुवर्णका तोड़ा अच्छा नहीं लगता, उसी तरह अपनी वैश्य जातिको अनुचित कर्म शोभा नहीं देते। अतः प्रियपुत्र! अपनी कुल-परम्पराके अनुसार उचित व्यवहार-परायण हो कर वही करो, जो अपने कुलमें होता आया है—

कुल परम्पराके विपरीत मत चलो। सम्पत्तिकी तरह अपने गुणों को भी गुप्त और पोशीदा रखो। जो स्वभावसे कपटी और दुर्जन हैं, उनका संसर्ग त्याग दो। कपटहृदय वाले दुष्टोंकी संगति मत करो; क्योंकि दुष्टोंका संसर्ग हड़किये कुत्तेके विषकी तरह काल योगसे विकारको प्राप्त होता है। बच्चे! कोढ़ जिस तरह फैलनेसे शरीरको दूषित कर देता है; उसी तरह तेरा मित्र अशोकदत्त ज़ियादा हेलमेल और परिचयसे तुझे दूषित कर देगा—तेरे चरित्रको कलुषित कर देगा। यह मायावी गणिका—वेश्याकी तरह, मनमें और, वचनमें और एवं क्रियामें और ही है। यह कहता कुछ है, करता कुछ है और इसके मनमे कुछ है। यह मन वचन और कर्ममें यकसाँ नहीं है।

सागरचन्द्रका जवाब।

सेठ चन्दनदास इस प्रकार आदर पूर्व्वक उपदेश देकर चुप हो गया, तब सागरचन्द्र मनमें इस तरह विचार करने लगाः—'पिताजी जो मुझे इस तरहका उपदेश दे रहे हैं, इससे मालूम होता है कि, उनको प्रियदर्शना-सम्बन्धी वृत्तान्त ज्ञात हो गया है। मेरा मित्र अशोकदत्त पिताजीको सङ्गति करने योग्य नहीं जँचता। यह उसे मेरे सङ्ग रहनेके लायक़ नहीं समझते। इन्हें उसकी सुहबत से मेरे बिगड़ जानेका भय है। मनुष्यका भाग्य मन्द होनेसे ही, ऐसे सीख देने वाले गुरुजन नहीं होते। सौभाग्य वालोंको ही ऐसी सत्‌शिक्षा देने वाले गुरुजन मिलते हैं। भलेही उनकी मरज़ी-

माफ़िक़ कोई क्यों न हो ?' मन-ही-मन क्षण-भर ऐसे विचार करके, सागरचन्द्र विनययुक्त अतीव नम्र वाणीसे बोला:—"पिताजी ! आप जो आदेश करें, जो हुक्म दें, मुझे वही करना चाहिये ; क्योंकि मैं आपका पुत्र हूं । जिसे काम के करनेमें गुरुजनोंकी आज्ञा का उल्लङ्घन हो, उस कामके करनेसे अलग रहना भला; लेकिन अनेक बार, दैवयोगसे, अकस्मात् ऐसे काम आ पड़ते हैं, जिनमें विचार करनेके लिये, थोड़ेसे समयकी भी गुञ्जाइश नहीं होती; अर्थात् विचार करनेके लिये समय मिलना कठिन हो जाता है । जिस तरह किसी-किसी मूर्खके पाँव पवित्र करनेमें पर्व-वेला निकल जाती है; उसी तरह कितने ही कामोंका समय विचारमें पड़नेसे निकल जाता है । मनुष्य विचारोंमें लगता है और समय निकलजाने से काम बिगड़ जाता है—भयङ्कर हानि हो जाती है । ऐसे प्राण-सङ्कट-काल में भी, प्राणोंके संशयका समय आनेपर भी, जान-जोखिमका मौक़ा आ जानेपर भी, पिताजी ! अबसे मैं ऐसा काम करूँगा, जिससे आपको शर्मिन्दा होना न पड़े—आपको लज्जासे सिर नीचा न करना पड़े । आपने अशोकदत्तके सम्बन्धमें जो बातें कही हैं, उनके सम्बन्धमें मेरी यह प्रार्थना है कि, न तो मैं उसके दोषोंसे दूषित ही हूँ और न उसके गुणोंसे भूषित ही हूँ । मैं उसके गुण-दोषोंसे सर्वथा अलग हूँ । रात-दिन साथ रहने, बचपन से एक संग खेलने, बारम्बार मिलने, सजातीय या समान जातीय हो एक विद्या पढ़ने, समान शील और उम्रमें बराबर होने एवं परोक्षमें या नामौजूदगी में उपकार करने एवं सुख-दुःखमें भाग लेने प्रभृति कारणोंसे उसके साथ मेरी मैत्री

होगई है। उसमें मुझे ज़राभी कपट नहीं दीखता-उसके व्यवहार मे मुझे छल-कपटकी गन्धभी नहीं आती। मालूम होता है, मेरे मित्रके सम्बन्धमें आपको किसीने झूठी ख़बर दी है—ग़लत और मिथ्या बात कही है। क्योंकि दुष्टलोग सबको दुःख देनेवाले ही होते हैं। दूर्जनों का काम शिष्टों को दुःख और क्लेश पहुँचाना ही है। उन्हें पराई हानि में ही लाभ जान पड़ता है। उन्हें दूसरों को दुखी देखने से प्रसन्नता होती है। वे दूसरों के सुख से सुखी नहीं होते। कदाचित् वह ऐसा ही हो—मायावी और धूर्त ही हो; तोभी वह मेरा क्या कर सकता है? मेरी कौनसी हानि कर सकता है? क्योंकि एक जगह रहने पर भी काँच काँच ही रहेगा और मणि मणि ही रहेगी—काँच मणि न हो जायगा और मणि काँच न हो जायगी।"

सागरचन्द्र का विवाह।

पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार।

इस तरह कह कर सागर चन्द्र चुप हो गया, तब सेठ ने कहा—"पुत्र! यद्यपि तू बुद्धिमान है, तथापि मुझे कहना ही चाहिये; क्योंकि पराये अन्तःकरण को जानना कठिन है—पराये दिलमे क्या है, यह जानना आसान नहीं।" इसके बाद पुत्रके भाव को समझने वाले सेठ ने शीलादिक गुणों से पूर्ण प्रियदर्शना के लिये पूर्णभद्र सेठ से मँगनी की; अर्थात् अपने पुत्र के लिए कन्या देनेकी प्रार्थना की। तब 'आपके पुत्र ने उपकार द्वारा मेरी पुत्री पहले

ही ख़रीद ली है' ऐसा कह कर पूर्णभद्र सेठ ने सागरचन्द्र के पिता की बात स्वीकार करली ; अर्थात् अपनी कन्या देना मंजूर कर लिया। फिर, शुभ दिन और शुभ लग्न में उनके माँ बापों ने सागरचन्द्र के साथ प्रियदर्शना का विवाह कर दिया। मनचाहा बाजा बजने से जिस तरह खुशी होती है; उसी तरह मनवांछित विवाह होने से वर वधू—दूलह दुलहिन को बड़ी खुशी हुई। प्रसन्नता क्यों न हो, वर को मन-चाही बहू मिली और बहू को मन-चाहा वर मिला। दोनों के समान अन्तःकरण होने से—एक से दिल होने से गोया एक आत्मा हो, इस तरह उन दोनों की मुहब्बत सारस पक्षी की तरह बढ़ने लगी। चन्द्र से जिस तरह चन्द्रिका शोभती है ; उसी तरह निर्मल हृदय और सौम्य दर्शन वाली प्रियदर्शना सागरचन्द्रसे शोभने लगी। चिरकालसे घटना घटाने वाले दैव के योगसे, उन शीलवान्, रूपवान् और सरलहृदय स्त्री-पुरुषोंका उचित योग हुआ—अच्छा मेल मिला। आपसमे एक दूसरेका विश्वास होनेसे, उन दोनो में कभी अविश्वास तो हुआही नहीं; क्योंकि, सरलाशय व्यक्ति कदापि विपरीत शंका नहीं करते; अर्थात् असरल हृदय और छली-कपटी स्त्री-पुरुषोंके दिलोंमें ही एक दूसरे के ख़िलाफ ख़याल पैदा होते हैं। सीधे-सादे सरल चित्त वालोंके दिलोंमे न अविश्वास उत्पन्न होता है और न विपरीत शंका ही उठती है।

अशोकदत्तकी दुष्टता।

अशोक और प्रियदर्शनाका कथोपकथन।

एक दिन सागरचन्द्र किसी कामसे बाहर गया हुआ था।

ऐसे ही समयमें अशोकदत्त उसके घर आया, और उसकी पत्नी प्रियदर्शनासे कहने लगा—'सागरचन्द्र हमेशा धनदत्त सेठकी स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलता-जुलता है, उसका क्या मतलब है? स्वभावसे ही सरलहृदया प्रियदर्शना ने कहा—"उसका मतलब आपके मित्र जानें अथवा सर्वदा उनके दूसरे हृदय आप जानें। व्यवसायी और बड़े लोगोंके एकान्त सूचित कामोंको कौन जान सकता है? और जो जाने वह घरमें क्यों कहे?" अशोकदत्त ने कहा—"तुम्हारे पतिका उसके साथ एकान्तमें मिलने-जुलनेका जो मतलब है, उसे मैं जानताहूँ, पर कह कैसे सकता हूँ?"

प्रियदर्शना ने कहा—'उसका क्या मतलब हैं? वे उससे एकान्तमें क्यों मिलते हैं?'

अशोकदत्तने कहा—'हे सुन्दर भौहों वाली सुन्दरी! जो प्रयोजन मेरा तुम्हारे साथ है, वही उनका उसके साथ है।'

अशोकके ऐसा कहने पर भी उसके भावको न समझकर सरलाशया प्रियदर्शनाने कहा—'तुम्हारा मेरे साथ क्या प्रयोजन है?'

अशोकने कहा—'हे सुभ्रु! तेरे पति के सिवा, तेरे साथ क्या किसी दूसरे रसीले सचेतन पुरुषका प्रयोजन नहीं?'

प्रियदर्शनाकी फट्कार।

कानमें सूई-जैसा, उसकी दुष्ट इच्छाको सूचित करने वाला अशोकदत्तका वचन सुनकर प्रियदर्शना सकोपा हो गई—क्रोधसे काँप उठी और नीचा मुँह करके आक्षेप के साथ बोली—'रे अम-

अरे दुष्ट ! मेरे महात्मा पतिकी तू और ही तरह अपने जैसी सम्भावना करता है,तो मित्रके मिषसे तुझ शत्रु जैसे को धिक्कार है ! रे पापी ! चाण्डाल ! तू यहाँ से चला जा, खड़ा न रह, तेरे देखनेसे भी पाप लगता है ।

(पृष्ठ १३७)

र्यादा ! रे पुरुषाधम ! रे कुलाङ्गार नीच ! तैंने ऐसा विचार कैसे किया और किया तो मुझसे कहा कैसे ? मूर्खके ऐसे साहस को धिक्कार है ! अरे दुष्ट ! मेरे महात्मा पतिकी तू औरही तरह अपने-जैसी सम्भावना करता है, तो मित्रके मिषसे तुझ शत्रु-जैसे को धिक्कार है ! रे पापी ! चाण्डाल ! तू यहाँसे चला जा, खड़ा न रह, तेरे देखने से भी पाप लगता है।'

अशोक और सागर का मिलन।

अशोक की घोर नीचता।

कपटपूर्ण बातें।

प्रियदर्शनासे इस तरह अपमानित होकर, अशोकदत्त चोर की तरह वहाँसे लम्बा हुआ। गो-हत्या करने वालेकी तरह, पाप रूपी अन्धकारसे मलीन मुखी और विमनस्क अशोकदत्त चला जाता था कि, इतने में उसे सामने से आता हुआ सागरचन्द्र दीख गया। स्वच्छ अन्तःकरणवाले सागरचन्द्रने उससे चार नज़र होतेही पूछा-' मित्र ! तुम उद्विग्न से कैसे दीखते हो ?' सागरकी बात सुनते ही, दीर्घ निःश्वास त्याग कर, कष्टसे दुखित हुएके समान, होठोंको चबाते हुए, मायाके पहाड़ अशोकने कहा— ' हे भाई ! हिमालय पर्वतके नज़दीक रहने वालोंके सरदी से ठिठरनेका कारण जिस तरह प्रकट है, उसी तरह इस संसार में बसने वालोंके उद्वेग का कारणभी प्रगटही है। कुठौरके फोड़ेकी

तरह, यह वृत्तान्त न तो छिपाया ही जा सकता है और न प्रकट ही किया जा सकता है।'

इस तरह कहकर और कपटके आँसू दिखाकर अशोकदत्त चुप होगया। निष्कपट सागरचन्द्र मनमें विचार करने लगा—'अहो! यह संसार असार है, जिसमें ऐसे पुरुषों कोभी अकस्मात् ऐसे सन्देहके स्थान प्राप्त हो जाते हैं। धूआँ जिस तरह अग्नि की सूचना देता है; उसी तरह, धीरज से न सहे जाने योग्य, इसके भीतरी उद्वेगकी इसके आँसू, ज़बर्दस्ती, सूचना देते हैं।' इस तरह चिरकाल तक विचार करके, उसके दु:खसे दुखी सागरचन्द्र गद्गद स्वरसे इस प्रकार कहने लगा—'हे बन्धु! यदि अप्रकाश्य न हो, कहनेमें हर्ज न हो, तो अपने इस उद्वेगके कारणको मुझसे इसी समय कहो और अपने दु:खका एक भाग मुझे देकर अपने दु:खकी मात्रा कम करो।'

अशोकदत्तने कहा—'प्राण-समान आपसे जब मैं कोईभी बात छिपाकर नहीं रख सकता, तब इस वृत्तान्तको ही किस तरह छिपा सकता हूँ? आप जानते हैं कि, अमावस्याकी रात जिस तरह अन्धकारको उत्पन्न करती है; उसी तरह स्त्रियाँ अनर्थको उत्पन्न करती हैं।'

सागरचन्द्रने कहा—'भाई! इस समय तुम नागिनके जैसी किसी स्त्रीके संकट में पड़ेहो?'

अशोकदत्त बनावटी लज्जाका भाव दिखाकर बोला:—'प्रियदर्शना मुझसे बहुत दिनोंसे अनुचित बात कहा करती थी; परन्तु

मैंने यह समझकर कि, कभी तो इसे लाज आयेगी और यह स्वयं समझ-बूझकर ऐसी बातोंसे अलग हो जायगी, मैंने लज्जाके मारे कितने ही दिनों तक उसकी अवज्ञा-पूर्वक उपेक्षाकी; तोभी वह अपनी कुलटा नारीके योग्य बातें कहनेसे बन्द न हुई। अहो! स्त्रियोंका कैसा असद् आग्रह होता है! हे मित्र! आज मैं आपको खोजनके लिए आपके घर पर गया था। उस समय छल-कपट से भरी हुई उस स्त्रीने राक्षसीकी तरह मुझे रोक लिया; लेकिन हाथी जिस तरह बन्धनको तुड़ाकर अलग हो जाता है; उसी तरह मैं भी उसके पञ्जेसे बड़ी कठिनाईसे छूटकर जल्दी-जल्दी यहाँ आरहा था। राहमें मैंने विचार किया कि, यह स्त्री मुझे जीता न छोड़ेगी। इसलिये मैं खुदही आत्मघात करलूँ तो कैसा? परन्तु मरना भी मुनासिब नहीं, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में—मेरे न रहने पर, वह स्त्री मेरे मित्रसे इन सब बातों को कहेगी; यानी इसके विपरीत कहेगी; इसलिये मैं स्वयं ही अपने मित्रसे ये सब बातें कह दूँ, जिससे स्त्रीका विश्वास करके वह नष्ट न हो जाय। अथवा यह कहना भी उचित नहीं, क्योंकि मैंने उस स्त्रीका मनोरथ पूर्ण नहीं किया, तब उसकीबुरी बातको कहकर घाव पर नमक क्यों .छिड़कूँ? मैं ऐसे विचारों मे गलताँ-पेचाँ हो रहा था, कि आपने मुझे देख लिया। हे भाई, यही मेरे उद्वेग का कारण है।' अशोकदत्तकी बातें सुनते ही मानो हालाहल विष पान किया हो, इस तरह पवन-रहित समुद्र की तरह सागरचन्द्र स्थिर हो गया।

सागरचन्द्रकी सरलता

सागरचन्द्रने कहा—'स्त्रियोंसे ऐसी ही आशा है; उनसे ऐसे ही काम हो सकते हैं; क्योंकि खारी ज़मीन के निवाण के जलमें खारापन ही होता है। मित्र! अब दुखी मत होओ, अच्छे काममे लगे रहो और उसकी बातों को याद मत करो। भाई! वास्तव में वह जैसी हो, भलेही वैसीही रहे; परन्तु उसके कारण से अपन दोनों मित्रोंके मनोंमें मलीनता न हो—अपने दिलोंमें फ़र्क़ न आवे।' सरल-प्रकृति सागरचन्द्रकी ऐसी अनुनय-विनय से वह अधम अशोकदत्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि मायावी लोग अपराध करके भी अपनी आत्मा की प्रशंसा कराते हैं।

सागरचन्द्रको संसारसे विरक्ति।

देहत्याग और युगलिया जन्म।

उस दिनसे सागरचन्द्र प्रियदर्शनाको प्यार करना छोड़कर, निःस्नेह होकर, रोग वाली अँगुलीकी तरह, उसको उद्वेगके साथ धारण करने लगा; फिरभी उसके साथ पहलेकी तरह ही बर्ताव करता रहा। क्योंकि, अपने हाथोंसे लगाई और पाली-पोषी हुई लता, अगर बाँझ भी हो जाय, तोभी उसे जड़से नहीं उखाड़ते। प्रियदर्शनाने यह सोचकर, कि मेरी वजहसे इन दोनों मित्रोंका वियोग न हो जाय, अशोकदत्त-सम्बन्धी वृत्तान्त अपने पतिसे न कहा। सागरचन्द्र संसारको जेलख़ाना समझकर, अपनी सारी धन-दौलतको दीन और अनाथोंको दान करके कृतार्थ करने लगा।

समय आने पर, प्रियदर्शना, सागरचन्द्र और अशोकदत्त—इन तीनोंने अपनी-अपनी उम्र पूरी करके देह त्याग दी; अर्थात् पञ्चत्वको प्राप्त हुए। उनमें सागरचन्द्र और प्रियदर्शना इस जम्बूद्वीप में, भरतक्षेत्रके दक्षिण खण्डमें, गंगा और सिन्धु नदीके बीचके प्रदेशमें, इस अवसर्पिणी के तीसरे आरेमें, पल्योपमका आठवाँ भाग शेष रहने पर, युगलिया रूपमें उत्पन्न हुए।

छःआरोंका स्वरूप।

पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रमें, कालकी व्यवस्था करनेके कारण-रूप बारह आरोंका कालचक्र गिना जाता है। वह कालचक्र—(१) अवसर्प्पिणी, और (२) उत्सर्प्पिणी,—इन भेदोंसे दो प्रकारका होता है। उसमें अवसर्प्पिणी कालके एकान्त सुषमा आदि छः आरे हैं। एकान्त सुषमा नामक पहला आरा चार कोटा-कोटी सागरोपमका, दूसरा सुषमा नामक आरा तीन कोटा-कोटी सागरोपमका, तीसरा सुषम-दुःखमा नामक आरा दो कोटा-कोटी सागरोपमका, चौथा दुःखम-सुषमा नामक आरा बयालीस हज़ार वर्ष कम एक कोटा-कोटी सागरोपमका, पाँचवाँ दुःखमा नामक आरा इक्कीस हज़ार वर्षका और पिछला या छठा एकान्त दुःखमा नाम आराभी इतना ही यानी इक्कीस हज़ार वर्षका होता है। इस अवसर्प्पिणीके जिस तरह छःआरे कहे हैं; उसी तरह क्रमसे विपरीत आरे उत्सर्प्पिणी कालकेभी जानने चाहिएँ। उत्सर्प्पिणी और अवसर्प्पिणी कालकी सम्पूर्ण संख्या बीस कोटा-कोटी सागरोपमकी होती है। इसीको "काल-चक्र" कहते हैं।

पहले आरेमें मनुष्य तीन पल्योपम तक जीने वाले, छःकोस ऊँचे शरीर वाले और चौथे दिन भोजन करने वाले होते हैं। वे समचतुरस्र संस्थान वाले, सब लक्षणोंसे लक्षित, वज्रऋषभ नाराच संहनन-संघयण वाले और सदा सुखी रहने वाले होते हैं। फिर; वे क्रोधरहित, मानरहित, निष्कपटी, लोभ-हीन और स्वभावसे ही अधर्मको त्याग करने वाले होते हैं। उत्तर कुरुकी तरह उस समयमें रात-दिन उनके इच्छित मनोरथको पूर्ण करने वाले, मद्याङ्गादिक दस तरहके "कल्पवृक्ष" होते हैं। उनमे मद्यांग नामक कल्पवृक्ष माँगनेपर तत्काल स्वादिष्ट मदिरा देते हैं। भृतांग नामक कल्पवृक्ष भण्डारीकी तरह पात्र देते हैं। तूर्याङ्ग नामक कल्पवृक्ष तीन तरहके बाजे देते है। दीप-शिखा और ज्योतिष्क नामके कल्पवृक्ष अत्यन्त प्रकाश या रोशनी देते हैं। चित्रांग नामक कल्पवृक्ष चित्रविचित्र फूलोंकी माला देते हैं। चित्ररस नामक कल्पवृक्ष रसोइयोंकी तरह विविध प्रकारके भोजन देते हैं। मरायङ्ग नामके कल्पवृक्ष मन-चाहे गहने या ज़ेवर देते हैं। गेहाकार नामके कल्पवृक्ष गन्धर्वनगरकी तरह क्षणमात्रमें सुन्दर मकान देते हैं और अनग्न नामक कल्पवृक्ष इच्छानुसार वस्त्र या कपड़े देते हैं। ये प्रत्येक वृक्ष औरभी अनेक तरहके मन-चाहे पदार्थ देते हैं।

उस समय पृथ्वी शक्करसे भी अधिक स्वादिष्ट होती है और नदी वगैरःका जल अमृतके समान मधुर या मीठा होता है। उस आरेमें अनुक्रमसे धीरे-धीरे आयुष्य, संहननादिक और कल्प वृक्षोंका प्रभाव घटता जाता है।

दूसरे आरेमें मनुष्य दो पल्योपमकी आयुष्य वाले, चार कोस ऊँचे शरीर वाले और तीसरे दिन भोजन करने वाले होते हैं। उस समय कल्पवृक्ष किसी क़दर कम प्रभाव वाले, पृथ्वी न्यून स्वादवाली और पानी भी मिठासमें पहलेसे कुछ उतरते हुए होते हैं। पहले आरेकी तरह, इस आरे में भी, हाथीकी सूँडमें जिस तरह मुटाई कम होती जाती है; उसी तरह सारी बातों में अनुक्रमसे कमी होती जाती है।

तीसरे आरेमें, मनुष्य एक पल्योपम जीनेवाले, दो कोस ऊँचे शरीर वाले और दूसरे दिन भोजन करने वाले होते हैं। इस आरे मेंभी, पहले की तरह ; शरीर, आयुष्य, पृथ्वीकी मधुरता और कल्पवृक्षोंकी महिमा कम होती जाती है।

चौथा आरा पहलेके प्रभाव—(कल्पवृक्ष, स्वादिष्ट पृथ्वी और मधुर जल वगैरः) से रहित होता है। उसमें मनुष्य कोटी पूर्वकी आयुष्य वाले और पाँच सौ धनुष ऊँचे शरीर वाले होते हैं।

पाँचवे आरेमें मनुष्य सौ बरसकी उम्रवाले और सात हाथ ऊँचे शरीर वाले होते हैं।

छठे आरेमें सोलह सालकी आयुवाले और एक हाथ ऊँचे शरीर वाले होते हैं।

एकान्त दुःखमा नामक पहले आरेसे शुरू होने वाले उत्स-र्पिणी कालमें, इसी प्रमाणसे अवसर्पिणी से विपरीत, छहों आरोंमें मनुष्य समझने चाहिएँ।

सागर और अशोक का पुनर्जन्म ।

अशोक का हाथी के रूप में जन्म लेना ।

अशोक और सागर की पर जन्म में मुलाकात ।

सागरचन्द्र और प्रियदर्शना तीसरे आरेके अन्तमें फिर पैदा हुए, इसलिए वे नौसौ धनुष ऊँचे शरीरवाले एवं पल्योपमके दशमांश आयुष्यवाले युगलिये हुए। उनके शरीर वज्रऋषम नाराच संहनन वाले और समचतुरस्र संस्थान वाले थे। मेघ-मालासे जिस तरह मेरु पर्वत शोभित होता है; उसी तरह जात्यवन्त सुवर्णकी कान्ति वाला उस सागरचन्द्रका जीव अपनी प्रियङ्गु रङ्गवाली स्त्री से शोभित होता था।

अशोकदत्त भी, अपने पूर्वजन्मके किये हुए कपटसे, उसी जगह, सफेद रंग और चार दाँतोंवाला देवहस्तीके समान हाथी हुआ। एक दिन वह हाथी अपनी मौजमें घूम रहा था। घूमते-घूमते उसने युग्मधर्मि अपने पूर्वजन्मके मित्र—सागरचन्द्र को देखा।

विमलवाहन पहला कुलकर—राजा ।

विमलवाहन और चन्द्रयशा का देहान्त ।

मित्र को देखतेही, उस हाथीका शरीर दर्शनरूपी अमृत-धारासे व्याप्त सा हो उठा। बीजसे जिस तरह अंकुर की उत्पत्ति होती है; उसी तरह उसमें स्नेहकी उत्पत्ति हुई। इसलिये उसने उसे, सुख मालूम हो इस तरह, अपनी सूँड से आलिङ्गन

उस समय, चार दाँतोंवाले हाथीपर बैठे हुए सागरचन्द्रको, विस्मयसे उत्तान नेत्रोंवाले दूसरे युगलिये, इन्द्रके समान देखने लगे।

[पृष्ठ १४५]

किया और उसकी इच्छा न होनेपर भी उसे अपने कन्धेपर बिठा लिया। परस्पर-दर्शनके अभ्याससे; उन दोनों मित्रोंको, ज़रा देर पहले किये हुए काम की तरह, पूर्वजन्मका स्मरण हुआ—पहले जन्मकी याद आगई। उस समय, चार दाँतोंवाले हाथीपर बैठे हुए सागरचन्द्रको, विस्मयसे उत्तान नेत्रोंवाले दूसरे युगलिये, इन्द्रके समान देखने लगे। चूँकि वह शङ्ख कुन्दपुष्प और चन्द्र-जैसे निर्मल हाथीपर बैठा हुआ था; इसलिये युगलिये उसे विमलवाहन नामसे पुकारने या बुलाने लगे। जाति-स्मरणसे सब तरहकी नीतिको जाननेवाला, विमल हाथीके वाहनवाला और स्वभावसे ही स्वरूपवान वह सबसे अधिक या ऊँचा हुआ। कुछ समय बीतनेके बाद, चारित्रभ्रष्ट यतियों की तरह, कल्प-वृक्षोंका प्रभाव मन्दा पड़ने लगा। मानो दुर्दैवने फिरसे दूसरे लगाये हों, इस तरह मद्यांग कल्पवृक्ष अल्प और विरस मद्य विलम्बसे देने लगे। भृतांग कल्पवृक्ष, मानो दें कि नहीं, ऐसा विचार करते हो और परवश हों इस तरह, माँगनेपर भी विलम्बसे पात्र देने लगे। तूर्यांग कल्पवृक्ष, बेगारमें पकड़े हुए गन्धर्वों की तरह, जैसा चाहिये वैसा, गाना नहीं करते थे। बारम्बार प्रार्थना करनेपर भी, दीपशिखा और ज्योतिष्क कल्पवृक्ष, जिस तरह दिनमे दीपक की शिखा प्रकाश नहीं करती; उसी तरह वैसा प्रकाश नहीं करते थे। चित्रांग कल्पवृक्ष भी, दुर्वि-नीत सेवककी तरह, इच्छा करतेही तत्काल, फूलोंकी मालाएँ नहीं देते थे। चित्ररस कल्पवृक्ष, दानकी इच्छा-क्षीण सदा-

व्रत बाँटनेवालेकी तरह, चार प्रकारका विचित्र रसवाला भोजन, पहले जितना नही देते थे। मण्यंग कल्पवृक्ष, मानो फिर किस तरह वापस मिलेगा, ऐसी चिन्तासे आकुल होगये हो इस तरह, पहलेके प्रमाण से, गहने या ज़ेवर नहीं देते थे। मन्दव्युत्पत्ति शक्तिवाले कवि जिस तरह अच्छी कविता देरमे कर सकते हैं; उसी तरह गेहाकार कल्पवृक्ष घर देनेमे देर करने लगे। क्रूर ग्रहोसे अवग्रहको प्राप्त हुआ मेघ जिस तरह थोड़ा थोड़ा जल देता है; उसी तरह अनग्न वृक्ष हाथ रोक-रोककर वस्त्र देने लगे। कालके ऐसे प्रभावसे, युगलियोंको भी, देहके अवयवोंकी तरह, कल्पवृक्षोंपर ममता होने लगी। एक युगलियेके स्वीकार किये हुए कल्पवृक्षका दूसरे युगलियेके आश्रय करनेसे, पहले स्वीकार करनेवाले का बहुत भारी पराभव होने लगा। इसलिए आपसके ऐसे पराभव को सहन करने मे असमर्थ युगलियोने अपनेसे अधिक विमलवाहन को अपने स्वामी मान लिया। जाति-स्मरणसे नीतिज्ञ विमलवाहनने, जिस तरह बूढ़ा आदमी अपने नातेदारोंको धन बाँट देता है उसी तरह युगलियोंको कल्पवृक्ष बाँट दिये। दूसरे के कल्पवृक्ष की इच्छासे मर्य्यादा भंग करनेवालों के शिक्षा देनेके लिए उसने "हाकार नीति" प्रकट की। जिस तरह समुद्र की भरतीका जल मर्य्यादा उल्लङ्घन नहीं करता; उसी तरह 'हा! तूने बुरा काम किया' ऐसें शब्दसे सिखाये हुए युगलिये उसकी मर्य्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते थे। डण्डे या लकड़ी की चोट सहना भला, पर हाकार शब्दसे

किया गया तिरस्कार भला नहीं।' इस तरह वे युगलिये मानने लगे। उस विमलवाहन की उम्रके जब छः महीने बाक़ी रह गये, तब उसकी चन्द्रयशा नाम की स्त्रीसे एक जोड़ली सन्तान पैदा हुई। वे दोनों जोड़ले असख्य पूर्वके आयुष्यवाले, प्रथम संस्थान और प्रथम संहननवाले, श्यामवर्ण और आठ सौ धनुष प्रमाण ऊँचे शरीरवाले थे। माता-पिताने उनके चक्षुष्मान और चन्द्रकान्ता नाम रक्खे। साथ-साथ पैदा हुए लता और वृक्ष-की तरह वे साथ-साथ बढ़ने लगे। छः मास तक अपने दोनों बच्चोंका पालन-पोषण करके, जरा और रोग बिना मरकर, विमलवाहन सुवर्णकुमार देवलोकमें और उस की स्त्री चन्द्रयशा नागकुमार देवलोकमें उत्पन्न हुई; क्योंकि चन्द्रमाके अस्त होनेपर चन्द्रिका नहीं रहती। वह हाथी भी अपनी उम्र पूरी कर के, नागकुमार निकायमे, देवरूपमें पैदा हुआ; क्योंकि कालका माहात्म्यही ऐसा है।

दूसरा तीसरा कुलकर—राजा।

इसके बाद चक्षुष्मान भी, अपने पिता विमलवाहन की तरह, हाकार नीतिसे ही युगलियों को मर्य्यादाके अन्दर रखने लगा। अन्त समय निकट होनेपर, चक्षुष्मान और चन्द्रकान्ता के यशस्वी और सुरूपा नामकी युगधर्मि जोड़ली सन्तान उत्पन्न हुई। वे भी वैसेही संहनन और वैसेही संस्थानवाले तथा किसी क़दर कम उम्रवाले हुए वय और बुद्धि की तरह, वे दोनों

अनुक्रम से बढ़ने लगे। साढ़े सात सौ धनुष प्रमाण ऊंचे शरीर वाले और सदा साथ-साथ घूमनेवाले वे दोनों तोरण-स्तम्भ के विलास को धारण करते थे। मृत्यु हो जानेपर, चक्षुष्मान सुवर्णकुमारमें और चन्द्रकान्ता नागकुमारमें उत्पन्न हुई। माता-पिता का देहान्त होनेपर, यशस्वी अपने पिता की तरह, जिस तरह गोपाल गायों का पालन करता है उसी तरह, सब युगलियाँ का लीला से पालन करने लगा। परन्तु उसके ज़माने में, मदमाता हाथी जिस तरह अङ्कुश को नहीं मानता है; उसका उल्लङ्घन करता है, उसी तरह युगलिये भी अनुक्रमसे 'हाकार दण्ड' का उल्लङ्घन करने लगे। तब यशस्वीने उन लोगोको 'माकार दण्ड' से शिक्षा देना शुरू किया। क्योंकि जब एक दवा से रोग आराम न हो, तब दूसरी दवाकी व्यवस्था करनी ही चाहिये। वह महामति यशस्वी हलका या थोड़ा अपराध करनेवाले को दण्ड देनेमे हाकार नीतिसे काम लेने लगा। मध्यम अपराध करनेवाले को दण्डित करने में दूसरी 'माकार नीति' का प्रयोग करने लगा और भारी अपराध करनेवालोंपर दोनों ही नीतियो-का इस्तेमाल करने लगा। यशस्वी और सुरूपा की जब थोड़ी सी उम्र बाक़ी रह गई; तब जिस तरह बुद्धि और विनय साथ-साथ उत्पन्न होते हैं; उसी तरह उनसे एक जोड़ली सन्तान पैदा हुई। पुत्र चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था, इसलिये माँ-बापने उसका नाम अभिचन्द्र रक्खा और पुत्री प्रियङ्गुलता का प्रतिरूप थी, इसलिये उस का नाम प्रतिरूपा रखा। वे अपने

माता-पिता से कुछ कम उम्रवाले और साढ़े छै सौ धनुष ऊँचे शरीरवाले थे। एकत्र मिले हुए शमी और अश्वत्थ—पीपल—वृक्षके समान वे साथ-साथ बढ़ने लगे। गंगा और यमुना के पवित्र प्रवाह के मिले हुए जलकी तरह वे दोनों निरन्तर शोभने लगे। आयु पूरी होनेपर यशस्वी उदधिकुमार में उत्पन्न हुआ और सुरूपा उसके साथ ही काल करके नागकुमार में पैदा हुई।

चौथा कुलकर—राजा।

अभिचन्द्र भी अपने बाप की तरह, उसी स्थिति और उन दोनों नीतियों से युगलियों का शासन करने लगा। इसके बाद, जिस तरह अनेक प्राणियों के इच्छित चन्द्रमा को रात्रि जनती है; उसी तरह प्रान्त अवस्था में प्रतिरूपाने एक जोड़ली सन्तान जनी। माता-पिताने पुत्रका नाम प्रसेनजित रखा और पुत्री सबके नेत्रों-की प्यारी लगती थी, इससे उसका नाम चक्षुःकान्ता रखा। वे अपने माँ-बापसे कम उम्रवाले, तमाल वृक्षके समान श्याम कान्तिवाले, बुद्धि और उत्साह की तरह, साथ-साथ बढ़ने लगे। वे छै सौ धनुष प्रमाण शरीर को धारण करनेवाले और *विषुवत कालमें जिस तरह दिन और रात एक समान होते हैं; उसी तरह एकसी कान्तिवाले हुए। उनके पिता अभिचन्द्र, पञ्चत्व को प्राप्त होकर—देहत्याग कर, उदधिकुमार में पैदा हुए और प्रतिरूपा नागकुमार में उत्पन्न हुई।

---

* तुल और मेष राशि पर जब सूर्य आता है, तब उसे "विषुवत्"काल कहते हैं।

में, चन्द्रका योग होते ही, वज्रनाभ का जीव, तेतीस सागरोपम आयु भोगकर, सर्व्वार्थ सिद्ध विमानसे च्यवकर, जिस तरह मानसरोवरसे गङ्गातटमें हंस उतरता है उसी तरह, नाभि कुलकर की स्त्री—मरुदेवा—के पेटमें अवतीर्ण हुआ। जिस समय प्रभु गर्भमें आये उस समय, प्राणिमात्रके दुःखका विच्छेद होनेसे, त्रिलोकी में सुख हुआ और सर्वत्र बड़ा प्रकाश फैला। जिस रातको देवलोकसे च्यवकर प्रभु माता के गर्भमें आये, उस रातको निवास-भवनमें सोई हुई मरुदेवाने चौदह महास्वप्न देखे। उन्होंने उन स्वप्नोंमें से पहले स्वप्नमे एक उज्ज्वल वृषभ या बैल देखा, जिसके कन्धे पुष्ट थे, पूँछ लम्बी और सरल थी और जो सोनेके घुंघुरुओं की माला पहने हुए बिजली समेत शरदृऋतु के मेघके समान था। दूसरे स्वप्नमें उन्होंने—सफेद रङ्गका, क्रमोन्नत, निरन्तर झरते हुए मदकी नदीसे रमणीय, चलते हुए कैलाश-जैसा—चार दाँत वाला हाथी देखा। तीसरे स्वप्नमें उन्होंने—पीले नेत्र, दीर्घ जिह्वा और चपल अयालों वाला, शूरवीरोंकी जयपाताकाकी तरह दुम हिलाता हुआ—केशरीसिंह देखा। चौथे स्वप्नमें उन्होंने—कमलनयनी पद्म-निवासिनी अगल-बगल अपनी सूँड़ोंमें पूर्ण कुम्भ उठाये हुए दिग्गजोंसे शोभायमान—लक्ष्मी देखी। पाँचवें स्वप्नमें उन्होंने—देववृक्षोंके फूलोंसे गुथी हुई, सीधी और धनुर्धारियोंके चढ़ाये हुए धनुषके समान लम्बी—फूलोंकी माला देखी। छठे स्वप्नमें उन्होंने—अपने मुखके प्रतिबिम्बके समान, आनन्दका कारण रूप, अपने

जिस रातको देवलोकसे च्यवकर प्रभु माताके गर्भमें आये उस रातको निवास-भवनमें
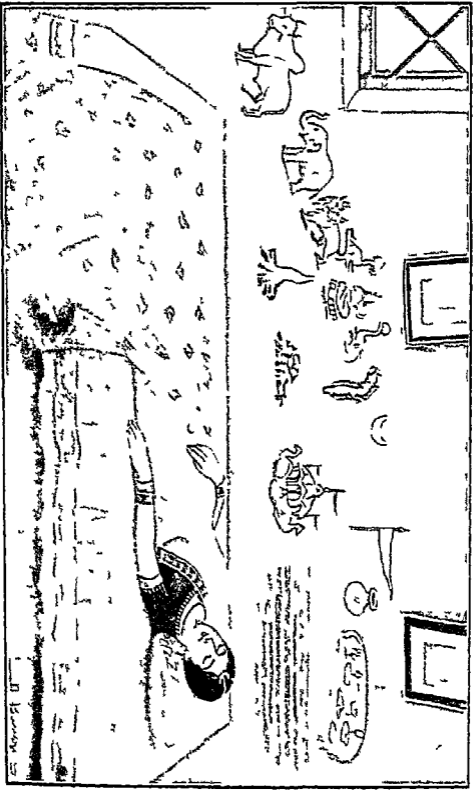
कान्ति-समूहसे दिशाओंको प्रकाशित किये हुए—चन्द्रमण्डल देखा। सातवें स्वप्नमें उन्होंने—रातमेंभी तत्काल दिनका भ्रम करने वाला, सम्पूर्ण अन्धकारको नाश करने वाला और फैलती हुई किरणों वाला—सूर्य्य देखा। आठवें स्वप्नमें उन्होंने—चपल कानोंसे शोभायमान, हाथीके जैसी घूँघुरियोंकी लड़ीके भारवाली चञ्चल पताका से सुशोभित—महाध्वजा देखी। नवें स्वप्नमें उन्होंने—खिले हुए कमलोंसे अर्चित समुद्रमथनसे निकले हुए सुधा-कुम्भ या-अमृत-घटके समान—जलसे भरा हुआ सोनेका घड़ा देखा। दसवें स्वप्नमें उन्होंने—आदि अर्हन्तकी स्तुतिके लिए अनेक मुख वाला हुआ हो ऐसा, भौंरोके गुञ्जार वाला और अनेक कमलोंसे शोभित—पद्माकर या पद्मसरोवर देखा। ग्यारहवें स्वप्नमें उन्होंने—पृथ्वी पर फैला हुआ, शरद ऋतुके मेघकी लीलाको चुराने वाला और और उत्ताल तरङ्ग-समूहसे चित्तको आनन्दित करने वाला—क्षीरनिधि या क्षीरसागर देखा। बारहवें स्वप्नमें उन्होंने एक प्रभूत कान्तिमान् विमान देखा। ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान्‌के देवत्वपनेमें उसमें रहनेके कारण वह पूर्वस्नेहके कारण वहाँ आया हो। तेरहवें स्वप्नमें उन्होंने किसी कारणसे एकत्र हूए तारों के समूह और एकत्र हुई निर्मल कान्तिके समूह-जैसा रत्नपुञ्ज आकाशमें देखा। चौदहवें स्वप्नमें उन्होंने, त्रिलोकीके तेजस्वी पदार्थोंके पिण्डीभूत हुए तेजके समान प्रकाशमान्, निर्धूम अग्निको मुखमें घुसते देखा। रात्रिके विराम-समय, स्वप्नके अन्तमें, प्रफुल्ल-मुखी स्वामिनी मरुदेवा कमलिनीको तरह जाग उठीं। मानो

हृदयके भीतर खुशी समाती न हो, इसलिये वह स्वप्न-सम्बन्धी सारे वृत्तान्तको उद्गार करता हो, इस तरह यथार्थ हाल उन्होंने नाभि- राजको कह सुनाया। नाभिराजने अपने सरल स्वभावके अनुसार स्वप्नका विचार करके—'तुम्हारे उत्तम कुलकर-पुत्र होगा' ऐसा कहा।

मरुदेवा माताके पास इन्द्रका आगमन

स्वप्नफल कथन।

उस समय, स्वामीकी मात्र कुलकरपनसे ही सम्भावना की, यह अयुक्त है, अनुचित है,—ऐसे विचारकरके मानो कोपायमान हुए हों, इस तरह इन्द्रोंके आसन कम्पायमान हुए। हमारे आसन क्यों कम्पायमान हुए, इसका ख़याल करते ही—इस बातकी खोज दिमाग़में करतेही, भगवानके च्यवनकी बात इन्द्रोंको ध्यानमे आगई—वे समझ गयेकि, भगवान्का च्यवन हुआ है। इसी समय तत्काल इशारा किये हुए मित्रोंकी तरह, सब इन्द्र इकट्ठे होकर, भगवान्की माताको स्वप्नका अर्थ बतानेके लिए वहाँ आये। वहाँ आतेही हाथ जोड़कर, जिस तरह वृत्तिकार सूत्रके अर्थको स्पष्ट करता है— सूत्रका खुलासा मतलब समझाता है, उसी तरह वे विनय-पूर्व्वक स्वप्नके अर्थको स्पष्ट करने लगे—अर्थात् स्वप्नका फल या ख़्वाब की तावीर कहने लगे:—

"हे स्वामिनी! आपने स्वप्नमे पहले वृषभ—बैल देखा; इस कारण आपका पुत्र मोहरूपी पंक—कीचमें फँसे हुए धर्म रूपी रथका उद्धार करनेमें समर्थ होगा। हाथी देखनेसे आपका पुत्र

पुरुषोंमें सिंहरूप, धीर, निर्भय, शूरवीर और अस्खलित पराक्रमवाला होगा। हे देवि! आपने स्वप्नमें लक्ष्मी देखी, इससे आपका पुरुषश्रेस्ठ पुत्र त्रिलोकी की साम्राज्य-लक्ष्मीका पति होगा। आपने फूलमाला देखी है; इससे आपका पुत्र पुण्यदर्शन स्वरूप होगा और समस्त जगत् उसकी आज्ञाको मालाकी तरह मस्तक पर वहन करेगा। हे जगत्-माता! आपने स्वप्नमे पूर्ण चन्द्र देखा है, इससे आपका पुत्र मनोहर और नयन-सुखकर यानी नेत्रोंको आनन्द देने वाला होगा—जो उसके दर्शन करेगा उसेही सूख होगा—दर्शन करने वालेके नेत्रोंकी दर्शनसे तृप्ति न होगी। आपने सूर्य देखा, इस लिये आपका पुत्र मोह-रूपी अन्धकारको नाश करके, जगत्में प्रकाशको फैलाने वाला होगा। वह संसार के अज्ञान-अन्धकारको नाश करके ज्ञानका प्रकाश फैलायेगा। आपने महाध्वजा देखी, इसलिये अपका पुत्र आपके वंशमें महान् प्रतिष्ठावाला और धर्मध्वज होगा। हे माता! आपने स्वप्नमें पूर्ण कुम्भ देखा, इससे आपका पुत्र अतिशयोंका पूर्ण पात्र होगा; अर्थात् सर्व अतिशययुक्त होगा। आपने पद्माकर या पद्म-सरोवर देखा, इससे आपका पुत्र संसार रूपी अटवीमे पड़े हुए मनुष्योंके पाप-तापको नाश करनेवाला होगा। आपने क्षीरसागर देखा इस से आपके पुत्रके अधृष्य होनेपर भी, उसके पास सब कोई जा सकेगें। हे देवि! आपने स्वप्नमें अलौकिक विमान देखा, इससे आपका पुत्र वैमानिक देवोके लिये भी सेव्य होगा; अर्थात् वैमानिक देव भी उसकी सेवकाई करेंगे। आपने प्रकाशमान रत्न-पुञ्ज देखा,

इसलिये आपका पुत्र सर्व गुण रूप रत्नोंकी खानके समान होगा, और आपने अपने मुँहमें जाज्वल्यमान अग्निको प्रवेश करते देखा, इससे आपका पुत्र अन्य तेजस्वियोंके तेजको दूर करने वाला होगा। हे स्वामिनी! आपनेजो चौदह स्वप्न देखे हैं, वे इस बात की सूचना देते हैं, कि आपका आत्मज—पुत्र—चौदह भुवनका स्वामी होगा। इस तरह स्वप्नार्थ कह कर, और मरुदेवा माताको प्रणाम करके, सब इन्द्र अपने-अपने स्थानोंको चले गये। स्वामिनी मरुदेवा भी स्वप्नार्थ-सुधासे सिञ्चित होनेसे उसी तरह उल्लसित और प्रसन्न हुई, जिस तरह वर्षा कालके जलसे सींची हुई पृथ्वी उल्लसित और हर्षित होती है; अर्थात् बरसातके पानीसे ज़मीन जिस तरह तरो-ताज़ा और हरीभरी होती है; उसी तरह मरुदेवा भी स्वप्नफल या ख़्वाबकी ताबीर सुननेसे खूब खुश हुई।

मरुदेवाकी गर्भयुक्त शरीर-स्थिति।

अब, जिस तरह मेघमाला सूर्यसे, सीप मोती से और गिरि-कन्दरासिंह से शोभा देती है; उसी तरह महादेवी मरुदेवा उस गर्भ से शोभित होने लगीं। यद्यपि वे स्वभावसे ही प्रियंगुलता के समान श्यामवर्ण थीं; तथापि शरद ऋतु से मेघमाला जिस तरह पाण्डुवर्ण हो जाती है; उसी तरह वे गर्भके प्रभाव से पाण्डुवर्ण होने लगीं। जगत् के स्वामी हमारा दूध पीवेंगे, इस हर्ष से ही मानो उन के स्तन पुष्ट और उन्नत होने लगे। मानो भगवान् का मुँह देखने के लिये पहलेसे ही उत्कंठित हों, इस तरह

उनके नेत्र विशेष विकार को प्राप्त होगये; अर्थात् भगवान् का मुँह देखने की उत्कंठा और लालसा से उनकी आँखों में ख़ास क़िस्म की तब्दीली होगई। उनका नितम्ब-भाग यानी कमर के पीछे का हिस्सा यद्यपि पहलेसे ही विशाल था; तथापि जिस तरह वर्षाकाल बीतने के बाद नदी के किनारे की ज़मीन विशाल हो जाती है; उसी तरह और भी विशाल होगया। उनकी चाल यद्यपि स्वभावसे ही मन्दी थी, लेकिन अब मतवाले हाथी की तरह औरभी मन्दी होगई। सवेरे के समय जिस तरह विद्वान् आदमी की बुद्धि बढ़ जाती है, और गरमी की ऋतु में जिस तरह समुद्र की वेला बढ़ जाती है; उसी तरह गर्भावस्था में उन की लावण्य-लक्ष्मी बढ़ने लगी। यद्यपि उन्होंने त्रिलोकी के असाधारण गर्भको धारण कर रखा था; तथापि उन्हें ज़रा भी कष्ट या खेद न होता था; क्योंकि गर्भ में रहनेवाले अर्हन्तो का ऐसा ही प्रभाव होता है। जिस तरह पृथ्वी के भीतरी भाग में अंकुर बढ़ते हैं; उसी तरह मरुदेवा माता के पेट में वह गर्भ भी, गुप्तरीति से, धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जिस तरह शीतल जलमे हिम-मृत्तिका या बर्फ डालने से वह औरभी शीतल हो जाता है; उसी तरह गर्भके प्रभाव से, स्वामिनी मरुदेवा औरभी अधिक विश्ववत्सला या जगत् की प्यारी हो गईं। गर्भमें आये हुए भगवान् के प्रभाव से, युग्म-धर्मी लोगों में, नाभिराजा अपने पिता से भी अधिक माननीय हो गये। शरद् ऋतु के योग या मेल से जिस तरह चन्द्रमा की

किरणों का तेज और भी अधिक हो जाता है ; उसी तरह सारे कल्पवृक्ष और भी अधिक प्रभावशाली हो गये। जगत् में तिर्यंच और मनुष्यों के आपस के वैर शान्त होगये ; क्योंकि वर्षा ऋतुके आने से सर्वत्र सन्ताप की शान्ति हो जाती है।

भगवान् आदि नाथका जन्म।

इस तरह नौ महीने और साढे आठ दिन बीतनेपर, चैत मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन, जब सब ग्रह उच्च स्थानमें आये हुए थे और चन्द्रमा का योग उत्तराषाढ़ा नक्षत्रसे हो गया था, तब महादेवा मरुदेवाने युगल-धर्मी पुत्रको सुखसे जना। उस समय मानो हर्ष को प्राप्त हुई हों, इस तरह दिशायें प्रसन्न हुईं और स्वर्गवासी देवताओं की तरह लोग बड़ी खुशी से तरह-तरह की क्रीड़ाओ अथवा खेल-तमाशो में लग गये। उपपाद शय्या (देवताओं के पैदा होने की शय्या)में पैदा हुए देवता की तरह, जरायु और रुधिर प्रभृति कलङ्कसे वर्जित, भगवान् बहुत ही सुन्दर और शोभायमान दीखने लगे। उस समय जगत् के नेत्रों को चमत्कृत करनेवाला और अन्धकार को नाश करनेवाला बिजलीके प्रकाश-जैसा प्रकाश तीनों लोक में हुआ। नौकरों-के न बजानेपर भी, मेघवत् गम्भीर शब्दवाली, दुंदुभी आकाशमें बजने लगी। उस समय ऐसा जान पड़ने लगा, मानो स्वर्ग

खुशी के मारे गरज रहा है। उस समय, क्षणमात्र के लिए, नरक-वासियों को भी ऐसा अपूर्व सुख हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। फिर तिर्यञ्च, मनुष्य और देवताओं को सुख हुआ हो, इसमें तो कहना ही क्या ? ज़मीनपर मन्द-मन्द चलता हुआ पवन, नौकरों की तरह, ज़मीन की धूल को साफ करने लगा। बादल चेलक्षेप और सुगन्धित जल की वृष्टि करने लगे; इससे अन्दर बीज बोये हुए की तरह पृथ्वी उच्छ्वास को प्राप्त होने लगी।

दिक् कुमारियोंका जन्मोत्सव मनाना।

इस समय अपने आसन चलायमान—कम्पित होने से, भोङ्कंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता—नाम की आठ दिक्-कुमारियाँ, तत्काल, अधःलोक से, भगवान् के सूतिका-गृह या सोहर में आईं। आदि तीर्थङ्कर और तीर्थङ्कर की माता की तीन बार प्रदक्षिणाकर, वे इस प्रकार से कहने लगीं:—'हे जगत्माता! हे जगत्-दीपक को जननेवाली देवि! हम आप को नमस्कार करती हैं। हम अधःलोक में रहनेवाली आठ दिक्कुमारियाँ हैं। हम, अवधिज्ञान से, पवित्र तीर्थङ्कर के जन्म की बात जानकर, उनके प्रभाव से, उनकी महिमा करने के लिए यहाँ आई हैं; इसलिये आप हम से डरियेगा नहीं।' यह कहकर, ईशान भाग में रहनेवालियोंने, प्रसन्न होकर, पूरब दिशा की तरफ मुँह और

हज़ार खम्भोंवाला सूतिका गृह—ज़च्चाघर बनाया। इसके बाद संवर्त नामक वायु से सूतिकागार या ज़च्चा-घरके चारों तरफ कोस भर तक के कंकर पत्थर और काँटे दूर कर दिये। संवर्त वायु का संहरण करके और भगवान् को प्रणाम करके, वे गीत गाती हुई उनके पास बैठ गईं।

इस तरह आसन के काँपने से प्रभु का जन्म जानकर, मेघंकरा, मेघवती, सुमेधा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और वलादिका नाम की, मेरु पर्वतपर रहनेवाली, उर्ध्व-लोक-वासिनी आठ दिक्कुमारियाँ वहाँ आईं। उन्होंने जिनेश्वर और जिनेश्वर की माता को नमस्कार-पूर्वक स्तुतिकर, भादों के महीने की तरह, तत्काल, आकाश में मेघ उत्पन्न किये। उन मेघों से सुगन्धित जल बरसाकर, सूतिकागार के चारो तरफ चार कोस तक, चन्द्रिका जिस तरह अँधेरे का नाश कर देती है उसी तरह, धूल का नाश कर दिया। घुटनोंतक, पाँच रङ्ग के फूलों की वृष्टि से, मानो तरह-तरह के चित्रोंवाली ही हो इस तरह, पृथ्वी को शाभामन्ती बना दी। पीछे तीर्थङ्कर के निर्मल गुण गान करती हुई एवं हर्षोत्कर्ष से शोभा पाती हुई वे अपने योग्य स्थानपर बैठ गईं।

पूर्व रुचकाद्रि पर्वत पर रहनेवाली नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, और अपराजिता नाम की आठ दिशा कुमारियाँ भी मानों मन के साथ स्पर्द्धा करनेवाले हों ऐसे

वेगवान विमानों में बैठकर वहाँ आईं। स्वामी और मरुदेवा माता को नमस्कार कर, पहले की तरह कह, अपने हाथों में दर्पण ले, मांगलिक गीत गाती हुई पूर्व दिशा की तरफ खड़ी रहीं।

दक्षिण रुचकाद्रि पर्वतपर रहनेवाली समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नाम की आठ दिशा-कुमारियाँ प्रमोद-प्रेरित की तरह प्रमोद करती हुई वहाँ आईं और पहले की दिक्कुमारियो की तरह, जिनेश्वर और उन की माता को नमस्कार करके, अपना कार्य निवेदन कर, हाथ में कलश लेकर, दक्षिण दिशा में गीत गाती हुई खड़ी रहीं।

पश्चिम रुचकाद्रि पर्वतपर रहनेवाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी पद्मावती, एकनासा, अनवमिका, भद्रा और अशोका नाम की आठ दिक्-कुमारियाँ, भक्ति से एक दूसरे को जीत लेना चाहती हों इस तरह, खूब जल्दी-जल्दी आईं और पहले-वालियों की तरह भगवान् और माता को नमस्कार करके विज्ञ-प्ति की और पंखा हाथ में लेकर गीत गाती हुई पश्चिम दिशा मे खड़ी रहीं।

उत्तर रुचकाद्रि पर्वत से अलम्बुसा, मिश्रकेशी, पुण्डरीक, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ह्री नाम की आठ दिक्कुमा-रियाँ वायु-केसे रथ पर चढ़कर, अभियोगिक देवताओ के साथ, जल्दी से वहाँ आईं और भगवान् तथा उन की माता को

नमस्कार कर, अपना कार्य जना, हाथ में चँवर ले गीत गाती हुई पश्चिम दिशामें खड़ी होगई।

विदिशाओं के रुचक पर्वत से चित्रा, चित्रकनका, सतेरा सूत्रामणि नाम्नी चार दिक्कुमारियाँ भी आई और पहलेवालियों की तरह जिनेश्वर और माता को नमस्कार कर, अपना काम जना; हाथ में दीपक ले ईशान प्रभृति विदिशाओं में खड़ी रहीं।

रुचक द्वीप से रूपा, रूपासिका, सुरूपा, और रूपकावती नाम की चार दिक्कुमारिकायें भी वहाँ तत्काल आईं। उन्होंने भगवान् का नाभि-नाल चार अङ्गुल छोड़कर छेदन किया। इसके बाद वहाँ खड्डा खोद, उसमें उसे डाल, गड्ढे को रत्न और वज्र से पूर दिया और उसके ऊपर दूब से पीठिका बाँधी। इसके बाद भगवान् के जन्म-घर के लगता-लगत, पूरब-दक्खन और उत्तर दिशाओं में, उन्होंने लक्ष्मी के घररूप तीन कदलीगृह या केले के घर बनाये। उनमें से प्रत्येक घर में उन्होंने विमान में हों ऐसे विशाल और सिंहासन से भूषित चतुःशाल या चौक बनाये। फिर जिनेश्वर को अपनी हस्ताञ्जलि में ले, जिन माता को चतुर दासी या होशियार टहलनी की तरह, हाथ का सहारा देकर, चतुःशाल या चौक में ले गईं। वहाँ दोनों को सिंहासनपर बिठाकर, बूढ़ी मालिश करनेवाली की तरह, वे खुशबूदार लक्षपाक तेल की मालिश करने लगीं। तैलके अमन्द आमोद की सुगन्ध से दिशाओं को प्रमुदित करके, उन्होंने उन दोनोंके दिव्य उबटन लगाया। फिर पूर्व दिशा की चतुःशाल में ले जाकर,

सिंहासनपर बिठाकर, अपने मन के जैसे साफ निर्मल पानी से, उन्होंने दोनों को स्नान कराया। सुगन्धित कषाय वस्त्रों से उनका शरीर पोंछकर, गोशीर्ष चन्दन के रस से उन को चर्चित किया और दोनों को दिव्य वस्त्र और बिजली के प्रकाश के समान विचित्र आभूषण पहनाये। इसके बाद भगवान् और उन की जननी को उत्तर चतुःशाल में ले जाकर सिंहासनपर बिठाया। वहाँ उन्होंने अभियोगिक देवताओं से, क्षुद्र हिमवंत पर्वत से, शीघ्र ही गोशीर्ष चन्दन की लकड़ियाँ मँगवाई। अरणीके दो काठों से अग्नि उत्पन्न करके, होम-योग्य बनाये हुए गोशीर्ष चन्दन के काठ से, उन्होंने हवन किया। हवन की आग से जो भस्म तैयार हुई, उस की उन्होने रक्षा-पोटलियाँ बनाकर दोनों के हाथो मे बाँध दी। प्रभु और उन की जननी दोनो ही महामहिमान्वित थे, तोभी दिक्कुमारियाँ भक्ति के आवेश में ये सब कर रही थीं। पीछे 'आप पर्वत की जैसी आयु-वाले होओ'—प्रभु के कान में ऐसा कहकर, पत्थर के दो गोलों-का उन्होंने आस्फालन किया। इसके बाद प्रभु और उन की जननी को सूतिका-भुवनमें पलँगपर सुलाकर, वे मांगलिक गीत गाने लगीं।

सौधर्मेन्द्रका भगवान्‌के पास आना और उनकी स्तुति करना।

अब उस समय, लग्न-काल में जिस तरह सब बाजे एक

साथ बज उठते हैं ; उसी तरह स्वर्ग की शाश्वत घण्टियाँ बड़े ज़ोरो से बज उठीं। पर्वतों की चोटियाँ के समान अचल और अडिग्ग इन्द्रों के आसन, संभ्रम से हृदय काँपता है इस तरह, काँप उठे। उस वक्त सौधर्म-देवलोकाधिपति सौधर्मेन्द्र के नेत्र काँपनेके आटोप से लाल होगये। ललाट-पट्टपर भृकुटी चढ़ानेसे उनका चेहरा विक्राल होगया। भोतरी क्रोधरूपी अग्नि की शिखा की तरह उनके होठ फड़कने लगे। मानो आसन को स्थिर करने के लिए—उस की कँपकँपी बन्द करनेके लिए—वे एक पाँव को ऊँचा करने लगे और 'आज यमराज ने किसको चिट्ठी दी है ? आज मौत का वारण्ट किसपर जारी हुआ है ? आज किसका काल पुकार रहा है ?' ऐसा कहकर, उन्होंने अपना—शूरातन रूप अग्नि को वायु-समान—वज्र ग्रहण करने की इच्छा की। इन्द्र को कुपित केशरीसिंह की तरह देखकर, मानो मूर्त्तिमान हो—ऐसे सेनापतिने आकर कहा;—हे स्वामि ! मुझ जैसे सिपाही के होते हुए, आप स्वयं आवेश में क्यों आते हैं ? हे जगत्पति ! आज्ञा कीजिये, मैं आप के किस शत्रु का मान मर्दन करूँ ?' उसी क्षण, अपने मन का समाधान कर, इन्द्रने अवधिज्ञान से देखा, तो उसे मालूम हो गया कि, आदि प्रभुका जन्म हुआ है। उसके क्रोधका वेग तत्काल हर्ष से गल गया, खुशीके मारे उसका गुस्सा फौरनही काफूर होगया। वृष्टिसे शान्त हुए दावानल वाले पवतकी तरह, इन्द्र शान्त हो गया। 'मुझे धिक्कार है जो मैंने ऐसा बिचार किया, मेरा दुष्कृत मिथ्या हो' यह कहकर उसने इन्द्रास-

न त्याग दिया। सात आठ क़दम भगवान्‌के सामने चलकर, मानो दूसरे रत्न-मुकुटकी लक्ष्मीको देने वाली हो ऐसी कराञ्जलिको मस्तकपर स्थापन करके, जानु और मस्तक-कमलसे पृथ्वीको स्पर्श करते हुए प्रभुको नमस्कार किया और रोमाञ्चित होकर उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा:— " हे तीर्थनाथ! हे जगत् को सनाथ करने वाले! हे कृपारसके समुद्र! हे श्री नाभिनन्दन! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे नाथ! नन्दन प्रभृति तीन बग़ीचोंसे जिस तरह मेरु पर्वत शोभित होता है; उसी तरह मति प्रभृति तीन ज्ञानों सहित पैदा होने से आप शोभते है। हे देव! आज यह भरत क्षेत्र स्वर्गसे भी अधिक शोभायमान है; क्योंकि त्रैलोक्यके मुकुट-रत्न-सदृश आपने उसे अलंकृत किया है। हे जगन्नाथ! जन्म कल्याणसे पवित्र हुआ आजका दिन, संसारमें रहूँ तब तक, आपकी तरह, वन्दना करने योग्य है। आपके इस जन्मके पर्वसे नरकवासियोको सुख हुआ है। क्योंकि अर्ह-न्तोंका हृदय किसके सन्तापको हरने वाला नही होता? इस जम्बूद्वीपस्थित भरत-क्षेत्र या भारतवर्ष में निधानकी तरह धर्म नष्ट हो गया है, उसे अपने आज्ञा रुपी बीजसे फिर प्रकाशित कीजिये। हे भगवान्! आपके चरणोंको प्राप्त करके अब कौन संसार-सागरसे नहीं तरेगा? आपके पदपङ्कजोंकी कृपा होनेसे अब किसका भवसागरसे उद्धार न होगा? क्योंकि नावके योग से लोहा भी समुद्रके पार हो जाता है। हे भगवान्! वृक्ष-विहीन देशमें जिस तरह कल्पवृक्ष हो और मरुदेशमें

जिस तरह नदी का प्रवाह हो, उसी तरह इस भरतक्षेत्रमे लोगोंके पुण्यसे आपने अवतार लिया है।

सौधर्मेन्द्र का देवताओंको आदिनाथ भगवान् के जन्मकी खबर देना।

भगवान्‌के चरण कमलोंमें जानेकी तैयारी।

इस तरह देवलोकके इन्द्रने पहले भगवानकी स्तुति की और पीछे अपने सेनाधिपति नैगमिषी नामक देवको आज्ञा दी - "हे सेनापति! जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्ध-स्थित भरतक्षेत्रके मध्य-भूमि-भागमें, लक्ष्मीके निधि रूप, नाभिकुलकरकी पत्नी मरुदेवाके पेट-से, प्रथम तीर्थङ्करने पुत्र रूपसे जन्म लिया है। अतः उनके जन्म-स्नात्रके लिए सब देवताओंको बुलाओ।" इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर, उसने चौदह कोसके विस्तार और अद्भुत आवाज़वाली सुघोषा नामकी घण्टी तीन वार वजाई। मुख्य गाने वालेके पीछे जिस तरह और गवैये गाते हैं; उसी तरह सुघोषा घण्टी की आवाज़ होने पर दूसरे सब विमानोंकी घण्टियाँभी उसके साथ-साथ वजने लगीं। कुलपुत्रोंसे जिस तरह उत्तम कुलकी वृद्धि होती है; उसी तरह उन सब घण्टियोंकी आवाज़ दिशाओं-विदिशाओंमें गूँज-गूँज कर वढ़ गई। देवता लोग प्रमादमें आसक्त थे बत्तीस लाख विमानो में वह शब्द तालवाकी भाँति अनुरणन रूप से बढ़ गया। देवता लोग प्रमादमें आसक्त थे, ग़फ़लतमें पड़े हुए थे, घण्टियोंकी घोर ध्वनि सुनकर मूर्च्छित और बेहोश

होगये और 'यह क्या होता है' ऐसे संभ्रममें पड़कर सावधान होने और चैतन्य लाभ करने लगे। इस तरह सावधान हुए देवोंको उद्देश करके, इन्द्रके सेनापतिने, मेघवत वाणीसे इस प्रकार कहा— 'हे देवताओ ! जिस इन्द्रका शासन अनुलंध्य है, जिस सुरपतिकी आज्ञाके विरुद्ध कोई भी चलनेका साहस कर नहीं सकता; जिन देवराजके हुक्म के ख़िलाफ़ कोईभी चूँ नहीं कर सकता, जिस स्वर्गाधिपतिके आदेशके विपरीत चलनेकी किसीमें भी क्षमता और सामर्थ्य नहीं, वही वृत्तारि देवाधिपति इन्द्र आपलोगोंको देवी प्रभृति परिवार सहित आज्ञा देते हैं, कि जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्ध भरतखण्डके मध्य भागमें, कुलकर नाभिराजके कुलमे, आदि तीर्थङ्कर भगवान् ने जन्म लिया है। उन्हीं भगवान्‌के जन्म-कल्याणका महोत्सव मनानेके लिए हम लोग वहाँ जाना चाहते हैं। आप लोग भी सपरिवार वहाँ चलनेके लिए शीघ्र शीघ्र तैयार होकर हमारे पास आजायँ; इस शुभकाममें विलम्ब न करें; क्योंकि इससे उत्तम शुभ कार्य और नहीं है।' इस आज्ञाके सुनतेही अनेक देवता तो भगवान्‌की भक्ति और प्रीतिसे खिंचकर, वायुके सन्मुख वेगसे जाने वाले हिरनकी तरह, चल खड़े हुए। कितनेही, चकमकसे आकर्षित होने वाले लोहेकी तरह, इन्द्रकी आज्ञासे आकर्षित होकर या खिंचकर रवाना होगये। कितने ही, नदियो के वेगसे दौड़नेवाले जल-जीवोंकी तरह, अपनी अपनी घरवालियो के उत्साहित और उल्लसित करने एवं ज़ोर देनेसे चल पड़े और

कितने ही वायुके आकर्षणसे गन्धके चलनेकी तरह, अपने मित्रोंके आकर्षणसे अपने अपने घरों से चल दिये। इस तरह अपने अपने सुन्दर विमानों और अन्य वाहनोंसे, मानो दूसरा स्वर्ग हो इस तरह, आकाशको सुशोभित करते हुए देवराज इन्द्रके पास आकर इकट्ठे होगये।

पालक विमानकी रचना।

उस समय पालक नामक अभियोगिक देवको सुरपतिने असम्भाव्य और अप्रतिम यानी लाजवाब और बेजोड़ विमान रचने की आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञा पालन करने वाले—मालिकके हुक्म-मुताबिक़ काम करने वाले देवने तत्काल इच्छानुगामी—मरज़ीके माफ़िक़ चलने वाला—विमान रचकर तैयार कर दिया। वह विमान हज़ारों रत्न-निर्म्मित स्तम्भों—खम्भों—के किरण-समूह से आकाश को पवित्र करता था। उसमें बनी हुई खिड़कियाँ उसके नेत्रों-जैसी, दीर्घ ध्वजायें उसकी भुजाओं जैसी और वेदिकायें उसके दाँतों जैसी मालूम होती थीं एवं सोनेके कलशोंसे वह पुलकित हुआ सा जान पड़ता था। उसकी ऊँचाई ४००० मीलकी और विस्तार या लम्बाई चौड़ाई ८ लाख मीलकी थी। उस विमानमें कान्तिकी तरङ्ग वाली तीन सोपान-पंक्तियाँ या सीढ़ियोंकी क़तारें थीं जो हिमालय पहाड़ पर गंगा सिन्धु और रोहिताशा नदियोंके जैसी मालूम होती थीं। उन सोपान-पंक्तियों या सीढ़ियोंकी क़तारके आगे, इन्द्र धनुषकी शोभाको धारण करने

वाले, नाना प्रकारके रत्नोंसे बने हुए तोरण थे। उस विमानके अन्दर चन्द्रबिम्ब, दर्पण—आईना, मृदङ्ग और उत्तम दीपिका के समान चौरस और हमवार ज़मीन शोभा देती थी। उस ज़मीन पर बिछाई हुई रत्नमय शिलायें, अविरल और घनी किरणों से, दीवारों पर बने हुए चित्रों पर, पर्दों के जैसी शोभायमान लगती थीं; यानी हीरे पन्ने और माणिक प्रभृति जवाहिरों से जो लगातार गहरी किरणें निकलती थीं; वे दीवारों पर बने हुए चित्रों पर पर्दों के समान सुन्दर मालूम होती थीं। उसके मध्य-भाग या बीचमें अप्सराओं जैसी पुतलियों से विभूषित—रत्नखचित एक प्रेक्षामण्डप था और उस के अन्दर खिले हुए कमल की कर्णिका के समान सुन्दर माणिक्य की एक पीठिका थी। उस पीठिका की लम्बाई-चौड़ाई बत्तीस माइल थी और उस की मुटाई सोलह योजन थी। वह इन्द्र की लक्ष्मी की शय्या सी मालूम होती थी। उसके ऊपर एक सिंहासन था, जो सारे तेज के सार के पिण्ड से बना हुआ मालूम पड़ता था। उस सिंहासन के ऊपर अपूर्व शोभावाला, विचित्र-विचित्र रत्नों से जड़ा हुआ और अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करनेवाला एक विजय-वस्त्र था। उसके बीच मे, हाथी के कान में हो ऐसा एक वज्राङ्कुश और लक्ष्मी के क्रीड़ा करने के हिंडोले-जैसी कुम्भिक जात के मोतियों की माला शोभा दे रही थी और उस मुक्त दाम के आसपास—गंगा-नदी के अन्तर जैसी—उस माला से विस्तार मे आधी, अर्द्ध कुम्भिक मोतियो की माला शोभ रही

थीं। उनके स्पर्श-सुख के लोभ से मानो स्खलित होता हो इस तरह, पूर्व-दिशाके मन्द गतिवाले वायुसे वे मालायें ज़रा-ज़रा हिलती थीं। उनके अन्दर सञ्चार करनेवाला पवन-श्रवण-सुखद शब्द करता था; यानी हवा के कारण जो आवाज़ निकलती थी, वह कानों को सुखदायी और प्यारी लगती थी। उस शब्द से ऐसा मालूम होता था, गोया वह प्रियभाषी की तरह, इन्द्र के निर्मल यश का गान करता हो। उस सिंहासन के आश्रय से, वायव्य और उत्तर दिशा तथा पूर्व और उत्तर दिशा के बीच में स्वर्गलक्ष्मी के मुकुट-जैसे, चौरासी हज़ार सामानिक देवताओं के चौरासी हज़ार-भद्रासन बने हुए थे। पूर्वमें आठ अग्र महिषी यानी इन्द्राणियो के आठ आसन थे। वे सहोदरों के समान एकसे आकार से शोभित थे। दक्खन-पूरव के बीच में अभ्यन्तर सभा-के सभासदों के बारह हज़ार भद्रासन थे। दक्खन में मध्य सभा के सभासद —चौदह हज़ार देवताओं के अनुक्रम से चौदह हज़ार भद्रासन थे। दक्खन-पश्चिम के बीच में, बाहरी सभा के सोलह हज़ार देवताओं के सोलह हज़ार सिंहासनों की पंक्तियाँ थीं। पश्चिम दिशा में, एक दूसरे के प्रतिबिम्ब के समान सात प्रकार की सेना के सेनापति देवताओं के सात आसन थे और मेरु पर्वत के चारों तरफ जिस तरह नक्षत्र शोभते हों, उसी तरह शक्र-सिंहासन के चौतरफा चौरासी हज़ार आत्म-रक्षक देवताओं के चौरासी हज़ार आसन सुशोभित थे। इस तरह सारे विमान की रचना करके आभियोगिक देवताओंने इन्द्र

को खबर दी; तब इन्द्र ने तत्काल उत्तर वैक्रिय रूप धारण किया; इच्छानुसार रूप बनाना, देवताओंका स्वभाव है।

सौधर्मेन्द्र का विमान पर चढ़ना।

इसके बाद मानों दिशाओ की लक्ष्मीही हों ऐसी आठ पटरानियों-सहित, गन्धर्व्व और नटों का तमाशा देखते हुए, इन्द्रने सिंहासन की प्रदक्षिणा की और पूर्व ओर की सीढ़ियोंकी राहसे, अपनी मान-प्रतिष्ठा या अपने उच्चपद के योग्य उन्नत सिंहासन पर चढ़ गया। उसके अंग के प्रतिबिम्ब या अक्स के माणिक की दीवारों पर पड़ने से, उसके सहस्रों अंग दीखने लगे। वह पूरब तरफ मुँह करके अपने आसनपर जा बैठा। इसके पीछे, उसके दूसरे रूप के समान सामानिक देव, उत्तर ओर की सीढ़ियों से चढ़कर, अपने-अपने आसनो पर जा बैठे; तब और देवता भी दक्खन तरफ की सीढ़ियों से चढ़-चढ़ कर अपने-अपने आसनों-पर जा बैठे; क्योंकिस्वामी के पास आसन का उल्लङ्घन नहीं होता। सिंहासन पर बैठे हुए इन्द्र के सामने दर्पण प्रभृति आठो मांगलिक पदार्थ शोभा देरहे थे। सचीपति के सिरपर चन्द्रमाके समान छत्र सुशोभित था। चलते-फिरते हसों की तरह दोनों तरफ चॅवर ढुल रहे थे। झरनों से पर्वत शोभा देता है, उसीतरह पताकाओं से सुशोभित आठ हज़ार मील ऊँचा एक 'इन्द्रध्वज' विमान के आगे फरक रहा था। उस समय, नदियो से घिरनेपर जिस तरह समुद्र शोभता है उसी तरह, सामानिक आदि देव-

ताओं से घिरकर इन्द्र शोभने लगा। अन्य देवताओं के विमानों-से वह विमान घिरा हुआ था, इसलिये मण्डलाकार चैत्यों से घिरा हुआ जिस तरह मूल चैत्य शोभता है; उसी तरह वह शोभता था। विमान की सुन्दर माणिक्यमय दीवारों के अन्दर एक दूसरे विमान का जो प्रतिबिम्ब पड़ता था, उससे ऐसा मालूम होता था, मानो विमानों से विमानों को गर्भ रहा है; अर्थात् विमान के अन्दर विमान का धोखा होता था।

सौधर्मेन्द्र के विमान का रवानः होना और भगवान् के सूतिकागार के पास पहुँचना।

दिशाओं के मुखमें प्रतिध्वनि-रूप हुई बन्दीजनों की जयध्वनि से, दुंदुभि के शब्द से, गन्धर्व और नटोंके बाजोंकी आवाज़ से मानो आकाश को चीरता हो इस तरह, वह विमान, इन्द्र की इच्छा से, सौधर्म देवलोक के बीचमें होकर चला। सौधर्म देवलोक के उत्तर तरफ से ज़रा तिरछा होकर उतरता हुआ वह विमान, ८ लाख मील लम्बा-चौड़ा होने से जम्बू द्वीप को ढकने वाला ढक्कन सा मालूम होने लगा। उस समय राह चलनेवाले देव एक दूसरे से इस तरह कहने लगे—"हे हस्तिवाहन! दूर हट जाओ; आप के हाथी को मेरा सिंह देख न सकेगा। हे अश्वारोही महाशय! ज़रा दूर रहो। मेरे ऊँट का मिज़ाज बिगड़ा हुआ है, उसे क्रोध आरहा है, आपके घोड़े को वह सहन न करेगा। हे मृगवाहन! आप नज़दीक मत आओ, क्योंकि मेरा

हाथी आपके हिरन को नुक़सान पहुँचायेगा। हे सर्पवाहन! यहाँ से दूर रहो, देखो यह मेरा वाहन गरुड़ है, यह आपके सर्प-को तकलीफ़ देगा। अरे भाई! तू मेरी राह रोकने को आड़े क्यों आता है और अपने विमान से मेरे विमान को क्यों लड़ाता है? दूसरा कहता—अरे मैं पीछे रह गया हूँ, और इन्द्र महाराज जल्दी-जल्दी चले जाते हैं, इसलिये परस्पर संघर्षण होने या टक्कर होनेसे नाराज़ मत होओ; क्योंकि पर्वदिनों में भिचा-भिची या अड़ाअड़ी होती ही है; यानी पर्वके दिन अकसर भीड़-भाड़ होती ही है। इस तरह उत्सुकता से इन्द्र के पीछे-पीछे जानेवाले सौधर्म देवलोक के देवों का भारी कोलाहल या गुल-शोर होने लगा। उस समय दीर्घध्वजपट वाला वह पालक विमान, समुद्र के मध्य शिखर से उतरती हुई नाव जिस तरह शोभती है उसी तरह, आकाश से उतरता हुआ शोभने लगा। जिस तरह हाथी वृक्षों के बीच से चलता हुआ वृक्षों को नवाता है, उसी तरह मेघ-मण्डल से पंकिल हुए—नम्र हुए स्वर्ग को झुकाता हो इस तरह, नक्षत्रचक्र के बीच में, वह विमान आकाश में चलता-चलता, वायु के वेग से, अनेक द्वीप-समूह को लाँघता हुआ, नन्दीश्वर द्वीप में आ उपस्थित हुआ। जिस तरह विद्वान् पुरुष ग्रन्थ को संक्षिप्त करते हैं; उसी तरह उस द्वीप के दक्खन पूर्व के मध्यभाग में, रतिकर पर्वत के ऊपर, इन्द्रने उस विमान को संक्षिप्त किया। वहाँ से आगे चलकर, कितनेही द्वीप और समुद्रों को लाँघकर, उस विमान

को पहले की अपेक्षा भी संक्षिप्त करता हुआ, इन्द्र जम्बूद्वीप के दक्खन भरतार्द्ध में, आदि तीर्थङ्करकी जन्मभूमिमें आ पहुँचा सूर्य जिस तरह मेरु की प्रदक्षिणा करता है; उसी तरह वहाँ उस ने उस विमान से प्रभु के सूतिकागार की प्रदक्षिण की और घर के कोने में जिस तरह धन रखते हैं; उसी तरह ईशान कोण में उस विमान को स्थापन किया।

सौधर्मेन्द्रका भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करना।

मरुदेवा माता को परिचय देना।

सौधर्मेन्द्र का भगवान् को ग्रहण करना।

पीछे महामुनि जिस तरह मान से उतरता है—मान का त्याग करता है—उसी तरह प्रसन्नचित्त शक्रेन्द्र विमान से उतर कर प्रभु के पास आया। प्रभु को देखते ही उस देवाधिपति ने पहले प्रणाम किया; क्योंकि 'स्वामी के दर्शन होते ही प्रणाम करना स्वामी की पहली भेट है।' इस के बाद माता सहित प्रभु की प्रदक्षिणा करके, उसने फिर प्रणाम किया। क्योंकि भक्ति में पुनरुक्ति दोष नहीं होता; यानी भक्ति में किये हुए काम को बारम्बार करने से दोष नहीं लगता। देवताओं द्वारा मस्तकपर अभिषेक किये हुए उस भक्तिमान् इन्द्र ने, मस्तक पर अञ्जलि जोड़कर, स्वामिनी मरुदेवा से इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—"अपने पेट में रत्नरूप पुत्र को धारण करनेवाली

और जगदीपक को जननेवाली हे जगत्माता! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप धन्य हैं, आप पुण्यवती हैं, और आप सफल जन्मवाली तथा उत्तम लक्षणोंवाली हैं। त्रिलोकीमें जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ हैं, उन मे आप पवित्र हैं, क्योंकि आपने धर्म का उद्धार करने में अग्रसर और आच्छादित हुए मोक्ष-मार्ग-को प्रकट करनेवाले भगवान् आदि तीर्थङ्कर को जन्म दिया है; अर्थात् आप से धर्म को उद्धार करनेवाले और छिपे हुए मोक्ष-मार्ग को प्रकाशित करनेवाले भगवान् का जन्म हुआ है। हे देवि! मैं सौधर्म देवलोक का इन्द्र हूँ। आप के पुत्र अर्हन्त भगवान् का जन्मोत्सव मनाने के लिए यहाँ आया हूँ। इस लिये आप मुझ से भय, न करना—मुझ से ख़ौफ़ न खाना। ये बातें कहकर, सुरपति ने मरुदेवा माता के ऊपर अवस्वापनिका नाम की निद्रा निर्माण की और प्रभु का एक प्रतिविम्व वनाकर उनकी बग़ल में रख दिया। पीछे इन्द्रने अपने पाँच रूप वनाये, क्योंकि ऐसी शक्तिवाला अनेक रूपों से स्वामी की योग्य भक्ति करना चाहता है। उनमें से एक रूप से भगवान् के पास आकर, प्रणाम किया और विनय से नम्र हो—'हे भगवन् आज्ञा कीजिये' वह कहकर कल्याणकारी भक्तिवाले उस इन्द्रने गोशीर्ष चन्दन से चर्चित अपने दोनों हाथों से मानो मूर्त्तिमान कल्याण हो इस तरह, भुवनेश्वर भगवान् को ग्रहण किया। एक रूप से जगत् का ताप नाश करने में छत्र रूप जगत्पति के मस्तकपर, पीछे खड़े होकर छत्र धारण किया; स्वामी की दोनों ओर,

बाहुदण्ड के समान दो रूपों से, दो सुन्दर चॅवर धारण किये और एक रूप से मानो मुख्य द्वारपाल हो इस तरह वज्र धारण करके भगवान् के सामने खड़ा होगया। जय-जय शब्दों से आकाश को एक शब्दमय करनेवाले देवताओं से घिरा हुआ और आकाश जैसे निर्मल चित्तवाला इन्द्र पाँच रूपोंसे आकाश-मार्ग से चला। प्यासे पथिकों की नज़र जिस तरह अमृत सरोवर पर पड़ती है ; उसी तरह उत्कंठित देवताओं की दृष्टि भगवान् के उस अद्भुत रूप पर पड़ी। भगवान् के उस अद्भुत रूप को देखने के लिए, आगे चलनेवाले देवता अपने पिछले भाग में नेत्रों के होने की इच्छा करते थे ; यानी वे चाहते थे, कि अगर हमारे सिर के पीछे आँखें होतीं तो हम भगवान् के अद्भुत मनमोहन रूप का दर्शन कर सकते। अगल बगल चलने-वाले देवताओं की स्वामी के दर्शनों से तृप्ति नहीं हुई, इसलिये मानो उनके नेत्र स्तम्भित हो गये हो, इस तरह अपने नेत्रों को दूसरी ओर नहीं फेर सके। पीछे वाले देवता भगवान् के दर्शनों की इच्छा से आगे आना चाहते थे ; इसलिए वे उल्लंघन करनेमें अपने मित्र और स्वामियों की पर्वा नहीं करते थे। इस के बाद देवपति इन्द्र, हृदय में रक्खे हों इस तरह भगवान् को अपने हृदय से लगाकर मेरु पर्वत पर गया। यहाँ पाण्डुक वनमें, दक्खन चूलिका पर, अतिपाण्डुक बला शिलापर, अर्हन्त स्नात्र के योग्य सिंहासनपर; पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र, हर्ष के साथ, प्रभु को अपनी गोद में लेकर बैठा।

जिस समय सौधर्मेन्द्र मेरु पर्वत के ऊपर आया, उस समय महाघोषा घण्टी से ख़बर पाकर, अट्ठाईस लाख देवों से घिरा हुआ त्रिशूलधारी वृषभवाहन ईशान कल्पाधिपति ईशानेन्द्र अपने पुष्पक नामक आभियोगिक देवों द्वारा बनाये हुए पुष्पक विमान में बैठ कर दक्खन दिशा की राहसे, ईशान कल्प से नीचे उतरकर और ज़रा तिरछा चलकर, नन्दीश्वर द्वीप में आ, उस द्वीप के ईशान कोण में स्थित रतिकर पर्वतपर, सौधर्मेन्द्र की तरह अपने विमान का छोटा रूप बनाकर, मेरु पर्वत पर भगवान् के निकट भक्ति सहित आया। सनतकुमार इन्द्र भी १२ लाख विमान-वासी देवताओं से घिरकर और सुमन नामक विमान में बैठकर आया। महेन्द्र नामक इन्द्र, आठ लाख विमान-वासी देवताओं सहित, श्रीवत्स नामक विमान मे बैठकर, मनके जैसी तेज़ चालसे आया। ब्रह्मेन्द्र नामक इन्द्र, विमान-वासी चार लाख देवताओंके साथ, नंद्यावर्त नामक विमानमें बैठकर, स्वामी के पास आया। लान्तक नामक इन्द्र, पचास हज़ार विमान-वासी देवताओं के साथ, कामयव नामक विमानमें बैठकर जिनेश्वर के पास आया। शुक्र नामक इन्द्र, चालीस हज़ार विमान-वासी देवताओं के साथ, पीतिगम नामक विमानमें बैठकर, मेरू पर्वत पर आया। सहस्रार नामक इन्द्र छः हज़ार विमान-वासी देवताओंके साथ मनोरम नामक विमानमें बैठकर, जिनेश्वरके पास आया। आनॅतप्राणत देवलोकका इन्द्र, चार सौ विमान-

वासी देवताओंके साथ अपने विमल नामक विमानमें वैठकर आया और आरणाच्युत देवलोकका इन्द्रभी तीन सौ विमान-वासी देवताओंके साथ, अपने अति वेगवान सर्वतोभद्र नामक विमानमें वैठकर आया।

उस समय रत्नप्रभा पृथ्वीकी मोटी तहमे निवास करने वाले भुवनेपति और व्यन्तरके इन्द्रोंके आसन काँप उठे। चमरचंचानाम की नगरी में, सुधर्मा सभाके अन्दर चमर नामक सिंहासनपर, चमरासुर—चमरेन्द्र वैठा हुआ था। उसने अवधिज्ञानसे भगवानके जन्मका समाचार जानकर सम्पूर्ण देवताओंको सूचित करनेके लिए, अपने द्रुम नामके सेनापतिसे औघघोषा नामकी घण्टी बजवाई। इसके, वाद अपने ६४ हज़ार सामानिक देवों, ३३ त्रायत्रिंशक गुरुस्थानीय देवों, चार लोक पाल, पाँच अग्र महिषी या पटरानी, अभ्यन्तर—मध्य—वाह्य तीन परिषदोंके देव, सात प्रकारकी सेना, सात सेनाधिपति और चारों दिशाओंके ६४ हज़ार आत्मरक्षक देव तथा अन्य उत्तम ऋद्धिवाले असुर कुमार देवोंसे घिरा हुआ, आभियोगिक देवके तत्काल रचे हुए, ४००० मील ऊँचे, दीर्घ ध्वजासे सुशोभित और चार लाख मीलके विस्तार वाले विमानमें वैठकर भगवान्‌का जन्मोत्सव मनानेकी इच्छासे चला। वह चमरेन्द्रभी शक्रेन्द्रकी तरह अपने विमानको राहमें छोटा करके, भगवान् के आगमनसे पवित्र हुई मेरु पर्वत की चोटी पर आया। वलि चँचा नामकी नगरीका वलि नामका इन्द्रभी, महौघस्वराघ नामका घण्टा वजवाकर महाद्रुम नामके

सेनापतिके बुलानेसे आये हुए, साठ हज़ार सामानिक देव और इनसे चौगुने आत्मरक्षक देव एवं अन्य त्राय त्रिंशक प्रभृति देवों सहित, चमरेन्द्रकी तरह अमन्द आनन्दके मन्दिर रूप मेरू पर्वत पर आया। नाग कुमारका धरण नामक इन्द्र मेघस्वरा नामकी घण्टी बजवाकर, भद्रसेन नामके अपनी पैदल सेनाके सेनापति द्वारा बुलाये हुए छः हज़ार सामानिक देवताओं और उनसे चार गुने आत्मरक्षक देव, छः पटरानी एवं अन्यभी नाग-कुमारके देवोंको साथ लेकर दो लाख मील लम्बे चौड़े और दो हज़ार मील ऊँचे और इन्द्र ध्वजसे सुशोभित विमानमें बैठकर भगवान्‌के दर्शनके लिए उत्सुक होकर मन्दराचल या मेरु पर्वत के ऊपर क्षणभरमे आया। भूतानन्द नामक नागेन्द्र, अपनी मेघ-स्वरा नामकी घण्टी बजवाकर दक्ष नामक सेनापति द्वारा बुलाये हुए सामानिक प्रभृति देवताओं सहित अभियोगिक देवताके बनाये हुए विमानमें बैठकर, तीन लोकके नाथसे सनाथ हुए मेरु पर्वत पर आया। उसी तरह विद्युत्कुमारके इन्द्र हरि और हरिसह, सुवर्णकुमारके इन्द्र वेणुदेव और वेणुदारी, अग्निकुमार के इन्द्र अग्निशिख और अग्निमाणव वायुकुमारके इन्द्र वेलम्ब और प्रभञ्जन स्तनित कुमारके इन्द्र सुघोष और महा घोष, उदधी कुमारके इन्द्र जलकान्तक और जलप्रभ, द्वीप कुमारके इन्द्र पूर्ण और अविष्ट एवं दिक्कुमारके इन्द्र अमित और अमितवाहन भी वहाँ आये।

व्यन्तरोंमें पिशाचोंके इन्द्र काल और महाकाल, भूतोंके इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप, यक्षोंके इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र, राक्षसों के इन्द्र भीम और महाभीम, किन्नरोंके इन्द्र किन्नर और किंपुरुष, किंपुरुषोंके इन्द्र सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगके इन्द्र अतिकाय और महाकाय, गन्धर्वोंके इन्द्र गीतरति और गीतयशा अप्रज्ञप्ति और पंच प्रज्ञप्ति वगैरः व्यन्तरोंके दूसरे आठ निकाय, उनके सोलह इन्द्र, उसमेंसे अप्रज्ञप्तिके इन्द्र संनिहित और समानक पॅच प्रज्ञप्तिके इन्द्र धाता और विधाता, ऋषिवादिके इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक, भूतवादिके इन्द्र ईश्वर और महेश्वर, क्रन्दितके इन्द्र सुवत्सक और विशालक, महाक्रन्दितके इन्द्र हास और हासरति, कुष्मांडके इन्द्र श्वेत और महाश्वेत, पावकके इन्द्र, पवक और पवकपति, . ज्योतिष्कोंके असंख्यात सूर्य और चन्द्र इन दो नामोंके ही इन्द्र, इस प्रकार कुल चौसठ इन्द्र मेरु पर्वत पर एक साथ आये।

देव कृत जन्मोत्सव

इसके बाद अच्युत इन्द्रने जिनेश्वरके जन्मोत्सवके लिये उपकरण या सामग्री लानेकी-अभियोगिक देवताओंको आज्ञा दी और उसी समय ईशान दिशाकी तरफ जाकर, वैक्रिय समुद्घातसे क्षणभर में उत्तम पुद्गलोंको आकर्षणकर, सुवर्णके, चाँदीके, रत्नके, सुवर्ण और चाँदीके, सुवर्ण और रत्नके, सोने

चाँदी और रत्नोके एवं मिट्टीके आठ माइल ऊँचे आठ तरहके प्रत्येक देवने एक हज़ार आठ सुन्दर कलश बनाये। कलशों की संख्याके प्रमाणसे उसी तरह सुवर्णादिकी आठ प्रकार की झारियाँ, दर्पण, रत्न, कण्डक, डिब्बियाँ, थाल, पात्रिका, फूलों की भंगेरी,—ये सब मानो पहलेसे ही बनाकर रखी हों, इस तरह तत्काल बनाकर वहाँ से लाये। पीछे वर्षा के जलकी तरह क्षीर समुद्र से उन्होंने कलश भर लिये और मानो इन्द्र को क्षीर समुद्र के जल का अभिज्ञान कराने के लिये ही हो, इस तरह पुण्डरीक, उत्पल और कोकनर जाति के कमल भी वहीं से संग ले लिये। जल भरनेवाले पुरुष घड़े से जलाशय में जल ग्रहण करें, उस तरह हाथ में घड़े लिये हुए देवोंने पुष्करवर समुद्र से पुष्कर जात के कमल ले लिये। मानो अधिक घड़े बनाने के लिये ही हों, इस तरह मागध आदि तीर्थों से उन्होंने जल और मिट्टी ली। जिस तरह ख़रीद करनेवाले पुरुष बानगी लेते हैं, उसी तरह गंगा आदि महा नदियों से उन्होंने जल ग्रहण किया। मानो पहलेसे ही धरोहर रखी हो, इस तरह क्षुद्र हिमवन्त पर्वत से सिद्धार्थ पुष्प, श्रेष्ठ गन्ध द्रव्य और सर्वौषधियाँ लीं। उसी पहाड़ के ऊपर के पद्म नाम के सरोवर से निर्मल, सुगन्धित और पवित्र जल और कमल लिये। एक ही काम में लगे रहने से मानो स्पर्द्धा करते हों, इस तरह उन्होने दूसरे पर्वत के तालाबोंमें से पद्म प्रभृति लिये। सब क्षेत्रोंमें से, वैताढ्य के ऊपरसे और विजयोंमें से, अतृप्त के सदृश देवताओं ने, स्वामी के

प्रसाद के समान जल और कमल प्रभृति लिये। मानो उनके लिये ही इकट्ठी करके रक्खी हों, इस तरह वक्षस्कार पर्वत के ऊपर से दूसरी पवित्र और सुगन्धित वस्तुएँ उन्होंने लीं। मानो कल्याण से अपने आत्मा को ही भरते हों, इस तरह आलस्य रहित उन देवताओं ने देवकुरु और उत्तर कुरुक्षेत्र के सरोवरोंसे कलश जलसे भर लिये। भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनमें से उन्होंने गोशीर्ष चन्दन आदि वस्तुयें लीं। गन्धी जिस तरह सब तरह के गन्ध द्रव्यों को एकत्रित करता है, उसी तरह वे गन्ध द्रव्य और जलको एकत्रित करके तत्काल मेरु पर्वतपर आये।

अब दस हज़ार सामानिक देव, चालीस हज़ार आत्मरक्षक देव, तैंतीस त्रायस्त्रिंशत् देव, तीनों सभाओं के सब देव, चार लोकपाल, सात बड़ी सेना, और सात सेनापतियों से घिरे हुए आरणाच्युत देवलोकका इन्द्र, पवित्र होकर, भगवान् को स्नान कराने के लिए तैयार हुआ। पहले उस अच्युत इन्द्रनेउत्तरासंग करके निःसंग भक्ति से, खिले हुए पारिजात प्रभृति पुष्पों की अञ्जलि ग्रहण कर, और सुगन्धित धूप से धूपित कर, त्रिलोकी-नाथ के पास वह कुसुमाञ्जलि रक्खी। इसी समय देवताओं ने भगवान् की सान्निध्यता प्राप्त होने के अद्भुत आनन्दसे मानो हँसते हों ऐसे और पुष्पमालाओं से चर्चित किये हुए सुगन्धित जल के घड़े वहाँ लाकर रक्खे। उन जल कलशों के मुँहपर भौंरों के शब्दों से शब्दायमान हुए कमल रक्खे थे। इससे ऐसा मालूम

होता था, मानो वे भगवान् के प्रथम स्नात्र मंगल का पाठ कर रहे हों और स्वामी के स्नान कराने के लिये पातालमें से आये हुए पाताल कलश हों, वे ऐसे कलश मालूम होते थे। अच्युत इन्द्रने अपने सामानिक देवताओं के साथ, मानो अपनी सम्पत्तिके फल रूप हो ऐसे १००८ कलश ग्रहण किये। ऊँचे किये हुए भुजदण्ड के अग्रवर्त्ती ऐसे वे कलश, जिनके दण्डे ऊँचे किये हों ऐसे कमल कोश की शोभा की विडम्बना करते थे; अर्थात् उनसे भी जियादा सुन्दर लगते थे। पीछे अच्युतेन्द्र ने अपने मस्तक की तरह कलश को ज़रा नवाँकर जगत्पति को स्नान कराना आरम्भ किया। उस समय कितने ही देवता गुफा में होनेवाले प्रति शब्दों से मानो मेरु पर्वत को वाचाल करते हों इस तरह आनक नामके मृदंग को वजाने लगे। भक्ति में तत्पर ऐसे कितने ही देवता, मथन करते हुए महासागर की ध्वनि की शोभा को चुरानेवाली आवाज़ की दुंदुभिको वजाने लगे।

जिस तरह पवन आकुल ध्वनिवाले प्रवाह की तरंगों को भिड़ाता है; उसी तरह कितने ही देवता, ऊँची ताल से झाँझोंको परस्पर भिड़ा-भिड़ा कर वजाने लगे। कितने ही देवता, मानो उर्ध्व लोक में जिनेन्द्र की आज्ञा का विस्तार करती हो, ऐसी ऊँचे मुंहवाली भेरी को ज़ोर-ज़ोर से वजाने लगे। जिस तरह ग्वालिये किसी ऊँचे स्थानपर खड़े होकर सींगिया वजाते हैं; उसी तरह देवता मेरु-शिखरपर खड़े होकर 'काहल' नाम का वाजा वजाने लगे। कितने ही देवता, जिस तरह दुष्ट शिष्योंको

हाथ से पीटते हैं ; उसी तरह उद्घोष करने के लिए अपने मृदङ्ग नामक बाजे को पीटने लगे ; यानी मृदङ्ग बजाने लगे। कितने ही वहाँ आये हुए देवता, असंख्य सूरज और चन्द्रमा की कान्ति को हरनेवाली सोने और चाँदी की झाँझो को बजाने लगे। कितने ही देवता मानो मुँह में अमृत भरा हो, इस तरह गाल फुलाकर शंख बजाने लगे। इस तरह देवताओं के बजाये हुए विचित्र प्रकार के बाजों की प्रतिध्वनि से मानो आकाश भी, बिना बाजा बजानेवाले के, एक बाजे-जैसा होगया। चारण मुनि—'हे जगन्नाथ ! हे सिद्धिगामि ! हे कृपासागर ! हे धर्म-प्रवर्त्तक ! आपकी जय हो, आपका कल्याण हो'—इस तरहके ध्रुपद, उत्साह, स्कन्धक, गलित और वस्तुवदन—प्रभृति पद्य और मनोहर गद्य से स्तुति करने के बाद अपने परिवार के देवताओं के साथ अच्युतेन्द्र भूवनभर्त्ता के ऊपर धीरे-धीरे कलशों का जल डालने लगे। भगवान् के सिरपर जलधाराकी वृष्टि करनेवाले वे कलश मेरु पर्वत की चोटीपर बरसनेवाले मेघों की तरह शोभा देने लगे। भगवान् के मस्तक के दोनों तरफ देवताओं द्वारा झुकाये हुए वे कलश माणिक्य-निर्मित मुकुट की शोभा को धारण करने लगे। आठ-आठ मील के मुँह वाले घडोंमें से गिरनेवाली जल-धारायें, पर्वत की गुहाओं में से निकलनेवाले झरनों के समान शोभा देने लगीं। प्रभु के मुकुटभाग से उछल-उछलकर चारों तरफ गिरनेवाले जल के छींटे—धर्मरूपी वृक्ष के अङ्कुर के समान शोभने लगे। प्रभु के

शरीरपर पड़ते ही मण्डलाकार हुआ कुम्भजल मस्तक के ऊपर सफेद छत्र के समान, ललाट-भागपर फैला हुआ कान्तिमान ललाट के आभूषण जैसा, कर्ण भाग में वहाँ आकर विश्रान्ति को प्राप्त हुए नेत्रों की कान्ति जैसा, कपोल भाग में कपूर की पत्र रचना के समूह जैसा, मनोहर होठोंपर विशद हास्य की कान्ति के समान, कंठ देश में मनोहर मुक्तामाल जैसा, कन्धोंपर गोशीर्ष चन्दन के तिलक जैसा, भुजा, हृदय और पीठपर विशाल वस्त्रके सदृश एवं कमर और घुटनों के बीच में विस्तृत उत्तरीय वस्त्रके समान—इस तरह क्षीरोदधि—क्षीर सागर का सुन्दर जल भगवान् के प्रत्येक अङ्ग में जुदी-जुदी शोभा को धारण करता था। जिस तरह चातक—पपैहिया—मेहके जलको ग्रहण करता है ; उसी तरह कितने ही देवता भगवान् के स्नान के जल को ज़मीनपर पड़ते ही श्रद्धासे ग्रहण करने लगे। ऐसा जल फिर कहाँ मिलेगा,—यह विचार करके कितने ही देवता उसे, मरु-देश या मारवाड़ के लोगों की तरह, अपने-अपने सिरों पर छिड़कने लगे। कितने ही देवता, गरमी से घबराये हुए हाथि-योंकी तरह, अभिलाष-पूर्व्वक, उस जल से अपने-अपने शरीर सींचने लगे। मेरु पर्वत की चोटियोंपर, ज़ोर से फैलनेवाला वह जल चारों तरफ हज़ार नदियों की कल्पना कराने लगा और पांडुक, सौमनस, नन्दन तथा भद्रशाल बाग़ीचों में फैलनेवाला वह जल धारों की लीलाको धारण करने लगा।' स्नान करते-करते भीतर का जल कम होने से नीचे मुखवाले इन्द्र के घड़े मानों

स्नात्र-जल रूपी सम्पत्ति कम होने से लज्जित हुए से जान पड़ने लगे। उस समय इन्द्र की आज्ञा के अनुसार चलनेवाले आभियोगिक देवता उन घड़ों को दूसरे घड़ों के जल से भर देते थे। एक देवता के हाथ से दूसरे देवता के हाथमें—इस तरह अनेकों के हाथों में जानेवाले वे घड़े श्रीमानों के बालकों की तरह शोभते थे। नाभिराज के पुत्र के समीप रक्खी हुई कलशों की पंक्तियाँ आरोपण किये हुए सोने के कमलों की माला की लीला को धारण करतीं थीं। पीछे मुखभाग में जल का शब्द होनेसे मानो वे अर्हन्त की स्तुति करते हों ऐसे कलशों को देवता फिर से स्वामी के सिरपर ढोलने लगे। यक्ष जिस तरह चक्रवर्त्ति के धन-कलश को पूर्ण करते हैं; उसी तरह देवता प्रभु के स्नान करने से ख़ाली हुए, इन्द्रके घड़ों को जलसे पूर्ण कर देते थे। वारम्वार ख़ाली होने और भरे जानेवाले वे घड़े सञ्चार करनेवाले घटीयंत्र के घण्टों की तरह सुन्दर मालूम होते थे। अच्युतेन्द्र ने करोड़ो घड़ों से प्रभु को स्नान कराया, और अपनी आत्मा को पवित्र किया, यह आश्चर्य्य की बात है! इसके वाद चारण और अच्युत देवलोक के स्वामी अच्युत इन्द्र ने दिव्यगंध कापायी वस्त्र से प्रभु के अंग को पोंछा। उसके साथ ही अपनी आत्मा को भी मार्जन किया। प्रातःकाल की अभ्रलेखा जिस तरह सूर्यमण्डल को छूनेसे शोभा पाती है; उसी तरह गंध कापायी वस्त्र भगवान् के शरीर का स्पर्श करने से शोभायमान लगता था। साफ किया हुआ भगवान् का शरीर सुवर्णसागरके

सर्वस्व जैसा था और वह सुवर्णगिरि—मेरु के एक भाग से बनाया हुआ हो ऐसा देदीप्यमान था।

इसके बाद अभियोगिक देवताओंने गोशीर्ष चन्दन के रसका कर्दम सुन्दर और विचित्र रक़ाबियों में भरकर अच्युतेन्द्र के पास रक्खा, तब चन्द्रमा जिस तरह अपनी चाँदनी से मेरु पर्वत के शिखर को विलेपित करता है ; उसी तरह इन्द्र ने प्रभु के अंग पर उसका विलेपन करना आरम्भ किया। कितने ही देवताओं ने उत्तरासङ्ग धारण करके यानी कन्धेपर दुपट्टा डालकर, प्रभुके चारों तरफ अतीव सुगन्धिपूर्ण धूपदानी हाथों में लेकर खड़े हो गये। कितने ही उसमें धूप डालते थे। वे चिकनी-चिकनी धूएं की रेखासे मानो मेरु पर्वत की दूसरी श्याम रंग की चूलिका बनाते हों, ऐसे मालूम देते थे। कितने ही देवता प्रभुके ऊपर ऊँचा सफेद छत्र धारण करने लगे। इससे वे गगनरूपी महा सरोवर को कमलवाला करते हुएसे जान पड़ते थे। कितने ही चँवर ढोलने लगे। इससे वे स्वामी के दर्शनों के लिए अपने नातेदारों को बुलाते हों ऐसे मालूम होते थे। कितने ही देवता कमर बाँधे हुए आत्मरक्षककी तरह अपने हथियार लगाकर स्वामी के चारों तरफ खड़े थे। मानो आकाश स्थित विद्युल्लता या चंचला बिजली की लीला को बताते हों, इस तरह कितने ही देवता मणिमय और सुवर्णमय पंखोंसे भगवान्‌को हवा करने लगे। कितनेही देवता मानो दूसरे रङ्गाचार्य हों इसतरह विचित्र-विचित्र प्रकारके दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि हर्षोत्कर्ष पूर्वक करने लगे।

कितने ही देवता मानो अपने पापका उच्चाटन करते हों, इस तरह अत्यन्त सुगन्धिपूर्ण द्रव्योंका चूर्ण कर चारों दिशाओंमें बरसाने लगे। कितने ही देवता मानो स्वामी द्वारा अधिष्ठि मेरु पर्वतकी ऋद्धि बढ़ानेकी इच्छा रखते हों इस तरह सुवर्णकी वर्षा करने लगे। कितनेही देवता स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करने के लिये उतरनेवाले तारोंकी पंक्तियाँ हों ऐसी रत्नोंकी वृष्टि करने लगे; अर्थात् देवतागण जो रत्नोंकी वर्षा करते थे, उससे ऐसा मालूम होता था; गोया प्रभुकी वन्दना करने के लिए आस्मानसे सितारोंकी क़तारें उतर रही हों। कितनेही देवता अपने मधुर और मीठे स्वरसे गन्धर्वोंकी, सेनाका भी तिरस्कार करनेवाले नये-नये ग्राम और रागोंसे भगवान् के गुण-गान करने लगे। कितनेही देवता मढ़े हुए; धन और छेदों वाले बाजे बजाने लगे; क्योंकि भक्ति अनेक प्रकारसे होती है। कितने ही देवता मानो मेरुपर्वतके शिखरोंको भी नचाना चाहते हों, इस तरह अपने चरण-प्रहारसे उसको कँपाते हुए नचाने लगे। कितने ही देवता दूसरी वारांगना हों इस तरह अपनी स्त्रियोंके साथ विचित्र प्रकारके अभिनयसे उज्ज्वल नाटक करने लगे। कितने ही देवता पँखों वाले गरुड़की तरह आकाशमें उड़ने लगे। कितनेही मुर्गे की तरह ज़मीनपर फड़कने लगे। कितने ही हंसकी सी सुन्दर चालसे चलने लगे। कितने ही सिंहकी तरह सिंहनाद करने लगे। कितने ही हाथियोंकी तरह चिङ्घाड़ते थे। कितने ही घोड़ोंकी तरह खुशीसे हिनहिनाते थे। कितने ही रथकी तरह घनघनाहट

की आवाज़ करते थे। कितने ही विदूषक या मसखरेकी तरह चार प्रकारके शब्द बोलते थे। कितने ही बन्दर जिस तरह वृक्षों की शाखाओंको हिलाते हैं, उस तरह अपने पाँवोंसे पर्वत-शिखर को कँपाते हुए कूदते थे। कितने ही मानो रणसंग्राममें प्रतिज्ञा करनेको तैयार हुए योद्धा हों, इस तरह अपने हाथोंकी चपेटसे पृथ्वीके ऊपर ताड़ना करते थे। कितने ही मानो दाव जीते हों, इस तरह हल्ला मचाते थे। कितने ही बाजोंकी तरह अपने फूले हुए गालोंको बजाते थे। कितने ही नटकी तरह विकृत रूप बनाकर लोगोंको हँसाते थे। कितनेही आगे पीछे और अगल-बगलमें गेंदकी तरह उछलते थे। स्त्रियाँ जिस तरह गोलाकार होकर रास करती हैं; उसी तरह कितने ही गोलाकार फिरते हुए रासकी तरह गाते और मनोहर नाच करते थे। कितनेही आगकी तरह प्रकाश करते थे। कितने ही सूर्यकी तरह तपते थे। कितने ही मेघकी तरह गरजना करते थे। कितने ही चपलाकी तरह चमकते थे। कितनेही नाक तक खूब खाये हुए विद्यार्थीकी तरह दिखाव करते थे। स्वामीकी प्राप्तिसे हुए उस आनन्दको कौन छिपा सकता था? इस तरह देवता अनेक तरहके आनन्दके विचार कर रहे थे, उस समय अच्युतेन्द्रने प्रभुके विलेपन किया। उसने पारिजात प्रभृति के खिले हुए फूलोंसे प्रभुकी भक्ति-पूर्वक पूजाकी और ज़रा पीछे हटकर भक्तिसे नम्र होकर शिष्यकी तरह भगवान् की वन्दना की।

सौधर्मेन्द्रकी प्रभु-भक्ति ।

बड़े भाईके पीछे दूसरे सहोदरोंकी तरह, अन्य बासठ इन्द्रों ने भी उसी तरह स्नात्र और विलेपनसे भगवान् की पूजाकी।

पीछे सुधर्म इन्द्रकी तरह ईशान इन्द्रने अपने पाँचों रूप बनाये। उनमेंसे एक रूपसे भगवान को गोद में लिया, एक रूपसे मोतियोंकी झालरें लटकानेसे मानो दिशाओंकों नाच करनेका आदेश करता हो, इस तरह कपूर जैसा सफेद छत्र प्रभुके ऊपर धारण किया। मानो खुशीसे नाचते हों इस तरह हाथोंको विक्षेप करके दोनों रूपसे प्रभुके दोनों तरफ चँवर ढोरने लगा और एक रूपसे मानो अपने तईं प्रभुके दृष्टिपात से पवित्र करनेकी इच्छा रखता हो, इस तरह हाथमें त्रिशूल लेकर प्रभुके आगे खड़ा हो गया।

इसके बाद सौधर्मकल्पके इन्द्रने जगत्पतिके चारों ओर स्फटिक मणिके चार बैल बनाये। ऊँचे ऊँचे सींगों वाले वे चारो बैल दिशाओंमें रहने वाले चन्द्रकान्त मणिके चार क्रीड़ा-पर्वत हों, इस तरह शोभने लगे। मानों पाताल फोड़ा हो, इस तरह उन बैलो के आठों सींगोंसे आकाशमें जल-धारा चलने लगी। मूलमेंसे अलग-अलग निकली हुई, पर अन्तमें जा मिली हुई वे जलधारायें, नदी के संगमका विभ्रम कराने लगीं। देवता और असुरोंकी स्त्रियाँ द्वारा कौतुकसे देखी हुई वे जलधारायें नदियोंके समुद्रमें गिरने की तरह प्रभु पर गिरने लगीं। जलयंत्रके जैसे उन सींगोंमें से निकलते हुए जलसे इन्द्रने तीर्थङ्करको स्नान कराया। जिस तरह भक्तिसे

हृदय आर्द्र होता है, उसी तरह दूर उछलने वाले भगवान् के स्नानके जलसे देवताओंके कपड़े आर्द्र होगये यानी तर होगये। जिस तरह ऐन्द्रजालिक अपने इन्द्रजालका उपसंहार करता है, उस तरह इन्द्रने उन चारों बैलोंका उपसंहार किया। स्नान करानेके बाद, घनी प्रीतिवाले उस देवराज ने देवदूष्य वस्त्रसे प्रभुके शरीरको रत्नके आईनेकी तरह पोछा। रत्न-निर्म्मित पट्टे के ऊपर निर्मल और चाँदीके अखण्ड अक्षतोंसे प्रभुके पास अष्ट मङ्गल बनाये। पीछे, मानो बड़ा अनुराग हो इस तरह उत्तम अङ्गरागसे त्रिजगत् गुरुके अङ्गमें विलेपनकर प्रभुके हँसते हुए मुख रूपी चन्द्रकी चाँदनीके भ्रमको उत्पन्न करने वाले उज्ज्वल दिव्य वस्त्रोंसे इन्द्रने पूजाकी और प्रभुके मस्तक पर विश्वके मुखियत्वका चिह्न रूप वज्र यानी हीरे और माणिकों का सुन्दर मुकुट पहनाया। पीछे इन्द्रने सन्ध्या-समय आकाशमें पूरब पश्चिम तरफ जिस तरह सूरज और चन्द्रमा शोभा देते हैं; उसी तरहकी शोभा देने वाले दो सोनेके कुण्डल स्वामीके कानोंमें पहनाये। मानो लक्ष्मीके झूलनेका झूलाही हो वैसी विस्तार वाली मोतियोंकी माला स्वामीके गलेमे पहनायी। सुन्दर हाथीके बच्चे के दाँतोंमें जिस तरह सोनेके कंकण पहनाये जाते हैं, उसी तरह प्रभुके बाहु दण्डोंपर दो बाजूबन्ध पहनाये।

सौधर्मेंद्र का प्रभु को स्तुति करना।

वृक्ष की शाखाके अन्तिम भाग के गुच्छे जैसे गोलाकार बड़े

बड़े फ़ार मोतियोंके मणिमय कंकण प्रभुके पहुँचे पर पहनाये। भगवान्‌की कमरमें वर्षधर पर्वतके नितम्ब भाग पर रहने वाले सुवर्ण-कुलके विलासको धारण करने वाले सोनेका कटिसूत्र यानी सोनेकी करधनी पहनायी। और मानो देवताओं और दैत्योंका तेज उनमें लगाहो, ऐसे माणिक्यमय तोड़े प्रभुके दोनों चरणोंमें पहनाये। इन्द्रने जो जो आभूषण या गहने भगवान्‌के अंगको अलंकृत करनेके लिए पहनाये, वे आभूषण या ज़ेवर भगवान्‌के अंगोंसे उल्टे अलंकृत होगये; यानी इन्द्रने गहने तो पहनाये थे, प्रभुके अंगोंके सजानेको; लेकिन उल्टे वे प्रभुके अंगोंसे सज उठे। गहनोंसे भगवानके अङ्गोंकी शोभावृद्धि होनेके बजाय उल्टी गहनोंकी शोभा बढ़ गई। पीछे भक्तियुक्त चित वाले इन्द्रने प्रफुल्लित पारिजातके फूलोंको मालासे प्रभुकी पूजाकी और पीछे मानो कृतार्थ हुआ हो इस तरह ज़रा पीछे हट कर प्रभुके सामने खड़ा हो, जगत्पतिकी आरती करने के लिए आरती ग्रहणकी। जाज्वल्यमान् कान्तिवाली उस आरती से, प्रकाशित औषधि वाले शिखरसे, जिस तरह महागिरि शोभित होता है; उसी तरह इन्द्र शोभित होने लगा। श्रद्धालु देवताओंने जिसमें फूल बखेरे थे, वह आरती इन्द्र ने प्रभु पर से तीन वार उतारी। पीछे भक्ति से रोमाञ्चित हो, शक्रस्तवसे वन्दना कर; इन्द्रने इस प्रकार प्रभुकी स्तुति करनी आरम्भ की:—

"हे जगन्नाथ! त्रैलोक्य कमल मार्तण्ड! हे संसार-मरुस्थल में कल्पवृक्ष! हे विश्वोद्धारण बान्धव! मैं आपको नमस्कार

करताहूं। हे प्रभु! यह मुहूर्त्त भी बन्दना करने योग्य है। क्योंकि इस मुहूर्त्त में धर्मको जन्म देने वाले—अपुनर्जन्मा—फिर जन्म ग्रहण न करने वाले-विश्व-जन्तुओंको जन्म के दुःखसे छुड़ाने वाले—आपका जन्म हुआ है। हे नाथ! इस समय आपके जन्माभिषेक के जलके पूर से प्लावित हुई है और बिना यत्न किये जिसका मल दूर हुआ है, ऐसी यह रत्न प्रभा पृथ्वी सत्य नाम वाली हुई है। हे प्रभु! जो आपका रात-दिन दर्शन करेंगे, उनका जन्म धन्य है! हम तो अवसर आने पर ही आपके दर्शन करने वाले हैं। हे स्वामि! भरतक्षेत्र के प्राणियों का मोक्षमार्ग ढक गया है। उसे आप नवीन पान्थ या पथिक होकर पुनः प्रकट कीजिये। हे प्रभु! आप की अमृत-तुल्य धर्मदेशना की तो क्या बात है, आपका दर्शनमात्र हो प्राणियों का कल्याण करनेवाला है। हे भवतारक! आपकी उपमा के पात्र कोई नहीं, जिससे आपकी उपमा दी जाय ऐसा कोई भी नहीं; इसलिये मैं तो आपके तुल्य आप ही हो ऐसा कहता हूँ; तो अब अधिक स्तुति किस तरह की जाय? हे नाथ! आपके सत्य अर्थको बतानेवाले गुणों को भी मैं कहने में असमर्थ हूँ, क्योंकि स्वयंभूरमण समुद्र के जल को कौन माप सकता है?"

इन्द्र द्वारा आदिनाथ भगवान्के लालन पालन और मन बहलावके उपाय।

प्रभुका जन्मोत्सव करके उनको उनके स्थानमें छोड़ना

इस प्रकार जगदीश की स्तुति करके, प्रमोद से सुगन्धित

मनवाले इन्द्रने, पहलेकी तरह ही, अपने पाँच रूप बनाये। उनमें से एक अप्रमादी रूप से, उसने ईशान इन्द्र की गोदी से जगत्पति को, रहस्यकी तरह, अपने हृदयपर ले लिया। स्वामी की सेवा को जाननेवाले इन्द्र के दूसरे रूप, इसी कामपर मुक़र्रर किये गये हों, इस तरह स्वामी-सम्बन्धी अपने-अपने काम पहलेकी तरह ही करने लगे। इसके बाद, अपने देवताओंसे घिरा हुआ सुर-पति, आकाश-मार्ग से, मरुदेवा से अलंकृत किये हुए मन्दिर मे आया। वहाँपर रखे हुए तीर्थङ्कर के प्रतिबिम्ब का उपसंहार करके उसने उसी जगहपर माता की बग़ल में प्रभु को रख दिया। फिर सूर्य जिस तरह पद्मिनी की नींद को दूर करता है, उसी तरह शक्रने माता मरुदेवाकी अवसर्पिणी निद्रा भंगकी और नदी-कूलपर रहनेवाली सुन्दर हंस-माला के विलासको धारण करनेवाले साफ-सफेद रेशमी वस्त्र प्रभुके सिरहाने रक्खे। बालावस्था मे भी पैदा हुए भामण्डल के विकल्प को करनेवाले रत्नमय दो कुण्डल भी प्रभु के सिरहाने रक्खे। इसी तरह सोनेसे बने हुए विचित्र रत्नहार और अर्द्धहारों से व्याप्त एवं सोने के सूर्य के समान प्रकाशमान श्रीदामदण्ड (गिल्लीदण्डा) खिलौना प्रभुके दृष्टिविनोद के लिये, गगन में दिवाकर अथवा आकाश में सूर्य की तरह, घरके अन्दर की छत की चाँदनी में लटका दिया। दूसरे शब्दों में यो भी कह सकते हैं—प्रभु का दिल खुश होने के लिए, एक सोने और जवाहिरात से बना हुआ चित्ताकर्षक मनोहर खिलौना, प्रभु की नज़र पड़ती रहे, इस तरह घरके अन्दर की

छतमें उसी तरह लटका दिया, जिस तरह कि आस्मान में सूय लटका हुआ है। पीछे इन्द्रने अलकापुरी के स्वामी कुबेर को आज्ञा दी कि, तुम बत्तीस कोटि हिरण्य, उतनाही सोना, बत्तीस-बत्तीस नन्दासन, भद्रासन एवं दूसरे भी अतीव मनोहर वस्त्र नेपथ्य प्रभृति संसारी सुख देनेवाली चीज़ें, जिस तरह बादल मेह बरसाते हैं; उसी तरह, प्रभुके मन्दिरमें बरसाओ। कुबेरने अपने आज्ञापालक ज्रम्भकञ्र नामके देवताओं द्वारा, तत्काल, उसी प्रमाण में वर्षा करायी; क्योंकि प्रचण्ड-प्रताप पुरुषों की आज्ञा मुँहसे निकलते ही पुरी होती है। फिर; इन्द्रने अभियोगिक देवताओं को आज्ञा दी कि, तुम चारों निकायो के देवताओ मे इस बातकी डोंडी पिटवा दो कि, जो कोई अर्हन्त भगवान् और उनकी मा की अशुभ चिन्तना करेगा—उनका अनभल चीतेगा उसके सिरके, अर्जक मंजरीकी तरह, सात टुकड़े हो जायँगे; यानी अर्जक वृक्ष की मंजरी के पककर फूटनेपर जिस तरह सात भाग हो जाते हैं; उसी तरह जगदीश और उनकी जननी का बुरा चाहनेवाले के मस्तक के सात भाग हो जायँगे। जिस तरह गुरु की वाणी को शिष्य उच्च स्वरसे उद्घोषित करता है, उसी तरह उन्होंने भुवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवताओंमें उसी तरह डोंडी पीट दी—सुरपति की आज्ञा सबको ज़ोर-ज़ोर से सुना दी। इसके बाद सूर्य जिस तरह बादल में जलका संक्रम करता है; उसी तरह इन्द्रने भगवान् के अँगूठे में अनेक प्रकार के रसों से भरी हुई नाड़ी संक्रमा दी यानी जिस तरह

सूरज बादलों में जलका सञ्चार करता है; उसी तरह इन्द्रने जगदीश के अँगूठे में अमृत का सञ्चार कर दिया। अर्हन्त माता के स्तनो का दूध नहीं पीते, इसलिये जब उनको भूख लगती है, तब वे अपने सुधारस की वृष्टि करनेवाले अँगूठे को मुँहमें लेकर चूसते हैं। शेषमें प्रभु का सब प्रकारका धातृ कर्म करने के लिए, इन्द्रने पाँच अप्सराओं को धाय होकर वहाँ रहने का हुक्म दिया; अर्थात् उनको धाय की तरह प्रभु के लालन-पालन करनेकी आज्ञा दी।

नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर देवताओंका महोत्सव करना।

जिन-स्नात्र हो जानेपर, इन्द्र जब भगवान् को उनकी माँ के पास छोड़ने आया, तब बहुत से देवता, मेरु-शिखर से, नन्दीश्वर द्वीप को चले गये। सौधर्मेन्द्र भी नाभिपुत्रको उनके घर में रख-कर, स्वर्गवासियो के आवास-स्थान— नन्दीश्वर द्वीप—में गया और वहाँ पूर्वदिशास्थित—क्षुद्रमेरु जितने ऊँचे—देवरमण नाम के अञ्जनगिरि पर उतरा। वहाँ उसने विचित्र-विचित्र प्रकारकी मणियों की पीठिकावाले चैत्यवृक्ष और इन्द्रध्वज से-अङ्कित चार दरवाज़ेवाले चैत्य में प्रवेश किया और अष्टान्हिका उत्सव-पूर्वक ऋषभादिक अर्हन्तों की शाश्वती प्रतिमाओ की उसने पूजा की। उस अञ्जनगिरि की चार दिशाओं में चार बड़ी-बड़ी वापिकायें हैं और उनमें से प्रत्येक में स्फटिक मणिका एकेक दधिमुख पर्वत है। दधिमुख नाम के उन चारों पहाड़ों के ऊपर के चैत्यों में

ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्द्धमान इन चारों शाश्वत अर्हन्तों की प्रतिमायें हैं। शक्रेन्द्र के चारों दिक्पालोंने, अष्टान्हिका उत्सव-पूर्व्वक, उन प्रतिमाओं की यथाविधि पूजा की। ईशान-इन्द्र उत्तर दिशा के नित्य रमणीक—रमणीय नाम के अञ्जनगिरि पर उतरा और उसने पर्वतपर बने हुए चैत्य मे जो पहले की तरह शाश्वती प्रतिमा है, उसकी अष्टान्हिक-उत्सव-पूर्व्वक पूजा की। उसके दिक्पालों ने उस पहाड़ के चारों ओर की चार बावड़ियों के दधिमुख पर्व्वतों के ऊपर बने चैत्यों-की शाश्वती प्रतिमाओं का उसी तरह अठ्ठाई महोत्सव किया। अमरेन्द्र दक्षिण दिशास्थित नित्योध्योत नाम के अञ्जनगिरि पर उतरा और रत्नों से नित्य प्रकाशमान् उस पर्वत के चैत्य की शाश्वती प्रतिमा की बड़ी भक्ति से अष्टान्हिक महोत्सव पूर्व्वक पूजा की और उसकी चार वापिकाओं के अन्दर के चार दधिमुख पर्वतों के ऊपर के चैत्यों में उसके चार लोकपालों ने, अचल चित्त से महोत्सव-पूर्व्वक वहाँ की प्रतिमाओं की पूजा की। बलि नामक इन्द्र पश्चिम दिशा-स्थित स्वयंप्रभ नाम के अञ्जन-गिरिपर मेघके से प्रभाव से उतरा। उसने उस पर्वत के चैत्यमें देवताओं की दृष्टिसे पवित्र करनेवाली ऋषभा चन्द्रानन प्रभृति अर्हन्तों की प्रतिमाओं का उत्सव किया। उसके चार लोकपालोंने भी अञ्जनगिरि की चारों दिशाओं की चार वापिकाओंके दधिमुख पर्वतों की शाश्वती प्रतिमाओं का उत्सव किया। इस तरह सारे देवता नन्दीश्वर द्वीपमें खूब उत्सव कर करके, जिस तरह आये थे; उसी तरह अपने-अपने स्थानों को चले गये।
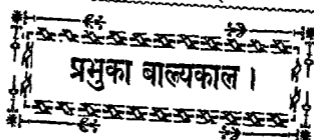
इधर स्वामिनी मरुदेवा सवेरे के समय ज्योंही उठी; उन्होंने रात के स्वप्न की तरह अपने पति नाभिराज से देवताओ के आने-जाने का सारा हाल कहा। जगदीश के उरु या जाँघ पर ऋषभ का चिह्न था, उसी तरह माता ने भी सारे सुपने में पहले ऋषभ ही देखा था, इससे आनन्दमग्न माता-पिताने शुभ दिवस में, उत्साह-पूर्व्वक प्रभु का नाम **ऋषभ** रक्खा। उन्हीं के साथ युग्म-धर्मसे पैदा हुई कन्या का नाम भी सुमंगला ऐसा यथार्थ और पवित्र नाम रक्खा। वृक्ष जिस तरह नीक का जल पीता है ; उसी तरह ऋषभ स्वामी इन्द्र के संक्रमण किये हुए अंगूठे का अमृत उचित समयपर पीने लगे। पर्वत की गुफामें बैठा हुआ किशोर सिंह जिस तरह शोभायमान लगता है ; उसी तरह पिता की गोद में बैठे हुए भगवान् शोभायमान थे। जिस तरह पाँच समिति महामुनि को नहीं छोड़तीं ; उसी तरह इन्द्र की आज्ञा से रही हुई पाँचों धायें प्रभु को किसी समय भी अकेला नहीं छोड़ती थी।

इक्ष्वाकु नामक वंशस्थापन

प्रभु का जन्म हुए ज्योंही एक वर्ष होने को आया, त्योंही सौधर्मेन्द्र वंश-स्थापन करने के लिये वहाँ आया। सेवक को

ख़ाली हाथ स्वामी के दर्शन करने उचित नहीं, इस विचारसे ही मानो इन्द्रने एक बड़ा ईख का साँठा या गन्ना अपने साथ ले लिया। मानो 'शरीरधारी शरद् ऋतु हो, इस तरह शोभता हुआ इन्द्र इक्षु दण्ड या गन्ना हाथ में लिये हुए नाभिराज की गोद में बैठे हुए प्रभु के पास आया। तब प्रभुने अवधि-ज्ञान से इन्द्र का संकल्प समझकर, उस ईख को लेने के लिये, हाथी की तरह, अपना हाथ लम्बा किया। स्वामी के भाव को समझनेवाले इन्द्रने, मस्तक से प्रणाम करके, भेंटकी तरह, वह इक्षु लता प्रभु-को अर्पण की। प्रभु ने ईख ले लिया, इसलिये "इक्ष्वाकु" नाम का वंश स्थापन करके इन्द्र स्वर्ग को चला गया।

भगवान् के शरीर का वर्णन।

युगादिनाथ का शरीर स्वेद-पसीना, रोग-मल से रहित, सुगन्धिपूर्ण, सुन्दर आकारवाला और सोने के कमल-जैसा शोभायमान् था। उनके शरीर में मांस और खून गाय के दूध-की धारा जैसी उज्ज्वल और दुर्गन्ध-रहित था। उनके आहार-विहार की विधि चर्मचक्षु के अगोचर थी और उनके श्वास की खुशबू खिले हुए कमल के जैसी थी,—ये चारों अतिशय प्रभु क जन्म से प्राप्त हुए थे। वज्रऋषभनाराच संघयण को धारण करनेवाले प्रभु मानो भूमिभ्रंश के भयसे यानी पृथ्वी के टुकड़े टुकड़े होजाने के डरसे धीरे-धीरे चलते थे। यद्यपि उनक्र अवस्था छोटी थी—वे बालक थे, तोभी वे गंभीर और मधुर

ध्वनि से बोलते थे—बाल्यावस्था होने पर भी उनकी वाणी में गाम्भीर्य्य और माधुर्य्य था। क्योंकि लोकोत्तर पुरुषों के शरीर की अपेक्षासे ही बालपन होता है। समचतुरस्र संस्थानवाले प्रभु का शरीर, मानो क्रीड़ा करने की इच्छावाली लक्ष्मी की काञ्चनमय क्रीड़ावेदिका हो, इस तरह शोभा देता था। समान उम्रवाले होकर आये हुए देवकुमारों के साथ, उनके चित्त की अनुवृत्ति के लिये, प्रभु खेलते थे। खेलते समय, धूलिधूसरित और घूँघुरमाल धारण किये हुए प्रभु मतवाले हाथी के बच्चे के जैसे शोभायमान् लगते: यानी मदावस्था को प्राप्त हुआ हाथी का बच्चा जैसा अच्छा लगता है, प्रभु भी वैसे ही अच्छे लगते थे। प्रभु लीला मात्र से जो कुछ ले लेते थे, उसे बड़ी ऋद्धिवाला कोई देव भी न ले सकता था। यदि कोई देव बलपरीक्षा के लिये उनकी अँगुली पकड़ता, तो प्रभु के श्वास की हवा से धूल की तरह वह दूर जा पड़ता था। कितने ही देवकुमार गेंद की तरह ज़मीनपर लेटकर, प्रभु को अजीब गेंदों से खिलाते थे। कितने ही देवकुमार राजशुक होकर. चाटुकार या खुशामदी की तरह, 'जीओ जीओ, सुखी हो' ऐसे शब्द अनेक तरह से कहते थे। कितने ही देवकुमार स्वामी को खिलाने के लिये, मोर का रूप बनाकर, केकावाणी से षड्ज स्वर में गा गाकर नाचते थे। प्रभु के मनोहर हस्तकमल को पकड़ने और छूने की इच्छा से, कितने ही देवकुमार, हंस का रूप धारण करके, गांधार स्वर में गाते हुए प्रभु के आस-पास फिरते थे। कितने ही प्रभु के प्रीति-

पूर्ण दृष्टिपात रूपी अमृत के पीने की इच्छा से, उनके अगल-बग़ल, क्रौंच पक्षी का रूप धरकर, मध्यम स्वर से बोलते थे। कितने ही प्रभु के मन की प्रीति के लिये, कोयलका रूप धरकर, नज़दीक के वृक्षपर बैठकर, पञ्चम स्वर से गाते थे। कितने ही प्रभु के वाहन या चढ़ने की सवारी होकर, अपने आत्मा को पवित्र करने की इच्छा से, घोड़े का रूप धरकर, धैवतध्वनि से हिनहिनाते हुए प्रभु के पास आते थे। कितने ही हाथी का रूप धरकर, निषाद स्वर से बोलते और नीचा मुँह करके अपनी सूँड़ो से प्रभु के चरण स्पर्श करते यानी पैर छूते थे। कोई बैल का रूप बनाकर, अपने सींगों से तट प्रदेश को ताड़न करते और बैलकी सी आवाज़से बोलते हुए प्रभुकी दृष्टिको विनोद कराते थे। कोई अञ्जनाचल सुरमेके पहाड़-जैसे बड़े-बड़े भैंसे बन कर आपस में लड़ते हुए, प्रभुको लड़ाई का खेल दिखाते थे। कोई प्रभुके दिल-बहलावके लिये, मल्ल-रूप धारण करके, खम्म ठोक-ठोक कर, अखाड़ेमें एक दूसरे को बुलाते थे। इस प्रकार योगी जिस तरह परमात्माकी उपासना करते हैं, उसी तरह देवकुमार अनेक प्रकार के खेल तमाशोंसे प्रभु की उपासना करते थे। एक ओर ये सब काम होते थे और दूसरी ओर उद्यानपालिकाओं अथवा मालिनों द्वारा वृक्षो का लालन-पालन होने से जिस तरह वृक्ष बढ़ते हैं; उसी तरह पाँचों धायों के सावधानी से लालन-पालन किये हुए प्रभु क्रम से बढ़ने लगे,

---

प्रभुकी यौवनावस्था

अँगुष्ठ पान करने या अँगूठा चूसने की अवस्था बीतने पर, दूसरी अवस्था में क़दम रखतेही, घर में रहने वाले अर्हन्त सिद्ध पाक किया हुआ यानी पकाया हुआ अन्न खाते हैं; लेकिन भगवान् नाभिनन्दन तो, उत्तर कुरुक्षेत्र से देवताओं द्वारा लाये हुए, कल्प-तरु के फलों को खाते और क्षीर समुद्र का जल पीते थे। बीते हुए कलके दिनकी तरह ; बाल्यावस्था को उलङ्घन करके, सूर्य जिस तरह दिनके मध्य भागमें आता है; उसीतरह प्रभुने उस यौवन का आश्रय लिया, जिसमें अवयव विभक्त होते हैं; अर्थात् बचपनसे जवानीमें क़दम रखा। भगवान् बालकसे युवक हो गये। यौवनावस्था आजाने पर भी प्रभुके दोनों चरण-कमलके बीचके भागकी तरह-मुलायम, सुर्ख, गरम, कम्प-रहित, स्वेदवर्जित और समतल यानी यकसाँ तलवे वाले थे। मानों नम्र पुरुषकी पीड़ा छेदन करने के लिये ही हो, इस तरह उसके अन्दर चक्रका चिह्न था और लक्ष्मी-रूपिणी हथिनीको स्थिर करनेके लिए—चंचलाको अचल करनेके लिये, माला, अङ्कुश और ध्वजाके भी चिह्न थे; अर्थात् भगवान्के पैरोंके तलवोंमें चक्र, माला, अङ्कुश और-ध्वजा पताकाके चिह्न थे। लक्ष्मीके लीला-भुवन-जैसे प्रभु के चरणों के तलवोंमें शङ्ख और घड़ेकी एवं एड़ीमें स्वस्तिकका चिह्न था। प्रभुका पुष्ट, गोलाकार और सर्पके फण जैसा उन्नत अँगूठा

वत्स-सदृश श्रीवत्ससे लांछित था। पवनरहित स्थानमें रखी हुई कम्प-रहित दीपशिखाके समान छिद्ररहित और सरल प्रभुके पैरोंकी उङ्गलियाँ चरण रूपी कमलके पत्तों-जैसी जान पड़ती थीं और वे अर्थात् प्रभुके पैरोंकी अँगुलियाँ निर्वात स्थानमें रक्खे हुए दीपककी स्थिर लौ के समन बिना छेदों वाली और सीधी थीं और चरण रूपी कमलके पत्तों-जैसी मालूम होती थीं। उन उगँलियोंके नीचे नन्दावर्त्तके चिह्न शोभते थे। उनके प्रतिबिम्ब ज़मीन पर पड़नेसे धर्म प्रतिष्ठाके हेतु रूप होते थे; अर्थात् चैत्य-प्रतिष्ठामें जिस तरह नन्दावर्त्त का पूजन होता है; उसी तरह प्रभुकी आँगुलियोंके नीचेके नन्दावर्त्तके चिह्नोंके प्रतिबिम्ब या निशान ज़मीन पर पड़नेसे धर्म-प्रतिष्ठाके हेतुरूप होते थे। जगत्पति के हरेक अँगुलीके पोरुवोंमें अधोसाथियों सहित जौके चिह्न थे। ऐसा मालूम होता था, मानो वे प्रभुके साथ जगत्की लक्ष्मीका विवाह करनेको वहाँ आये हों। पृथु और गोलाकार एड़ी चरण-कमलके कन्द जैसी सुशोभित थी। नाख़ून मानों अँगूठे और अंगुली रूपी सर्पके फण पर मणि हों इस तरह शोभते थे और चरणोंके दोनों गुल्फ या टखने सोनेके कमल की कली की कर्णिकाके गोलककी शोभाको विस्तारते थे। प्रभुके दोनों पाँवोंके तलवोंके ऊपरके भाग कछुएकी पीठकी तरह अनुक्रम से ऊँचेथे, जिनमें नसें नहीं दीखती थीं और जो रोमरहित तथा चिकनी कान्ति वाले थे। गोरी-गोरी पिंडलियाँ रुधिरमें अस्थि-मान होने से पुष्ट गोल और मृगकी पिंडलियोकी शोभाका भी

तिरष्कार करने वाली थीं। मांस से भरे हुऐ गोल घुटने रुईसे भरे हुए गोल तकियेके भीतर डाले हुए दर्पणके रूपको धारण करते थे। मृदु क्रमसे उत्तरोत्तर स्थूल और चिकनी जाँघें केलेके खंभके विलासको धारण करती थीं और मस्त—हाथीकी तरह गूढ़ और सम स्थितिवाली थी। क्योंकि घोड़ेकी तरह कुलीन पुरुष का शरीर-चिह्न अतीव गुप्त होता है। उनकी गुह्य इन्द्रिय पर शिरायें नहीं दीखती थीं; वह न ऊँचा न नीचा, न ढीला न छोटा और लम्बाही था। उस पर रोम नहीं थे और आकारमें गोल था। उनके कोप या तेपोंके भीतर रहने वाला पंजर शीत प्रदक्षिणावर्त्त शल्क धारण करने वाला, अवीभत्स और आवर्त्ताकार था। प्रभुकी कमर विशाल, पुष्ट, स्थूल और अतीव कठोर थी। उनका मध्य भाग सूक्ष्मतामें वज्रके मध्य भाग-जैसा मालूम होता था। उनकी नाभि नदीके भँवर के विलासको धारण करती थी। उसका मध्य भाग सूक्ष्मतामें वज्रके मध्य भागके जैसा था। उनकी नाभिमें नदीके भँवर-जैसे भँवर पड़ते थे और कोखके दोनों भाग चिकने, मांसल, कोमल, सरल और समान थे। उनका वक्षस्थल सोनेकी शिलाके समान विशाल, उन्नत, श्रीवत्स-रत्न पीठके चिह्नसे युक्त और लक्ष्मीकी क्रीड़ा करनेकी वेदिकाकी शोभाको धारण करता था; अर्थात् उनकी छाती लम्बी-चौड़ी और ऊँची थी। उस पर श्रीवत्सपीठका निशान था और वह लक्ष्मीकी क्रीड़ा करनेकी वेदिका जैसी सुन्दर और रमणीय थी। उनके दोनों कन्धे बैलके कन्धोंकी तरह मज़बूत

पुष्ट और ऊँचे थे। उनकी दोनों बग़लोंमें रोऐं अत्यन्त न थे और उनमें बदबू, पसीना और मैल नहीं था। उनकी दोनों भुजाऐं पुष्ट, कर रूपी फणके छत्र वाली और घुटनों तक लम्बी थीं और चञ्चल लक्ष्मीको नियममें रखनेके लिये नाग-पाश-जैसी जान पड़ती थीं। उनके दोनों हाथोंके तलवे नवीन आमके पत्तों-जैसे लाल, निष्कर्म होने पर भी कठोर, पसीना रहित, बिना छेदवाले और ज़रा-ज़रा गर्म थे। पाँवोंकी तरह उनके हाथों में भी दण्ड, चक्र, धनुष-कमान, मछली, श्रीवत्स, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा-पताका, कमल, चँवर, छाता, शंख, घड़ा, समुद्र, मन्दिर, मगर, बैल सिंह, घोड़ा, रथ, स्वस्तिक, दिग्गज—दिशाओंके हाथी, महल, तोरण, और द्वीप या टापू प्रभृतिके चिह्न थे। उनके अँगूठे और उँगलियाँ लाल हाथोंमे से पैदा होनेके कारण लाल और सरल थे तथा प्रान्त भागमें, माणिकके फूल वाले कल्पवृक्षके अंकुर-जैसे मालूम होते थे। अँगूठेके पोरवोंमें, यश रूपी उत्तम घोड़ेको पुष्ट करने वाले, जौ के चिह्न स्पष्टरूपसे शोभा दे रहे थे। उँगलियोंके ऊपरके भागमें दक्षिणावर्त्तके चिह्न थे। वे सब सम्पत्तिके कहने वाले दक्षिणावर्त्त शंखपने करकी धारण करते थे। उनके करकमल के मूल भागमें तीन रेखायें सुशोभिती थीं। वे मानो कष्टसे तीनों लोकोंका उद्धार करनेके लिये ही बनी हैं, ऐसी मालूम होती थी। उनका कंठ गोल किसी क़द्र लम्बा, तीन रेखाओं से पवित्र गम्भीर ध्वनिवाला और शंखकी बराबरी करने वाला था, यानी उनकी गर्दन गोल और कुछ लम्बी थी। उसपर तीन रेखाओंके निशान

थे। उससे मेघ जैसी गम्भीर आवाज़ निकलती थी और वह शंखके जैसी थी। निर्मल, वर्त्तुलाकार कान्तियोंकी तरङ्ग वाला उनका चेहरा कलङ्क-रहित दूसरे चन्द्रमा-जैसा सुन्दर मालूम होता था; अर्थात् चन्द्रमामें कलङ्क-कालिमा है, पर उनका निर्मल और सुगोल चन्द्रमुख निष्कलङ्क था उसमें कलङ्क-कालिमाका लेशभी न था; अतएव वह चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर था। उनके दोनों गाल नरम चिकने और मांससे भरे हुए थे। वे साथ निवास करने वाली वाणी और लक्ष्मीके सुवर्णके दो आईनोंकी तरह दिखाई देते थे—सोनेके दो दर्पणोंकी तरह शोभा देते थे। उनके दोनों कान कन्धों तक लम्बे और अन्दरसे सुन्दर आवर्त्त या आँटे-वाले थे और उनके मुखकी कान्ति रूपी सिन्धुके तीर पर रहने वाली, दो सीपों की तरह मालूम होते थे। बिम्बाफलके समान लाल उनके होठ थे। कुन्द-कली जैसे बत्तीस दाँत थे और अनुक्रमसे विस्तार वाली और उन्नत बाँस-जैसी उनकी नाक थी। उनकी दाढ़ी पुष्ट, गोल, नरम और सत्सश्रु तथा उसमें स्मश्रुका भाग श्यामवर्ण, चिकना और मुलायम था। प्रभुकी जीभ नवीन कल्पवृक्षके मूँगे जैसी लाल, कोमल, नाति स्थूल, और द्वादशाङ्ग आगम—शास्त्रके अर्थ को प्रसव करने वाली थीं; उनकी आँखें भीतरसे काली और धौली तथा प्रान्तभागमें लाल थीं इससे ऐसा जान पड़ता था, मानों वे नीलम, स्फटिक और माणिक से बनायी गयी हों। वे कानों तक पहुँची हुई थीं और उनमें श्याम बरौनियां या वाँफनिया थीं; इस लिये, लीन हुए भौंरेवाले खिले हुए

कमलों-जैसी जान पड़ती थीं। उनकी काली और बाँकी भौहें दृष्टि रूपी पुष्करणी के तीर पर पैदा हुई लतासी सुन्दर मालूम होती थीं विशाल, मांसल, गोल, कठोर, कोमल और एक समान ललाट अष्टमीके चन्द्रमा जैसा सुन्दर और मनोहर मालूम होता था और मौलिभाग अनुक्रमसे ऊँचा था, इसलिये नीचे मुख किये हुए छाताकी समता करता था। जगदीश्वरता की सूचना देनेवाला प्रभुके मौलि छत्रपर धारण किया हुआ गोल और उन्नत मुकुट कलशकी शोभाका आश्रय था और घुँघरवाले, कोमल, चिकने और भौंरे जैसे काले मस्तकके ऊपरके बाल यमुना नदीकी तरङ्ग के जैसे सुन्दर मालूम होते थे। प्रभुके शरीर का चमड़ा देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उसपर सुवर्णके रसका लेप किया गया हो। वह गोचन्दन-जैसा गोरा, चिकना और साफ था। कोमल, भौंरे जैसी श्याम, अपूर्व उद्गमवाली और कमलके तन्तुओंके जैसी पतली या सूक्ष्म रोमावलि शोभायमान थी। इस तरह रत्नोंसे रत्नाकर-सागर जैसे नाना प्रकारके असाधारण—गैर मामूली लक्षणोंसे युक्त प्रभु किसके सेवा करने योग्य नहीं थे? अर्थात् सुर, असुर और मनुष्य सबके सेवा करने योग्य थे। इन्द्र उनको हाथका सहारा देता था, यक्ष चँवर ढोरता था, धरणेन्द्र उनके द्वारपालका काम करता था, वरुण छत्र रखता था, 'आयुष्मन भव, चिरजीवो हो' ऐसा कहनेवाले असंख्य देवता उनको चारों तरफसे घेरे रहते थे; तोभी उन्हें ज़रा भी घमण्ड या गर्व न होता था। जगत्पति निरभिमान होकर अपनी मौजमें

विहार करते थे। बलि इन्द्रकी गोदमें पाँव रखकर और अमरेन्द्र-के गोद रूपी पलँगपर अपने शरीरका उत्तर भाग रख, देवताओं द्वारा लाये गये आसनपर बैठ, दोनों हाथोंमें रूमाल रखनेवाली अप्सराओंसे घिरे हुए प्रभु, अनासक्तता-पूर्व्वक, कितनीही दफा दिव्य संगीतको देखते थे।

एक युगलिये की अकाल मृत्यु।

एकदिन बालकों की तरह, साथ खेलता हुआ युगलिये का एक जोड़ा, एक ताड़के वृक्षके नीचे चला गया। उस समय दैवदुर्विपाकसे ताड़का एक बड़ा फल उनमेंसे एक लड़केके सिरपर गिर पड़ा। काकतालीय-न्यायसे सिरपर चोट लगते ही वह बालक अकाल मौतसे मर गया। ऐसी घटना पहलेही घटी। अल्प कषाय की वजहसे वह बालक स्वर्गमें गया; क्योंकि थोड़े बोझेके कारण रूई भी आकाशमें चढ़ जाती है। पहले बड़े-बड़े पक्षी, अपने घोंसलेकी लकड़ी की तरह, युगलियों की लाशों को उठाकर समुद्रमें फेंक देते थे; परन्तु इस समय उस अनुभवका नाश होगया था, इसलिये वह लाश वहीं पड़ी रही; क्योंकि अवसर्पिणी काल का प्रभाव आगे बढ़ता जाता था। उस जोड़े में जो बालिका थी. वह स्वभावसे ही मुग्धापन से सुशोभित थी। अपने साथी बालकका नाश हो जानेसे बिकते-बिकते बची हुई चीज़की तरह होकर वह चञ्चल-लोचनी वहीं बैठी रही। इसके बाद, उसके माँ-बाप उसे वहाँसे उठा ले गये और उसका लालन-पालन करने लगे एवं उसका नाम सुनन्दा रख दिया।

सुनन्दा के शरीर की शोभा।

नाभिराज का सुनन्दा को पुत्रवधूरूप में स्वीकार करना।

कुछ समय बाद उसके माता-पिता भी परलोकगामी हुए, क्योंकि सन्तान होनेके बाद युगलिये कुछ दिन ही जीते हैं। माँ-बापकी मृत्यु होनेके बाद, वह चपलनयनी बालिका—"अब क्या करना चाहिये" इस विचारमें जड़ीभूत होगई और अपने झुण्डसे बिछुड़ी हुई हिरनी की तरह जंगलमे अकेली घूमने लगी। सरल अँगुली रूपी पत्तोंवाले चरणोंसे पृथ्वी पर क़दम रखती हुई वह ऐसी मालूम होती थी, गोया खिले हुए कमलों को ज़मीन पर आरोपण करती हो। उसकी दोनों पिंडलियाँ सुवर्ण-रचित तरकस-जैसी शोभा देती थीं। अनुक्रमसे विशाल और गोलाकार उसकी जाँघें हाथी की सूँड जैसी दीखती थीं। चलते समय उसके पुष्ट नितम्ब—चूतड़ कामदेवरूपी जुआरी द्वारा बिछाई हुई सोनेकी चौपड़के विलास को धारण करते थे। मुट्ठीमें आनेवाले और कामके खींचने के आँकड़े जैसे मध्यभागसे एवं कुसुमायुधके खेलनेकी वापिका जैसी सुन्दर नाभिसे वह बहुत अच्छी लगती थी। उसके पेटपर त्रिवली रूपी तरंगें लहर मारतीथीं। उसकी त्रिवली को देखने से ऐसा जान पड़ता था, मानो उसने अपने सौन्दर्य्य से त्रिलोकी को जीतकर तीन रेखाएँ धारण की हैं। उसके स्तनद्वय रतिप्रीतिके दो क्रीड़ा-पर्वतसे जान पड़ते थे और रतिप्रीतिके हिंडोले की दो सुवर्ण की डंडियोंके जैसी उसकी भुजल-

तायें शोभती थीं। उसका तीन रेखाओंवाला कंठ शंखके विलास-को हरण करता था। वह अपने ओठोंसे पके हुए बिम्बाफलकी कान्ति का पराभव करती थी। वह अधर रूपी सीपीके अन्दर रहनेवाले दाँत रूपी मोतियों तथा नेत्ररूपी कमल की नाल जैसी नाकसे अतीव मनोहर लगती थी। उसके दोनों गाल ललाटकी स्पर्द्धा करनेवाले, अर्द्धचन्द्र की शोभा को चुरानेवाले थे और मुख-कमलमें लीन हुए भौंरोंके जैसे उसके सुन्दर वाल थे। सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी और पुण्य-लावण्य रूपी अमृतकी नदी सी वह वाला वन-देवी की तरह जंगल में घूमती हुई वनको जगमगा रही थी। उस अकेली मुग्धाको देख, कितनेही युगलिये किंकर्त्तव्य विमूढ़, हो नाभिराजाके पास ले आये। श्री नाभिराजाने "यह ऋषभ की धर्मपत्नी हो," ऐसा कहकर, नेत्ररूपी कुमुद को चाँदनीके समान उस बाला को स्वीकार किया।

सौधर्मेन्द्रका पुनरागमन।

भगवान् से विवाह की प्रार्थना करना।

इसके वाद, एकदिन सौधर्मेन्द्र प्रभुके विवाह-समय को अव-धिज्ञानसे जानकर वहाँ आया और जगत्पतिके चरणोंमें प्रणाम कर, प्यादे की तरह सामने खड़ा हो, हाथ जोड़ कहने लगा—"हे नाथ! जो अज्ञानी आदमी ज्ञानके ख़ज़ाने-स्वरूप प्रभुको अपने विचार या बुद्धिसे किसी काम में लगाता है, वह उपहास का पात्र होता है। लेकिन स्वामी जिनको सदा मिहरबानी की

नज़रसे देखते हैं; वे किसी-किसी समय दिल खोलकर बात कह बैठते हैं। उनमें भी जो स्वामीके अभिप्राय—मालिक की मन्शा—को जानकर बात कहते हैं, वे सच्चे सेवक कहलाते हैं। हे नाथ! मैं आपका अभिप्राय जाने बाद कहता हूँ, इसलिये आप मुझसे नाराज़ न हूजियेगा। मैं जानता हूँ, कि आप गर्भवाससे ही वीतराग हैं—आप को किसी भी सांसारिक पदार्थ से मोह नहीं है—किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं है।' दूसरे पुरुषार्थों की अपेक्षा न होनेसे चौथे पुरुषार्थ—मोक्ष—के लियेही आप सज्ज हुए हैं; तथापि हे भगवन्! मोक्ष-मार्ग भी आपही से प्रकट होगा—लोक-व्यवहार की मर्य्यादा भी आपही बाँधेंगे। अतः उस लोक-व्यवहार के लिये, मैं आपका पाणिग्रहण-महोत्सव करना चाहता हूँ। आप प्रसन्न हों! हे स्वामिन्! त्रैलोक्य-सुन्दरी, परम रूपवती और आपके योग्य सुनन्दा और सुमङ्गलाके साथ विवाह करने योग्य आप हैं।

भगवान् कर्मभोग को अटल समझ कर विवाह करने की स्वीकृति देते हैं।

विवाह की तैयारियाँ।

विवाह-मण्डप की अपूर्व शोभा।

उस समय स्वामीने अवधिज्ञान से यह जानकर कि, ८३ लाख पूर्वतक भोगने को दृढ़ भोग-कर्महैं और वे अवश्यही भोगने पड़ेंगे,

उनके भोगे बिना पीछा नहीं छूटेगा—सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की और सन्ध्याकालके कमलकी तरह नीचा मुँह करके रह गये। इन्द्रने प्रभुका आन्तरिक अभिप्राय समझकर, विवाह के लिये उन्हें प्रस्तुत समझकर, विवाह-कर्म आरम्भ करनेके लिए तत्काल वहाँ देवताओं को बुलाया। इन्द्रकी आज्ञासे, उसके अभियोगिक देवताओंने सुधर्मा सभाके छोटे भाईके जैसा एक सुन्दर मण्डप तैयार किया। उसमें लगाये हुए सोने, चाँदी और पद्मरागमणिके खम्भे—मेरु, रोहणाचल और वैताढ्य पर्वत की चूलिका की तरह शोभा देते थे। उस मण्डपके अन्दर रखे हुए सोनेके प्रकाशमान् कलश चक्रवर्त्तीके कांकणी रत्नके मण्डल की तरह शोभा देते थे और वहाँ सोने की वेदियाँ अपनी फैलती हुई किरणोंसे, मानो दूसरे तेजको सहन न करनेसे, सूर्यके तेजका आक्षेप करती सी जान पड़ती थीं। उस मण्डपमें घुसनेवालों का जो प्रतिबिम्ब या अक्स मणिमय दीवारोंपर पड़ता था, उससे वे बहुपरिवारवाले मालूम होते थे। रत्नोंके बने हुए खम्भोंपर बनी हुई पुतलियाँ नाचनेसे थकी हुई नाचनेवालियोंकी तरह मनोहर जान पडती थीं। उस मण्डप की प्रत्येक दिशामें जो कल्पवृक्षके तोरण बनाये थे, वे कामदेवके बनाये हुए धनुषों की तरह शोभा देते थे और स्फटिक के द्वार की शाखाओं पर जो नीलम के तोरण बनाये थे, वे शरद् ऋतुकी मेघमालामें रहनेवाली सूओं की पंक्तिके समान सुन्दर और मनोमोहक लगते थे। किसी किसी जगह स्फटिक या बिल्लौरी शीशे से बने हुए फर्शपर निरन्तर

किरणें पड़नेसे वह मण्डप अमृत-सरके विलास का विस्तार करता था। कहीं-कहीं पद्मराग मणि की शिलाओं की किरणें फैलती थीं, इस कारण वह मण्डप कसूमी और बड़े बड़े दिव्य वस्त्रोंका सञ्चय करनेवाला जैसा मालूम होता था। कहीं-कहीं नीलम की पट्टियों की बहुत सी सुन्दर सुन्दर किरणें पड़नेसे वह मानो फिरसे बोये हुए मांगलिक यवांकुर या जवारों-जैसा मनोहर मालूम होता था। किसी-किसी स्थानमें मरकतमणि से बने हुए फर्शसे अखण्डित किरणे निकलती थीं, उनसे वह वहाँ लाये हुए हरे और मङ्गलमय बाँसों का भ्रम उत्पन्न करता था; अर्थात् हरे हरे बाँसोंका धोखा होता था। उस मण्डप मे ऊपर की ओर सफेद दिव्य वस्त्रका चँदोवा था। उसके देखनेसे ऐसा मालूम होता था, गोया उसके मिषसे आकाश-गङ्गा तमाशा देखनेको आई हो और छतके चारों ओर खम्भोंपर जो मोतियों की मालायें लटकाई गई थीं, वे आठों दिशाओंके हर्षके शस्य जैसी मालूम होती थी। मण्डपके बीचमें देवियोंने रतिके निधान रूप रत्न-कलश की आकाशतक ऊँची चार श्रेणियाँ स्थापन की थीं। उन चार श्रेणियोंके कलशोंको सहारा देनेवाले हरे बाँस जगत्को सहारा देनेवाले स्वामी के वंश की वृद्धि की सूचना देते हुए शोभायमान थे।

अप्सराओं की विवाह सम्बन्धी बात चीत।

उस समय—"हे रम्भा! तू माला गूँथना आरम्भ कर। हे उर्व्वशी! तू दूब तैयार कर। हे घृतमनि! वरको अर्घ्य देनेके लिए

घी और दही ला। हे मंजुघोषा! सखियोंसे धवल अच्छी तरह गवा। हे सुगन्धे! सुगन्धित चीज़ें तैयार कर। हे तिलोत्तमा दरवाज़ेपर उत्तमोत्तम साथिये बना। हे मैना! तू आये हुए लोगोंका उचित बातचीतसे सम्मान कर। हे सुकेशि! तू वधू और वरके लिये केशाभरण तैयार कर। हे सहजत्या! तू बरात में आये हुए लोगोंको ठहरने को जगह बता। हे चित्रलेखा! तू मातृभवन में विचित्र चित्र बना। हे पूर्णिमे! तू पूर्णपात्रों को शीघ्र तैयार कर। हे पुण्डरीके! तू पुण्डरीकों से पूर्ण कलशों को सजा। हे अम्लोचा! तू वरमाँची को उचित स्थानपर स्थापित कर। हे हंसपादि! तू वधूवर की पादुका स्थापन कर। हे पुंजिकास्थला! तू जल्दी-जल्दी गोबर से वेदी को लीप। हे रामा! तू इधर-उधर क्यों फिरती है? हे हेमा! तू सुवर्ण को क्यों देखती है? ये द्रुतस्थला! तू ढीली सी क्यों होगई है? हे मारिचि! तू क्या सोच रही है? हे सुमुखि! तू उन्मुखी सी क्यों होरही है? हे गान्धर्वि! तू आगे क्यों नहीं रहती? हे दिव्या! तू व्यर्थ क्यों खेल रही है? अब लग्न-समय पास आगया है, इसलिये अपने अपने विवाहोचित कामों में सब को हर तरहसे जल्दी करनी चाहिये।" इस तरह अप्सराओं का परस्पर एक दूसरीका नाम ले लेकर सरस कोलाहल होने लगा।

अप्सराओं द्वारा दोनों कन्याओं का शृङ्गार किया जाना।

इसके बाद कितनी ही अप्सराओं ने, मङ्गल-स्नान कराने के लिये, सुनन्दा और सुमङ्गला को आसन पर बिठाई। मधुर-धवल-मङ्गल गीत गाते हुए उनके सारे शरीर में तैल की मालिश की गई। इसके बाद, जिनके रत्नपुञ्ज से पृथ्वी पवित्र हुई है, ऐसी उन दोनों कन्याओं के सूक्ष्म पीठी से उबटन किया गया। उनके दोनों चरणों, दोनों, घुटनों, दोनों हाथों, दोनों कन्धों पर दो दो और सिर पर एक—इस तरह उनके अङ्गमें लीन हुए अमृत-कुण्ड-सदृश नौ श्याम तिलक किये गये और तकुए में रहने वाले कसूमी सूतोंसे बायें और दाहिने अङ्गों में मानो सम चतुरस्र संस्थान को जाँचती हो, इस तरह उन्होंने स्पर्श किया। इस प्रकार अप्सराओंने सुन्दर वर्णवाली उन बालाओंके, धायोंकी तरह उनकी चपलताको निवारण करते हुए पीठी लगाई; अर्थात् धाय जिस तरह अपने बालकको दौड़ने-भागनेसे रोकती है, उसी तरह उन्होंने उन बालाओंको पीठी लगा कर बाहर भागनेसे रोकते हुए पीठी लगाई। हर्षोन्मादसे मतवाली अप्सराओंने वर्णक का सहोदर भाई हो, इस तरह उद्वर्णक भी उसी तरह किया। इसके बाद मानो अपनी कुल-देवियाँ हों, इस तरह उनको दूसरे आसनपर बिठाकर सोनेके घड़ेके जलसे स्नान कराया। गन्धकषायी कपड़ेसे उनका शरीर पोंछा और नर्म वस्त्र उनके बालोंपर लपेटे

रेशमी कपड़े पहनाकर, और उन्हें बिठा कर उनके बालोंसे मोतियों की वर्षाका भ्रम करने वाला जल नीचें टपकाया। धूप रूपीलतासे सुशोभित उनके ज़रा-ज़रा गीले बाल दिव्य धूपसे धूपित किये। सोने पर जिस तरह गेरूका लेप करते हैं; उसी तरह उन स्त्री-रत्नोंके अङ्गोंको सुन्दर अङ्गरागसे रञ्जित किया। उनकी गर्दनों, भुजाओंके अगले भागों, स्तनों और गालों पर मानों कामदेवकी प्रशस्ति हो, इस तरह पत्र-वल्लरी की रचना की। मानो रतिदेवके उतरनेका नवीन मंडल हो ऐसा चन्दनका सुन्दर तिलक उनके ललाटों पर किया। उनकी आँखोंमें नील कमलके वनमें आने वाले भौंरेके जैसा काजल आँजा। मानो कामदेवने अपने शस्त्र रखनेके लिये शस्त्रागार बनाया हो, इस तरह खिले हुए फूलों की मालाओं से उन्होंने उनके सिर किये। माथा-चोटी और माँग पट्टी करनेके बाद, चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करने वाले लम्बे-लम्बे पल्लेवाले कपड़े उन्हें पहनाये। पूरब और पश्चिम दिशाओंके मस्तकों पर जिस तरह सूरज और चाँद रहते हैं, उसी तरह उनके मस्तकों पर विचित्र रत्नोंसे देदीप्यमान दो मुकुट धारण कराये। उनके दोनों कानोंमें, अपनी शोभा से रत्नोंसे अङ्कुरित हुई पृथ्वीके सारे गर्वको खर्व करने वाले, मणिमय कर्णफूल और झूमके पहनाये। कर्णलताके ऊपर, नवीन फूलोंकी शोभाकी विडम्बना करने वाले मोतियोंके दिव्य कुण्डल पहनाये। कर्णमें विचित्र माणिक्की कान्तिसे आकाशको प्रकाशमान करने वाले और संक्षेप किये हुए इन्द्र धनुषकी शोभाका निरादर

करने वाले पदक पहनाये। भुजाओंके ऊपर, कामदेवके धनुषमें बँधे हुए वीरपटके जैसे शोभायमान, रत्नजडित बाजूबन्द बाँधे और उनके स्तन रुपी किनारों पर, उस जगह चढ़ती—उतरती नदीका भ्रम करने वाले हार पहनाये। उनके हाथोंमे मोतियोंके कङ्कन पहनाये, जो जल.लताके नीचे जलसे शोभित क्यारियोंकी तरह सुन्दर मालूम देते थे। उनकी कमरोंमें मणिमय कर्धनियाँ पहनाईं, जिनमें लगी हुई घूँघरोंकी पंक्तियाँ झंकार करती थीं और वह कटि-मेखला या कर्धनी रतिपतिकी मङ्गल-पाठिका की तरह शोभा देती थीं। उनके पाँवोंमें जो पायज़ेबें पहनाई गई थीं; उनके घूँघरू छमाछम करते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो उनके गुण कीर्त्तन कर रहे हों।

पाणिग्रहण उत्सव।

इस तरह सजाई हुई दोनों बालिकायें देवियोंने बुलाकर मातृभुवनमें सोनेके आसन पर बैठाईं। उस समय इन्द्रने आकर वृषभ लाञ्छन वाले प्रभुको विवाहकेलिये तैयार होनेकी प्रार्थनाकी। "लोगों को व्यवहार-स्थिति बतानी उचित है और मुझे योग्य कर्म भोगने ही पड़ेंगे," ऐसा विचार करके उन्होंने इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब विधिको जानने वाले इन्द्रने प्रभुको स्नान कराया और चन्दन, केशर, कस्तूरी प्रभृति सुगन्धित पदार्थोंको लगाकर यथोचित आभूषण पहनाये। इसके बाद प्रभु दिव्य वाहन पर बैठकर, विवाह-मण्डपकी ओर चले। इन्द्र छड़ीबर्दारकी

तरह उनके आगे-आगे चलने लगा। अप्सरायें दोनों ओर लवण उतारने लगीं। इन्द्राणियाँ मंगल गान करने लगीं। सामानिक देवियाँ बलैयाँ लेने लगीं। गन्धर्व खुशीके मारे बाजे बजाने लगे। इस तरह दिव्य वाहन पर बैठकर प्रभु मण्डप-द्वारके पास आये, तो आपही विधिको जानने वाले प्रभु वाहनसे उतरकर मण्डप द्वारके पास उसी तरह खड़े होगये, जिस तरह समुद्रकी वेला अपना मर्य्यादा भूमिके पास आकर रुक जाती है। इन्द्रने प्रभुको हाथका सहारा दिया, इस कारण वे उस तरह शोभा पाने लगे जिस तरह वृक्षके सहारेसे खड़ा हाथी शोभा पाता है। उसी समय मंडप की स्त्रियोंमें से एक ने अन्दर नमक और आग होने के कारण तड़ तड़ आवाज़ करनेवाला एक शराव-सम्पुट दरवाज़ेके बिच में रक्खा। किसी स्त्रीने, पूर्णिमा जिस तरह चन्द्रमा को धारण करती है; उसी तरह दूब प्रभृति मंगल पदार्थों से लांछित चाँदी का एक थाल प्रभुके सामने रक्खा। एक स्त्री कसूमी रंग के वस्त्र पहने हुए मानो प्रत्यक्ष मंगल हो इस तरह पञ्च शाखावाले मथन दंड को ऊँचा करके अर्घ्य देने के लिये खड़ी हुई। उस समय देवांगनायें इस तरह धवल मंगल गा रही थीं:—हे अर्घ्य देनेवाली! इस अर्घ्य देने योग्य वरको अर्घ्य दे; क्षण-भर, मांखण डण्डा जिस तरह समुद्रमें से अमृत फेंकता है; उसी तरह थाल में से दही फेंक; हे सुन्दरी! नन्दन वनसे लाये हुए चन्दन रस को तैयार कर; भद्रशाल वन से लाई हुई दूब को खुशी से लाकर दे, क्योंकि इकट्ठे हुए लोगों की नेत्रपंक्तिसे

जंगम तोरण बना है और त्रिलोकी में उत्तम ऐसे वर राज़ तोरण-द्वार में खड़े हुए हैं। उनका शरीर उत्तरीय वस्त्रके अन्तर पटसे ढका हुआ है, इसलिये गङ्गा नदीकी तरंग में अन्तरीत युव राज हंसके समान शोभ रहे हैं। हे सुन्दरि ! हवासे फूल झड़े पड़ते हैं और चन्दन सूखा जाता है, अतः इन वरराज को अब द्वार पर बहुत देर तक न रोक। देवांगनायें इस तरह मंगल-गीत गारही थीं; ऐसे समय में उस कसूमी रङ्ग के कपड़े पहने हुए और मथन-दण्ड लिये हुए खड़ी स्त्रीने त्रिजगत् को अर्घ्य देने योग्य वर राज को अर्घ्य दिया और सुन्दर लाल लाल होठों वाली उस देवीने धवल मङ्गल के जैसा शब्द करते हुए अपने कंगन पड़े हुए हाथ से त्रिजगत्पति के भाल का तीन बार मथन दण्डसे चुम्बन किया। इसके बाद प्रभुने अपनी वाम पादुका से, हीम कर्पर की लीला से, आग समेत शराव सम्पुट का चूर्ण कर डाला और वहाँ से अर्घ्य देनेवाली ललना द्वारा गले में कसूमी कपड़ा डाल कर खींचे हुए प्रभु मातृभवन में गये। वहाँ कामदेवका कन्द हो ऐसे मिंढोल से शोभायमान हस्त-सूत्र वधू और वर के हाथों में बाँधे गये। जिस तरह केसरी सिंह मेरु पर्वत की शिला पर बैठता है, उसी तरह वरराज मातृ-देवियोंके आगे, ऊँचे सोने के सिंहासन पर बिठाये गये। सुन्दरियोंने शमी वृक्ष और पीपल वृक्षकी छालो के चूर्ण का लेप दोनों कन्याओंके हाथों मे किया। वह कामदेव रूपी वृक्षका दोहद पूरा हो ऐसा मालूम होता था।

जब शुभ लग्नका उदय हुआ; यानी ठीक लग्नकाल आया, त सावधान हुए प्रभुने दोनों बालाओंके लेपपूर्ण हाथ अपने हाथ पकड़ लिये। उस समय इन्द्रने जिस तरह जलके क्यारे में सा का बीज बोते हैं, उसी तरह लेपवाले दोनों बालाओंके हस्त सम्पु में एक मुद्रिका डालदी। प्रभुके दोनों हाथ उन दोनोके हाथों साथ मिलते ही दो शाखाओंमें इलझी हुई लताओंसे वृक्ष जिस तरह शोभता है; उस तरह शोभने लगे। जिस तरह नदियोंक जल समुद्र में मिलता है; उसी तरह उस समय तारामेलक पर्व में वधू और वरकी दृष्टि परस्पर मिलने लगी। बिना हवा के जलकी तरह निश्चल दृष्टि दृष्टिसे और मन मनके साथ आपसमें मिल गये और एक दूसरेकी पुतलियोंमें उनका अक्स पड़ने लगा; यानी एक दूसरे की कीकियोंमे वे परस्पर प्रतिबिम्बित हुए। उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो वे एक दूसरे के हृदयमें प्रवेश कर गये हों। जिस तरह विद्युत-प्रभादक मेरु के पास रहते हैं, उसी तरह उस समय सामानिक देव भगवान् के निकट अनुवरों की तरह खड़े हुए थे। कन्यापक्षकी स्त्रियाँ, जो हँसी दिल्लगी मे निपुण थीं। अनुवरोंको इस भाँति कौतुक धवल गीत गाली गाने लगीं:—ज्वर वाला मनुष्य जिस तरह समुद्र सोखने की इच्छा रखता है; उसी तरह यह अनुवर लड्डू खानेको कैसा मन चला रहा है! कुत्ता जिस तरह मिठाई पर मन चलाता है, उसी तरह माँडा पर अपनी दृष्टि रखने वाला अनुवर कैसे दिलसे उसे चाह रहा है! मानो अन्नमें कभी देखी ही न हो इस

तरह दीनके बालक की भाँति यह अनुवर बड़ों पर कैसा मन चला रहा है! जिस तरह मेघ को चातक और पैसेको याचक चाहता है, उसी तरह यह अनुवर सुपारी पर कैसा मन चला रहा है! जिस तरह गाय का बच्चा घास खानेको मन चलाता है, उसी तरह यह अनुवर पान खानेको कैसा नादीदा सा हो रहा है! जिस तरह मक्खन की गोली खानेको बिल्ली जीभ लपलपाती है; उसी तरह यह अनुवर चूर्ण पर कैसी जीभ लपलपा रहा है? पोखरी की कीचड़ को भैंसा जिस तरह चाहता है, उसी तरह इत्र प्रभृति सुगन्धित पदार्थों पर इस अनुवर का मन चल रहा है। जिस तरह पागल आदमी निर्माल्यको चाहता है, उसी तरह यह अनुवर फूलमाला को कैसे चंचल नेत्रोंसे देख रहा है? इस तरह के कौतुक-धवल—गीत-गालियों को ऊँचे कान और मुँह करके सुनने वाले देवता चित्र-लिखे से हो गये। 'लोक में यह व्यवहार बतलाना उचित है, ऐसा निश्चय करके, विवाह में नियत किये हुए मध्यस्थ मनुष्य की तरह, प्रभु उन की उपेक्षा करते थे। जिस तरह बड़ी नावके पीछे दो छोटी नावें बाँध देते हैं, उसी तरह जगत्पति के पल्ले के साथ दोनों वधुओं के पल्ले इन्द्रने बाँध दिये। आभियोगिक देवता की तरह इन्द्र स्वयं भक्तिसे प्रभुको अपनी कमर पर रख कर वेदी-गृहमें ले जाने लगा। तब उसी समय दोनों इन्द्राणियाँ आकर, तत्काल, दोनों कन्याओं को हथ-लेवा न छूटे इस तरह कमर पर रख कर ले चलीं। तीन लोक के शिरोरत्न रूप उन वधू वरने पूरब के द्वार से वेदी वाले स्थानमें

प्रवेश किया। किसी त्रायस्त्रिंश देवताने, मानों तत्काल ज़मीन से निकला हो इस तरह, वेदी में अग्नि प्रकट की। उसमें समिध डालने से, आकाशचारी मनुष्यों—विद्याधरों की स्त्रियों के कानों के अवतंस रूप होने वाली धूँएँ की रेखा आकाश में छा गई। इस के वाद स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं और प्रभुने सुनन्दा और सुमंगला के साथ, अष्ट मंगल पूर्ण होने तक, अग्नि की प्रदक्षिणा की। इसके बाद ज्योंही आशीर्व्वादात्मक गीत गाये जाने लगे, त्योंही इन्द्रने उनके हथलेवा और पल्ले की गाँठें छुड़ा दीं। पीछे प्रभुके लग्न उत्सव से उत्पन्न हुई खुशीसे, रंगाचार्य या सूत्रधारकी तरह आचरण करता हुआ, हस्ताभिनयकी लीला बताता हुआ इन्द्र इन्द्राणियों के साथ नाचने लगा। हवा से नचाये हुए वृक्षोंके पीछे जिस तरह उससे लिपटी हुई लतायें नाचा करती हैं; उसी तरह इन्द्रके पीछे और देवता भी नाचने लगे। कितने ही देवता चारणोंकी तरह जय जय शब्द करने लगे। कितने ही भरतकी तरह अजब तरह के नाच करने लगे। कितने ही जन्मके गन्धर्व्व हों इस तरह नाच करने लगे। कितने ही अपने मुखों से बाजों का काम लेने लगे। कितने ही बन्दरों की तरह संभ्रम से कूदने फाँदने लगे। कितनेही हँसाने वाले विदूषकों की तरह लोगों को हँसाने लगे और कितनेही प्रतिहारी की तरह लोगों को दूर दूराने लगे। इस तरह भक्ति दिखाने वाले हर्ष से उन्मत्त देवताओं से घिरे हुए और दोनों वगलोंमें सुनन्दा और सुमंगला से सुशोभित प्रभु दिव्य वाहन में बैठ कर अपने स्थान को पधारे। जिस

तरह संगीत या तमाशे को ख़तम करके ,रंगाचार्य अपने स्थानको चला जाता है, उसी तरह विवाह-उत्सव समाप्त करके इन्द्र अपने स्थानको चला गया। प्रभुकी दिखलाई हुई विवाह की रीति रस्म उस समय से दुनिया में चल गई। क्योंकि बड़े आदमियों की स्थिति दूसरों के लिये ही होती है। बड़े लोग जिस चाल पर चलते हैं, दुनिया उसी चाल पर चलती है। महापुरुष जो मर्य्यादा बाँध देते हैं, संसार उसी मर्य्यादा के भीतर रहता है।

अब अनासक्त प्रभु दोनों पत्नियों के साथ भोग भोगने लगे; यानी प्रभु आसक्ति रहित होकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ भोग-विलास करने लगे। क्योंकि विना भोग भोगे पहलेके सातावेदनीय कर्मोंका क्षय न होता था। विवाह के बाद प्रभुने उन पत्नियोंके साथ कुछ कम छै लाख पूर्व तक भोग-विलास किया। उस समय बाहु और पीठ के जीव सर्व्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर, सुमंगला की कोखमें युग्म रूप से उत्पन्न हुए और सुबाहु तथा महा पीठ के जीव भी उसी सर्व्वार्थ-सिद्धि विमान से च्यव कर, उसी तरह सुनन्दा की कोख से उत्पन्न हुए। सुमंगलाने गर्भ के माहात्म्यको सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न देखे। देवीने उन सुपनोंका सारा हाल प्रभु से कहा; तब प्रभुने कहा—"तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।" समय आने पर पूरब दिशा जिस तरह सूरज और सन्ध्या को जन्म देती है; उसी तरह सुमंगला ने अपनी कान्ति से दिशाओं को

प्रकाशमान करने वाले भरत और ब्राह्मी नामक दो बच्चों को जन्म दिया और वर्षा ऋतु जिस तरह मेघ और विजली को जन्म देती है; उसी तरह सुनन्दाने सुन्दर आकृति वाले बाहुबलि और सुन्दरी नामक दो बच्चों को जन्म दिया। इसके वाद, विदूर पर्वत की ज़मीन जिस तरह रत्नों को पैदा करती है; उस तरह अनुक्रम से उनचास जोड़ले बच्चों को जन्म दिया। विन्ध्याचल के हाथियों के बच्चों की तरह वे महा पराक्रमी और उत्साही बालक इधर-उधर खेलते हुए अनुक्रम से बढ़ने लगे। जिस तरह अनेक शाखाओं से विशाल वृक्ष सुशोभित होता है; उसी तरह उन बालकों से चारों ओर से घिर कर ऋषभ स्वामी सुशोभित होने लगे।

उस समय जिस तरह प्रातः काल के समय दीपक तेजहीन हो जाता है; उस तरह काल-दोष के कारण कल्पवृक्षों का प्रभाव हीन होने लगा। पीपल के पेड़ में जिस तरह लाख के कण उत्पन्न होते हैं; उस तरह युगलियों में क्रोधाधिक कषाय धीरे धीरे उत्पन्न होने लगे। सर्प जिस तरह तीन प्रयत्न विशेष की परवा नहीं करता, उसी तरह युगलिये आकर, माकार और धिक्कार—इन तीन नीतियों को उलङ्घन करने लगे। इस कारण युगलिये इकट्ठे होकर प्रभुके पास आये और अनुचित बातों के सम्बन्ध में प्रभु से निवेदन करने लगे। युगलियों की बातें सुनकर, तीन ज्ञान के धारक और जाति स्मरणवान् प्रभु ने कहा-"लोक में जो मर्यादा का उलङ्घन करते हैं, उन्हें शिक्षा देनेवाला

राजा होता है; अर्थात् जो नियम विरुद्ध काम करते हैं, उन्हें राजा नियमों पर चलाता है। जिसे राजा बनाते हैं, उसे ऊँचे आसन पर बिठाते हैं और फिर उसका अभिषेक करते हैं। उसके पास चतुरंगिणी सेना होती है और उसका शासन अखण्डित होता है।" प्रभुकी ये बातें सुनकर युगलियोंने कहा—"स्वामिन्! आपही हमारे राजा हैं। आपको हमारी उपेक्षा न करनी चाहिए; क्योंकि हम लोगों में आपके जैसा और दूसरा कोई नज़र नहीं आता।" यह बात सुनकर प्रभुने कहा—"तुम पुरुषोत्तम नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना करो। वही तुम्हें राजा देंगे।" युगलियोंने प्रभुकी आज्ञानुसार नाभिकुलकर के पास जाकर सारा हाल निवेदन किया, तब कुलकरोंमें अग्रगण्य नाभिकुलकर ने कहा—"ऋषभ तुम्हारा राजा हो।" यह बात सुनते ही युगलिये खुश होते हुए प्रभुके सामने आकर कहने लगे—"नाभिकुलकरने आपको ही हमारा राजा नियत किया है।" यह कह कर युगलिये स्वामी का अभिषेक करने के लिये जल लाने चले। उस समय स्वर्ग-पति इन्द्रका आसन हिला। अवधि ज्ञानसे यह जानकर, कि यह स्वामीके अभिषेक का समय है, वह क्षणभरमें वहाँ इस तरह आ पहुँचा, जिस तरह एक घरसे दूसरेमें जाते हैं। इसके बाद सौधर्म कल्पके उस इन्द्रने सोनेकी वेदी रचकर, उसपर अति पाण्डुकवला शिला (मेरु पर्वतके ऊपर की तीर्थङ्कर भगवान्के जन्माभिषेककी शिला) के समान एक सिंहासन बनाया और पूर्व दिशा के स्वामीने उसी समय स्वस्तिवाचक की तरह देवोंके लाये हुए

तीर्थोंके जलसे प्रभुका राज्याभिषेक किया। फिर इन्द्रने निर्मलता में चन्द्रमाके जैसे तेजोमय दिव्य वस्त्र स्वामीको पहनाये और त्रैलोक्य मुकुट रूप प्रभुके अङ्गों पर उचित स्थानों में मुकुट आदि अलङ्कार पहनाये। इसी बीचमें युगलिये कमलके पत्तोंमें जल लेकर आये। वे प्रभुको गहने कपड़ों से सजे हुए देखकर एक ओर इस तरह खड़े हो रहे, मानों अर्घ्य देनेको खड़े हों। दिव्य वस्त्र और दिव्य अलंकारों से अलंकृत प्रभु के मस्तक पर यह पानी डालना उचित नहीं है, ऐसा विचार करके उन्होंने वह लाया हुआ जल उनके चरणों पर डाल दिया। ये युगलिये सब तरह से विनीत हो गये हैं—ऐसा समझ कर, उनके रहने के लिए, अलकापतिको विनीता नामक नगरी निर्माण करनेकी आज्ञा देकर इन्द्र अपने स्थान को चले गये।

राजधानी निर्माण।

कुबेरने अड़तालीस कोस लम्बी, छत्तीस कोस चौड़ी विनीता नामक नगरी तैयार की और उसका दूसरा नाम अयोध्या रक्खा। यक्षपति कुबेरने उस नगरी को अक्षय वस्त्र, नेपथ्य, और धन-धान्यसे पूर्ण किया। उस नगरीमें हीरे, इन्द्र नीलमणि और वडूर्य्य मणिकी बड़ी-बड़ी हवेलियाँ, अपनी विचित्र किरणों से, आकाशमें भीतके बिना ही, विचित्र चित्र-क्रियाएं रचती थीं अर्थात् उस नगरी की रत्नमय हवेलियों का अक्स आकाशमें पड़ने से, बिना दीवारोंके, अनेक प्रकार के चित्र बने हुए दिखाई देते थे और मेरु पर्वत की चोटीके समान सोनेकी ऊँची हवेलियाँ ध्वजा-

ओंके मिषसे चारों तरफ से पत्रालम्बन की लीला का विस्तार करती थीं। उस नगरी के क़िले पर माणिक के कंगूरों की पंक्तियाँ थीं, जो विद्याधरों की सुन्दरियोंको बिना यत्नके दर्पण या आईने का काम देती थीं। उस नगरीमें, घरोंके सामने, मोतियों के साथिये पुराये हुए थे, इसलिये उनके मोतियों से बालिकायें इच्छानुसार पाँचीका खेल खेलती थीं। उस नगरी के बागीचों से रात-दिन भिड़ने वाले खेचरियों के विमान क्षणमात्र पक्षियों के घोसलों की शोभा देते थे। वहाँ की अटारियों और हवेलियों में पड़े हुए रत्नोंके ढेरों को देखकर, रत्न-शिखर वाले रोहणाचल का ख़याल होता था। वहाँ की गृह-वापिकायें, जल-क्रीड़ामें आसक्त सुन्दरियों के मोतियोंके हार टूट जानेसे, ताम्रपर्णी नदी की शोभाको धारण करती थीं। वहाँके अमीर और धनियों में से किसी एक भी व्यापारी के पुत्र को देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया यक्षाधिपति-कुवेर स्वयं व्यवसाय या तिजारत करने आये हों। वहाँ रातमें चन्द्रकान्त मणिकी दीवारों से झरनेवाले पानीसे राहकी धूल साफ होती थी। वह नगरी अमृत-समान जल वाले लाखों कूए, बावड़ी और तालावों से नवीन अमृत-कुण्ड वाले नाग लोकके समान शोभा देती थी।

राज्य प्रबन्ध।

जन्मसे बीसलक्ष पूर्व व्यतीत हुए, तब प्रभु प्रजा पालनार्थ राजा हुए। मन्त्रोंमें ओंकारके समान, सबसे पहले राजा ऋषभ जिने-

श्वर अपनी प्रजाका अपने पुत्रके समान पालन करने लगे। उन्होंने दुष्टोंको शिक्षा देने और सज्जनोंका पालन करने की चेष्टा करने वाले, अपने अङ्ग के जैसे मन्त्री मन्त्रणाकार्यके लिये चुने। महाराजा ऋषभ देवने चोरी आदि से प्रजाकी रक्षा करने मे प्रवीण, इन्द्रके लोकपालों-जैसे आरक्षक देव चारों ओर नियत किये। राजहस्ति जैसे प्रभुने राज्यकी स्थिति के लिए, शरीर में उत्तमाङ्ग शिरकी तरह, सेनाके उत्कृष्ट अङ्ग रूप हाथी ग्रहण किये। उन्होंने सूर्य्य के घोड़ों की स्पर्द्धा सी करने वाले और ऊँची-ऊँची गर्दनों वाले घोड़े रखे। इन्होंने सुन्दर लकड़ियों से ऐसे रथ बनवाये, जो पृथ्वी के विमान जैसे मालूम होते थे। जिनके सत्व बल की परीक्षा कर ली गई थी, ऐसे सैनिकों की पैदल सेना प्रभुने उसी तरह रक्खी, जिस तरह कि चक्रवर्ती राजा रक्खा करते हैं। नवीन साम्राज्य रूपी महलके स्तम्भ या खम्भ-जैसे महा बलवान सेनापति प्रभु ने एकत्र किये और गाय, बैल, ऊँट, भैंस-भैंसे एवं ख़च्चर प्रभृति पशु, उनके उपयोगको जानने वाले प्रभुने ग्रहण किये।

प्रभु द्वारा शिल्पोत्पत्ति।

अब, उस समय पुत्र--विहीन वंश की तरह कल्प-वृक्षों के नष्ट हो जाने से लोग कन्द मूल और फल प्रभृति पर गुज़ारा करते थे। उस समय शाल, गेहूँ, चने और मूँग प्रभृति औषधियाँ घास की तरह, विना वोये अपने-आप ही पैदा होने लगीं। लेकिन वे लोग उन्हें कच्ची की कच्ची ही—विना पकाये खाते थे; उनको वे न पचीं तब

उन्होंने प्रभु से जाकर प्रार्थना की। प्रभुने उनकी बात सुनकर कहा--"उन अनाजोंको मसलकर छिलके रहित करो, तब खाओ।" वे लोग ठीक प्रभुके उपदेशानुसार काम करने लगे, किन्तु सख्ती और कड़ाईके कारण उन्हें वह अनाज इस तरह भी न पचे, इसलिये उन्होंने फिर प्रभुसे प्रार्थना की। इस बार प्रभुने कहा—"उन अनाजों को हाथोंसे रगड़ कर, जलमें भिगोकर और फिर दोनोंमे रखकर खाओ।" उन्होंने ठीक इसी तरह किया, तोभी उन्हें अजीर्ण की वेदना या बदहज़मी की शिकायत रहने लगी; तब उन्हों ने फिर प्रार्थना की। जगत्पति ने कहा—"पहले कही हुई विधि करके, उस अनाज को मुट्ठी या बग़लमें कुछ देर तक रख कर खाओ। इस तरह तुमको सुख होगा।" लोगों को इस तरह अन्न खाने से भी अजीर्ण होने लगा, तब लोग शिथिल होगये। इसी बीचमें वृक्षोंकी शाखायें आपसमें रगड़ने लगी। उस रगड़न से आग उत्पन्न हुई और घास फूस एवं लकड़ी या काठ प्रभृति को जलाने लगी। प्रकाशमान रत्न के भ्रमसे—चमकते हुए रत्नके धोखेसे, उन्होंने उसे पकड़ने के लिये दौड़ कर हाथ बढ़ाये; परन्तु वे उल्टे जलने लगे। तब आगसे जलकर वे लोग फिर प्रभुके पास जाकर कहने लगे:—"प्रभो! जङ्गलमें कोई अद्भुत भूत पैदाहुआ है।" स्वामीने कहा-"चिकने और रूखे कालके दोषसे आग उत्पन्न हुई है; क्योंकि एकान्त रूखे समय में आग उत्पन्न नहीं होती। तुम उसके पास जाकर, उसके नज़दीक की घास फूस आदिको हटादो और फिर उसे ग्रहण करो। इसके बाद पहली कही हुई विधिसे

तैयारकी हुई औषधियों या धान्यको उसमें डालकर पकाओ और खाओ।" उन मूर्खोंने वैसा ही किया, तब आगने सारी औषधियाँ जला डालीं। उन लोगोंने शीघ्र ही स्वामी के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया और कहा कि स्वामिन्! वह आग तो भुखमरे की तरह, उसमें डाली हुई सब औषधियोंको अकेली ही खा जाती है—हमें कुछ भी वापस नहीं देती।" उस समय प्रभु हाथी पर वैठे हुए थे, इस लिये वहीं उन लोगोंसे एक गीली मिट्टीका गोला मँगवाया और उसे हाथीके गण्डस्थल पर रखकर, हाथ से फैला कर, उसी आकार का एक पात्र या वर्तन प्रभुने वनाया। इस तरह शिल्पकलाओंमें पहली शिल्पकला प्रभुने कुम्हारकी प्रकट की। इसके वाद प्रभुने कहा—"इसी तरह तुम और पात्र भी वनालो। पात्रको आगपर रख कर, उसमें अनाज को रखो और पकाकर खाओ।" उन्होंने ठीक प्रभुकी आज्ञानुसार काम किया। उस दिन से पहले शिल्पी या कारीगर कुम्हार हुए। लोगोंके घर वनाने के लिए प्रभुने सुनार या वढ़ई तैयार किया। महा पुरुषों की वनावट विश्वके सुख के लिये ही होती है। घर प्रभृति चीतने या चित्र वनाने के लिये और लोगोंकी विचित्र क्रीड़ा के लिये प्रभुने चित्रकार तैयार किये। मनुष्यों के वास्ते कपड़े वुनने के लिये प्रभुने जुलाहों की सृष्टि की; क्योंकि उस समय कल्पवृक्षों की जगह प्रभुही एक कल्पवृक्ष थे। लोग वाल और नाखून वढ़ने के कारण दुखी रहते थे, इसलिये जगदीशने नाई वनाये। कुम्हार, वढ़ई, चित्रकार, जुलाहे और नाई—इन पाँच शिल्पियों में से एक

एकके बीस-बीस भेद होनेसे, वे लोगोंमें नदी के प्रवाह की तरह सौ तरह से फैले ; यानी सौ शिल्प प्रकट हुए। लोगोंकी जीविका के लिये घास काटना, लकड़ी काटना, खेती और व्यापार प्रभृति कर्म प्रभुने उत्पन्न किये और जगत्की व्यवस्था रूपी नगरीके मानो चतुष्पथ या चार राहें हों, इस तरह साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायो की कल्पना की। सबसे बड़े पुत्रको ब्रह्मोपदेश करना चाहिये, इसे न्याय से ही मानो भगवान्ने अपने बड़े पुत्र भरतको ७२ कलायें सिखाईं। भरतने भी अपने अन्य भाइयों तथा पुत्रोंको वे कलायें अच्छी तरहसे सिखाईं। क्योंकि पात्रको सिखायी हुई विद्या सौ शाखा वाली होती है, बाहुबलिको प्रभुने हाथी, घोड़े, औरस्त्री-पुरुषोंके अनेक प्रकार के भेदवाले लक्षण बताये। ब्राह्मीको दाहिने हाथसे १८ लिपियाँ सिखाईं और सुन्दरीको बायें हाथसे गणित सिखाई। वस्तुओंके मान, उन्मान, अवमान और प्रतिमान प्रभुने सिखाये और रत्न प्रभृति पिरोनेकी कला भी चलाई। उनकी आज्ञासे वादी और प्रतिवादी अथवा मुद्दई और मुद्दायलयः का व्यवहार राजा, अध्यक्ष और कुलगुरुकी साक्षीसे चलने लगा। हस्ती आदिकी पूजा, धनुर्वेद और और वैद्यककी उपासना, संग्राम, अर्थशास्त्र, बंध, घात, बध और गोस्टी आदि तबसे प्रवृत्त हुए। यह माँ है, यह बाप है, यह भाई है, यह बेटा है, यह स्त्री है, यह धन मेरा है—ऐसी ममता लोगोंमें तबसे ही आरम्भ हुई। उसी समयसे लोग मेरा तेरा अपना या पराया समझने लगे। विवाहमें लोगोंने प्रभुको गहने कपड़ोंसे सजा हुआ देखा,

तभीसे वे लोग अपने तईं ज़ेवर और कपड़ोंसे अलंकृत करने लगे। लोगोंने पहले जिस तरह प्रभुका पाणिग्रहण होते देखा था, उसी तरह आजतक पाणिग्रहण करते हैं; क्योंकि बड़े लोगोंका चलाया हुआ मार्ग निश्चल होता है। जिनेश्वरने विवाह किया उसी दिनसे दूसरेकी दी हुई कन्याके साथ विवाह होने लगे और चूड़ा कर्म्म, उपनयन आदिकी पूछ भी उसी समयसे हुई। यद्यपि ये सब क्रियाएँ सावद्य हैं, तथापि अपने कर्त्तव्य या फ़र्ज़को समझने वाले प्रभुने, लोगों पर दया करके ये चलाईं। उनकी ही करतूतसे पृथ्वीपर आजतक कला-कौशल आदि प्रचलित हैं। उनको इस समयके बुद्धिमान विद्वानोंने शास्त्र-रूपसे ग्रथित किया है। स्वामीकी शिक्षासे ही सब लोग दक्ष—चतुर हुए; क्योंकि उपदेश बिना मनुष्य पशु तुल्य होते हैं।

प्रभु द्वारा प्रजापालन।

विश्व—संसारकी स्थिति रूपी नाटकके सूत्रधार—प्रभुने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय—इन चार भेदोंसे लोगोंके कुलोंकी रचना की। उग्र दण्डके अधिकारी आरक्षक पुरुष उग्र कुलवाले हुए; इन्द्रके त्रायस्त्रिंश देवताओंकी तरह प्रभुके मन्त्री आदि भोग कुल वाले हुए; प्रभुकी उम्रवाले यानी प्रभुके समवयस्क लोग राजन्य कुल वाले हुए; और जो बाक़ी बचे वे क्षत्रिय हुए। इस तरह प्रभु व्यवहार नीतिकी नवीन स्थिति की रचना करके, नवोढ़ा स्त्रीकी तरह, नवीन राज्यलक्ष्मीको भोगने लगे। जिस तरह

वैद्य या चिकित्सक रोगीकी चिकित्सा करके उचित औषधि देता है; उसी तरह दण्डित करने लायक़ लोगोंके उनको अपराध-प्रमाण दण्ड देनेका क़ायदा प्रभुने चलाया। दण्ड या सज़ाके डरसे लोग चोरी जोरी प्रभृति अपराध नहीं करते थे; क्योंकि दण्डनीति सब तरहके अन्यायरूप सर्पको वश करनेमें मन्त्रके समान है। जिस तरह सुशिक्षित लोग प्रभुकी आज्ञाको उल्लङ्घन नहीं करते; उसी तरह कोई किसीके खेत, बाग़ और घर प्रभृतिकी मर्यादाको उल्लङ्घन नहीं करते थे। वर्षा भी, अपनी गरजनाके बहाने से, प्रभुके न्याय-धर्मकी प्रशंसा करती हो, इस तरह धान्यकी उत्पत्तिके लिये समय पर बरसती थी। धान्यके खेतों, ईखके बगीचों और गायोंके समूहसे व्याप्त देश अपनी समृद्धिसे शोभते थे और प्रभुकी ऋद्धिकी सूचना देते थे। प्रभुने लोगोंको त्याज्य और ग्राह्यके विवेकसे जानकार किया; अर्थात् प्रभुने लोगोंको क्या त्यागने योग्य है और क्या ग्रहण करने योग्य है, इसका ज्ञान दिया— इस कारण यह भरतक्षेत्र बहुत करके विदेह-क्षेत्रके जैसा हो गया। इस तरह नाभिनन्दन ऋषभदेव स्वामीने, राज्याभिषेकके बाद, पृथ्वीके पालन करने मे तिरेसठ लक्ष पूर्व व्यतीत किये।

वसन्त वर्णन।

एक दफा कामदेवका प्यारा वसन्त मास आया। उस समय परिवारके अनुरोधसे प्रभु बाग़में आये। वहाँ मानो देहधारी वसन्त हो, इस तरह प्रभु फूलोंके गहनोंसे सजे हुए फूलोंके बँगलेमें विरा-

जमान हुए। उस समय फूल और माकन्दके मकरन्दसे उन्मत्त होकर भौंरे गूंजते थे ; इस लिये ऐसा मालूम होता था, मानो वसन्त लक्ष्मी प्रभुका स्वागत कर रही हो। पंचम स्वरको उच्चारनेवाली कोकिलाओंने मानो पूर्व रंगका आरम्भ किया हो—ऐसा समझकर, मलयाचलका पवन नट होकर लताओंका नाच दिखाता था। मृगनयनी कामिनियाँ अपने कामुक पुरुषोंकी तरह अशोक और बबूल आदि वृक्षोंको आलिङ्गन, चरणपात और मुखका आसव प्रदान करती थीं। तिलक वृक्ष अपनी प्रबल सुगन्ध से मधुकरोंको प्रमुदित करके, युवा पुरुषके भालस्थलकी तरह वनस्थलको सुशोभित करता था। जिस तरह पतली कमरवाली ललना अपने उन्नत और पुष्ट पयोधरोंके भारसे झुक जाती है; उसी तरह लवली वृक्षकी लता अपने फूलोंके गुच्छोंके भारसे झुक गई थी। चतुर कामी जिस तरह मन्द-मन्द आलिङ्गन करता है; उसी तरह मलय पवन आमकी लताको मन्द-मन्द आलिङ्गन करने लगा था। लकड़ीवाले पुरुषकी तरह, कामदेव जामुन, कदम, आम चम्पा और अशोक रूपी लकड़ियोंसे प्रवासी लोगोंको घम काने में समर्थ होने लगा था। नये पाडल पुष्पके सम्पर्कसे सुगन्धित हुआ मलयाचलका पवन, उसी तरह सुगन्धित जलसे सबको हर्षित करता था। मकरन्द रससे भरा हुआ महुएका पेड़ मधुपात्रके समान फैलते हुए भौंरोंके कोलाहलसे आकुल हो रहा था। गोली और कमान चलानेके अभ्यासके लिये कामदेवने, कदमके बहानेसे मानो गोलियाँ तैयार की हों, ऐसा जान पड़ता था, जिसे

इष्टापूर्त्ति प्रिय है, ऐसी वसन्त ऋतुने वासन्ती लताको भ्रमर रूपी पथिकके लिये मकरन्द—रसकी प्याऊ लगाई थी। सिन्धुवारके वृक्ष, जिनके फूलोंकी आमोद की समृद्धि अत्यन्त दुर्वार है, विषकी तरह नाक-द्वारा प्रवासियों में महामोह की उत्पत्ति करते हैं। वसन्त रूपी उद्यानपाल-माली चम्पेके वृक्षोंमें लगे हुए भौंरे—रक्षकों की तरह, निःशङ्क होकर बेखटके घूमता था यौवन जिस तरह स्त्री-पुरुषों की शोभा प्रदान करता है, उनका रूप लावण्य-खिलाता है, उनकी खूबसूरती पर पालिश करता है, इसी तरह वसन्त ऋतु बुरे-भले वृक्ष और लताओं को शोभा प्रदान करती थी, उनको हरा भरा, तरो ताज़ा और सोहना बनाती थी। मतलब यह है, जिस तरह जवानी का दौर दौरा होनेपर बुरे भले सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर दीखने लगते हैं, कुरूपसे कुरूप पर एक प्रकार का नूर टपकने लगता है, उसी तरह वसन्त का राजत्व होनेसे बुरे भले वृक्ष और लताएँ सुन्दर, मनोमोहक और नेत्र रञ्जक दीखते थे। मृगनयनियोंको फूल तोड़ना आरंभ करते देख कर ऐसा ख़याल होता था, मानों वे भारी पर्वमें वसन्त को अर्घ्य देनेको तैयार हुई हों। जान पड़ता था, फूल तोड़ते समय उन्हें ऐसा ख़याल हुआ, कि हमारे मौजूद रहते, कामदेव को दूसरे अस्त्र—फूलकी क्या ज़रूरत है? ज्योंही फूल तोड़े गये, वसन्ती लता उनकी वियोग रूपी पीड़ा से पीड़ित होकर, भौंरोंके गूँजनेकी आवाज़ से रोती हुई सी मालूम होती थी। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि, ज्योंही वसन्ती लताके फूल तोड़े गये, वह अपने

फूलोंके वियोग या जुदाई से दुखी हो उठी। भौंरोंके गूँजनेके शब्द से ऐसा जान पड़ता था, मानो वह अपने साथी फूलोंकी जुदाई से दुखी होकर रो रही हो। एक स्त्री मल्लिका के फूल तोड़कर जाना चाहती थी, इतनेमें उसका कपड़ा उसमें उलझ गया, उससे ऐसा मालूम होता था, यानीगोया मल्लिका उससे यह कहती हो कि तू दूसरी जगह न जा; उसे अपने पाससे जाने की मनाही करती थी। उसे अपने पाससे अलग करना न चाहती थी, उसका कपड़ा पकड़ कर उसे रोकती थी। कोई स्त्री चंपे के फूल को तोड़ना चाहती थी, कि इतने में उसमें पड़ने वाले भौंरे ने उसके होटपर काट लिया। मालूम होता था, अपना आश्रय भङ्ग होने के कारण, भौंरेको क्रोध चढ़ आया और इसीसे उसने आश्रय भङ्ग करने वालीके होठ को डस लिया। कोई स्त्री अपनी भुजा रूपी लता को ऊँची करके, अपनी भुजाके मूल भाग को देखनेवाले पुरुषोंके मनोंके साथ रहने वाले फूलोंको हरण करती थी। नये नये फूलोंके गुच्छे हाथोंमें होनेसे, फूल तोड़नेवाली रमणियाँ जङ्गमवल्ली जैसी सुन्दर मालूम होती थीं। वृक्षोंकी शाखा-शाखामें से स्त्रियाँ फूल तोड़ रही थीं; इससे ऐसा मालूम होता था, गोया वृक्षोंमे स्त्री रूपी फल लगे हों। किसीने स्वयं अपने हाथों से मल्लिका की कलियाँ तोड़ कर, मोतियों के हार के समान, अपनी प्रिया के लिये पुष्पाभरण या फूलोंके ज़ेवर बनाये थे। कोई कामदेव के तरकस की तरह, इन्द्रधनुष के से पचरङ्गे फूलोंकी माला अपने हाथोंसे गूँथकर अपनी प्राणप्यारी को देता

और उसे सन्तुष्ट और राज़ी करता था। कोई पुरूष अपनी प्राणवल्लभाकी लीला या खेलमें फैंकी हुई गेंदको, नौकर की तरह उठा लाकर उसे देता था। गमनागमन के अपराधी पतियों पर जिस तरह स्त्रियाँ पादप्रहार करती हैं, उसी तरह कितनी ही कुरंगलोचनी सुन्दरियाँ वृक्षके अग्रभाग पर अपने पाँवों से प्रहार करती थीं। कोई झूले पर बैठी हुई हालकी ब्याही हुई वहू या नवौढ़ा कामिनी उसके स्वामीका नाम पूछने वाली सखियोंके लता-प्रहार को शर्म के मारे मुख मुद्रित करके चुपचाप सहती थी। कोई पुरूप अपने सामने बैठी हुई भीरू कामिनीके साथ झूले पर बैठ कर, गाढ़ आलिङ्गन की इच्छासे, उसे ज़ोर से छातीसे लगानेकी ख्वाहिशसे झूले को खूब ज़ोर से चढ़ाता था। कितने ही नौजवान रसिये बाग़के दरख्तों में बँधे हुए झूलों को जब लीलासे ऊँचे चढ़ाते थे, तब वन्दरों की तरह अच्छे मालूम होते थे।

वसन्त क्रीड़ासे वैराग्योत्पत्ति।

लोकान्तिक देवका आगमन।

उस शहरके लोग इस तरह क्रीड़ा और आमोद-प्रमोदमें मग्न थे। उनको इस दशामें देखकर प्रभु मन-ही-मन विचार करने लगे-क्या ऐसी क्रीड़ा, ऐसा आमोद-प्रमोद, ऐसा खेल क्या किसी और जगह भी होता होगा? ऐसा विचार आते ही, अवधि ज्ञानसे, प्रभुको स्वयं पहले के भोगे हुए अनुत्तर विमान तक के स्वर्ग-सुख याद आगये। उन्हे पहले जन्मों के भोगे हुए स्वर्ग-सुखोंका स्म-

रण हो आया। इन पर विचार करने से उनके मोह का बं
टूट गया और वे मन-ही-मन कहने लगे—"अरे इन विषय-भोगों
फन्देमें फँसे हुए, विषयों की चपेटमें आये हुए, विष
से आक्रान्त हुए, अथवा उनके वशमें हुए लोगों
धिक्कार है, कि जो जो अपने हितको बातको भी नहीं जानते-
जो इतना भी नहीं जानते कि, हमारा हित—हमारी भलाई कि
बात में है। अहो! इस संसार रुपी कूएँमें, अरघट्ट घटियन्त्र की
तरह, प्राणी अपने अपने कर्मोंसे गमनागमन की क्रिया करते हैं।
कूएमें जिस तरह रहँटके घड़े आते और जाते हैं; उसी तरह अपने
पहले जन्म के कर्मों के फल भोगने के लिए प्राणी जनमते और
मरते हैं, अपने कर्मानुसार ही कभी ऊँचे आते और कभी नीचे
जाते हैं, कभी उन्नत अवस्था को और कभी अवनत अवस्थाको प्राप्त
होते हैं, कभी सुखी होते और कभी दुखी होते हैं; पर
मोहके कारण प्राणी इस बात को न समझ कर थोथे विषयोंमें
लीन रहते हैं। मोहान्ध प्राणियोंके जन्म को धिक्कार है!!
जिनका जन्म, सोने वाले की रातकी तरह, व्यर्थ बीता चला
जाता है; यानी नींदमें सोनेवाले की रातका समय जिस तरह
वृथा नष्ट होता है; उसी तरह मोहान्ध प्राणियों का जीवन वृथा नष्ट
होता है। चूहा जिस तरह वृक्षका छेदन कर डालता है; उसी तरह
राग द्वेष और मोह उद्यमशील प्राणियोंके धर्मको भी जड़से छेदन कर
डालते हैं। अहो! मूढ़ लोग बड़के वृक्ष की तरह क्रोधको
बढ़ाते हैं, कि जो अपने बढ़ाने वाले को समूल ही खा जाता है।

हाथी पर बैठा हुआ महावत जिस तरह सबको तुच्छ या भुनगा के समान समझता है; उसी तरह मान या अभिमान पर बैठे हुए पुरुष मर्य्यादा का उल्लङ्घन करके किसी को भी माल नहीं समझते, जगत् को तुच्छ या हक़ीर समझते हैं। जो मानकी सवारी करते हैं, जो अभिमानी या अहंकारी होते हैं, वे मर्य्यादा भङ्ग करके, लोक, निन्दा और ईश्वर से न डर कर, दुनिया को हिक़ारत की नज़र से देखते हैं, सबको अपने मुक़ाबलेमें तुच्छ या नाचीज़ समझते हैं। दुराशय प्राणी या दुर्जन लोग कौंचकी कलीके समान जलन या भयङ्कर वेदना करने वाली माया को नहीं त्यागते। तुषोदक से जिस तरह दूध बिगड़ जाता या फट जाता है, काजलसे जिस तरह साफ सफेद कपड़ा काला या मैला हो जाता है; उसी तरह लोभ से प्राणी का निर्मल गुणग्राम दूषित हो जाता या वह स्वयं उसे दूषित कर लेता है। जब तक इस संसार रूपी कारागार या जेलख़ाने में जब तक ये चार कषाय पहरेदार या सन्त्री की तरह जागते रहते हैं, तब तक पुरुषों की मोक्ष-मुक्ति या छुटकारा हो नही सकता। दूसरे शब्दोंमें इस तरह समझिये, जिस तरह जेलमें जब तक चौकीदार जागते रहते हैं, क़ैदी को जेलसे मुक्ति या रिहाई नहीं मिल सकती, वह क़ैदसे छूट नहीं सकता; जेलसे मुक्ति पा नहीं सकता; उसी तरह इस संसार रूपी जेलमें जो प्राणी क़ैद हैं, जिन्होंने इस संसारमें जन्म लिया है, जो इस जगत् के बन्धनमें फँसे हुए हैं, संसारी रूपीजेलसे मुक्ति पा नहीं सकते, जब तक कि लोभ मोह आदिक कषाय जाग रहे हैं; मत-

लब यह है, लोभ मोह प्रभृति के त्यागने पर ही प्राणीको संसार से छुटकारा या मुक्ति मिल सकती है। इनके सोते रहने या इनके न होने पर ही प्राणी संसारबन्धन से छूटकर मोक्षपद लाभ कर सकता है। अहो! मानों भूत लगे हों, इस तरह स्त्रियोंके आलिङ्गनमें मस्त हुए प्राणी अपनी क्षीण होती हुई आत्मा को भी नहीं जानते। सिंहको आरोग्य करनेसे जिस तरहसिंह अपने आरोग्य करने वाले का ही प्राण लेता हैं; उसी तरह आहार प्रभृतिसे उपजा हुआ उन्माद अपने ही भव भ्रमण या संसार बन्धन का कारण होता है। जिस तरह सिंह में किया हुआ आरोग्य आरोग्य करने वालेका काल होता है; उसी तरह अनेक प्रकारके आहार प्रभृति से पैदा हुआ उन्माद हमारी आत्मा में ही उन्माद पैदा करता; यानी आत्मा को भव-बन्धन में फँसाता है। यह सुगन्धी है कि यह सुगन्धी! मैं किसे ग्रहण करूँ, ऐसा विचार करने वाला प्राणी उसमें लम्पट होकर, मुढ़ बनकर, भौंरे की तरह भ्रमता फिरता है। उसे किसी दशामें भी सुख-शान्ति नहीं मिलती। जिस तरह खिलौने से बालक को ठगते हैं; उसी तरह केवल उस समय अच्छी लगने वाली रमणीय चीज़ोंसे लोग अपनी आत्मा को ही ठगते हैं। जिस तरह नींदमें सोने वाला पुरुष शास्त्र-चिन्तनसे भ्रष्ट हो जाता है; उसी तरह सदा बाँसुरी और वीणाके नाद को कान लगाकर सुननेवाला प्राणी अपने स्वार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। एक साथ ही प्रबल या कुपित हुए वात, पित्त और कफकी तरह प्रबल हुए विषयों से प्राणीअपने चैतन्य या

आत्मा को लुप्त कर डालते हैं; अर्थात् वात, पित्त और कफ—इन तीनों दोषों के एकसाथ कोप करनेया प्रबल होनेसे जिस तरह प्राणी नष्ट हो जाता है, उसी तरह विषयों के बलवान होनेसे प्राणी का आत्मा नष्ट या तुष्ट हो जाता है; इसलिये विषयी लोगों को धिक्कार है! जिस समय प्रभुका हृदय इस प्रकार संसारी वैराग्य की चिन्ता सन्ततिके तन्तुओं से व्याप्त हो गया, जिस समय प्रभुके हृदयमें वैराग्य-सम्बन्धी विचारोंका ताँता लगा, उस समय ब्रह्म नामक पाँचवें देवलोकके रहने वाले सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्गतोय, तुषिताश्व, अव्याबाध, मरुत, और रिष्ट नामके लोकान्तिक देवताओंने प्रभुके चरणोंके पास आ, मस्तक पर मुकुट जैसी पद्मकोषके समान अञ्जलि जोड़, इस तरह कहने लगे-"हे प्रभो! आपके चरण इन्द्रकी चूड़ामणिके कान्ति रूप जलमें मग्न हुए हैं, आप भरतक्षेत्रमें नष्ट हुए मोक्ष मार्गको दिखानेमें दीपकके समान हैं। आपने जिस तरह इस लोककी सारी व्यवस्था चलाई, उसी तरह अब धर्म-तीर्थको चलाइये और अपने कृत्यको याद कीजिये" देवता लोग प्रभुसे इस तरह प्रार्थना करके ब्रह्मलोकमें अपने अपने स्थानोंको चले गये। और दीक्षाकी इच्छा वाले प्रभु भी तत्काल नन्दन उद्यानसे अपने राजमहलोंकी ओर चले गये।

दूसरा सर्ग समाप्त।

तीसरा सर्ग।

भरतसे राज्य सिंहासनासीन होनेको कहना

भरतका उत्तर।

अव प्रभुने अपने सामन्त और भरत तथा वाहुवलि आदि पुत्र अपने पास बुलवाये। उन्होंने भरतसे कहा—"हे पुत्र! तू इस राज्यको ग्रहण कर; हमतो अब संयम-साम्राज्यको ग्रहण करेंगे।" प्रभुकी ये वातें सुन-कर क्षण भर तो भरत नीचा मुँह किये वैठा रहा, इसके वाद हाथ जोड़ नमस्कार कर गद्‌गद् स्वरसे कहने लगा:—"हे प्रभो! आपके चरण-कमलोंकी पीठके आगे लोटनेमें मुझे जो आनन्द आता है, वह मुझे रत्नजड़ित सिंहासनपर वैठनेसे नहीं आ सकता; अर्थात आपकी चरणसेवामें जो सुख है, वह रत्न-मय सिंहासन पर वैठनेमें नहीं है। हे प्रभो! आपके सामने पैदल दौड़नेमें मुझे जो सुख मिलता है, वह लीलासे गजेन्द्रकी पीठपर वैठनेसे नहीं मिलेगा। आपके चरण कमलों की

छायामें जो सुख और आनन्द है; वह उज्ज्वल छत्रकी छाया में भी नहीं है। यदि मैं आपका विरही हूं, यदि आप मुझसे अलहिदा हों, अगर आपकी और मेरी जुदाई हो, तो फिर साम्राज्य-लक्ष्मीका क्या प्रयोजन है? आपके न रहनेसे यह साम्राज्य-लक्ष्मी निष्प्रयोजन हैं। इसमे कुछ भी सार और सुख नहीं है। क्योंकि आपकी सेवाके सुख रूपी क्षीर सागरमें राज्यका सुख एक बूंदके समान है; अर्थात आपकी सेवाका सुख क्षीरसागर-वत् है और उसके मुकाबलेमें राज्यका सुख एक बूँदके समान है।

स्वामी का प्रत्युत्तर

भरत को राजगद्दी।

भरतकी बातें सुनकर स्वामीने कहा—"हमने तो राज्यको त्याग दिया है। अगर पृथ्वी पर राजा न हो, तो फिरसे मत्स्य-न्याय होने लगे। सबसे बड़ी मछली जिस तरह छोटी मछलियों को निगल जाती है; उसी तरह बलवान लोग निर्बलोंकी चटनी कर जायें, उन्हें हर तरहसे हैरान करें। जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत चरितार्थ होने लगे। संसारमें निर्बलोंके खड़े होनेको भी तिल भर ज़मीन न मिले। इसलिये हे वत्स! तुम इस पृथ्वीका यथोचित रूपसे पालन करो। तुम हमारी आज्ञापर चलने वाले हो और हमारी आज्ञा भी यही है।" प्रभुका ऐसा सिद्धादेश होनेपर भरत उसे उल्लङ्घन कर न सकते थे, अतः उन्होंने प्रभुकी बात मंजूर कर ली; क्योंकि गुरुमें ऐसी ही विनय स्थित

होती है। इसके बाद भरतने नम्रतापूर्वक स्वामीको सिर झुका कर प्रणाम किया और अपने उन्नत वंश की तरह पिताके सिंहासनको अलंकृत किया। जिस तरह देवताओंने प्रभुका राज्याभिषेक किया था, उसी तरह प्रभुके हुक्मसे सामन्त और सेनापति आदिने भरतका राज्याभिषेक किया। उस समय प्रभुके शासनकी तरह, भरतके सिर पर पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान अखण्ड छत्र शोभने लगा। उनके दोनों तरफ ढोरे जाने वाले चँवर चमकने लगे। उनके देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वे उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध दो भागोंसे भरतके यहाँ आने वाली लक्ष्मीके दूत हों। अपने अत्यन्त उज्वलके गुण हों, इस तरह कपड़ों और मोतियोंके ज़ेवरोंसे भरत शोभने लगे। बड़ी भारी महिमाके पात्र, उस नवीन राजाको, नये चाँद की तरह, अपने कल्याणकी इच्छासे राज-मण्डलीने प्रणाम किया।

संवत्सरी दान।

प्रभुने बाहुबलि प्रभृति अन्य पुत्रोंको भी उनकी योग्यतानुसार देश बाँट दिये। इसके बाद प्रभुने कल्पवृक्षकी तरह उनकी अपनी इच्छासे की हुई प्रार्थनाके अनुरूप, मनुष्योंको सांवत्सरिक दान देना आरम्भ किया; अर्थात कल्प-वृक्ष जिस तरह माँगने वालेको उसकी प्रार्थनानुसार फल देता है; उसी तरह प्रभुसे जिसने जो माँगा उन्होंने उसे वही दिया। इसके सिवा उन्होंने शहरके चौराहों और दरवाज़ोंपर ज़ोरसे ढौंढी पिटा कर

इसके बाद प्रभुने कल्पवृक्षकी तरह उनकी अपनी इच्छासे की हुई प्रार्थनाके अनुरूप, मनुष्योंको सांवत्सरिक दान देना आरम्भ किया, अर्थात् कल्प-वृक्ष जिस तरह माँगने वालेको उसकी प्रार्थनानुसार फल देता है; उसी तरह प्रभुसे जिसने जो माँगा उन्होंने उसे वही दिया।

[पृष्ठ २४४]

कि जिसे जिस चीज़की ज़रूरत हो, वह आकर लेजाय। जिस समय प्रभुदान करने लगे, उस समय इन्द्रकी आज्ञासे, अलकापति कुबेर के भेजे हुए जृम्भकदेव बहुकालसे भ्रष्ट हुए, नष्ट हुए, बिना मालिक के मर्य्यादाको उल्लङ्घन कर जाने वाले; पहाड़, कुंज, श्मसान और घरमें छिपे हुए और गुप्त रूपसे रखे हुए सोने, चाँदी और रत्नोंको जगह-जगहसे लाकर वर्षाकी तरह बरसाने लगे। नित्य सूर्योदयसे भोजन-कालतक प्रभु एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्रायें दान करते थे। इस तरह एक सालमें प्रभुने तीन सौ अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण या सुवर्णमुद्राओंका दान किया। प्रभु दीक्षा ग्रहण करने वाले हैं, संसार से विरक्त होने वाले हैं, यह जानकर लोगोंका मन भी विरक्त हो गया था, उनके मनोंमें भी वैराग्यका उदय हो आया था, इससे वे लोग सिर्फ जरूरतके माफ़िक़ दान लेते थे, यद्यपि प्रभु इच्छानुसार दान देते थे, तथापि लोग अधिक न लेते थे।

प्रभुका दीक्षा महोत्सव।

वार्षिक दानके अन्तमें, अपना आसन चलायमान होनेसे इन्द्र, दूसरे भरतकी तरह, भगवान्‌के पास आया। जल-कुम्भ हाथमें रखने वाले दूसरे इन्द्रोंके साथ, उसने राज्याभिषेककी तरह जगत्पतिका दीक्षा-सम्बन्धी अभिषेक किया। उस कार्यका अधिकारी ही हो, इस तरह उस समय इन्द्र द्वारा लाये हुए दिव्य गहने और कपड़े प्रभुने धारण किये। मानो अनुत्तर विमानके अन्दरका एक

विमान हो ऐसी सुदर्शना नामकी पालकी इन्द्रने प्रभुके लिए तैयार की। इन्द्रके हाथका सहारा देनेपर, लोकाग्र रूपी मन्दिरकी पहली सीढ़ीपर चढ़ते हों, इस तरह प्रभु पालकी पर चढ़े। पहले रोमाञ्चित हुए मनुष्योंने, फिर देवताओंने अपना मूर्त्तिमान पुण्यभार समझकर पालकी उठाई। उस समय सुर और असुरों द्वारा बजाये हुए मंगल बाजों ने अपने नादसे, पुस्करावर्त्त मेघकी तरह, दिशायें पूर्ण कर दीं; यानी उन बाजोंकी आवाज़ दशों दिशाओं में फैल गई। मानों इस लोक और परलोकको मूर्त्तिमान निर्मलता हों—इस तरह दो चँवर प्रभुके दोनों ओर चमकते थे। वन्दीगण या भाटोंकी तरह देवता लोग मनुष्योंके कानोंकी तृप्ति करने वाला भगवान्‌का जयजयकार उच्च स्वरसे करने लगे। पालकीमें बठकर जाते हुए प्रभु उत्तम देवोंके विमानमें रहने वाली शाश्वत प्रतिमा जैसे शोभते थे। इस प्रकार भगवान्‌को जाते हुए देखकर, शहरके लोग उनके पीछे इस तरह दौड़े, जिस तरह बालक पिताके पीछे दौड़ते हैं। कितने ही तो मेहको देखने वाले मोरकी तरह प्रभुको देखनेके लिये ऊँचे ऊँचे वृक्षोंकी डालियों पर चढ़ गये। स्वामीके दर्शनार्थ राह-किनारेके मकानोंके छज्जों और छतोंपर बैठे हुए लोगोंपर सूरजका प्रबल आतप पड़ रहा था—तेज़ धूप उनके शरीरोंको जलाये डालती थी—पर वे उस कड़ी घामको चन्द्रमाकी शीतल चाँदनीके समान समझते थे। कितनोंही को घोड़ों पर चढ़कर आने तककी देर बर्दाश्त न होती थी, इसलिये वे घोड़ों पर न चढ़कर स्वयं घोड़े हों इस तरह राहमें दौड़ते थे। कितनेही

पानीमें मछलीकी तरह भीड़में घुसकर स्वामीके दर्शनकी आकांक्षा से आगे निकल जाने लगे। जगदीशके पीछे-पीछे दौड़ने वाली कितनी ही रमणियोंके हार भागा-दौड़में टूट जाते थे, इससे ऐसा जान पड़ता था, गोया वे प्रभुको लाजाञ्जलि बँधाती हों। यह सुनकर कि, प्रभु आते हैं, उनकी दर्शनाभिलाषिणी कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें बालक लिये बन्दरों-सहित लताओं सी सुन्दर दीखती थीं। पीन पयोधरों या कुच-कुम्भोंके भारके कारण मन्द गतिसे चलने वाली कितनीही स्त्रियाँ—दोनों बाजुओंमें दो पंख हों—इस तरह दोनों तरफ रहनेवाली दोनों सखियोंकी भुजाओ का सहारा लेकर आती थीं। कितनीही स्त्रियाँ प्रभु के दर्शनों के आनन्दकी इच्छासे, गतिभंग करने वाले—चलनेमें रुकावट डालने वाले भारी नितम्बोंकी निन्दा करती थीं, राहमे पड़नेवाले घरोंकी अनेक कुल-कामिनियाँ सुन्दर कसूमी रंगके कपड़े पहने हुए और पूर्णपात्रको धरण किये हुए खड़ी थीं। वे चन्द्र-सहित सन्ध्याके समान सुहावनी लगती थीं। कितनीही चञ्चलनयनी प्रभुको देखने की इच्छासे अपने हस्त-कमलोंसे चँवर-सदृश वस्त्रके पल्लेको फिराती थीं। कितनीही ललनायें नाभिनन्दनके ऊपर धानी फैंकती थीं। उन्हें देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वे अपने पुण्यके बीज पूर्ण रूपसे बो रही हों। कितनी ही स्त्रियाँ मानों भगवान्के घरकी सुवासिनी हों इस तरह, चिरंजीव चिरंनन्द, आयुस्मन् आशीर्वाद देती थीं। कितनीही कमलनयनी नगर नारियाँ अपने नेत्रों को निश्चल और गति को तेज़ करके प्रभु के पीछे-पीछे चलती और उन्हें देखती थीं।

अब अपने बड़े बड़े विमानोंसे पृथ्वीतलको एक छायावाला करते हुए चारों प्रकार के देवता आकाशमें आने लगे। उनमेंसे कितने ही उत्तम देवता मद चूने वाले हाथियों को लेकर आये थे। इससे वे आकाश को मेघाच्छन्न करते हुए से मालूम होते थे। कितने ही देवता आकाश रूपी महासागरमें नौका रूपी घोड़ों पर चढ़ कर, चाबुक रूपी नौका के दण्डे सहित, जगदीश को देखने के लिये आये थे। कितनेही देवता मूर्त्तिमान पवन ही हो इस तरह अतीव वेगवान रथोंमें बैठकर नाभि-कुमार के दर्शनों को आ रहे थे। ऐसा मालूम होता था, मानों वाहनों की क्रीड़ा में उन्होंने परस्पर बाज़ी मारनेकी प्रतिज्ञा की हो। क्योंकि वे आगे निकलने में अपने मित्रों की राह को भी न देखते थे। अपने-अपने गाँवोंमें पहुँचने पर पथिक जिस तरह कहते हैं कि "यह गाँव! यह गाँव!" और अपनी सवारी को रोक लेते हैं; उस तरह देवता भी प्रभु को देखतेही "यह स्वामी! यह स्वामी!" कहते हुए अपने-अपने वाहनों को ठहरा लेते थे। विमान रूपी हवेलियों और हाथी, घोड़े एवं रथों से आकाशमें दूसरी विनिता नगरी बसी हुई सी मालूम होती थी। सूर्य और चन्द्रमासे घिरे हुए मानुषोत्तर पर्वत की तरह जिनेश्वर भगवान् अनेक देवताओं और मनुष्योंसे घिरे हुए थे। जिस तरह दोनों ओरसे समुद्र सुशोभित होता है; उसी तरह वे दोनों सुशोभित थे। जिस तरह हाथियों का झुण्ड अपने यूथपति का अनुसरण करता है; उसी तरह शेष अट्ठानवे विनीत पुत्र प्रभु के पीछे-पीछे चल रहे थे। माता मरुदेवा, पत्नी सुनन्दा और सुमंगला

इस तरह प्रभुने अपनी चार मुट्ठियोंसे अपने बाल नोच लिये। सौधर्म-पति ने प्रभुके केश अपने वस्त्रके आँचलमें लेलिये, उससे ऐसा मालूम होने लगा मानो इस कपड़े को दूसरे रंगके तन्तुओंसे मण्डित करता हो। [पृष्ठ २४६]

Narsingh Press, Calcutta

एवं पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी तथा अन्य स्त्रियाँ—हिमकण सहित पद्मिनी या बर्फ के कणों सहित कमलिनी की तरह—मुखों पर आँसुओं की बूँदों सहित प्रभुके पीछे-पीछे चल रही थीं। पूर्वजन्मके सिद्धि विमानके जैसे सिद्धार्थ नामके बाग़में प्रभु पधारे ; अर्थात् जिस बाग़में प्रभु पधारे, उसका नाम सिद्धार्थ उद्यान था और वह प्रभुके पूर्व जन्म के सर्वार्थ सिद्ध विमान जैसा मालूम होता था। ममता रहित मनुष्य जिस तरह संसारसे निवृत्त होता है ; उसी तरह नाभिनन्दन पालकी रूपी रत्न से वहाँ अशोक वृक्षके नीचे उतरे और कषायों की तरह वस्त्र, माला और गहने उन्होंने तत्काल त्याग दिये। उस समय इन्द्रने प्रभुके पास आकर, मानो चन्द्रमा की किरणोंसे बना हो ऐसा उज्ज्वल और महीन देवदुष्य वस्त्र प्रभुके कन्धे पर डाल दिया।

प्रभुका चारित्र ग्रहण।

इसके बाद चैतके महीनेमें कृष्ण पक्षकी अष्टमी को चन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्रमें आया था। उस समय दिन के पिछले पहरमें, जय जय शब्दके कोलाहल के मिषसे हर्षोद्गार करते हुए देव और मनुष्योंके सामने, गोया चारों दिशाओं को प्रसाद देनेकी इच्छा हो, इस तरह प्रभुने अपनी चार मुट्ठियों से अपने बाल नोच लिये। सौधर्मपति ने प्रभुके केश अपने वस्त्रके आँचल में ले लिये, उससे ऐसा मालूम होने लगा मानो इस कपड़े को दूसरे रंगके तन्तुओंसे मण्डित करता हो। प्रभुने ज्योंही पाँचवीं मुट्ठीसे

बाकी के बालों को उखाड़ने की इच्छा की, त्योंही इन्द्रने प्रार्थना की—"हे स्वामिन्! अब इतनी केशवल्ली को रहने दीजिये, क्योंकि हवा से जब वह आपके सोनेकी सी कान्तिवाले कन्धे पर आती है, तब मरकत मणि की शोभा को धारण करती है। प्रभुने इन्द्रकी बात मान, वह केशवल्ली वैसेही रहने दी, क्योंकि स्वामी लोग अपने अनन्य या एकान्त मतोंकी याचना का खण्डन नहीं करते इसके बाद सौधर्मपतिने उन बालों को क्षीरसागरमें फैंक आकर सूत्रधार की तरह मुट्ठी संज्ञासे बाजों को रोका इस समय छट्ठ तप करने वाले नाभि कुमारने देव, असुर और मनुष्योंके सामने सिद्ध को नमस्कार करके 'समस्त सावद्य योगका प्रत्याख्यान करता हूँ, यह कह कर मोक्ष मार्ग के रथतुल्य चारित्र को ग्रहण किया, शरद ऋतुकी धूपसे तपेहुए मनुष्योंको जिस तरह बादलोंकी छाया सेसुख होता है; उसी तरह प्रभुके दीक्षा उत्सवसे नारकी जीवोंको भी क्षण मात्र सुख हुआ। मानो दीक्षाके साथ संकेत करके रहा हो, इस तरह मनुष्यक्षेत्र मे रहने वाले सर्व संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके मनोद्रव्यको प्रकाश करने वाला मनः पर्यवज्ञान शीघ्रही प्रभुमें उत्पन्न हुआ। मित्रोंके निवारण करने बन्धुओंके रोकने और भरतेश्वरके बारम्बार निषेध करने पर भी कच्छ और महाकच्छ प्रभृति चार हज़ार राजाओंने स्वामीकी पहलेकी हुई बड़ी बड़ी दयाओंको याद करके, भौंरेकी तरह उनके चरण कमलोंका विरह या जुदाई न सह सकनेसे अपने पुत्र कलत्र और राज्य प्रभृतिको तिनकेके समान त्यागकर "जो स्वामीकी गति वही हमारी गति"

कहते हुए बड़ी प्रसन्नतासे प्रभुके साथ दीक्षा ली। नौकर चाकरों का क्रम ऐसाही होता है।

इन्द्रकी की हुई स्तुति।

इसके बाद इन्द्र प्रभृति देवता आदि नाथको हाथ जोड़ प्रणाम कर स्तुति करने लगे—"हे प्रभो! हम आपके यथार्थ गुण कहनेमें असमर्थ हैं; तथापि हम स्तुति करते हैं; आपके प्रभावसे हमारी बुद्धिका विकाश होता है। त्रस और स्थावर जन्तुओंकी हिंसाका परिहार करनेसे अभय दान देनेवाली दानशाला रूप आपको हम नमस्कार करते हैं। समस्त मृषावादका परिहार करने से हितकारी सत्य और प्रिय वचन रुपी सुधारसके समुद्र आपको हम नमस्कार करते हैं। अदत्तादान का न्याय करने से रूके हुए पहले पथिक हैं, अतः हे भगवान् हम आपको नमस्कार करते हैं। हे प्रभो! कामदेव रूपी अन्धकार के नाश करने वाले और अखण्डित ब्रह्मचर्य रूपी महातेजस्वी सूर्यके समान आपको हम नमस्कार करते हैं! तिनके की तरह पृथ्वी प्रभृति सब तरह के परिग्रहों को एक दम त्याग देने वाले और निर्लोभिता रूपी आत्मा वाले आप को हम नमस्कार करते हैं आप पञ्च महाव्रतों का भार उठानेमे वृषभके समान हैं और संसार-सागर को पार करनेमें कछुए के समान हैं, आप महा पुरूष हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। हे आदिनाथ! पांच महाव्रतों की पाँच सहोदराओं जैसी पाँच समितियों को धारण करने वाले आपको हम

नमस्कार करते हैं। आत्माराम में मन लगाये रखने वाले, वचन की सद्वृत्तिसे शोभने वाले और शरीर की सारी चेष्टाओं से निवृत्त रहने वाले; अर्थात् इन तीन गुप्तियों को धारण करने वाले आपको हम नमस्कार करते हैं।"

प्रभु और उनके साथियों का भूख प्यास आग सहन करना।

इस तरह प्रभु की स्तुति करके जन्माभिषेक काल की भाँति देवता नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर अपने अपने स्थानों को गये। देवता ओं की तरह भरत और बाहुवलि प्रभृति भी प्रभुको प्रणाम करके, बड़े कष्टके साथ अपने अपने स्थानों को गये और दीक्षा लिये हुए कच्छ और महाकच्छ प्रभृति राजाओंसे घिरे हुए एवं मौन धारण किये हुए भगवान् ने पृथ्वी पर विहार करना आरम्भ किया। पारणेके दिन भगवान् को कहींसे भी भीख न मिली। क्योंकि उस समय लोग भिक्षादान को नहीं समझते थे; एक दम सरल स्वभाव थे। भिक्षार्थ आये हुए प्रभुको पहले की तरह राजा समझकर कर, कितने ही लोग उन्हें सूर्यके घोड़े उच्चैश्रवा को भी चालमें परास्त करने वाले घोड़े देते थे। कोई कोई उन्हें शौर्यसे दिग्गजों—दिशाओंके हाथियोंको जीतनेवाले हाथी भेंट करते थे। कोई कोई रूप और लावण्यसे अप्सराओंको जीतने वाली कन्यायें अर्पण करते थे। कोई कोई चपला की तरह चमकने वाले गहने और ज़ेवर प्रभुके आगे रखते थे। कोई कोई सन्ध्या कालके अभ्र

के समान चित्र-विचित्र वस्तु या कपड़े देते थे। कोइ मन्दार पुष्पोंकी मालासे स्पर्द्धा करनेवाले फुलोंकी मालायें देता था। कोई मेरु पर्वत के शिखर जैसी काञ्चन-राशि भेंट करता था और कोई रोहणा चलके शिखर सदृश रत्न समूह देता था। परप्रभु उनकी दी हुई किसी चीज़ को न लेते थे। भिक्षा न मिलने पर भी अ-दीनमना प्रभु जङ्गम तीर्थकी तरह विहार करते हुए पृथ्वीतल को पवित्र करते थे। मानो उनका शरीर रस रक्त और मांस प्रभृति सात धातुओं से बना हुआ नहीं था, इस तरह प्रभु भूख प्यास प्रभृति परिषहों को सहन करते थे। नाव जिस तरह हवा का अनुसरण करती है—हवाके पीछे पीछे चलती है; उसी तरह अपनी इच्छासे दीक्षित हुए राजा भी स्वामी का अनुसरण कर विहार करते थे।

सहदीक्षितों की चिन्ता।

अब क्षुधा आदि से ग्लानि को प्राप्त हुए और तत्वज्ञान हीन वे तपस्वी राजा अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करने लगे:—ये स्वामी मानो किंपाकके फल हों, इस तरह मधुर फलोंको भी नहीं खाते और खारी जल हो इस तरह स्वादिष्ट जलको भी नहीं पीते। शरीर शुश्रुषा में अपेक्षा रहित हो जानेसे ये स्नान और विलेपन भी नहीं करते, यानी शरीर की ओर से लापरवा हो जानेसे न स्नान करते हैं और न चन्दन केशर और कस्तूरी आदिका शरीर पर लेप करते हैं। कपड़े, गहने और फूलोंको भी भार समझ कर ग्रहण

नहीं करते। पर्वत की तरह, हवासे उड़ाई हुई राह की धूलसे आलिङ्गन होता है। मस्तक को तपा देने वाली धूपको मस्तक पर सहन करते हैं। कभी सोते नहीं तो भी थकते नहीं और श्रेष्ठ हाथीकी तरह उन्हें सरदी और गरमीसे तकलीफ नहीं होती। ये भूखको कोई चीज़ समझते ही नहीं; प्यास क्या होती है, इसे जानते भी नहीं, और वैरवाले क्षत्रिय की तरह नींद लेते नहीं; यद्यपि अपन लोग उनके अनुचर हुए हैं, तथापि अपन लोग अपराधी हों, इस तरह वे अपनी ओर देखकर भी अपनको सन्तुष्ट नहीं करते—फिर बोलने का तो कहना ही क्या? इन प्रभुने अपने स्त्री पुत्र आदि परिग्रह त्याग दिये हैं, तो भी ये अपने दिल में क्या सोचा करते हैं, इस बातको अपन नहीं जानते। इस तरह विचार करके वे सब तपस्वी अपनी मण्डली के अगुआ—स्वामीके पास सेवक की तरह रहने वाले—कच्छ और महा कच्छ से कहने लगे—"कहाँ ये भूखको जीतने वाले प्रभु और कहाँ धूपको सहनेवाले प्रभु और कहाँ छायके मकड़े जैसे अपन? अपन अन्नके कीड़े? कहाँ ये प्यास को जीतनेवाले प्रभु और कहाँ जलके मेंढक समान अपन? कहाँ शीतसे पराभव न पाने वाले प्रभु और कहाँ अपन बन्दर के समान काँपने वाले? कहाँ निद्रा को जीतने वाले प्रभु और कहाँ अपन नींदके अजगर? कहाँ रोज ही न बैठने वाले प्रभु और कहाँ आसनमें पंगुके समान अपन? समुद्र लाँघने में कव्वे जिस तरह गरुड़का अनुसरण करते हैं; उसी स्वामीने, व्रत धारण किया है उसके पीछे पीछे चलना या उनकी नकल करना अपन लोगोंने

आरम्भ किया है। क्या अपनी जीविकाके लिये अपनको अपना राज्य फिर ग्रहण करना चाहिये? अपने राज्य तो भरत ने ग्रहण कर लिये है, इसलिये अब अपन को कहाँ जाना चाहिये? क्या अपने जीवनके लिये अपने को भरत की शरण मे जाना चाहिये? परन्तु स्वामी को छोड़कर जानेमें अपन को उसका-ही भय है। हे आर्य्यों! हे श्रेष्ठ पुरुषो! अपन लोग प्रभु के विचारों को जानने वाले और सदा उनके पास रहने वाले हो, कृपया बताइये कि हम किंकर्त्तव्यमूढ़ लोग क्या करें?

उन्होंने कहा—"स्वयंभूरमण समुद्रका अन्त जो ला सकता है वही प्रभुके विचारों को जान सकता है। पहले तो प्रभु हमें जो आज्ञा प्रदान करते थे, हम वही करते थे, लेकिन आजकल तो प्रभुने मौन धारण कर रखा है, इसलिये अब वह कुछ भी आज्ञा नही करते। इस लिये जिस तरह तुम कुछ नहीं जानते; उसी तरह हम भी कुछ नहीं जानते। अपन सबकी समान गति है। इसलिये आप लोग कहें वैसा करें। इसके बाद वे सब गङ्गानदीके निकटके बागमें गये और वहाँ स्वच्छन्दता पूर्वक कन्दमूल फलादि खाने लगे तभी से वनवासी कन्द मूल फल फूल खानेवाले तपस्वी पृथ्वी पर फैले।

नमि और विनमिका आगमन।

उन कच्छ महाकच्छके नमि और बिनमि नामके दो विनीत और सुशील पुत्र थे। वे प्रभुके दीक्षा लेनेसे पहले उसकी आज्ञा

से दूर देशको गये थे। वहाँसे लौटते हुए उन्होंने अपने पित
वनमें देखा। उनको देखकर वे विचार करने लगे— वृषभन
जैसे नाथके होने पर भी, हमारे पिता अनाथकी तरह इस दशा
क्यों प्राप्त हुए। कहाँ उनके पहनने योग्य महीन वस्त्र और क
भीलोंके पहनने योग्य वल्कल—वस्त्र? कहाँ शरीरपर लग
योग्य उब्टन और कहाँ पशुओंके लोट मारने योग्य ज़मीनव
धूल मिट्टी? कहाँ फूलोंसे गुथा हुआ केशपाश और कह
वटवृक्ष सदृश लम्बी जटायें,? कहाँ हाथीकी सवारी औ
कहाँ प्यादेकी तरह पैदल चलना? इस प्रकार विचार करवे
उन्होंने अपने पिताको प्रणाम किया और सब हाल पूछा।
तब कच्छ और महाकच्छने कहा—"भगवान् ऋषभध्वज ने राज-
पाट त्याग, भरत प्रभृति को पृथ्वी बाँट, वृत ग्रहण किया है।
जिसतरह हाथी ईख को खाता है, उसी तरह हमने साहससे उन
के साथ व्रत ग्रहण किया था; परन्तु भूख, प्यास, शीत और घाम
प्रभृतिके क्लेशोंसे दुखी होकर, जिस तरह गधे और खच्चर अपने
ऊपर लदे हुए भार को पटक देते हैं उसी तरह हमने व्रतको भंग
कर दिया है। हम लोग प्रभुका सा बर्ताव कर नहीं सके और
उधर ग्रहस्थाश्रम भी अंगीकार नहीं किया, इससे तपोवन में
रहते हैं।" ये बातें सुनकर उन्होंने कहा—"हम प्रभुके पास जाकर
पृथ्वी का भाग माँगे।" यह बात कहकर नमि और विनमि प्रभु
के चरण-कमलोंके पास आये। प्रभु निःसंग हैं। इस बात को
वे न जानते थे, अतः उन्होंने कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित प्रभु को

प्रणाम करके प्रार्थनाकी—"हम दोनोंको दूर देशान्तरमें भेज कर, आपने भरत प्रभृति पुत्रों को पृथ्वी बाँट दी और हमें गायके खुर बराबर भी पृथ्वी नहीं दी! अतः हे विश्वनाथ! अब प्रसन्न होकर उसे हमें दीजिये आप देवोंके देव हैं। हमारा क्या अपराध देखा, जिससे देना तो पर किनारा, आप हमारी बात का जवाब भी नहीं देते?" उनके यह कहने सुनने पर भी प्रभु ने उस समय कुछ भी जवाब न दिया। क्योंकि ममता—रहित पुरुष दुनियाँके झगड़ोंमें लिप्त नहीं रहते। प्रभु कुछ नहीं बोलते थे, पर प्रभुही अपने आश्रय-स्थल है। ऐसा निश्चय कर के वे प्रभु की सेवा करने लगे स्वामीके पासके मार्ग की धूल शान्त करने के लिये वे सदा ही कमलपत्र में जलाशय—तालाबसे जल ला लाकर। छिड़कने लगे। सुगन्ध से मतवाले भौंरों से घिरे हुए फूलों के गुच्छे ला लाकर वे धर्म चक्रवर्त्ती भगवानके सामने बिछाने लगे। सूरज और चन्द्रमा जिस तरह रात-दिन मेरु पर्वत की सेवा करते हैं; उसी तरह वे सदा प्रभु के पास खड़े हुए तलवार खींच कर उनकी सेवाकरने लगे। और नित्य तीनों समय हाथ जोड कर याचना करने लगे—" हे स्वामी! हमें राज्य दो। आपके सिवा हमारा दूसरा कोई स्वामी नहीं है।

नमि विनमि और धरणेन्द्र।

एक दिन प्रभुकी चरण-वन्दना करने के लिए, नागकुमारका, श्रद्धावान् अधिपति धरणेन्द्र वहाँ आया। उसने सविस्मय देखा,

कि दो सरल स्वभाव बालक राज्य-लक्ष्मी माँगते ओर भगवान् की सेवा करते हैं। नागराजने अमृत समान मीठी वाणीसे उनसे कहा—"तुम कौन हो और साग्रह दृढ़ताके साथ क्या माँगते हो? जिस समय जगदीशने एक वर्षतक मन चाहा महा दान हर किसीको बिना ज़रा भी रोकटोकके दिया था, उस समय तुम कहाँ थे? इस वक्त स्वामी निर्भय, निष्परिग्रर, अपने शरीरमें भी आकाँक्षा रहित, और रोष-तोषसे विमुक्त हो गये हैं; अर्थात इस समय प्रभु मोह-ममता रहित, और जंजालसे अलग हो गये हैं। उन्हें अपने शरीरकी भी आकांक्षा नहीं है। राग और द्वेषने उनका पीछा छोड़ दिया है।" यह भी प्रभुका सेवक है, ऐसा समझकर नमि विनमिने मानपूर्व्वक उनसे कहा—"ये हमारे स्वामी—मालिक और हम इनके सेवक या चाकर हैं। इन्होंने आज्ञा देकर हम को किसी और जगह भेज दिया और भरत प्रभृति अपने पुत्रोंको राज्य बाँट दिया। यद्यपि इन्होंने सर्वस्व दे दिया हैं, तथापि ये हमको भी राज्य न देंगे। उनके पास वह चीज है या नहीं, ऐसी चिन्ता करनेकी सेवकको क्या जरूरत? सेवकका कर्त्तव्य तो स्वामी की सेवा करना है।" उनकी बातें सुनकर धरणेन्द्र ने उनसे कहा—"तुम भरतके पास जाकर भरतसे माँगो। वह प्रभुका पुत्र है, अतः प्रभु तुल्य है।" नमि और विनमिने कहा—"इन विश्वेस को पाकर, अब हम इन्हें छोड़ और दूसरेको स्वामी नहीं मानेंगे। क्योंकि कल्पवृक्षको पाकर करीलकी सेवा कौन करता है? हम जगदीशको छोड़कर, दूसरे से नहीं माँगेंगे।

क्या चातक—पपहिया मेघको छोड दूसरेसे याचना करता है? भरत आदिक का कल्याण हो! आप किसलिये चिन्ता करते हैं? हमारे स्वामी से जो होना हो सो हो, उसमें दूसरेको क्या मतलब? अर्थात हम सेवक, ये स्वामी, हम याचक, ये दाता, इनकी इच्छा हो सो करें। इनके और हमारे बीचमें बोलने वाला दूसरा कौन?

नमि विनमि को धरणेन्द्र द्वारा वैताढ्य का राज दिया जाना।

उन कुमारों की उपरोक्त युक्तिपूर्ण बातें सुनकर नागराजने प्रसन्न होकर कहा—"मैं पातालपति और इन स्वामी का सेवक हूँ। तुम धन्य हो, तुम भाग्यशाली और बड़े सत्यवान हो जो इन स्वामीके सिवा दूसरेको सेवने योग्य नहीं समझते और इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा करते हो। इन भुवन पति की सेवासे पाशसे खींची हुई की तरह राज्य सम्पतियाँ पुरुषके सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। अर्थात इन जगदीश की सेवा करने वालेके सामने अष्ट सिद्धि और नवनिद्धि हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। इतना ही नहीं; इन महात्मा की कृपासे, लटकते हुए फलकी तरह, वैताढ्य पर्वतके ऊपर रहने वाले विद्याधरोंका स्वामित्व भी सहजमें मिल सकता है। और इनकी सेवासे, पैरोंके नीचेके खज़ाने की तरह, भुवनाधिपति की लक्ष्मी भी बिना किसी प्रकारके प्रयास और उद्योग के मिल जाती है। मन्त्रसे वशमें किये हुए की तरह, इनकी सेवासे व्यन्तरेन्द्र की लक्ष्मी भी इनके सेवक के पास नम्र होकर

रहती है। जो भाग्यशाली पुरुष इनकी सेवा करता है, स्वयंवर वधूके समान, ज्योतिष्पति की लक्ष्मी भी उसे वरती है—उसे अपना पति बनाती है। वसन्त-ऋतुसे जिस तरह विचित्रविचित्र प्रकारके फूलों की समृद्धि होती है, उसी तरह इनकी सेवासे इन्द्रकी लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। मुक्तिकी छोटी बहन जैसी और कठिन से मिलने योग्य अहमिन्द्र की लक्ष्मी भी इनकी सेवा करने वाले को मिलती है। इन जगदीश की सेवा करने वाले प्राणी को जन्म—मरण रहित सदा आनन्दमय परमपद की प्राप्ति होती है। अर्थात् इनका सेवक जन्म-मरणके कष्ट से छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है। ज़ियादा क्या। कहूँ, इनकी सेवासे प्राणी इस लोक में इनकी ही तरह तीन लोक का अधिपति और परलोकमें सिद्ध होता है। मैं इन प्रभुका दास हूँ और तुम भी इनके सेवक हो: अतः इनकी सेवाके फल स्वरूप मैं तुम्हें विद्याधरोंका ऐश्वर्य देता हूँ। उसे तुम इनकी सेवा से ही मिला हुआ समझो। क्योंकि पृथ्वी पर जो अरुण का प्रकाश होता है वह भी तो सूर्यसे ही होता है ये कहकर पाठ करने मात्रसे सिद्धिके देने वाली यों ही और प्रज्ञप्ति प्रभृति अड़तालिस हज़ार विद्याएँ उन्हें दी और आदेश किया कि तुम वैताढ्य पर्वत पर जाकर दो श्रेणियों में नगर स्थापन करके अक्षय राज करो। इसके बाद वे भगवान्को नमस्कार करके, पुष्पक विमान बना, उसमें बैठ, नागराजके साथही वहाँसे चल दिये। पहले उन्होंने अपने पिता कच्छ और महाकच्छके पास जाकर, स्वामी-सेवा रूपी

वृक्षके फल स्वरूप उस नूतन सम्पत्तिकी प्राप्ति का वृतान्त निवेदन किया; अर्थात् अपने पिताओं के पास जाकर उनसे कहा कि हमने स्वामीकी इस तरह सेवा की और उसके एवज़में हमें ये नवीन सम्पत्ति—विद्याधरोंका राज मिला है। इसके बाद वे अयोध्या पति महाराज भरतके पास गये और अपनी सम्पत्ति और राज पानेका सारा हाल कह सुनाया। थानी पुरुष के मानकी सिद्धि अपना स्थान बतानेसे ही होती है। शेषमें वे अपने नाते रिश्ते-दारों और नौकर चाकरों—स्वजन और परिजनों को साथ लेकर उत्तम विमान में बैठ, वैताढ्य पर्वतकी ओर रवाना हुए।

वैताढ्य पर्वत पर बसाये हुए ११० नगर।

वैताढ्य पर्वत के प्रान्त भागको लवण-समुद्र की उत्तान तरङ्गे चुमती थीं और वह पूरव तथा पश्चिम दिशा का मानदण्ड सा मालूम होता था, भरत क्षेत्र के उत्तर और दक्षिण भागकी सीमा स्वरूप वह पहाड़ उत्तर-दक्खन ४०० मील लम्बा है, पचास मील पृथ्वी के अन्दर है और पृथ्वीके ऊपर २०० मील ऊँचा है। मानो भुजायें फैलायें हो, इसतरह हिमालयने गङ्गा और सिन्ध नदियोंसे उसका आलिङ्गन किया है। भरतार्द्ध की लक्ष्मी के विश्राम के लिये क्रिड़ा घर हों—ऐसी खण्डप्रभा और तमिस्रा नामकी कन्द-राएँ उसके अन्दर हैं। जिस तरह चूलिका या चोटी से मेरु पर्वत की शोभा दीखती है; उसी तरह शाश्वत प्रतिभा युक्त सिद्ध-पद शिखर या चोटीसे अपूर्व शोभा झलक मारती है। विचित्र

रत्नमय नवीन कण्ठाभरण जैसी नौ चोटियाँ उस पहाड़ पर हैं। यहाँ देवता क्रीड़ा करते हैं। दक्खन और उत्तर ओर १६० मील की ऊँचाई पर, मानो वस्त्र हों ऐसी व्यन्तरों की दो निवास श्रेणियाँ उस पहाड़ पर मोजूद हैं। नीचे से चोटी तक मनोहर सोने की शिलाओंवाले उस पर्वत को देखने से मालूम होता है मानों स्वर्गके एक पाँव का आभरण या गहना नीचे गिरा हुआ है। हवाके कारण से पहाड़ के ऊपर के वृक्षों की शाखायें हिल रही थीं, उनके देखने ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वत की भुजायें दूरसे बुला रही हों। उसी वैताढ्य पर्वत पर नमि और विनमि जा पहुँचे।

नमि राजाने, पृथ्वी से अस्सी मील की ऊँचाई पर, उस पर्वत की दक्खन श्रेणी में पचास शहर बसाये। किन्तु पुरुषों ने जहाँ पहले गान किया है, ऐसे बाहुकेतु, पुण्डरीक, हरित्केतु, सेतकेतु, सर्पारिकेतु, श्रीवाहु, श्रीगृह, लोहार्गल, अरिंजय, स्वर्ग। लीला, वज्रार्गल, वज्रविमोक, महीसारपुर, जयपुर, सुकृतमुखी, चतुर्मुखी, बहुमुखी, रता, विरता, अखण्डलपुर, विलासयोनिपुर, अपराजित, काँचीदाम, सुविनय, नभःपुर, क्षेमंकर, सहचिन्हपुर, कुसुमपुरी, संजयन्ती, शक्रपुर, जयन्ती, वैजयन्ती, विजया, क्षेमंकरी, चन्द्रभासपुर, रविभासपुर, सप्तभूतलावास, सुविचित्र, महाघ्रपुर, चित्रकूट, त्रिकूटक, वैश्रवणकूट, शशिपुर, रविपुर, त्रिमुखी, वाहिनी, सुमुखी, नित्योद्योतिनी, और श्री रथनुपुर, चक्रवाल-ये उन नगर और नगरियोंके नाम रक्खे। इन नगरोंके बीचों

बीचमें आये हुए रथनुपुर चक्रवालनगरमें नामी ने निवास किया।

धरणेन्द्र की आज्ञासे पर्वत की उत्तर श्रेणी में विनमीने उसी तरह पचास नगर बसाये। अर्जुनी, वारुणी, वैसंहारिणी, कैलास-वारुणी, विद्युद्दीप, किलिकिल, चारुचूड़ामणि, चन्द्रभाभूषण, वन्शवत्, कुसुम चूल, हन्सगर्भ, मेधक, शङ्कर, लक्ष्मीहर्म्य, चामर, विमल, असुमत्कृत, शिवमन्दिर, वसुमती, सर्व सिद्धस्तुत, सर्व शत्रुंगय, केतुमालांक, इन्द्रकान्त, महानन्दन, अशोक, वीत शोक, विशोकक, सुखालोक, अलक तिलक, नभस्तिलक, मन्दिर, कुमुद कुन्द, गगनवल्लभ, युवतीतिलक, अवनितिलक, सगन्धर्व, मुक्तहार, अनिमिष, विष्टप अग्निज्वाला, :गुरुज्वाला, श्रीनिकेतपुर जयश्री निवास, रत्नकुलिश, वशिष्ठाश्रम, द्रविणाजय, सभद्रक, भद्राशयपुर, फेनशिखर, गोक्षीरवर शिखर, वैर्यक्षोभ शिखर, गिरिशिखर, धरणी, वारणी, सुदर्शन पुर, दुर्ग, दुर्द्धर, माहेन्द्र, विजय, सुगन्धिनी, सुरत, नागर पुर, और रत्नपुर—ये उन पचास नगर और नगरियों के नाम रक्खे। इन नगर और नगरियों के बीचों बीच में जो गगन-वल्लभ नाम का नगर था, उसीमें धरणेन्द्र की आज्ञा से विनमि ने निवास किया। विद्याधरोंकी महत् ऋद्धि वाली वे दोनों श्रेणि-याँ अपने ऊपर वाली व्यन्तर श्रेणी के प्रतिविम्ब—अक्स की तरह सुशोभित थीं; यानी वे दोनों श्रेणी उनके ऊपरकी व्यन्तर श्रेणी के प्रतिविम्ब की जैसी मालूम होती थीं। उन्होंने और भी अनेक गाँव और खेड़े बसाये और स्थान की योग्यतानुसार कितने ही जनपद भी स्थापन किये। जिस देशसे लाकर जो लोग वहाँ

बसाये, उस देशका उन्होंने वही नाम रक्खा। इन सब नगरोंमें, हृदय की तरह, सभाके अन्दर नमि और विनमि ने नाभि-नन्दन की मूर्त्ति स्थापित की। विद्याधर विद्या से दुर्मद होकर दुर्विनीत न हो जाँय, अर्थात् विद्यासे मत वाले होकर उद्दण्ड और उच्छृङ्खल न हो जायँ इसलिये धरणेन्द्र ने ऐसी मर्य्यादा स्थापन की—'जो दुर्मद वाले पुरुष—जिनेश्वर, जिन चैत्य, चरमशरीरी, और कायोत्सर्गमें रहने वाले किसी भी मुनिका पराभव या उल्लङ्घन करेंगे, उन्हें विद्याएँ उसी तरह त्याग देंगी, जिस तरह आलसी पुरुषको लक्ष्मी त्याग देती है। जो विद्याधर किसी स्त्री के पति को मार डालेगा और स्त्री के बिना मरज़ी के उसके साथ भोग करेगा, उसको भी विद्यायें तत्काल छोड़ देंगी'। नागराजने ये मर्य्यादा ज़ोर से सुनाकर, वह यावत् चन्द्र रहें; यानी जब तक चन्द्रमारहे तब तक रहें, इस ग़रज़ से उन्हें रत्नभित्ति की प्रशस्ति में लिख दीं। इस के बाद नमि और विनमि दोनों विद्याधरों का राजत्व प्रसाद सहित स्थापन कर एवं और कई व्यवस्थाएँ करके नागपति अन्तर्द्धान होगये।

नमि विनमि की राज्य स्थिति।

अपनी अपनी विद्याओंके नामसे विद्याधरों के सोलह निकाय या जातियाँ हुईं। उन में गौरी विद्या से गौरेय हुए। मनु विद्या से मनु हुए; गान्धार विद्यासे गान्धार हुए; मानवी से मानव हुए; कौशिकी विद्यासे कौशिकी पूर्व हुए; भूमितुण्ड विद्यासे भूमि-

तुण्ढक हुए ; मूलवीर्य्य विद्यासे मूलचिय्येक हुये, शंकुका विद्यासे शंकुक हुए; पाण्डुकी विद्यासे पाण्डुक हुए; काली विद्यासे कालिकेय हुए; श्वपाकी विद्यासे श्वपाक हुए; मातंगी से मातंग हुए वंशालया से वंशालय हुए; पांसुमूल विद्यासे पांसुमूलक हुए और वृक्षमूल विद्यासे वृक्षमूलक हुए। इन सोलह जातियों के दो विभाग करके नमि और विनमि राजाओंने आठ आठ भाग ले लिये। अपने अपने निकाय या जाति में अपनी कायाकी तरह भक्ति से विद्याधिपति देवताओं की स्थापना की। नित्य ही ऋषभ स्वामी की मूर्त्ति की पूजा करने वाले वे लोग धर्म में बाधा न पहुँचे, इस तरह कालक्षेप करते हुए देवताओं की तरह भोग भोगने लगे। किसी किसी समय वे दोनों मानो दूसरे इन्द्र और ईशानेन्द्र हों इस तरह जम्बूद्वीप की जगति के जालेके कटक में स्त्रियों को लेकर क्रीडा करते थे। किसी किसी समय मेरु पर्वत पर नन्दन आदिक वनों में, हवा की तरह, अपनी इच्छानुसार आनन्द पूर्व्वक विहार करते थे। किसी समय श्रावक की सम्पत्ति का यही फल है, ऐसा धार कर, नन्दीश्वरादि तीर्थों में शाश्वत प्रतिमा की अर्चना करनेके लिए जाते थे। किसी वक्त विदेहादिक क्षेत्रोंमें, श्री अर्हन्त के, समवसरण के अन्दर जाकर, प्रभु के वाणी रूप अमृत का पान करते थे और हिरन जिस तरह कान ऊँचे करके संगीत ध्वनि सुना करते हैं, उसी तरह कभी कभी वे चारण मुनियों से धर्म-देशना या धर्मोपदेश सुनते थे। समकित और अक्षीण भण्डार को धारण करनेवाले वे दोनों

भाई विद्याधरों से घिर कर, त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम—का बाधा न आवे इस तरह राज्य करते थे।

कच्छ और महाकच्छ की तपश्चर्य्या।

कच्छ और महाकच्छ जो कि राज तापस हुए थे, गंगा नदी के दहने किनारे पर, हिरनों की तरह, वनचर होकर फिरते थे और मानो जंगम वृक्ष हों इस तरह छालों के कपड़ों से शरीरको ढकते थे। क्रय किये हुए अन्न की तरह, गृहस्थाश्रमी के आहार को वे कभी छूते भी न थे। चतुर्थ और छट्ठ वगैरः तपसे से उनकी धातुएं सूख गई थीं, अतः शरीर एक दम दुबले होगये थे और खाली पड़ी हुई धाम्मण की उपमा को धारण करते थे। पारणे के दिन भी सड़े हुए और ज़मीन पर पड़े हुए पत्रफलादि को खाकर हृदय में भगवान् का ध्यान करते हुए वहीं रहते थे।

लोगों का प्रभुका आतिथ्य सत्कार करना।

भगवान् ऋषभ स्वामी आर्य अनार्य देशों में मौन रहकर घूमते थे। एक वर्ष तक निराहार रहकर भुने प्रविचार किया कि, जिस तरह दीपक या चिराग़ तेलसेही जलता है और वृक्ष जलसेही सरसब्ज़ या हरेभरे रहते हैं, उसी तरह प्राणियों के शरीर आहार से ही कायम रहते हैं, वह आहार भी बयालीस दोषोंसे रहित हो तो साधुको माधुकरी वृत्ति से भिक्षा करके उचित समय पर उसे खाना चाहिये। गये दिनों की तरह, अगर अब भी मैं

आहार न लेता हुआ अभिग्रह करके रहूँगा, तो मेरा शरीर तो ठहरा रहेगा; परन्तु जिस तरह ये चार हज़ार मुनि भोजन न मिलनेसे पीड़ित होकर भग्न होगये हैं; उसी तरह और मुनि भी भग्न होंगे। ऐसा विचार करके, प्रभु भिक्षा के लिए, सब नगरों में मण्डन रूप, गजपुर नामक नगर में आये। उस नगर में बाहु-बलिके पुत्र सोमप्रभ राजाके श्रेयांस नामक कुमारने उस समय स्वप्न में देखा, कि मैंने चारों ओर से श्याम रंग हुए सुवर्णगिरी -मेरु पर्वत को, दूधके घड़ेसे अभिषेक कर, उज्ज्वल किया। सु-बुद्धि नामक सेठ ने ऐसा स्वप्न देखा कि सूर्यसे गिये हुए हज़ार किरण श्रेयांसकुमारने फिर सूरज में लगा दिये, उनसे सूर्य अतीव प्रकाशमान् हो उठा। सोमयशा राजाने स्वाप्न में देखा कि, अनेक शत्रुओंसे चारों ओरसे घिरे हुए किसी राजाने अपने पुत्र श्रेयांसकी सहायतासे विजय-लक्ष्मी प्राप्त की। तीनों शक्सों ने अपने अपने स्वाप्नों की बात आपस में कही, पर उनका फल या ताबीर न जान सकने के कारण अपनेही घरको चले गये। मानो उस स्वप्नका निर्णय प्रकट करने का निश्चयही कर लिया हो, इस तरह प्रभु ने उसी दिन भिक्षा के लिए हस्तिनापुर में प्रवेश किया। एक संवत्सर तक निराहार रहने पर भी ऋषभ की लीला से चले आते हुए प्रभु हर्षके साथ लोगों की दृष्टितले आये।

श्रेयांस को जाति स्मरण।

प्रभु को देखतेही पुरवासी लोगोंने संभ्रम से दौड़कर, विदेश

से आये हुए बन्धु की तरह, उन्हें चारों ओर से घेर लिया, और कहने लगेः—हे प्रभो ! आप कृपाकरके हमारे घर पर चलिये; क्योंकि वसन्त ऋतुके समान आप बहुत दिनों बाद दिखाई दिये हैं। किसीने कहा—"हे स्वामिन्! स्नान करने के लिए उत्तम जल, वस्त्र और पीठिका आदि मौजूद हैं। इसलिये आप स्नान कीजिये और प्रसन्न हूजिये" किसीने कहा—"मेरे यहाँ उत्तम चन्दन, कपूर, कस्तूरी और यक्षकर्दम तैयार हैं, उन्हें काम में लाकर मुझे कृतार्थ कीजिये।" किसीने कहा—"हे जगत् रत्न! कृपा कर हमारे रत्नमय अलङ्कारों को धारण करके शरीरको अलंकृत कीजिये।" किसीने कहा—"हे स्वामिन्! मेरे घर पधार कर, अपने शरीर में आने वाले रेशमी कपड़े पहनकर उन्हें पवित्र कीजिये।" किसीने कहा—"हे देव! देवाङ्गना समान मेरी स्त्री को आप अपनी सेवामें स्वीकार कीजिये, आपके समागमसे हम धन्य हैं।" किसीने कहा— "हे राजकुमार! खेलके मिससे भी आप पैदल क्यों चलते हैं? मेरे पर्वत जैसे हाथी पर बैठिये।" किसीने कहा—"सूर्यके घोड़ोंके समान मेरे घोड़ों को ग्रहण कीजिये। आतिथ्य स्वीकार न करके, हमें नालायक—अयोग्य क्यों बनाते हैं?" किसीने कहा—"मेरा जातिवन्त घोड़ोंसे जुता हुआ रथ स्वीकार किजिये। आप मालिक होकर अगर पैदल चलते हैं, तब इस रथका रखना फिजूल है। इसकी क्या जरुरत है।" किसीने कहा—"हे प्रभो! इस पके हुए आमके फलको आप ग्रहण कीजिये। स्नेही जनोंका अपमान करना अनुचित है"

किसीने कहा–"आप पान सुपारी प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये" किसीने कहा–"प्रभो! हमने क्या अपराध किया है, जो आप हमारी प्रार्थना पर कान भी नहीं देते और कुछ जवाब भी नहीं देते?" इस प्रकार नगर निवासी उनसे प्रार्थना करते थे, पर वे उन सब चीजोंको अकल्प्य समझ, उनमें से किसी को भी स्वीकार न करते थे और चन्द्रमा जिस तरह नक्षत्र नक्षत्र पर फिरता है, उसी तरह प्रभु घर घर घूमते थे। पक्षियों के सवेरेके समय के कोलाहल की तरह नगरनिवासियों का वह कोलाहल अपने घरमें बैठे हुए श्रेयांसके कानों तक पहुंचा। उसने 'यह क्या है' इस बातकी खबर लानेके लिये छड़ीदार को भेजा। वह छड़ीदार सारा समाचार जानकर, वापस महलमें आया और हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा:—

श्रेयांस द्वारा भगवान का पारणा।

राजाओं के जैसे अपने मुकुटों से जमीनको छूकर चरणके पीछे लोटनेवाले इन्द्र दृढ़ भक्तिसे जिनकी सेवा करते हैं; सूर्य जिस तरह पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी तरह जिन्होंने इस लोकमें मात्र-अनुकम्पा—दया के वश होकर, सब को आजीविकाके उपाय रुप कर्म बतलाये हैं---जिन्होंने मनुष्यों पर दया करके उन्हे आजीविका—रोज़ी के उपायोंके लिये तरह तरह के काम बतलाये हैं। जिन्होंने दीक्षा ग्रहण की इच्छा करके, अपनी प्रसादी की तरह, भरत प्रभृति और

तुमको यह पृथ्वी दी है। जिन्हों ने समस्त सावद्य वस्तुओं का परिहार करके, अष्ट कर्म रुपी महापङ्क—गहरी कीचड़को सुखानेके लिये, गरमी के मौसमकी जलती हुई धूपके जैसे तप को स्वीकार किया है, घोर तपश्चर्या करना मंजूर किया है वे ही ऋषभ देव प्रभु निस्सङ्ग, ममता रहित और निराहार अपने पाद सञ्चार से पृथ्वी को पवित्र करते हुए विचरते हैं। वे सूरज की घामसे दुखी नहीं होते और छायासे सुखो नहीं होते, किन्तु पहाड़ की तरह धूप .और छायाको बराबर समझते हैं। वज्रशरीरी की तरह, उन्हें शीतसे विरक्ति और उष्णता—गरमीसे आसक्ति नहीं होती, उन्हें शरदी बुरी और गरमी अच्छी नहीं लगती; वे सरदी और गरमी को समान समझते हैं ; जहाँ जगह मिलती है वहाँ पड़ रहते हैं। ससार रूपी कुञ्जर में केसरी सिंहकी तरह वे युगमात्र दृष्टि करते हुए, एक चींटी को भी तकलीफ न हो—इस तरह ज़मीन पर क़दम रखते हैं। प्रत्यक्ष निर्देश करने योग्य, त्रिलोकी के नाथ आपके प्रपितामह हैं। वे भाग्य योग्य से ही यहां आये हैं। जिस तरह ग्वालिये के पीछे गायें दौड़ती हैं; उसी तरह नगरके लोग प्रभुके पीछे दौड़ रहे हैं। ये उन्हींका मधूर कोलाहल है।" जिनीश्वर के नगरमें आने की खबर पाते ही, युवराज प्यादों का उलङ्घन कर, तत्काल दौड़ा। युवराज को बिना छाते और जूतों के दौड़ते देख, उसकी सभाके लोग भी जूते ओर छाते छोड़कर, छाया की तरह, उसके पीछे दौड़े। उस समय युवराज के कुण्डल हिलते थे, उनके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया वह स्वामी के सामने

फिर वाल-क्रीड़ा करता हुआ सुशोभित है। अपने घरके आँगन मे आये हुए प्रभु के चरण कमलों में लौटकर, वह अपने भौंरेके भ्रमको उत्पन्न करनेवाले वालों से उन्हें पोंछने लगा। इसके वाद उसने फिर उठकर जगदीश की तीन प्रदक्षिणाकी। फिर मानो हर्ष से धोताहो, इस तरह चरणोंमें नमस्कार किया। फिर खड़े होकर प्रभु के मुखकमल को इस तरह देखने लगा, जिस तरह चकोर चन्द्रमाको देखते हैं। "ऐसी सूरत मैंने कहीं देखी है" यह विचार करते हुए, उसको विवेक वृक्षका वीज रूप जाति—स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे उसे मालूम हुआ कि पहले जन्म पूर्व विदेह क्षेत्र मे भगवान् वज्रनाभ नामक चक्रवर्ती थे। मैं उनका सारथी था। उस भव या जन्म में स्वामी के वज्रसेन नामक पिता थे, उनके ऐसे ही तीर्थङ्कर चिन्ह थे। वज्रनाभने वज्रसेन तीर्थङ्कर के चरणोंके समीप दीक्षा ली। उस समय मैं ने भी उन्हींके साथ दीक्षाली। उस वक्त वज्र सेन अर्हन्त के मुँहसे मैंने सुना था, कि यह वज्रनाभभरतखण्डमे पहला तीर्थङ्कर होगा। स्वयं प्रभादिकके भवों में मैंने इनके साथ भ्रमण किया था। ये अब मेरे प्रपितामह लगते हैं। इनको आज मैं भाग्य योग से ही देख सका हूं। आज ये प्रभु साक्षात् मोक्षकी तरह समस्त जगत्का और मेरा कल्याण करने के लिये पधारे हैं,। युवराज इस प्रकार से विचार कर ही रहा था कि इतने में किसीने नवीन ईख-रससे भरे हुए घड़े प्रसन्नता पूर्वक युवराज श्रेयांस को भेंट किये। निर्दोष भिक्षा देनेकी विधि को जानने वाले कुमार ने

कहा—"हे भगवन्! इस कल्पनीय रसको ग्रहण कीजिये।" प्रभुने अञ्जलि जोड़कर, हाथ रूपी बर्तन सामने किया, उसमें ईख-रस के घड़े ओज ओज कर ख़ाली किये गये। भगवानके हस्त-पात्रमें बहुत सा रस समा गया भगवानकी अञ्जलि में जितना रस समाया, उतना हर्ष श्रेयांस के हृदय में नहीं समाया। स्वामी की अञ्जलि में आकाश में जिसकी शिखायें लग रही हैं, ऐसा रस मानो ठहर गया हो, इस तरह स्तम्भित हो गया; क्योंकि तीर्थङ्करों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। प्रभु ने उस रससे पारणा किया। और सुर, असुर एवं मनुष्यों के नेत्रों ने उनके दर्शनरूपी अमृत से पारणा किया। उस समय मानो श्रेयांसके कल्याणकी ख्याति करने वाले चारण भाट हों, इस तरह आकाशमे प्रतिनाद से बढ़े हुए दुन्दुभी बाजे ध्वनि करने लगे। मनुष्यों के नेत्रोंके आनन्दाश्रुओं की वृष्टि के साथ आकाशसे देवताओंने रत्नों की वृष्टी की; मानों प्रभु के चरणों से पवित्र हुई पृथ्वी की पूजा के लिये हो इस तरह देवता उस स्थान पर आकाशसे पचरंगे फूलोंकी वर्षा करने लगे; सारे ही कल्प वृक्षों के फूलोंसे निकाला गया हो ऐसे गन्धोदक की वर्षा देवताओं ने की और मानो आकाश को विचित्र मेघमय करते हो, इस तरह देव और मनुष्य उज्ज्वल उज्ज्वल कपड़े फेंकने लगे। वैशाख मासकी तृतीया (तीज) को दिया हुआ वह दान अक्षय हुआ, इसलिये वह पर्व अक्षय तृतिया या आखातीज के नामसे अबतक चला जाता है। जगतमे दान धर्म श्रेयांससे चले और बाक़ी सब व्यवहार और नीति क्रम भगवन्त से चले।

"हे भगवन्! इस कल्पनीय रसको ग्रहण कीजिये।" प्रभुने अंजलि जोड़कर, हाथ रूपी वर्तन सामने किया, उसमें ईख-रस के घड़े ओज ओज कर ख़ाली किये गये। [पृष्ठ २७२]

Narsingh Press Calcutta

राजा और नगर निवासियों का श्रेयांस से प्रश्न करना।

प्रभुके पारणेसे और उस समय की रत्न वृष्टि से विस्मित हो होकर राजा और नगर निवासी श्रेयांस के महल मे आने लगे। कच्छ और महाकच्छ आदि क्षत्रिय तपस्वी प्रभुके पारणे की बाते सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ आये। राजा और नगर निवासी तथा देशके लोग रोमाञ्चित प्रफुल्लित हो होकर श्रेयाँन्स से इस तरह कहने लगे—"हे कुमार! आप धन्य हो और पुरुषों में शिरोमणि हो; क्योंकि आपका दिया हुआ रस प्रभु ने ले लिया और हम सर्वस्व देते थे, पर प्रभु ने उसे तृणवत् समझकर अस्वीकार कर दिया। प्रभु हम पर प्रसन्न नहीं हुए। ये एक साल तक गाँव, उद्यान, नगर और जंगल में घूमते रहे, तो भी हममें से किसीका भी आतिथ्य ग्रहण नही किया। इसलिये हम भक्त होने के अभिमानियों को धिक्कार हैं! हमारे घरमे आराम करना एवं हमारी चीज़ लेना तो दूर की बात है। आज तक वाणी सेभी प्रभुने हमको संभावित नहीं किया; अर्थात् हम से दो दो बातें भी न की। जिन्होंने पहले लखों पूर्वतक हमारा पुत्रकी तरह पालन किया है, वे ही प्रभु मानो हम से परिचय या जान-पहचानही न हो, इस तरह व्यावहार करते हैं।"

श्रेयांसका नगर निवासियों को उत्तर देना।

लोगोंकी बातें सुनकर श्रेयांस ने कहा—"तुम लोग ऐसी बातें

क्यों कर रहे हो? ये स्वामी अब पहले की तरह परिग्रह धारी राजा नहीं हैं। वे तो अब संसार रूपी भँवर से निकलने के लिए समग्र सावद्य व्यापार को त्यागकर यति हुए हैं। जो भोग भोगने की इच्छा रखते हैं, वेही स्नान, अंगराग, आभूषण—गहने ज़ेवर और कपड़े लेते और काममें लाते हैं। परन्तु प्रभुतो उन सब से विरक्त हैं, उनसे सख्त नफरत या घृणा होगई है। अतः इन्हें इन सब की क्या ज़रूरत? जो काम देव के वशी-भूत होते हैं, वही कन्याओं को स्वीकार करते हैं। परन्तु ये प्रभु तो काम को जीतने वाले हैं। अतः सुन्दरी कामिनी इनके लिए पाषाणवत पत्थरके समान है। जो राज्य भोगकी इच्छा रखते हैं, वेही हाथी, घोड़े, रथ, वाहन आदि लेते हैं, परन्तु प्रभुने तो संयमरूपी साम्राज्य ग्रहण किया है, अतः उन्हें तो ये सब जले हुए कपड़ोंके समान है। जो हिंसक होते हैं, वेही सजीव फलादिक ग्रहण करते हैं; परन्तु ये प्रभु तो समस्त प्राणियोंको अभयदान देने वाले हैं, अतः ये उन्हें क्यों लेने लगे? ये तो केवल एषणीय, कल्पनीय और प्रासुक अन्न आदिकको ग्रहण करते हैं; लेकिन तुम मूढ़ लोग इन सब बातोंको नहीं जानते।"

उन्होंने कहा—"हे युवराज! ये शिल्पकला या कारीगरीके जो काम आजकल होते हैं, ये सब पहले प्रभु ने ही बताये थे—स्वामीने सिखाये-बताये थे, इसीसे सब लोग जानते हैं और आप जो बातें कहते हैं, ये तो स्वामीने बताई नहीं, इसी लिये हम कैसे जान सकते हैं? आपने ये बात कैसे जानी? आप इस बातके कहने लायक़ हैं, अतः कृपया बताइये।"

युवराजने कहा—"ग्रन्थ अवलोकन या शास्त्र देखनेसे जिस तरह बुद्धि पैदा होती है; उसी तरह भगवान्‌के दर्शनोंसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिस तरह सेवक एक गाँवसे दूसरे गाँवको जाता है; उसी तरह स्वर्ग और मृत्युलोकमें बारी बारीसे आठ भवों या जन्मों तक मैं प्रभुके साथ साथ रहा हूँ। इस भवसे तीसरे भवमें यानी अबसे पहले हुए तीसरे जन्ममें, विदेह क्षेत्रमें भगवानके पिता वज्रसेन नामक तीर्थङ्कर थे। उनसे प्रभुने दीक्षा ली प्रभुके बाद मैंने भी दीक्षा ली। उस जन्मकी बातें याद आने से मैं इन सब बातोंको जान गया। गत रात्रिमें मुझे, मेरे पिता और सुबुद्धि सार्थवाह को जो स्वप्न दीखे थे उसका फल मुझे प्रत्यक्षमिल गया। मैंने स्वप्नमें श्याम मेरु पर्वतको दूधसे धोया हुआ देखा था, उसी से आज इन प्रभुको जो तपस्यासे दुबले हो गये हैं, मैंने ईश्वरसे पारणा कराया और उससे ये शोभने लगे। मेरे पिताने उन्हें दुश्मनोंसे लड़ते हुए देखा था, मेरे पारणेकी सहायतासे उन्होंने परीषह रूपी शत्रुओंका पराभव किया है। सुबुद्धि सार्थवाह या सेठने स्वप्नमें देखा था, कि सूर्यमण्डलसे हज़ारों किरणें गिरी ओर मैंने वे फिर लगादीं, इससे दिवाकर खूब सुन्दर मालूम होने लगा। उसका यह अर्थ है, कि सूर्य समान भगवान्‌का सहस्र किरणरूपी केवल ज्ञान भ्रष्ट हो गयाथा उसे मैंने आज पारणे से जोड़ दिया। और उससे भगवान् शोभने लगे; अर्थात् प्रभुको आहारका अंतराय था, आहार बिना शरीर ठहर नहीं

सकता। शरीर विना केवल ज्ञान हो नहीं सकता, अब मैंने प्रभुका पारणा करा दिया—ईखरस पिला दिया, इससे प्रभुके शरीरमें बलआया औरवह कान्तिमान हो गया। अवप्रभुको केवल ज्ञान हो सकेगा, यह सब मेरे द्वारा हुआ इसीसे स्वप्नमें मेरे द्वारा सूर्यकी गिरी हुई सहस्र किरणें फिर सूर्यमें जोड़ी हुई और सूर्य तेजवान देखा गया। खुलासा यह है, स्वप्नमें जो सूर्य सेठको दीखा, वह यह भगवान् हैं। उसकी सहस्र किरणें गिरी हुई देखी गई ; वह आपका केवल ज्ञानसे भ्रष्ट होना है। मैंने किरणें फिर सूर्यमें जड़दी, वह मेरा प्रभुको पारणा करा देना है। सूर्यका तेज जिस तरह स्वप्नमें मेरे किरण जड़ देने पर बढ़ गया उसी तरह पारणा कराने से भगवानका तेज बल बढ़ गया और उनमें केवल ज्ञानका सम्भव है।” युवराजसे ये बातें सुनकर वे सब “बहुत ठीक हैं, बहुत ठीक हैं” कहते हुए खुशीके साथ अपने अपने घर गये।

श्रेयांसके घर पारणा कर जगत्पति वहांसे दूसरी जगहको विहार कर गये; यानी चले गये। क्योंकि छद्मस्थ तीर्थङ्कर एक जगह नहीं ठहरते। भगवान्के पारणेके स्थानको कोई उलांघे नहीं, इसलिये श्रेयाँसने वहाँ रत्नमय पीठ बनवा दी। मानों साक्षात् भगवान्के चरण-कमल ही हों, इस तरह गाढ़ भक्तिसे विनम्र हो, वह उस रत्नमय पीठकी त्रिकाल; अर्थात् तीनों समय पूजा करने लगा। “यह क्या हैं ?” जब लोग इस तरह पूछते थे, तब श्रेयांस यह कहते थे—‘यह आदिकर्त्ताका मण्डल है।’ इसके

बाद प्रभुने जहाँ जहाँ भिक्षा ग्रहण की, वहाँ वहाँ लोगोंने इसी तरह पीठें बनवा दीं। इससे अनुक्रमसे "आदित्य पीठ" इस तरह प्रवृत्त हुआ।

भगवान् का तक्ष शिला गमन।

एक समय, जिस तरह हाथी कुञ्जमें प्रवेश करता है, उस तरह प्रभु सन्ध्या समय, बाहु बलि देशमें, बाहुबलिकी तक्षशिला पुरीके निकट आये और नगरीके बाहर एक बग़ीचेमें कायोत्सर्ग में रहे। बाग़के मालीने यह समाचार बाहुबलिको जा सुनाया। ख़बर पातेही बाहुबलिने फ़ौरन ही नगर।—रक्षक बुलाये और उन्हें हुकम दिया कि नगरके मकानात और दूकानोंको ख़ूब अच्छी तरह सजा कर नगरको अलंकृत करो। यह हुकम निकलते ही नगरके प्रत्येक स्थानमें लटकने वाले बड़े बड़े झूमरोंसे राहगीरोंके मुकुटोंको चूमने वाली केलेके खंभोंकी तोरण मालिकायें शोभा देने लगीं। मानों भगवान्के दर्शनोंके लिए देवताओंके विमान आये हों, इस तरह हरेक मार्ग रत्नपात्रसे प्रकाशमान मंचोंसे शोभायमान दीखने लगा। वायुसे हिलती हुई उद्दाम पताकाओं की पंक्तियोंसे वह नगरी हज़ार भुजाओं वाली होकर नाचती हो ऐसी शोभने लगी। नवीन केशरके जलके छिड़कावसे सारे नगरकी ज़मीन ऐसी दीखने लगी, मानों मंगल अंगराग किया हो। भगवान्के दर्शनोंकी उत्कण्ठा रूपी चन्द्रमाके दर्शनसे वह नगर कुमुदके खण्डके समान प्रफुल्लित हो उठा; यानी सारा शहर

निद्रा रहित हो गया। सारी रात आँखसे आँख न लगी। नगर निवासी रात भर जागते रहे। मैं सवेरे ही स्वामीके दर्शनोंसे अपनी आत्मा और लोगोंको पवित्र करूँगा,—ऐसे विचार वाले बाहुबलिको वह रात महीनाके बराबर हो गई। इधर रातके प्रभातमें परिणत होते ही, प्रतिमास्थिति समाप्त होते ही, प्रभु वायु की तरह दूसरी जगहको विहार कर गये अर्थात अन्यत्र चले गये।

बाहुबलि का प्रभुके पास वन्दना करने को जाना

सवेरा होते ही बाहुबलिने उस बाग़की ओर जानेकी तैयारी की, जिसमें रातको भगवान्‌के ठहरनेकी बात सुनी थी। जिस समय वह चलनेको उद्यत हुआ, उस समय अनेक सूर्योंके समान बड़े बड़े मुकटधारी मण्डलेश्वरोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया। उसके साथ अनेकों क्रियाकुशल, शुक्राचार्य्य प्रभृति की बराबरी करने वाले मूर्त्तिमान अर्थ शास्त्रसदृश मंत्री थे। गुप्त पंखों वाले, गरुड़के समान ज़गत्‌को उल्लंघन करनेमें वेगवान्, लाखों घोड़ोंसे घिरा हुआ वह बहुतही शोभायमान दीखता था। झरते हुए मदजल की वृष्टिसे मानो झरने वाले पर्वत हों, ऐसे पृथ्वीकी रजको शान्त करने वाले हाथियोंसे वह शुशोभित था। पाताल कन्याओं के जैसी, सूर्यको न देखने वाली वसन्त श्री प्रभृति अन्तः पुरकी रमणियाँ उसके आस पास तैयार खड़ीं थीं। उसके दोनों ओर चमर धारिणी गणिकायें खड़ी थीं। उनसे वह राजहंस सहित

गंगा-जमुनासे सेवित प्रयागराज जैसा दीखता था। उसके सिर पर मनोहर सफेद छत्र फिर रहा था। इसलिये पूर्णमासीके आधी-रात के चन्द्रमासे जिस तरह पर्वत सोहता है, उसीतरह वह सोह रहा था। देवनन्दी—इन्द्रका प्रतिहार जिस तरह इन्द्रको राह दिखाता है; उसी तरह सोनेकी छड़ी वाला प्रतिहार उसके आगे आगे राह दिखाता चलता था। लक्ष्मी-पुत्रोंकी तरह, रत्न जड़ित गहने और ज़ेवरोंसे सजकर शहरके शाहूकार घोड़ों पर चढ़ चढ़कर उसके पीछे पीछे चलानेको तैयार खड़े थे। जवान सिंह जिस तरह पर्वतकी शिला पर चढ़कर बैठता है; उसी तरह इन्द्रके सदृश बाहुबलि राजा भद्र जातिके सर्व्वोत्तम गजराज पर सवार हो गया। जिस तरह चूलिकासे मेरुपर्वत शोभता है; उसी तरह मस्तक पर तरंगित कान्ति वाले मुकुटसे वह सुशोभित था। उसके दोनों कानों में जो दो मोतियोंके कुण्डल पड़े हुए थे, उनके देखनेसे ऐसा मालूम होता था, मानो उसके मुखकी शोभासे पराजित हुए जम्बू द्वीपके दोनों चन्द्रमा उसकी सेवा करनेके लिये आये हों। लक्ष्मीके मन्दिर स्वरूप हृदय पर उसने बड़े बड़े फार मोतियोंका हार पहना था, वह हार उस मन्दिरका क़िला सा जान पड़ता था। भुजाओं पर उसने सोनेके दो भुजबन्धर पहने थे, उनके देखने से ऐसा जान पड़ता था, गोया भुजा रूपी वृक्ष नयी लताओंसे घेरकर दृढ़ किये गये हैं। हाथोंके पहुचों या कलाइयों पर उसने मोतियोंके दो कड़े पहने थे, वे लावण्य रूपी नदीके तीर पर रहने वाले फेनके जैसे मालूम होते थे।

अपनी कान्तिसे आकाशको पल्लवित करने वाली दो अगूठियाँ उसने पहनी थीं। वे सर्पके फण जैसी शोभा वाले हाथोंकी मणियोंकी तरह सुन्दर मालूम होती थीं। शरीर पर उसने सफ़ेद रंगके महीन कपड़े पहने थे, जो शरीर पर लगाये चन्दनसे अलग न मालूम होते थे। पूर्णिमाका चन्द्रमा जिस तरह चन्द्रिका को धारण करता है; उसी तरह उसने गंगाके तरङ्ग समूहकी स्पर्द्धा करने वाला सुन्दर वस्त्र चारों ओर धारण किया था, विचित्र धातुमय पृथ्वीसे जैसे पर्वत शोभता है; उसी तरह विचित्र वर्णके सुन्दर अन्दरके कपड़ोंसे वह शोभता था। मानों लक्ष्मीको आकर्षण करने वाली क्रीड़ा करनेका तीक्ष्ण शस्त्र हो, इस तरह वह महाबाहु वज्रको अपने हाथमें फेरता था और वन्दि जन जयजय शब्दसे दिशाओंके मुखोंको पूर्ण करते थे। इस प्रकार बाहुबलि राजा उत्सव पूर्व्वक—बड़े ठाट बाट और आन शानसे स्वामीके चरण कमलोंसे पवित्र हुए बाग़के पास आया। इसके बाद आकाशसे जैसे पक्षिराज उतरते हैं; उसी तरह हाथीसे उतर, छत्र प्रभृति त्याग, बाहुबलि बाग़में दाख़िल हुआ। वहाँ उसने चन्द्रविहीन आकाश और सुधारहित अमृत कुण्डकी तरह बाग़ीचा देखा; अर्थात उसने बाग़में प्रभुको न देखा। उसे उनके दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा थी। उसने मालियोंसे पूछा— "मेरे नेत्रोंका आनन्द बढ़ाने वाले जिनेश्वर कहाँ हैं!" मालियोंने उत्तर दिया—"रात्रिकी तरह प्रभु भी कुछ आगे चले गये। जब हमे यह बात मालूम हुई कि स्वामी पधार गये। तभी

हम लोग आपकी सेवामे खबर देनेको आना चाहते ही थे, कि इतने मे आपही यहाँ पधार गये" मालियोंकी बात सुनते ही तक्ष-शिलाधीश बाहुबलि हाथोंसे डाढ़ी पकड़, आँखोंमें आँसू डबडबा, दुःखित होकर चिन्तामग्न हो गया। वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"अरे! मैंने विचार किया था, कि आज मैं परिजन सहित स्वामीकी पूजा करूँगा—मेरा यह विचार मरुस्थली मे बोये हुये बीजकी तरह वृथा हुआ। लोगोंके अनुग्रह की इच्छा से मैंनेबहुत देर करदी। अतः मुझे धिक्कार है! "ऐसे स्वार्थके कारण मेरीमूर्खता ही प्रगट हुई। प्रभुके चरण कमलोंके दर्शनों में विघ्न बाधा उपस्थित करनेवाली इस बैरिन रातको और अधम बुद्धिको धिक्कार है!! इस समय स्वामी मुझे नहीं दीखते, अतः यह प्रभात-प्रभात नहीं; यह यह सूर्य—सूर्य नहीं और ये नेत्र—नेत्र नहीं हैं। हाय! त्रिभुवन पति रातको इस जगह प्रतिमा रूप से रहे और बेहया—बे शर्म—निर्लज्जा बाहुबलि अपने महलमें आनन्द पूर्व्वक सोता रहा।" बाहु बलिको इस तरह चिन्ता सागरमें गोते लगाते देख, उसका प्रधान मन्त्री शोक रूपी शल्य को विशल्य रूप करने वाली वाणी से यों बोला—"हे देव! आपने यहाँ आकर स्वामीके दर्शन नहीं पाये इस लिये शोक क्यों करते हो? रञ्जीदा क्यों होते हो? क्योंकि प्रभु तो निरन्तर आपके हृदयमे वसते हैं। यहाँ जो उनके वज्र अङ्कुश, चक्र कमल, ध्वजा और मत्स्यसे लांछित चरण-चिह्न देखते हैं, इनसे आप यही समझिये कि हम साक्षात् प्रभुको ही देख रहे हैं। मन्त्री की बातें सुनकर, अन्तःपुर और परिवार सहित

सुनन्दानन्दन बाहुवलि ने प्रभु के चरण-चिन्हों की वन्दना की। इन चरण-चिन्हों को कोई उलांघ न सके, इस लिये उसने उनके ऊपर रत्नमय धर्म चक्र स्थापन करा दिया। चौसठ माईल के विस्तार-वाला, बत्तीस मील ऊँचा और हज़ार आरे वाला वह धर्मचक्र मानो बिल्कुल सूर्य-बिम्ब ही हो—इस तरह सुशोभित होने लगा। त्रिलोकी नाथ के ज़बर्दस्त प्रभावसे, देवताओं से भी न हो सकने योग्य चक्र, बाहुबलिने तत्काल तैयार पाया। इसके बाद उसने सब जगहों से लाये हुए फूलों से उसकी पूजा की। इससे वह फुलों का ही पहाड़ हो-ऐसा दीखने लगा। नन्दीश्वर द्वीपमें जिस तरह इन्द्र अट्ठाई महोत्सव करता है; उसी तरह उत्तम सङ्गीत और नाटक आदि से अट्ठाई महोत्सव किया। शेषमें पूजा करने वाले और रक्षा करनेवाले आदमी वहाँ छोड़ और सदा रहने का हुक्म दे तथा चक्र को नमस्कार कर बाहुवलि राजा अपनी नगरी को गया।

भगवान् को केवल ज्ञान।

इस प्रकार हवा की तरह आज़ादी से रहने वाले, अस्खलित रीतिसे विहार करने वाले, विविध प्रकार के तपों में निष्ठा रखने वाले जुदे जुदे प्रकारके अभिग्रह करने में उद्युक्त; मौनव्रत धारण करने के कारण यवनाडव प्रभृति म्लेच्छ देशोंमें रहने वाले, अनार्य प्राणियों को भी दर्शन मात्र से भद्र या आर्य करनेवाले और उत्सर्ग तथा परिषह आदिको सहन करने

वाले प्रभुने एक हज़ार वर्ष एक दिनके समान बिता दिये। कुछ दिन बाद वे महानगरी अयोध्याके शाखा नगर पुरि भतालमें आये। उसकी उत्तर दिशामें, दूसरे नन्दनवनके जैसा शकट मुख नामक बागीचा था। प्रभुने उसमें प्रवेश किया, अष्टम तप कर, एक बटवृक्षके नीचे प्रतिमारूप से स्थित प्रभु, अप्रमत्त नामक अष्टम गुण स्थानको प्राप्त हुए इसके बाद अपूर्ण करण; यानी शुक्ल-ध्यान के पहले पाये पर आरूढ़ हो, सविचार पृथकत्व वितर्क युक्त शुक्लध्यानके पाये को प्राप्त हुए। इसके बाद अनिवृत्ति गुण स्थान एवं सूक्ष्म संपराय—सातवें गुण-स्थान को प्राप्त हो, क्षण भरमें ही क्षीण कषायत्व को प्राप्त हुए। उसी ध्यानसे क्षणमात्र में चूर्ण किये हुए लोभका नाश कर, कतक या निर्मली चूर्ण से जलके समान उपशान्त कषाय हुए। इसके पीछे ऐक्य श्रुत अवि-चार नामके शुक्लध्यान के दूसरे पायेको प्राप्त हो, अन्तिम क्षणमे, पलभर में ही क्षीणमोहक बारहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए। फिर पाँच ज्ञानावर्णी चार दर्शनावर्णी और पाँच तरहके अन्तराय कर्मोंका नाश करने से समस्त घाति कर्मोका नाश किया। इस तरह व्रत लेनेके पीछे, एक हज़ार वर्ष बीतने पर, फागुनके महीने के कृष्ण पक्षकी एकादशी के दिन, चन्द्रमा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में आया था, उस समय, प्रातःकाल में, मानों हाथमें ही रखे हों—इस तरह तीन लोकों को दिखाने वाला त्रिकाल सम्बन्धी केवल ज्ञान हुआ। उस समय दिशायें प्रसन्न हुई। सुखदायी हवा चलने लगी और नारकीय जीवों को भी क्षण भरके लिये सुख मिला।

भगवान् के पास इन्द्र का आगमन।

अब मानों स्वामीके केवल ज्ञान उत्सवके लिये प्रेरणा करते हों इस प्रकार समस्त इन्द्रोंके आसन. काँपने लगे। मानों अपने अपने लोक के देवताओं को बुलाकर इकट्ठा करनी चाहती हों, इस तरह देवलोक में सुन्दर शब्दावाली ध्वनियाँ बजने लगीं। ज्योंही सौधर्मपति ने स्वामी के चरण कमलोंमें जाने का विचार किया, कि त्योंही अहिरावण देवगज रूप होकर उनके पास आ खड़ा हुआ। स्वामीके दर्शन की इच्छा से मानों चलता हुआ मेरु पर्वत हो, इस तरह उस गजवरने अपना शरीर चार लाख कोस या आठ लाख मील के विस्तार का बना लिया। शरीरकी बर्फके समान सफेद कान्ति से वह हाथी ऐसा दिखता था, गोया चारों दिशाओं के चन्दन का लोप करता हो। अपने गण्डस्थलों से झरने वाले अत्यन्त सुगन्धित मद्जल से वह स्वर्गकी अङ्गण भूमिको कस्तूरी की तहोंसे अङ्कित करता था मानों दोनों तरफ पङ्खे हों, ऐसे अपने चपल चञ्चल कर्णताल से, कपोलों से झरने वाले मद की गन्ध से अन्धे हुए भौरोंको दूर हटाता था। अपने कुम्भस्थल के तेजसे उसने बाल सूर्यके मण्डल का पराभव किया और अनुक्रम से पुष्ट और गोलाकार सूँड़से वह नागराज का अनुसरण करता था। उसके नेत्र और दाँत मधु की सी कान्तिवाले थे। ताम्बेके पत्तर जैसा उसका तालू था। थम्भेके समान गोल और सुन्दर उसकी गर्दन थी और शरीरके भाग विशाल थे। प्रत्यञ्चा चढ़ाये हुए धनुष के जैसा उसकी पीठका भाग था।

उसका पेट था उदर कृश था और चन्द्र मण्डल के जैसे नख मण्डल से मण्डित था। उसका निःश्वास दीर्घ और सुगन्धि पूर्ण था। उसकी सूँडका अगला भाग लम्बा और चञ्चल था। उसके होठ, गुह्य इन्द्रिय और पूँछ—ये तीनों बहुत लम्बे लम्बे थे। जिस तरह दोनों ओर रहने वाले सूरज और चन्द्रमा से मेरु पर्वत अङ्कित होता है; उसी तरह दोनों ओर केघण्टोंसे वह अङ्कित था। कल्प-वृक्षके फूलों से गुँथी हुई उसके दोनों ओर की डोरियाँ थीं। मानों आठ दिशाओं की लक्ष्मीकी विभ्रम भूमि हो, इस तरह सोने के पट्टों से अलंकृत किये हुए आठ ललाटों और आठ मुखों से वह सुशोभित था। बड़े भारी पर्वत के शिखरों की तरह, मज़बूत, किसी क़द्र टेढ़े और ऊँचे प्रत्येक मुखमें आठ आठ दाँत थे। प्रत्येक दाँत पर सुस्वादु और निर्मल जलकी एक एक पुष्करिणी थी। जो वर्षधर पर्वतके ऊपर के सरोवर की तरह शोभायमान थीं। प्रत्येक पुष्करिणी में आठ आठ कमल थे। उनके देखने से ऐसा जान पड़ता था, गोया जलदेवी ने जलके वाहर अपने मुख निकाल रखे हों। प्रत्येक कमलमें आठ आठ विशाल पत्ते थे। वे क्रीड़ा करती हुई देवाङ्गनाओं के विश्राम लेने के द्वीपोंकी तरह सु-शोभित थे। प्रत्येक पत्ते पर चार चार प्रकार के अभिनय हाव भावसे युक्त जुदे जुदे आठ आठ नाटक शोभते थे। और हरेक नाटक मे मानों स्वादिष्ट रसके कल्लोल की सम्पत्ति वाले सोते हों ऐसे वत्तीस वत्तीस पात्र नाटक करने वाले थे। ऐसे उत्तम गजेन्द्र पर अगाड़ी के आसन मे परिवार समेत इन्द्र सवार हुआ।

हाथी के कुम्भस्थलों से उसकी नाक ढक गई। परिवार सहित इन्द्र ज्योंही गजपति पर बैठा, त्यों ही सारा सौधर्म लोक हो, इस तरह वह हाथी वहाँसे चला। पालक विमान की तरह अनुक्रम से अपने शरीर को छोटा करता हुआ वह हाथी क्षणभर में प्रभु द्वारा पवित्र किये हुए बाग़में आ पहुँचा। दूसरे अच्युत प्रभृति इन्द्र भी 'मैं पहले पहुँचू, 'मैं पहले पहुँचूं' इस तरह जल्दी जल्दी देवताओं को साथ लेकर वहाँ आन पहुँचे।

समवसरण की रचना।

उस समय वायुकुमार देवताने मान को त्याग कर, समवरुणके लिये, आठ मील पृथ्वी साफ की। मेघ कुमार के देवताओं ने सुगन्धित जलसे ज़मीन पर छिड़काव किया। इससे मानो पृथ्वी, यह समझकर कि प्रभु स्वयं पधारेंगे, सुगन्धि पूर्ण आँसुओं से धूप और अर्थ को उड़ाती हुई सी मालूम होती थी। व्यन्तर देवताओंने भक्तिपूर्वक अपनी आत्माके समान ऊँची ऊँची किरण वाले सोने, मानिक, और रत्नों के पत्थर ज़मीन पर विछा दिये। मानो पृथ्वी से ही निकले हों ऐसे पचरंगे सुगन्धित फूल वहाँ विखेर दिये। चारों दिशाओंमें मानों उनकी आभूषणाभूत कण्ठियाँ हों इस तरह रत्न, माणक और सोने के तोरण बाँधे। वहाँ पर लगाई हुई रत्नमय पुतलियों की देहके प्रतिबिम्ब एक दूसरे पर पड़ते थे। उनके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया सखियाँ परस्पर आलिङ्गन कर रही हों। चिकनी चिकनी इन्द्रनीलमणि

से वनाये हुए मगर के चित्र नाशको प्राप्त हुए कामदेव द्वारा छोड़े हुए अपने चिन्ह रूप मगर के भ्रमको करते थे। भगवान् के केवल ज्ञान कल्याण से उत्पन्न हुई दिशाओं की हँसी हो, इस तरह सफेद सफेद छत्र वहाँ शोभायमान थे। मानों अत्यन्त हर्ष से पृथ्वीने स्वयं नाच करने के लिये अपनी भुजायें ऊँची की हों, इस तरह ध्वजा पताकायें फड़कती थी। तोरणोंके नीचे जो स्वस्तिकादिक अष्ट मङ्गलिकके श्रेष्ठ चिन्ह किये गये थे, वे वलिपद जैसे मालूम होते थे। समवसरण के ऊपरी भागका गढ़ विमान पतियों या वैमानिक देवताओं ने रत्नो का वनाया था। इससे रत्नगिरी की रत्नमय मेखला वहां लाई गई हो, ऐसा जान पड़ता था। उस गढ़ पर नाना प्रकार की मणियों के कंगूरे वनाये थे। वे अपनी किरणों से आकाश को विचित्र रङ्गोंके कपड़ों वाला वनाते थे। वीचमें ज्योतिरपति देवताओंने, मानों पिण्डरूप अपने अङ्गकी ज्योति हो, इस तरह का सोनेका दूसरा गढ़ रचा था। उन्होंने उस गढ़पर रत्नमय कंगूरे लगाये थे, वे सुर असुर पत्नियों के मुँह देखने के दर्पण या आईने से मालूम होते थे। भुवन पतियों ने वाहर की ओर एक चाँदीका तीसरा गढ़ वनाया था, उसके देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया वैताढ्य पर्वत भक्तिसे मण्डल रूप हो गया है। उस गढ़ पर जो सोनेके कंगूरे वनाये थे, वे देवताओं की वापड़ियों के गले मे सोने के कमलसे मालूम होते थे। वह तीनों गढ़वाली पृथ्वी भुवनपति, ज्योतिरपति और विमानपति की लक्ष्मी के एक एकगोलाकार कुण्डल से शोभे इस तरह शोभती थी। पताका

ओंके समूह वाले मणिमय तोरण, अपनी किरणों से मानों दूसरी पताकायें बनाते हों, इस तरह दीखते थे। उनमें से प्रत्येक गढ़में चार चार दरवाज़े थे। वे चार प्रकारके धर्म की क्रीड़ा करने को खड़े हों, ऐसे मालूम होते थे। प्रत्येक दरवाज़े पर व्यन्तरों के रखे हुए धूपपात्र या धूपदानियाँ इन्द्रनीलमणि के खम्भों के जैसी धूम्रलता या धूएँ की वेलसी छोड़ती थीं। अर्थात् धूपदानियोंमें रखी हुई धूपसे जो धुआँ उठता था, वह नीलम का खम्भा सा मालूम होता था। उस समवसरणके प्रत्येक द्वारमें, गढ़की तरह, चार चार दरवाज़ोंवाली, सोनेके कमलों सहित बावड़ियाँ बनायी थीं। दूसरे गढ़में, प्रभुके आराम करने के लिए एक देव छन्द बनाया था। भीतरके पहले कोटके द्वार पर, दोनों ओर, सोनेके से वर्ण वाले, दो वैमानिक देवद्वार पालकी ड्यूटी बजाने को खड़े थे। दक्खन द्वारमें, दोनों तरफ, मानो एक दूसरे के प्रतिबिम्ब या अक्स हों, इस तरह उज्ज्वल व्यन्तर देवद्वारपाल हुए थे। पच्छमी द्वारपर, संध्या-समय जिस तरह सूर्य और चन्द्रमा आमने-सामने हो जाते हैं, इस तरह लाल रङ्ग वाले ज्योतिस्क देव द्वारपाल बनकर खड़े थे। उत्तर द्वार पर मानो उन्नत मेघ हो, इस तरह काले रङ्गके भुवनपतिदेव दोनों ओर द्वारपाल बने खड़े थे। दूसरे गढ़के चारों द्वारों के दोनों तरफ अनुक्रमसे अभय, पास, अंकुश और मुद्गर धारण करने वाली—श्वेतमणि, शोण मणि, स्वर्णमणि और नीलमणि की जैसी कान्ति वाली, पहले की तरह, चार निकायकी जया, विजया, अजिता और अपराजिता

नामकी दो दो देवियाँ प्रतिहारी के रूपमें खड़ी थीं। अन्तिम बाहर के कोटके चारों दरवाज़ोंपर तुम्बरु खाटकी पाटी, मनुष्य मुण्डमाली, और जटाजूट मण्डित—इन नामोंके चार देवता द्वारपाल होकर खड़े थे। समवसरण के बीच में व्यन्तरोंने छै मील ऊँचा एक चैत्य वृक्ष बनाया था। वह रत्नत्रयके उदय का उपदेश देता सा मालूम होता था। उस वृक्षके नीचे अनेक प्रकार के रत्नोंसे एक पीठ बनाई गई थी। उस पीठ पर अप्रतिम मणिमय एक छन्दक बनाया गया था। छन्दकके बीचमें, पूरब दिशाकी ओर, मानों सारी लक्ष्मीका सार हो ऐसा, पादपीठ समेत रत्न-जटित सिंहासन बनाया था और उस के ऊपर तीन लोक के आधिपत्य के चिह्न-स्वरुप तीन छत्र बनाये थे। सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष हाथों में दो उज्ज्वल-उज्ज्वल चँवर लिये खड़े थे, जिनसे ऐसा जान पड़ता था, मानों भक्ति उनके हृदयों में न समाकर बाहर निकली पड़ती है। समवसरण के चारों दरवाज़ों पर अद्भुत कान्ति-समूह वाले धर्म-चक्र सोनेके कमलोंमें रखे थे। और भी जो करने योग्य काम थे, वे सब व्यन्तरों ने किये थे, क्योंकि साधारण समवसरण में वे अधिकारी हैं।

अब प्रातः कालके समय, चारों तरह के, करोड़ों देवताओं से घिरकर, प्रभु समवसरण में प्रवेश करने को चले। उस समय देवता हज़ार हज़ार पत्तेवाले सोनेके नौ कमल रचकर अनुक्रमसे प्रभुके आगे रखने लगे। उनमें से दो दो कमलों पर प्रभु पादन्यास करने लगे और देवता उन कमलों को आगे आगे रखने लगे।

जगत्पति ने समवसरण के पूर्वी दरवाज़े से घुस कर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा की और इसके बाद तीर्थ को नमस्कार कर, सूर्य जिस तरह पूर्वाचलपर चढ़ता है, उसी तरह जगत्का मोहान्धकार नाश करने के लिये, प्रभु पूरव मुखवाले सिंहासन पर चढ़े। तब व्यन्तरोंने दूसरी तीन दिशाओं मे, तीन सिंहासनों पर, प्रभुके तीन प्रतिबिम्ब बनाये। देवता प्रभुके अँगूठे जैसा रुप बनानेकी भी सामर्थ्य नही रखते, तथापि जो प्रतिबिम्ब बनाये, वे प्रभुके भावसे वैसे ही होगये। प्रभुके हरेक मस्तक के फिरने से शरीर की कान्तिके जो मण्डल—भामण्डल प्रकट हुए, उनके सामने सूर्य-मण्डल खद्योत—पटवीजना या जुगनू सा मालूम होने लगा। प्रतिशब्दों से चारों दिशाओंको शब्दायमान करती हुई—मेघवत् गम्भीर स्वर वाली दुन्दुभि आकाशमे बजने लगी। प्रभुके पास एक रत्नमय ध्वजा थी, वह मानो अपना एक हाथ ऊँचा करके यह कहती हुई शोभा दे रही थी, कि धर्ममें यह एक ही प्रभु है।

इन्द्र द्वारा भगवान की स्तुति।

अब विमान पतियो की स्त्रियाँ पूरवी द्वार से घुसकर, तीन परिक्रमा दे, तीर्थङ्कर और तीर्थ को नमस्कार कर, पहले गढ़में, साधु साध्वीयों का स्थान छोड़, उनके स्थानके बीच अग्निकोण में खड़ी हो गईं। भुवनपति, ज्योतिष्पति और व्यन्तरों की स्त्रियाँ दक्खन द्वारसे घुस, पहले वालियों की तरह नमस्कार प्रभृति कर नैऋत कोणमें खड़ी हो गईं। भुवन-पति, ज्योतिष्पति और

व्यन्तर देवता पच्छम दिशाके दरवाज़ेसे घुस, नमस्कार कर, परिक्रमा दे, वायव्य कोण में बैठ गये। वैमानिक देवता, मनुष्य और मनुष्यों की स्त्रियाँ उत्तर दिशाके द्वारसे घुस पहले आने वालों की तरह नमस्कारादि कर ईशान दिशामें बैठगये। वहाँ पहले आये हुए अल्प ऋद्धिवाले, जो बड़ी ऋद्धि वाले आते उनको नमस्कार करते थे। और आने वाले पहले आये हुओं को नमस्कार करके आगे बढ़ जाते थे प्रभु के समवसरणमें किसी को रोक-टोक नहीं थी; किसी तरह की विकथा नहीं थी। वैरियों में भी आपसका वैर नहीं था और किसी को किसी का भय न था दूसरे गढ़में आकर तिर्यञ्च बैठे और तीसरे गढ़में सब आने वालो के वाहन या सवारियाँ थीं। तीसरे गढ़ के बाहरी हिस्सेमें कितनेही तिर्यंञ्च, मनुष्य और देवता आते जाते दिखाई देते थे। इस प्रकार समवसरणकी रचना हो जाने पर, सौधर्म कल्पका इन्द्र हाथ जोड़ नमस्कारकर इस तरह स्तुति करने लगा—"हे स्वामी! कहाँ मैं बुद्धिका दरिद्र और कहाँ आप गुणोंके गिरिराज? तथापि भक्ति से अत्यन्त वाचाल हुआ मैं आपकी स्तुति करता हूं। हे जगत्पति जिस तरह रत्नोंसे रत्नाकर—सागर शोभा पाता है; उसी तरह आप एकही अनन्त ज्ञान दर्शन और वीर्य—आनन्दसे शोभा पाते हैं, हे देव! इस भरतक्षेत्रमें बहुत समयसे नष्ट हुए धर्म-वृक्षको फिर पैदा करनेमें आप बीजके समान हैं। हे प्रभो! आपके महात्म्यकी कुछ भी अवधि नहीं; क्योंकि अपने स्थानमें रहने वाले अनुत्तर विमानके देवताओंके सन्देहको आप यहींसे जानते

हैं और उस सन्देहको दूर भी करते हैं। बड़ी ऋद्धि वाले और कान्तिसे प्रकाशमान देवता जो स्वर्गमें रहते हैं, वह आपकी भक्तिके लेशमात्रका फल है। जिस तरह मूर्खोंको ग्रन्थका अभ्यास क्लेशके लिये होता है; उसी तरह आपकी भक्ति बिना घोर तप भी मनुष्योंको कोरी मिहनतके लिये होता है; अर्थात् आपकी भक्ति बिना घोर तपश्चर्य्या वृथा कष्ट देने वाली है। आपकी भक्ति ही सर्वोपरि है। हे प्रभो! जो आपकी स्तुति करते हैं, जो आपमें श्रद्धा-भक्ति रखते हैं और जो आपसे द्वेष रखते हैं, उन दोनोंको ही आप समदृष्टि या एक नज़रसे देखते हैं, परन्तु उनको शुभ और अशुभ—बुरा और भला फल अलग-अलग मिलता है, इसलिये हमें आश्चर्य होता है। हे नाथ! मुझे स्वर्गकी लक्ष्मीसे भी सन्तोष नहीं है—मेरी तृष्णाकी सीमा नहीं है; अतः मैं विनीत भावसे प्रार्थना करता हूँ, कि आपमें मेरी अक्षय और अपार भक्ति हो।" इस प्रकार स्तुति और नमस्कार कर, इन्द्र स्त्री, मनुष्य, नरदेव और देवताओंके अगले भागमें अञ्जलि जोड़ कर बैठ गया।

मरुदेवा माता का विलाप।

भरत का समाधान।

इधर तो यह हो रहा था; उधर अयोध्या नगरीमें विनयी भरत चक्रवर्त्ती, प्रातः समय, मरुदेवा माताको प्रणाम करनेको गया। अपने पुत्रकी जुदाईके कारण, अविश्रान्त आँसुओंकी धारा गिरने

से जिसके नेत्र-कमल जाते रहे हैं, ऐसी पितामही—दादीको "यह आपका बड़ा पोता चरणकमलोंमें प्रणाम करता है।" यह कह कर भरतने प्रणाम किया। स्वामिनी मरुदेवाने पहले तो भरतको आशीर्वाद दिया और पीछे हृदयमें शोक न समाया हो, इस तरह वाणीका उद्गार बाहर निकाला।—"हे पौत्र भरत! मेरा बेटा ऋषभ मुझे, तुझे, प्रथ्वीको पूजाकी और लक्ष्मीको तिनकेकी तरह अकेला छोड़ कर चला गया, तोभी यह मरुदेवा न मरी। कहाँ तो मेरे पुत्रके मस्तक पर चन्द्रमाके आतप कान्ति जैसे छत्रका रहना और कहाँ सारे अंगोंको जलानेवाले सूर्यके तापका लगना! पहले तो वह लीलासे चलने वाले हाथी वगैरः जानवरोंपर सवार होकर फिरता था और आजकल पथिक—राहगीरकी तरह पैदल चलता है! पहले मेरे उस पुत्र पर वारांगनायें चँवर ढोरती थीं; और आजकल वह डाँस और मच्छरोंके उपद्रव सहन करता है! पहले वह देवताओंके लाये हुए दिव्य आहारोंका भोजन करता था और आजकल वह बिना भोजन जैसा भिक्षा-भोजन करता है! बड़ी ऋद्धि वाला वह पहले रत्नमय सिंहासन पर बैठता था और आजकल गैंडेकी तरह बिना आसन रहता है। पहले वह पुररक्षक और शरीर-रक्षकोंसे घिरा हुआ नगरमें रहता था और आजकल वह सिंह प्रभृति हिंसक-जानवरोंके निवास स्थान-वनमें रहता है! पहले वह कानोंमें अमृत रसायनरूप दिव्यांगनाओंका गाना सुनता था और आजकल वह उन्मत्त सर्पके कानमें सूईकी तरह फुङ्कारें सुनता है। कहाँ उसकी पहलेकी स्थिति और कहाँ

वर्त्तमान स्थिति ! हाय ! मेरा पुत्र कितनी तकलीफ़ें उठाता है, कितने कष्ट भोगता है, कि वह स्वयं पद्मखण्ड-समान कोमल होने पर भी वर्षाकालमें जलके उपद्रव सहता हैं। हेमन्त काल या जाड़ेमें जंगली मालतीके स्तम्बकी तरह हमेशा बर्फ गिरनेके क्लेशको लाचारीसे सहता है और गरमीकी ऋतुमें जंगली हाथीकी तरह सूरजकी अतीव तेज़ धूपको सहता है ! इस तरह मेरा पुत्र वनमें वनवासी होकर, बिना आश्रयके साधारण मनुष्योंकी तरह अकेला फिरता हुआ दुःखका पात्र हो रहा हैं। ऐसे दुःखोंसे व्याकुल पुत्रको मैं अपने सामने ही इस तरह देखती हूँ और ऐसी ऐसी बातें कहकर तुझे भी दुखी करती हूँ।

मरुदेवा माताको इस तरह दुःखोंसे व्याकुल देख, भरतराजा हाथ जोड़, अमृत-तुल्य वाणीसे बोला—"हे देवि ! स्थैर्य्यके पर्वत रूप, वज्रके सार रूप और महासत्वजनोंमें शिरोमणि मेरे पिताकी जननी होकर आप इस तरह दुखी क्यों होती हो ? पिताजी इस समय संसार-सागरसे पार होनेकी भरपूर चेष्टा कर रहे हैं, उद्योग कर रहे हैं। इसलिये कण्ठमें बँधी हुई शिलाकी तरह उन्होंने अपन लोगोंको त्याग दिया हैं। वनमें विहार करने वाले पिताजीके सामने, उनके प्रभावसे हिंसक और शिकारी प्राणी भी पत्थरके से हो जाते हैं और उपद्रव कर नहीं सकते। भूख, प्यास और धूप आदि दुःसह परिषह कर्म रूपी शत्रुओंके नाश करनेमें उल्टे पिताजी के मददगार हैं। अगर आपको मेरी बातों पर यक़ीन न आता हो, मेरी बातें विश्वास योग्य न मालूम होती हों, तो थोड़ेही समय

में आपको आपके पुत्रके केवल ज्ञान होनेके उत्सवकी खबर सुन कर प्रतीति हो जायगी।

भरत का भगवान की वन्दना को चलना।

मरुदेवा की गोद।

इधर ब्राह्मी पोतेमें यह बातें होती रही थीं, कि इतनेमें प्रतिहारीने महाराज भरतसे निवेदन किया कि महाराज! द्वार पर दो पुरुष आये हुए हैं। उनके नाम यमक और शमक हैं। राजाने अन्दर आनेकी आज्ञा दी। उनमेंसे यमकने महाराजको प्रणाम कर कहा— "हे देव! आज पुरिमताल नगरके शकटानन बगीचेमें युगादिनाथ को 'केवल ज्ञान' हुआ है। ऐसी कल्याण-कारिणी बात सुनाते मुझे मालूम होता है,—"कि भाग्योदयसे आपकी वृद्धि हो रही है। शमकने कहा—"महाराज! आपकी आयुधशाला या शस्त्रागार में अभी चक्र पैदा हुआ है।" यह बात सुनकर भरत महाराज क्षण-भरके लिये इस चिन्तामें डूब गए, कि उधर पिताजीको केवल ज्ञान हुआ है और इधर चक्र पैदा हुआ है, मुझे पहले किसकी अर्चना करनी चाहिए। कहाँ तो जगतको अभयदान देने वाले पिताजी और कहाँ प्राणियोंका नाश करने वाला चक्र? इस तरह विचार कर, अपने आदमियोंको पहले स्वामीकी पूजा की तैयारीका हुक्म दिया और यमक तथा शमकको यथोचित इनाम देकर विदा किया। इसके बाद मरुदेवा मातासे कहा—"हे देवी! आप सदैव करुण स्वरसे कहा करती थीं कि मेरा भिक्षा

माँगकर गुज़र करने वाला पुत्र दुःखोंका पात्र है; परन्तु आप त्रिलोकीके आधिपत्यको भोगने वाले अपने पुत्रकी सम्पत्तिको देखिये।" यह कह कर उन्होंने माताजीको गजेन्द्र पर सवार कराया। इसके बाद मूर्त्तिमान लक्ष्मी हो इस तरह सुवर्ण और माणिकके गहने वाले घोड़े, हाथी, रथ और पैदल लेकर वहाँसे कूच किया। अपने आभूषणोंसे जंगम—चलते हुए तोरणकी रचना करने वाली फौजके साथ चलने वाले महाराज भरतने दूरसे ऊपरका रत्नमय गढ़ देखा। उन्होंने माता मरुदेवासे कहा—"हे देवि! देखो, देवी और देवताओंने प्रभुका समवसरण बनाया है। पिताजीके चरण-कमलोंकी सेवामें आनन्द-मग्न हुए देवोंका जय-जय शब्द सुनाई दे रहा है। हे माता! मानो प्रभुका वन्दी हो, ऐसे गम्भीर और मधुर शब्दसे आकाशमें बजता हुआ दुंदुभीका शब्द आनन्द उत्पन्न कर रहा है। स्वामीके चरण कमलोंकी वन्दना करने वाले देवताओंके विमानोंमें उत्पन्न हु. अनेक घुँघरुओंकी आवाज आप सुन रहीं है। स्वामीके दर्शनोंसे आनन्दित देवताओंका मेघकी गरजनाके समान यह सिंहनाद आकाश मे हो रहा है। ग्राम और रागसे पवित्र ये गन्धर्वोंका गाना मानो प्रभुकी वाणीके सेवक हों, इस तरह अपनेको आनन्दित कर रहा है।" जलके प्रवाह से जिस तरह कीच धुल जाती है, उसी तरह भरतकी बातोंसे उत्पन्न हुए आनन्दके आँसुओंसे माता मरुदेवा की आँखोंमें पड़े हुए पटल धुलगये। उनकी गई हुई आँखें लौट आईं—उन्हें नेत्रज्योति फिर प्राप्त होगई। इसलिये उन्होंने अपने पुत्रकी अतिशय सहित ती-

र्थंकरपने की लक्ष्मी अपनी आँखों से देखी। उसके देखने से जो आनन्द उत्पन्न हुआ, उससे मरुदेवा देवी तन्मय हो गईं। तत्काल समकाल में अपूर्व्व करण के क्रमसे क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हो, श्रेष्ठ कर्मको क्षीण कर केवल ज्ञान को प्राप्त हुईं और उसी समय आयु पूरी हो जाने से अन्तकृतकेवली हो, हाथीके कन्धे पर ही अव्ययपद—मोक्ष-पद को प्राप्त हुईं। इस अवसर्पिणी-कालमें मरुदेवा पहली सिद्ध हुईं। उनके शरीरका सत्कार कर देवताओंने उसे क्षीर सागरमें फैंक दिया। उसी समय से इस लोकमें मृतक-पूजा आरम्भ हुई। क्योंकि महात्मा जो कुछ करते हैं, वही आचार होजाता है। माता मरुदेवाकी मुक्ति हो गई यह जानकर मेघ की छाया और सूरज की धूपसे मिले हुए शरद ऋतुके समयके समान हर्ष और शोकसे भरत राजा व्याप्त हो उठे। इसके बाद, उन्होंने राज्य चिह्न-त्याग, परिवार सहित पैदल चलकर, उत्तर के दरवाजे से समवसरण में प्रवेश किया। वहाँ चारों निकायके देवताओंसे घिरे हुए, दृष्टि रूपी चकोर के लिए चन्द्र के समान प्रभु को भरत राजने देखा। भगवान् की तीन प्रदक्षिणा दे, प्रणाम कर, मस्तक पर अञ्जलि जोड़, चक्रवर्त्ती महाराज भरत ने स्तुति करना आरम्भ किया।

भरत द्वारा की हुई प्रभु स्तुति।

"हे अखिल जगन्नाथ! हे विश्व संसार को अभय देने वाले! हे प्रथम तीर्थङ्कर! हे जगतारण! आप की जय हो! आज

इस अवसर्पिणी कालमें जन्मे हुए लोग रूपी पद्माकर को सूर्य-समान आपके दर्शनोंसे मेरा अन्धकार नाश होकर प्रभात हुआ है। हे नाथ! भव्य जीवोंके मन रूपी जलको निर्मल करने की क्रिया में निर्मली जैसी आपकी वाणी की जय हो रही है। हे करुणा के क्षीरसागर! आपके शासन रूपी महारथमें जो चढ़ते हैं, उनके लिए लोकाग्र—मोक्ष दूर नहीं है। निस्कारण जगत्बन्धु! आप साक्षात् देखने में आते हैं, इस लिये हम इस संसारको मोक्ष से भी अधिक मानते हैं। हे स्वामी! इस संसार में निश्चल नेत्रों से, आपके दर्शन के महानन्द रूपी झरने में हमें मोक्ष-सुखके स्वाद का अनुभव होता है। हे नाथ! रागद्वेष और कषाय प्रभृति शत्रुओं द्वारा रुँधे हुए इस जगत् को अभयदान देने वाले आप रूँधन से छुड़ाते हैं। हे जगदीश! आप तत्व बताते हैं, राह दिखाते हैं, आप ही इस संसार की रक्षा करते हैं, अतः मैं इससे अधिक और क्या माँगूँ? जो अनेक प्रकार के युद्ध और उपद्रवों से एक दूसरे के गाँवों और पृथ्वी को छीन लेने वाले हैं, वे सब राजा परस्पर मित्र होकर आपकी सभामें बैठे हुए हैं। आपकी सभामें आया हुआ यह हाथी अपनी सूँड से केसरी सिंह की सूँड को खींच कर अपने कुम्भस्थलों को वारवार खुजाता है। यह भैंस दूसरी भैंस की तरह, मुहब्बत से, वारम्वार इस हिनहिनाते हुए घोड़े को अपनी जीभ से साफ करती है। लीला से अपनी पूँछ को हिलाता हुआ यह हिरन कान खड़े करके और मुखको नीचा करके अपनी नाक से इस व्याघ्र के मुहको सूँघता

है। यह जवान बिल्ली अपने आगे पीछे बच्चे की तरह फिरने वाले चूहे को आलिङ्गन करती है। यह सर्प अपने शरीरको कुण्डलाकार करके इस न्यौले के पास मित्र की तरह बैठा है। हेदेव! ये निरन्तर वैर रखने वाले भी दूसरे प्राणी यहाँ निर्वैर होकर बैठे हैं। इन सब बातों का कारण आपका अतुल्य प्रभाव है।"

महीपति भरत इस तरह जगत्पतिको स्तुति करके, अनुक्रमसे पीछे सरक कर, स्वर्गपति इन्द्र के पीछे बैठ गये। तीर्थनाथ के प्रभाव से उस चार कोस के क्षेत्र में करोड़ों प्राणी बिना किसी प्रकार की निर्बाधता या दिक़्क़तके बैठ गये। उस समय समस्त भाषाओं को स्पर्श करने वाली और पैंतीस अतिशय वाली एवं योजन-गामिनी वाणी से इस तरह देशना—उपदेश देना आरम्भ किया।

भगवान् की देशना।

महीपति भरत इस भाँति त्रिलोकी नाथकी स्तुति कर, अनुक्रम से पीछे हट स्वर्गपति इन्द्रके पीछे बैठ गया। वह मैदान केवल ८ मीलके विस्तार का था, पर तीर्थनाथ के प्रभाव से करोड़ों प्राणी उसी मैदानमें बिना किसी प्रकार की सुकड़ा-सुकड़ी और अड़ास के बैठ गये। उस समय समस्त भाषाओं का स्पर्श करने वाली, पैंतीस अतिशयवाली और आठ मील तक पहुँचनेवाली आवाज़से प्रभुने इस प्रकार देशना—उपदेश देना आरम्भ किया—
"आधि—व्याधि, जरा और मृत्यु से व्याकुल यह संसार समस्त

प्राणियों के लिये देदीप्यमान और प्रज्वलित अग्नि के समान है; इसलिये विद्वानोंको उसमें लेशमात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं, क्योंकि रातमें उल्लङ्घन करने योग्य मरुदेश—मारवाड़ में अज्ञानी के सिवा और कौन प्रमाद करें ? अनेक जीवयोनि रूप भँवरों से आकुल संसार-सागरमें, उत्तम रत्न-समान मनुष्य-जन्म प्राणियों को बड़ी कठिनाई से मिलता है। दोहद या खाद पूरने से जैसे वृक्ष फल-युक्त होता है; उसी तरह परलोक-साधन करने से प्राणियों को मनुष्य-जन्म सार्थक होता है। इस जगत् में दुर्जनों की वाणी जिस तरह सुनने में पहले मधुर और मनोमुग्धकर और शेषमें अतीव भयङ्कर विपत्तियों का कारण होती है; उसी तरह विषय-भोग भी पहले मधुर और परिणाम में भयङ्कर और जगत् को ठगने वाले हैं। विषय पहले बड़े मधुर और मनको मोहने वाले मालूम होते हैं; प्राणी विषयों में बड़ा सुख-आनन्द समझते हैं; पर अन्तमें उन्हें उनके विषम विषमय फल भोगने पड़ते हैं। वे उनसे बुरी तरह ठगे जाते हैं। उनके धोखे में आकर वे अपने मनुष्य-जन्म को वृथा नष्ट करते और शेषमें उन्हें नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकारके घोरातिघोर कष्ट उठाने पड़ते हैं। जिस तरह अधिक ऊँचाईका अन्त पतन होने या पड़ने में है; उसी तरह संसार के समस्त पदार्थों के संयोग का अन्त वियोगमें है। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं, अत्यधिक ऊँचाईका परिणाम पतन है और संयोग का परिणाम वियोग है। जो बहुत ऊँचा चढ़ता है, वह नीचा गिरता है और जिसका संयोग होता हैं, उसका वि-

योग अन्तमें होता ही है। संयोग और वियोग का जोड़ा है। आज संयोग-सुख है, तो कल वियोगजन्य दुःख अवश्य होगा। मानो परस्पर स्पर्द्धा से हो, इस तरह इस जगत् में प्राणियों के आयुष्य, धन और यौवन—ये सब नाशमान् और जानेके लिए जल्दी करने वाले हैं, अर्थात् प्राणियों की उम्र, दौलत और और जवानी परस्पर होड़ा-होड़ी करके एक दूसरेसे जल्दी चले जाना चाहते हैं। ये तीनों चञ्चल हैं; अपने साथीके साथ सदा या चिरकाल तक ठहरने वाले नहीं। जिसने जन्म लिया है, उसे जल्दी ही मरना होगा। जो आज धनी है, उसे किसी न किसी दिन निर्धन होना ही होगा, और जो आज जवान है, उसे कल या परसों बूढ़ा होना ही होगा। मतलब यह कि, धन, यौनव और आयुष्य मनुष्य के साथ सदा या चिरकाल तक टिकने वाले नहीं। जिस तरह मरुदेश या मरुस्थलीमें स्वादिष्ट जल नहीं होता; उसी तरह संसार की चारों गतियों में सुख का लेश भी नहीं; अर्थात् संसारमें दुःख ही दुःख हैं, सुखका नाम भी नहीं। क्षेत्र-दोष से दुःख पाने वाले और परम अधार्मिक होनेके कारण क्लेश भोगने वाले नारकीयों को सुख कहाँ हो सकता है? शीत, वात, आतप और जल तथा बध, बन्धन और क्षुधा प्रभृतिसे नाना प्रकार के क्लेश भोगने वाले तिर्य्यञ्च प्राणियों को भी क्या सुख हैं? गर्भवास, व्याधि, दरिद्रता, बुढ़ापा और मृत्यु से होने वाले दुःखो के फेरमें पड़े हुए मनुष्यों को भी सुख कहाँ है? परस्पर के मत्सर, अमर्ष, कलह एवं च्यवन आदि दुःखों से देवताओं को भी

लेशमात्र सुख नहीं ; तथापि जल जिस तरह नीची ज़मीन की ओर जाता है; उसी तरह प्राणी, अज्ञानवश, बारम्बार इस संसार की ओर जाते हैं। अतएव चेतनावाले भव्य जीवो! दूरसे सर्प को पोषण करने की तरह तुम अपने मनुष्य-जन्म से संसार को पोषण मत करो। हे विवेकी पुरुषो! इस संसार-निवास से पैदा होने वाले अनेकानेक दुःख और क्लेशोका विचार करके, सब तरह से मोक्ष लाभ की चेष्टा करो। नरक के दुःखों के जैसा गर्भ मे रहने का दुःख संसार की तरह मोक्षमें हरगिज़ नहीं होता। कुम्भीमें से खीचे हुए नारकीय जीवों की पीड़ा जैसी प्रसव-वेदना मोक्षमें कदापि नहीं होती। बाहर और भीतर से लगे हुए तीरोंके तुल्य-पीड़ा की कारण रूप आधि-व्याधि उसमें नहीं होतीं। यमराज की अग्रगामिनी दूती, सब तरहके तेजको चुराने वाली और पराधीनता को पैदा करने वाली वृद्धावस्था भी उसमें नहीं हैं। और नारकीय तिर्य्यञ्च, मनुष्य और देवताओं की तरह बारम्बारके भ्रमण का कारण रूप "मरण" भी मोक्षमें नहीं है। वहाँ तो महा आनन्द, अद्वैत और अव्यय सुख, शाश्वत रूप और केवलज्ञानरूप सूर्य से अखण्डित ज्योति है। निरन्तर ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी तीन उज्ज्वल रत्नोंका पालन करने वाले पुरुष ही मोक्ष लाभ कर सकते हैं। उनमें से जीवादिक तत्त्वों के संक्षेप से अथवा विस्तार से अवबोध को सम्यक् ज्ञान समझना चाहिये। मति, श्रुति अवधि, मनःपर्याय और केवल, इस तरह अन्वय-सहित भेदोंसे वह ज्ञान पॉच तरह के होते हैं। उनमें से अवग्रह आदिक भेदों

वाला एवं बहुग्राही और अबहुग्राही भेदोंवाला तथा जो इन्द्रिय और अनिन्द्रिय से उत्पन्न होता है, उसे "मतिज्ञान" जानना चाहिये। पूर्वअङ्ग, उपांग और प्रकीर्णक सूत्रों—ग्रन्थोंसे अनेक प्रकार के विस्तार को प्राप्त हुआ और स्यात् शब्दसे लांछित "श्रुत-ज्ञान" अनेक प्रकारका होता है। देवता और नारकी जीवों को जो भवसम्बन्ध से उत्पन्न होता है, वह "अवधिज्ञान" कहलाता है। यह क्षय उपशम लक्षणों वाला है, और मनुष्य तिर्य्यञ्च के आश्रयसे उसके छः भेद हैं। मनः पर्य्यायज्ञान ऋजुमती और विपुलमती—इस तरह दो भाँति का हैं। उनमें विपुलमती में विशुद्धि अप्रति-पादत्व से विशेषता है। समस्त पर्य्याय के विषय वाला विश्व लोचन-समान, अनन्त, एक और इन्द्रियों के विषयों से रहित ज्ञान "केवल ज्ञान" कहलाता है।

समकित वर्णन।

शास्त्रोक्त तत्त्वोंमें रुचि—सम्यक् श्रद्धा कहलाती है। वह श्रद्धा समकित स्वभाव और गुरूके उपदेश से प्राप्त होती हैं। इस अनादि अनन्त संसार के भँवरों में पड़े हुए जीवोंको ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी वेदनी और अन्तराय नामके कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति-तीस कोटानुकोटि सागरोपम की है। गोत्र और नामकरण की स्थिति बीस कोटानुकोटि सागरोपम की है। और मोहनीय कर्म की स्थिति सत्तर कोटानुकोटि सागरोपम की है। अनुक्रम से, फलके अनुभव से, वे सब कर्म—पहाड़से निकली हुई नदीमें

लुढ़कता-लुढ़कता पत्थर गोल हो जाता है—उस न्यायकी तरह—स्वयं क्षय हो जाते हैं। इस प्रमाण से क्षय होते हुए कर्म की अनुक्रम से उन्तीस उन्तीस और उनहत्तर कोटानुकोटि सागरोपम की स्थिति क्षय को प्राप्त होती है। और किसी क़दर कम कोटानुकोटि सागरोपमकी स्थिति जब बाक़ी रह जाती है, तब प्राणी यथा प्रवृत्ति-करण से ग्रन्थी देशको प्राप्त होते हैं। राग द्वेषको भेद सके, ऐसे परिणाम को ग्रन्थी कहते हैं। वह लकड़ी की गाँठ की तरह मुश्किल से छेदी जाने योग्य और बहुत ही मज़बूत होती है। हवाके झोके से किनारे पर आई हुई नाव जिस तरह फिर समुद्र में चली जाती है ; उसी तरह रागादिक से प्रेरित किये हुए कितने ही जीव ग्रन्थि या गाँठ को छेदे बिना ही ग्रन्थीके पास आकर वापस चले जाते हैं। कितनेही प्राणी राहमें फिसल कर, नदीके जलकी तरह, किसी प्रकारके परिणाम विशेष से, वहाँ ही बिराम को प्राप्त होते हैं। कोई कोई प्राणी, जिनका भविष्यमें—आगे चलकर कल्याण होने वाला होता है—भला होने वाला होता है, अपूर्व्व करण से, अपना वीर्य प्रकट करके, लम्बी-चौड़ी राहको तय करने वाले मुसाफिर जिस तरह घाटी को लाँघते हैं ; उसी तरह दुर्लङ्घ्य ग्रन्थी—गाँठको तत्काल भेद डालते हैं। कितने ही चार गति वाले प्राणी अनिवृत्तिकरण से अन्तरकरण करके; मिथ्यात्व को विरल कर, अन्तमुहुर्त मात्रमें सम्यक् दर्शन पाते हैं। वे नैसर्गिक—स्वाभाविक सम्यक् श्रद्धान कहलाते हैं। गुरुके उपदेश के अवलम्बन से भव्य प्राणियों को

जो समकित उत्पन्न होता है, वह गुरुके अधिगमसे हुआ समकित कहलाता है।

समकित के औपशमिक सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक—ये पाँच प्रकार या भेद हैं। जिसकी कर्म ग्रन्थि मिटी हुई है, ऐसे प्राणी को जो समकित का लाभ, प्रथम अन्त-र्मुहूर्त्त में होता है, वह औपशमिक समकित कहलाता है। उसी तरह उपशम श्रेणी के योग से जिसका मोह शान्त हुआ हो ऐसे देही-प्राणी को मोह के उपशम से उत्पन्नहो वहभी औपशमिक समकित कहलाता है। सम्यक् भावका त्याग करके मिथ्यात्व के सन्मुख हुए प्राणी को, अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने पर, उत्कर्षसे छः आवली तक और जघन्य से एक समय समकित का परिणाम रहता है, वह सास्वादन समकित कहलाता है। मिथ्यात्व मोहनी का क्षय और उप शम होने से उत्पन्न हुआ—तीसरा क्षयोपशमिक समकित कहलाता है। वह समकित मोहनी के उदय परिणाम वाले प्राणी को होता है।

समकित दर्शन गुणसे रोचक, दीपक और ,कारक—इन नामों से तीन प्रकार का है। उनमें से शास्त्रोक्त तत्वों में—हेतु और उदाहरण के बिना—जो दृढ़ प्रतीति उत्पन्न होती है वह रोचक समकित। जो दूसरों के समकितको प्रदीप्त करे वह दीपक समकित, और जो संयम और तप आदि को उत्पन्न करता है, वह कारक समकित कहलाता है। वह समकित—शम, संवेग, निर्वेद और अनुकम्पा एवं आस्तिक्य—इन पाँच लक्षणों से अच्छी तरह पह-

चाना जाता है। अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय न हो, उसे शम कहते हैं; अथवा सम्यक् प्रकृति से कषायों के परिणाम के देखने को भी शम कहते हैं। कर्मके परिणाम और संसार की असारता को विचारने वाले पुरुष को जो वैराग्य उत्पन्न होता है, उसे संवेग कहते हैं। सवेग वाले पुरुष को संसारमें रहना जेलखानेके समान है; अर्थात् वह संसार को कारागार समझता है और स्वजनों को वन्धन मानता है। जिसके ऐसे विचार होते हैं, उसे निर्वेद कहते हैं। एकेन्द्रिय आदि प्राणियों को संसार में डूबते जो क्लेश होता है, उसे देखकर दिलका पसीजना, उनके दुःखों से दुखी होना और उनके दुःख दूर करने की यथा साध्य चेष्टा करना—अनुकम्पा है, दूसरे तत्वों को सुनने पर भी, अर्हत तत्वमें प्रतिपत्ति रहना—'आस्तिक्य" कहलाता है। इस तरह सम्यक् दर्शन वर्णन किया है। इसकी क्षणमात्र भी प्राप्ति होने से बुद्धि में जो पहले का अज्ञान होता है, उसका पराभव होकर मतिज्ञान की प्राप्ति होती है। और श्रुत अज्ञानका पराभव होकर श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है और विभंग ज्ञानका नाश होकर अवधि ज्ञान की प्राप्ति होती है।

चारित्र वर्णन।

समस्त सावद्य योगके त्याग करने को "चारित्र" कहते हैं। वह अहिंसा प्रभृति के भेद से पाँच तरह का होता है। अहिंसा सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य, और परिग्रह—ये पांचव्रत पाँच पाँच

भावनाओं से युक्त होने से मोक्ष के कारण होते हैं। प्रमाद के योगसे त्रस और स्थावर जीवोंके प्राण नाश न करनेको "अहिंसा" व्रत कहते हैं। प्रिय, हितकारी और सत्य वचन बोलने को "सुनृत" व्रत या सत्यव्रत कहते हैं। और अहितकारी सत्य वचन भी असत्य के समान हैं। अदत्त वस्तु को ग्रहण न करना; यानी विना दी हुई चीज़ न लेना "अस्तेय" व्रत कहलाता है; क्योंकि द्रव्य मनुष्य का वाहरी प्राण है। इसलिये उसको हरण करने वाला—उसे चुराने वाला उसके प्राण हरण करने वाला समझा जाता है। दिव्य और औदारिक शरीर से अब्रह्मचर्य सेवनका—मन, वचन और कायासे, करना, कराना और अनुमोदन करना—इन तीन प्रकारों का त्याग करना "ब्रह्मचर्य" व्रत कहलाता है। उसके अठारह भेद होते हैं। सब पदार्थों के ऊपर से मोह दूर करना "अपरिग्रह" व्रत कहलाता है; क्योंकि मोहसे असत् पदार्थ में भी चित्तका विप्लव होता है। यतिधर्मके व्रती यतीन्द्रोंको,इस तरह सर्वसे चारित्र कहा है और गृहस्थों को देशसे चारित्र कहा है।

समकित मूल पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षा-व्रत—इस तरह गृहस्थों को वारह व्रत कहे हैं। बुद्धिमान् पुरुषों को लँगड़े, लूले, कोढ़ी और कुणित्व आदि हिंसा के फल देखकर निरपराधी त्रस जीवों की हिंसा संकल्प से छोड़ देनी चाहिये। भिनभिनापन, मुखध्वनि रोग, गूँगापन, और मुखरोग—इनको असत्यका फल समझ कर, कन्या अलीक वगैरः पाँच वड़े वड़े असत्य छोड़ने चाहिऐं। कन्या, गाय और जमीन के सम्बन्ध में

झूट बोलना, पराई धरोहर हज़म कर जाना, और झूठी गवाही देना—ये पाँच स्थूल असत्य त्याग देने चाहिऐं। दुर्भाग्य, कासिदपना—दूतपना, दासत्व, अङ्गच्छेदन और दरिद्रता—इनको चोरीके फल समझ कर, स्थूल चोरीका त्याग करना चाहिये। नपुंसकता-नामर्दी और इन्द्रिय छेदनको अब्रह्मचर्यका फल समझ कर, सुबुद्धिमान् पुरुषको अपनी स्त्री में संतोष रखकर पर स्त्री का त्याग करना चाहिये।
असन्तोष, अविश्वास, आरम्भ और दुःख— इन सब को परिग्रह की मूर्च्छा के फल जानकर, परिग्रह का प्रमाण करना चाहिये। दशों दिशाओंमें निर्णय की हुई सीमा का उल्लङ्घन न करना, दिग्विरति नामक पहला गुणव्रत कहलाता है। जिस में शक्ति-पूर्वक भोग उपभोग की संख्या की जाती है, उसे भोगोपभोग प्रमाण नामका दूसरा गुणव्रत कहते हैं। आर्त्त, रौद्र—ये दो अपध्यान, पापकर्म का उपदेश, हिंसक अधिकरण का देना तथा प्रमादाचरण—ये चार तरह के अनर्थ दण्ड कहलाते हैं। शरीर आदि अर्थ दण्ड की शत्रुता से रहनेवाला अनर्थदण्ड का त्याग करे, वह तीसरा गुणव्रत कहलाता है। आर्त्त और रौद्र ध्यान का त्याग करके तथा सावद्य कर्म को छोड़कर मुहूर्त्त; यानी दो घड़ी तक समता धारण करना सामायिक व्रत कहलाता है। दिन और रात-सम्बन्धी दिग्व्रत में परिमाण किया हुआ हो, उसे संक्षेप करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है। चार पर्वके दिन उपवास आदिक तप प्रभृति करना, कुव्यापार त्यागना; यानी

संसार—सम्बन्धी समस्त व्यापार त्यागना, ब्रह्मचर्य्य पालना और दूसरी स्नानादिक क्रियाओं का त्याग करना—पौषध व्रत कहलाता है। अतिथि-मुनि को चार प्रकार का आहार, पात्र, कपड़ा, स्थान या उपाश्रय का दान करना,—अतिथिसंविभाग नामक व्रत कहलाता है। मोक्षकी प्राप्ति के लिये मुनियों और श्रावकों को अच्छी तरह से इन तीन रत्नों की उपासना सदा करनी चाहिये।

प्रभु द्वारा की गई चतुर्विध संघकी स्थापना।

गणधरों की स्थापना।

इस प्रकार देशना—उपदेश सुनकर भरतके पुत्र ऋषभसेन ने प्रभुको नमस्कार कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे स्वामी! कषाय रूपी दावानल से दारुण इस संसार रूपी अरण्य में, आपने नवीन मेघ की तरह अद्वितीय तत्वामृत की वर्षाकी है। हे जगदीश! जिस तरह डूबते हुए को नाव मिलजाती है, प्यासों को पानी की प्याउ मिल जाती है, शीत पीडितों के लिये आग मिल जाती है। धूप से तपे हुओं के लिये छाया मिल जाती है, अँधेरे में डूबे हुएको प्रकाश या रोशनी मिल जाती है, दरिद्री को ख़ज़ाना मिलजाता है, विष—पीड़ितों को अमृत मिल जाता है, रोगी को दवा मिल जाती है, शत्रुसे आक्रान्त लोगों के लिये क़िलेका आश्रय मिल जाता है; उसी तरह संसार से भीत हुओंके लिये आप मिल गये हैं, इसलिये हे दयानिधि!

रक्षाकरो! रक्षाकरो! पिता, भाई, भतीजे एवं अन्य स्वजन—नातेदार, जो इस संसार-भ्रमण के एक हेतु रूप हैं, और इसी से अहितकारी या अनिष्ट करने वाले हो रहे हैं, उनकी क्या ज़रूरत है? हे जगत्शरण्य! हे संसार-सागर से तारनेवाले—पार लगाने वाले! मैंने तो आपका आश्रय ले लिया है, आपकी शरण में आगया हूँ। इसलिये मुझे दीक्षा दीजिये और मुझ पर प्रसन्न होइये। इस प्रकार कहकर ऋषभसेन ने भरत के अन्य पाँचसौ पुत्र और सात सौ पौत्रों के साथ व्रत ग्रहण किया। सुर—असुरों द्वारा की हुई प्रभुके केवल ज्ञान की महिमा देखकर, भरतके पुत्र मरीचि ने भी व्रत ग्रहण किया। भरत के आज्ञा देने से ब्राह्मी ने भी व्रत ग्रहण किया; क्योंकि लघुकर्म करने वाले जीवों को बहुत करके गुरुका उपदेश साक्षी मात्र ही है। बाहुबलि से मुक्त की गई सुन्दरी भी व्रत ग्रहण करने की आकांक्षा रखती थी; पर जब भरत ने निषेध किया—व्रत ग्रहण करने की मनाही की, तब वह पहली श्राविका हुई। भरतने प्रभुके समीप श्रावकपना अंगीकार किया; यानी उसने श्रावक होनेका व्रत अङ्गीकार किया; क्योंकि भोग कर्मोके भोगे बिना व्रत या चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य तिर्यञ्च, और देवताओं की मण्डलियों में से किसी ने व्रत ग्रहण किया, किसीने श्रावकपना अङ्गीकार किया, और किसीने समकित धारण किया। पहले के राजतपस्वियों में से कच्छ और महाकच्छके सिवा और सभीने स्वामीके पास आकर फिर खुशी से दीक्षा ग्रहणकी। ऋषभसेन—पुण्डरीक प्रभृति साधुओं, ब्राह्मी

वगैरः साध्वियों, भरत आदि श्रावकों और सुन्दरी प्रभृति श्राविकाओं से उस समय चार तरह के संघकी व्यवस्था आरम्भ हुई जो धर्मके एक श्रेष्ठ ग्रहके रूप में आजतक चली जाती है। उस समय प्रभुने गणधर नाम कर्मवाले ऋषभसेन आदि चौरासी सद्बुद्धिमान् साधुओं को, जिसमें सारे शास्त्र समाये हुए हैं, ऐसी उत्पात, विगम और ध्रौव्य नामकी त्रिपदी का उपदेश दिया। उन्हों ने उस त्रिपदी के अनुसार अनुक्रम से चतुर्दश पूर्व और द्वादशाङ्गी रची। इसके बाद देवताओं से घिरा हुआ सुरपति-इन्द्र, दिव्यचूर्ण से भरा हुआ एक थाल लेकर, प्रभुके चरणोंके पास आकर खड़ा हुआ; तब प्रभुने खड़े हो कर अनुक्रम से उनके ऊपर चूर्णक्षेप कर—चूर्ण फैंक कर, सूत्र से, अर्थ से, सूत्रार्थ से द्रव्य से, गुण से, पर्य्याय से, और नय से उन को अनुयोगकी अनुज्ञा दी तथा गुणकी अनुमति भी दी। इसके बाद देवता, मनुष्य और उनकी स्त्रियोंने, दुंदुभि की ध्वनिके साथ, उन पर चारों ओर से वासक्षेप किया। मेघके जलको ग्रहण करने वाले वृक्ष की तरह प्रभु की वाणी को ग्रहण करने वाले सब गणधर हाथ जोड़े खड़े रहे। तब प्रभुने पहले की तरह पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठ कर, फिर शिक्षापूर्ण धर्म-देशना या धर्मोपदेश दिया। उस समय प्रभु रूपी समुद्र में से उत्पन्न हुई देशना रूपी उद्दामवेलाकी मर्य्यादा के जैसी पहली पौरुषी पूरी हुई।

वलिउत्क्षेप।

उस समय अखण्ड, तुष-रहित और उज्वल शाल से बनाया हुआ चार प्रस्थ जितना वलि थाल में रखकर, समवसरणके पूर्व द्वार से, अन्दर लाया गया ; अर्थात् उस समय विना टूटे हुए साफ और सफेद चाँवलों की चार प्रस्थ प्रमाण बलि थाल में रख कर, समवसरण के पूर्व दरवाज़े से भीतर लाई गई। देवता ओंने उसमें सुगन्धी डालकर उसे दूनी सुगन्धित कर दिया था, प्रधान पुरुष उसे उठाकर लाये थे और भरतेश्वरने उसे बनवाया था। उसके आगे आगे वजने वाली दुंदुभि से दशों दिशाएं गूंज रही थीं। उसके मंगल गीत गाती गाती स्त्रियों चल रही थीं। मानो प्रभुके प्रभाव से उत्पन्न हुई पुण्यराशि हो, इस तरह वह पौर लोगों से चारों ओर से घिर रहा था। मानों वोने के लिए कल्याण रूपी धान्यका वीजहो, इस तरह वह बलि प्रभु की प्रदक्षिणा कराकर उछाल दिया गया। जिस तरह मेघ के जलको चातक—पपहिया ग्रहण करता है, उसी तरह आकाश से गिरनेवाले उस बलि के आधे भाग को आकाश में ही देवता ओं ने लपक लिया। जो भाग पृथ्वी पर गिरा, उसका आधा भरत राजाने लेलिया और जो बाक़ी रहा उसे राजाके गोती भाइयोंने आपस में बाँट लिया। उस वलिका ऐसा प्रभाव है, कि उस से पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और छै महीने तक नये रोग पैदा नहीं होते। इसके बाद उत्तर के दरवाज़ेकी राहसे प्रभु बाहर निकले। जिस तरह पद्म खण्ड के फिरने से भौंरा फिरने

लगता है ; उसी तरह सब इन्द्र प्रभुके पीछे—पीछे चलने लगे। वहाँ से चलकर प्रभु सोने के कोट के बीच में, ईशान कोन के देवछन्दोमें विश्राम लेने या आराम करने को बैठे। उस समय गणधरों में प्रधान ऋषभसेन ने भगवान् के पाद पीठ पर बैठकर धर्म-देशना या धर्मोपदेश देना आरम्भ किया ; क्योंकि स्वामी के खेद में विनोद, शिष्योंका गुणदीपन और दोनों ओर से प्रतीति ये गणधर की देशनाके गुण हैं। ज्योंही गणधर ने देशना समाप्त की, कि सब लोग प्रभुको प्रणाम कर करके अपने अपने घरों को गये।

इस प्रकार तीर्थ पैदा होते ही गोमुख नामका एक यक्ष प्रभुके पास रहनेवाला अधिष्ठायक हुआ। उसके दाहिनी तरफ़ के दोनों हाथों में से एक वरदान चिह्नवाला था और एकमें उत्तम अक्षमाला सुशोभित थी। उसके बायीं तरफ के दोनों हाथों में बिजौरा और पाश थे। उसके शरीरका रंग सोनेका सा था और हाथी उसका वाहन था। ठीक इसी तरह प्रभुके तीर्थ में उनके पास रहनेवाली एक प्रतिचक्रा—यक्षेश्वरी नामकी शासनदेवी हुई। उसकी कान्ति सुवर्णके जैसी थी और गरुड़ इसका वाहन था, उसकी दाहिनी ओर की भुजाओं में वरप्रदचिह्न, बाण, चक्र, और पाश थे और बायीं ओर की भुजाओं में धनुष, वज्र, चक्र और अङ्कुश थे।

यक्ष और यक्षिणी की स्थापना।

इसके बाद नक्षत्रों—सितारों से घिरे हुए चन्द्रमाकी तरह

महर्षियों से घिरे हुए प्रभु वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये; अर्थात् किसी दूसरी जगह चले गये। उस समय जब प्रभु राह में चलते थे, भक्ति से वृक्ष नमते थे—झुकते थे, काँटे नीचा मुख करते थे और पक्षी परिक्रमा देते थे। विहार करने वाले प्रभुको ऋतु, इन्द्रियार्थ और वायु अनुकूल होते थे। उनके पास कम-से कम एक कोटि देव रहते थे। मानो भवान्तर-जन्मान्तर में उत्पन्न हुए कर्मों को नाश करते देख, डर गये हों, इस तरह जगदीशके बाल, डाढ़ी, नाखुन नहीं बढ़ते थे। प्रभु जहाँ जाते थे, वहाँ वैर, महामरी, मरी, अकाल-दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, स्वचक्र और परचक्र से होनेवाला भय-ये नहीं उत्पन्न होते थे। इस प्रकार जगत् को विस्मित करने वाले अतिशयों से युक्त; संसार में भ्रमण करनेवाले जीवों पर अनुग्रह करने की बुद्धिवाले नाभेय—नाभिनन्दन भगवान् पृथ्वी पर वायुकी तरह बेरोक टोकके—बेखटके हो कर विहार करने लगे।
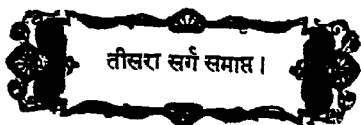
अब इधर, अतिथि की तरह, चक्र के लिये उत्कण्ठित हुए भरत राजा विनिता नगरीके मध्य मार्ग से होकर आयुधागार में आये; अर्थात् राजा शहर के बीच मे होकर अपने अस्त्रागार या सिलहखाने में आये। वहाँ पहुँच कर चक्रको देखते ही राजाने उसे प्रणाम किया ; क्योंकि क्षत्रिय लोग अस्त्रको प्रत्यक्ष अधिदेव मानते हैं। भरत ने मोरछत्र लेकर चक्रको पोंछा, यद्यपि ऐसे सुन्दर और अनुपम चक्ररत्नके ऊपर धूल नहीं जमती, तथापि भक्तोंका कर्त्तव्य है, फर्ज़ है, कि अपनी ड्यूटी पूरी करें। इसके बाद पूर्व-समुद्र जिस तरह उदय होते हुए सूर्यको स्नान कराता है; उसी तरह महाराज ने पवित्र जलसे चक्रको स्नान कराया। मुख्य गजपति—गजराजके पिछले भागकी तरह, उसके ऊपर गोशीर्ष चन्दन का "पूज्य" सूचक तिलक किया। इसके पीछे साक्षात् जय लक्ष्मी की तरह पुष्प, गन्ध, वासचूर्ण, वस्त्र और आभूषणों से उसकी पूजाकी, उसके आगे रूपे के चाँवलों से अष्ट मंगल रचा या मांडा। और उन आठ जुदे-जुदे मंगलों से आठ दिशाओं की लक्ष्मी घेरली। उसके पास पचरंगे फूलोंका उपहार रखकर पृथ्वी विचित्र रंग की बनादी। और शत्रुओं के यशकी तरह प्रयत्न करके चन्दन

कपूर मय उत्तम धूप जलाई। इसके बाद चक्रधारी महाराज भ-
रतने चक्रकी तीन प्रदक्षिणा की, और गुरु की तरह अवग्रह से
सात आठ कदम पीछे हट गये। जिस तरह अपने तईं कोई
स्नेही—मुहब्बत से चाहने वाला नमस्कार करता है, उस तरह
महाराज ने बायाँ घुटना नीचे दबाया, सुकेड़ कर और दाहने से
पृथ्वी पर टिक कर चक्र को नमस्कार किया। शेषमें मूर्त्तिमान
हर्ष ही हो, इसतरह पृथ्वीपतिने वहाँ ठहरकर चक्रका अष्टान्हिका
उत्सव किया। उनके अलावः शहरके धनीमानी लोगोंने भी चक्र
की पूजा का उत्सव किया; क्योंकि पूजित या माननीय लोग
जिसकी पूजा करते हैं, उसे दूसरा कौन नहीं पूजता?

भरतद्वारा कीगई चक्र की पूजा।

इसके बाद, उस चक्रके दिग्विजय रूप उपयोग को ग्रहण
करने की इच्छा वाले भरत महाराज ने मंगल स्नानके लिए स्नाना-
गार या स्नान-घरमें प्रवेश किया। गहने कपड़े उतार कर और
स्नान के समय कपड़े पहन कर, महाराज पूरबकी ओर मुंह करके
स्नान सिंहासन पर बैठे। ठीक इसी समय, मर्दन करने योग्य
और न करने योग्य—मालिश करने लायक और न करने लायक
स्थानोंको जाननेवाले, मर्दनकला निपुण संवाहक पुरुषोंने, देववृक्ष
के पुष्प-मकरन्द के जैसी सुगन्धी वाला सहस्रपाक प्रमुख तैल म-
हाराजके लगाया। मांस, हड्डी, चमड़ा और रोमोंको सुख देने वाली—
चार प्रकारकी संवाहनासे और मृदुमध्य और दृढ़—तीन प्रकारके

हस्तलाघव से राजाको सब तरहसे संवाहन किया। इसके पीछे,आदर्श की तरह, अम्लाव कान्तिके पात्ररूप उस राजा के दिव्य चूर्णका उबटन मला। उस समय ऊँची डण्डीवाले नये कमलकी बावड़ी कीतरह शोभायमान् कितनी ही स्त्रियाँ सोनेके जल—कलश लेकर खड़ी थीं। कितनी ही स्त्रियां मानो जल, धन रूप होकर कलशको आधार मय हुआ हो इस तरह दिखाती हुई चाँदीके कलश लेकर खड़ी थीं; कितनी ही स्त्रियाँ अपने सुन्दर हाथोंमें लीलामय सुन्दर नील कमल की भ्रान्ति करने वाले इन्द्रनीलमणि के घड़े लिये हुए थी; और कितनी ही सुभ्रु बालाओं—कितनी ही सुन्दरी षोडशी रमणियोंने अपने नख—रत्नकी कान्ति रूपी जलसे भी अधिक शोभावाले दिव्य रत्नमय घड़े ले रखे थे। जिस तरह देवता जिनेन्द्र भगवान् को स्नान कराते हैं; उसी तरह इन बालाओं ने अनुक्रम से सुगन्धित और पवित्र जल धाराओं से धरणी पति को स्नान कराया। इसके बाद राजाने दिव्य विलेपन लगवाया और दिशाओंके आभाष-जैसे उज्ज्वल वस्त्र पहने। फिर मानो यश रूपी नवीन अङ्कुर हो, ऐसा मंगल मय चन्दन का तिलक उसने ललाट पर लगाया। जिस तरह आकाश मार्ग बड़े बड़े तारो के समूह को धारण करता है, उसी तरह यशपुञ्जके समान उज्ज्वल मोतियों के अलंकार—गहने पहने। जिस तरह कलशसे महल शोभा देता है, उसी तरह अपनी किरणोंसे सूर्य को लजाने वाले मुकुट से वह सुशोभित हुआ। बारांगनाओं के कर कमलों से बारम्बार उठने वाले कानों के कर्णफूल जैसे दो चँवरोंसे वह

शोभित होने लगा। जिस तरह लक्ष्मी के घररूप कमलों को धारण करने वाले पद्म—सरोवर या कमलमय सरोवर से हिमालय पर्वत शोभायमान लगता है; उसी तरह सोनेके कलश धारण करने वाले सफेद छत्रसे वह शोभने लगा। मानो सदा पास रहने वाले प्रतिहारी—अर्दली हों, इस तरह सोलह हज़ार यक्ष भक्त होकर उसे घेर कर खड़े हो गये। पीछे इन्द्र जिस तरह ऐरावत पर चढ़ता है; उसी तरह ऊँचे कुम्भ स्थल के शिखर से दिशामुख को ढकने वाले रत्नकुञ्जर पर वह सवार हुआ। तब उत्कट मद की धाराओंसे मानों दूसरा मेघ हो, उस तरह उस जातिवान हाथीने बड़े ज़ोर से गर्जना की, मानो आकाश को पल्लवित करता हो, इस तरह हाथ ऊँचे करके वन्दगीण एक साथ "जय जय" शब्द करने लगे। जिस तरह वाचाल गवैया दूसरी गाने वालियो से गाना कराता है, उस तरह ऊँचा नाद करने वाला नगाड़ा दिशाओं से नाद कराने लगा, और सब सैनिकों को बुलाने में दूत जैसे अन्य श्रेष्ठ मंगल मय बाजे भी बजने लगे। मानो धातु समेत हो, ऐसे सिन्दूर को धारण करने वाले हाथियोंसे, अनेक रुपको धारण करने वाले सूरज के घोड़ोका धोखा करने वाले अनेक घोड़ोंसे और अपने मनोरथ जैसे विशाल रथोंसे और मानो वशीभूत किये हुए सिंह हों—ऐसे पराक्रमी पैदलों से अलंकृत होकर महाराजा भरतेश्वर मानो अपनी सेना के चलने से उड़ी हुई धूल से दिशाओं को वस्त्र पहनाते हुए पूरब दिशाकी तरफ चलदिये।

भरतचक्री की दिग्विजय के लिये तैयारी।

उस समय आकाश में फिरते हुए सूर्य बिम्ब की तरह, हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित चक्र रत्न सेना के आगे चला। दण्डरत्न को धारण करने वाला सुषेण नामक सेनापतिरत्न अश्वरत्न के ऊपर चढ़कर चक्रकी तरह आगे आगे चला। मानो सारी शान्ति कराने वाली विधियों में देहधारी शान्ति मन्त्र हो, इस तरह पुरोहितरत्न राजाके साथ चला। जङ्गम अन्तशाला-जैसा, फौजके लिए हर मुकाम पर दिव्य भोजन कराने में समर्थ गृहपतिरत्न, विश्वकर्मा की तरह, शीघ्रही पड़ाव आदि करने में समर्थ, वर्द्धकी रत्न और चक्रवर्ती के सब स्कन्धावारों पड़ावों के प्रमाण और विस्तार की शक्ति वाला होने में अपूर्व चर्मरत्न और छत्ररत्न महाराजा के साथ चले। अपनी कान्ति से सूरज और चन्द्रमा की तरह अँधेरे को नाश कर सकने वाले मणि और कांकिणी नामक दोरत्न भी चलने लगे और सुर असुरोंके सारसे बनाया गया हो, ऐसा प्रकाशमान् खड्गरत्न भी नरपति के साथ चलने लगा।

गंगा तटपर पड़ाव।

जिस समय चक्रवर्त्ती भरतेश्वर प्रतिहार की तरह चक्रका अनुसरण करते हुए राहमें चले, उस समय ज्योतिषियोंकी तरह अनुकुल हवा और शकुनों ने सब तरह से उनको दिग्विजय की सूचना दी। किसान जिस तरह ऊँची नीची ज़मीन को हलसे

हमवार—चौरस करते हैं, उसी तरह सेनाके आगे आगे चलने वाला सुषेण सेनापति दण्डरत्न से विषम या नाबराबर रास्तों को समान करता चलता था। सेनाके चलने से उड़ी हुई धूलिके कारण दुर्दिन बना हुआ आकाश रथ और हाथियों के ऊपर की पताका रूप बगलों से शोभित हो रहा था। चक्रवर्त्ती की सेना जिसका अन्त दिखाई नहीं देता था, अस्खलित गतिवाली गङ्गा दूसरी गङ्गा नदी सी मालुम होती थी। दिग्विजय उत्सव के लिये रथ चित्कारों से, घोड़े हिनहिनाने से और हाथी चिङ्घाड़ोंसे परस्पर शीघ्रता करते थे। सेनाके चलने से धूल उड़ती थी, तो भी सवारों के भाले उसके भीतर से चमकते थे, इससे वे ढकी हुई सूर्य की किरणों की हँसी करते हों ऐसा मालूम होता था। सामानिक देवों से घिरे हुए इन्द्रकी तरह मुकुटधारी भक्ति भावपूर्ण राजाओंसे घिरा हुआ राजकुञर भरत बीचमें सुशोभित था। पहले दिन चक्र एक योजन या चारकोस चलकर खड़ा होगया। उस दिनसे उस प्रयाण के अनुमान से ही योजन का माप आरम्भ हुआ। हमेशा एक एक योजन के मान से प्रयाण करते हुए चार चार कोस रोज.चलते हुए और पड़ाव करते हुए महाराजा भरत कितनेही दिनोंमे गङ्गा नदीके दक्षिणी किनारे पर आ पहुँचे। महाराजा भरतने, गङ्गा नदीकी विशाल भूमिको भी, अपनी सेनाके जुदे जुदे पड़ावों से संकुचित करके, विश्राम किया। उस समय गङ्गाके किनारे की जमीन पर, हाथियोंके झरते हुए मदसे, वर्षा काल की तरह कीचड़ होगई। जिस तरह मेघ समुद्र से जल

ग्रहण करते हैं, उसी तरह उत्तमोत्तम गजराज गङ्गा के निर्मल प्रवाह से इच्छानुसार जल ग्रहण करने लगे। अत्यन्त चपलतासे बारम्बार कूदने वाले घोड़े गङ्गा किनारे पर तरंगों का भ्रम उत्पन्न करने लगे और बड़ी मिहनत से गङ्गा के भीतर घुसे हुए हाथी, घोड़े, भैंसे, और सांड ऐसा भ्रम उत्पन्न करने लगे मानों उस उत्तम नदी में नये नये प्रकारके मगर मच्छ प्रभृति जल जीव हों। अपने किनारे पर डेरा डालने वाले राजाके अनुकूल हो, इस तरह गङ्गा नदी अपनी उछलने वाली लहरों की बूंदों या छींटों से राजा की फौज की थकान को जल्दी जल्दी दूर करने लगी। महाराज की जबर्दस्त फौज या बड़ी भारी सेना से सेवित हुई गङ्गा नदी शत्रुओंकी कीर्ति की तरह कृश होने लगी अर्थात् महाराज की सेना इतनी बड़ी थी कि उसके गङ्गाके किनारे ठहरने और उसका जल काममें लाने से गङ्गा क्षीणकाय होने लगी—उसका जल कम होने लगा। भागीरथी के तीर पर उगे हुए देवदारु के वृक्ष सेना के गजपतियों के लिये प्रयत्नसिद्ध बन्धनस्थान होगये, यानी गङ्गा तट पर लगे हुए देवदारु के वृक्ष, बिना प्रयत्न के, हाथियों के बाँधने के खूटों का काम देने लगे।

हाथियोंके महावत हाथियोंके लिए पीपल, सल्लकी, कर्णिकार और गूलर के पत्ते कुल्हाड़ियों से काटते थे। पंक्तिबद्ध-कतारों में खड़े हुए हज़ारों घोड़े अपने ऊँचे ऊँचे कर्णपल्लवों से तोरण से बनाते हुए शोभायमान थे; अर्थात् हज़ारों घोड़े जो कतार बाँधे खड़े थे, उनके ऊंचे ऊंचे कानों के देखने से तोरणों का धोखा होता था।

अश्वपाल या घोड़ों की खबरगिरी करने वाले सईस, बन्धुओं की तरह, मोंठ,मूँग, और चने वगैर; लेकर बड़ी तेजी से घोड़ोंके सामने रखते थे। महाराजकी छावनीमें विनिता नगरी की तरह क्षण भर में ही, चौक, तिराहे और दूकानों की पंक्तियाँ लग गई। गुप्त, बड़े बड़े और स्थूल तम्बुओं में सुखसे रहने वाले सेनाके लोग अपने पहलेके महलों की भी याद न करते थे। खेजड़ी, बेर और बबूलके काँटे दार वृक्षों को खाने वाले ऊँट सेनाके कण्टक शोधन का कमा करते से जान पड़ते थे। स्वामी के सामने सेवकों की तरह, खच्चर, जाह्नवी के रेतीले किनारे पर, अपनी चाल चलायमान करते हुए लोटते थे। कोई लकड़ी लाता था, कोई नदी का जल लाता था, कोई दूब की भारी लाता था, कोई साग सब्जी और फल प्रभृति लाता था, कोई चूल्हा खोदता था, कोई शाल खाँडता था, कोई आग जलाता था, कोई भात राँधता था, कोई घरकी तरह एकान्त में निर्मल जल से स्नान करता था, कोई स्नान करके सुगन्धित धूपसे शरीर को धूपित करता था। कोई पहले पैदल प्यादों को खिलाकर, पीछे स्वयं इच्छा मत भोजन करता था। कोई स्त्रियों सहित अपने अङ्ग चन्दनादिका विलेपन करता था। उस चक्रवर्ती राजाकी छावनी में सारे जरूरी सामान लीलासे अनायासही मिल सकते थे, अतः कोई भी आदमी अपने तई कटक में आया हुआ न समझता था, अर्थात् वहाँ जरुरियातकी सभी चीज़ें बड़ी ही आसानी से मिल जाती थीं। अतः घरकी तरह ही आराम था, इससे कोई यह न समझता था कि, हम घर छोड़ कर सेनाके साथ आये हैं।

मागधतीर्थ पर भरतचक्री का आना।

वहाँ एक दिन रात बिताकर—२४ घण्टे ठहर कर—सवेरे ही कूच किया गया। उस दिन भी एक योजन चार कोस चलने वाले चक्र के पीछे चक्रवर्त्ती भी उतनाही चले। इस तरह सदा चार कोस रोज चलने वाले चक्रवर्ती महाराज मागध तीर्थ में आ पहुँचे। वहाँ पूर्व समुद्र के किनारे महाराज ने ३६ कोसकी चौड़ाई और ४८ की लम्बाई में सेनाका पड़ाव किया; यानी वह सेना १७२८ कोस या ३४५६ वर्गमील भूमिमें ठहरी। वर्द्धकिरत्न ने वहाँ सारी सेना के लिये आवास—स्थान बनाये। और धर्म रूपी हाथी की शालारूप पौषधशाला भी बनाई। जिस तरह सिंह पर्वत से उतरता है; उसी तरह महाराजा भरत उस पौषध शालामें अनुष्ठान करने की इच्छा से हाथी से उतरे। संयम रूपी साम्राज्य लक्ष्मी के सिंहासन—जैसा दूबका नूतन संथारा भी चक्रवत्ती ने वहाँ बिछाया। हृदय में मागध तीर्थ कुमार देवको धारण करके, अर्थसिद्धि का आदि द्वार रूप अष्टमभक्त, यानी अष्टमका तप किया। पीछे निर्मल वस्त्र पहन, फूलों की माला और विलेपन को त्याग कर, शस्त्र को छोड़कर, पुण्यको पोषण करने के लिये, औषध के समान पौषधव्रत ग्रहण किया। अव्यय पद में जिस तरह सिद्धि निवास करती है, उसी तरह उस दूबके संथारे पर पौषधव्रती महाराज ने जागते हुए पर क्रिया रहित हो कर निवास किया। शरद् ऋतु के मेघोंमें जिस तरह सूर्य निकलता

है, उसी तरह या वैसी ही कान्तिके साथ महाराजा पौषधागार में से निकले। पीछे सर्व अर्थ को प्राप्त हुए राजाने स्नान करके बलिविधान किया ; क्योंकि यथार्थ विधि को जानने वाले पुरुष विधि को नहीं भूलते।

मागध तीर्थ के अधिपति देवको साधन करने का यत्न।

इसके बाद पवन के जैसे वेग वाले और सिंहके समान धैर्य धारी घोड़ोंके रथमें उत्तम रथी भरतराय सवार हुए। मानों चलता हुआ महल हो, इस तरह उस रथके उपर ऊँची पताका वाला ध्वजस्तम्भ था। शस्त्रागार की तरह अनेक श्रेणियों से वह विभूषित था और मानो चारों दिशाओं की विजय लक्ष्मी के बुलाने के लिये रखी हों, ऐसी टन टन करने वाली चार घन्टियाँ उस रथके साथ बँधी हुई थीं। शीघ्र ही इन्द्र के सारथी मातलि की तरह राजा के भावको समझने वाले सारथी ने रास हाथोंमें लेकर घोड़े हाँके। महा हस्ती रूपी गिरिवाला, बड़े बड़े शकट रूपी मकर समुह वाला, चपल अश्व रूपी कल्लोल वाला, विचित्र शस्त्र रूपी भयङ्कर सर्पो वाला, पृथ्वी की उछलती हुई रज रूपी वेला वाला और रथों के निर्घोष रूपी गरजना वाला—दूसरे समुद्र के जैसा वह राजा समुद्र के किनारे पर आया। (यहाँ रूपक बाँधा है, महाराजा भरत की तुलना सुमुद्रसे की है, समुद्र में पर्वत होते हैं, महाराज के पास पर्वत समान हाथी थे, समुद्र में बड़े

बड़े ग्राह और मगर मच्छ होते हैं, राजाके पास मगर मच्छ जैसे शकट या गाडे थे, समुद्रमें कल्लोलें होती हैं, राजा के पास कल्लोलों के बजाय चपल घोड़े थे, समुद्र में सर्प रहते हैं, उनके बजाय राजाके यहाँ विचित्र विचित्र अस्त्र शस्त्र थे। समुद्र में किनारा होता है, राजाकी सेनाके चलने से जो धूल उड़ती थी, वही वेला या किनारा था, समुद्र गर्जना करता है, महाराजा के रथ गर्जना करते थे – अतः महाराजा दूसरे समुद्र के समान थे, फिर मच्छों की आवाज़ों से जिसकी गर्जना बढ़ गई है, ऐसे समुद्रमें रथकी धुरी तक रथको प्रविष्ट किया। पीछे एक हाथ धनुषके मध्य भाग में रख, एक हाथ प्रत्यञ्चा के अन्त में रख, प्रत्यञ्चा को चढ़ाकर पञ्चमीके चन्द्रमाके आकार धनुष को बनाया, और अपने हाथसे धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचकर, मानों धनुर्वेद का आदि ओंकार हो—इस तरह ऊँची आवाजसे टंकार किया। पीछे पाताल द्वार में से निकलते हुए नागके जैसा अपने नामसे अङ्कित हुआ एक वाण तरकस में से निकाला। सिंहके कर्ण जैसी मुट्ठी से, पङ्खके अगले भागसे उसे पकड़ कर, शत्रुओं में वज्रदण्डके समान उस वाण को प्रत्यञ्चाके साथ जोड़ दिया! सोने के कर्णफूल रूप पद्म नाल की तुलना करने वाला वह सुवर्ण मय वाण चक्रवर्त्तीने कानों तक खींचा। महाराज के नख रत्नोंसे प्रसार पाती हुई किरणों से वह वाण मानों अपने सहोदरों से घिरा हो इस तरह शोभायमान था। खींचे हुए धनुष के अन्तिम भागमें लगा हुआ वह प्रदीप्त वाण, मौत के खुले हुए मुँह के भीतर चञ्चल जीभकी लीला को धारण करता था

यानी ऐसा जान पड़ता था गोया मौत मुँह खोलकर अपनी चञ्चल जीभ लपलपा रही हो। उस धनुषके घेरे में से दीखने वाले लोकपाल महाराज भरत, मण्डल में रहने वाले सूर्य की तरह, महा भयङ्कर मालूम होते थे। 'उस समय यह राजा मुझे स्थान से चलाय मान करेगा; अथवा मेरा निग्रह करेगा' ऐसा समझ कर लवण स-समुद्र क्षुभित होने लगा। फिर पृथ्वी पतिने वाहर, बीचमें, मुख मे और पंख पर नाग कुमार, असुर कुमार और सुवर्ण कुमारादिक देवताओं से अधिष्ठित किये हुए दूतकी तरह आज्ञाकारी और शिक्षाअक्षर से भयङ्कर उस वाण को मागध तीर्थके अधिपति पर छोड़ा। उत्कट पङ्खोंके सन सनाहट से साकाशको गुञ्जाता हुआ वह वाण तत्काल गरुड़ के जैसे वेगसे चला। मेघसे जिस तरह विजली, आकाश से जिस तरह उल्काग्नि, अग्नि से जिस तरह तिनक, तपस्वीसे जिस तरह तेजोलेश्या, सूर्यकान्त मणि से जिस तरह अग्नि और इन्द्र की भुजासे छुटकर जिस तरह वज्र शोभा पाता। उसी तरह राजाके धनुषसे निकला हुआ वह वाण शोभा पाने लगा, क्षण भरमें वारह योजन—४८ कोस उलाँघ कर वह वाण, हृदयके भीतर शल्य के समान, मागधपति की सभा मे जा गिरा। जिस तरह लाठी या दण्डे की चोट लगने से सर्प क्रुद्ध होता है, उसी तरह वाण के गिरने से मागधपति क्रुद्ध हुआ। भयङ्कर धनुष की तरह उसकी दोनों भौंएं चढकर गोल होगईं, जलती हुई आग की समान उसके नेत्र लाल होगये। धोंकनी की तरह उसकी नाक फूलने लगी, ओर तक्षक सर्पका छोटा भाई हो, इस तरह वह

अधर दल-होठोंको फड़काने लगा। आकाश में धूमकेतुके समान ललाटमें रेखाओं को चढा, बाज़ीगर जिस तरह साँप को पकड़ता है, उसी तरह अपने दाहिने हाथसे आयुध को ग्रहण कर, बायें हाथ से, शत्रुके गाल की तरह, आसन पर ताड़न कर, विषज्वाला जैसी वाणी से वह बोला।

मागधतीर्थपति का कोप।

अप्रर्थित वस्तु की प्रार्थना करने वाले अविचारी विवेक-शून्य और अपने तईं बीर मानने वाले किस कुबुद्धि पुरुष ने मेरी सभामें यह बाण फेंका है? ऐसा कौन पुरुष है, जो ऐरावत हाथी के दाँत तोड़ कर अपने कानों का गहना बनाना चाहता है? ऐसा कौन पुरुष है जो, गरुड़ के पङ्खों का मुकुट बनाना चाहता है? शेष नाग के मस्तकके ऊपर की मणिमाला को ग्रहण करने की कौन आशा करता है? कौन पुरुष है, जो सूर्यके घोड़ों को हरने की इच्छा करता है? ऐसे पुरुष के प्राणो को मैं उसी तरह हरण करता हूँ, जिस तरह गरुड़ सर्पके प्राणोंको हरण करता है।" यह कहता हुआ मागध पति बड़े ज़ोर से उठकर खड़ा हो गया और बिलमें से सर्प की तरह म्यानसे तलवार खींची और आकाश में धूमकेतु का भ्रम करने वाली तलवार को कम्पाने लगा। समुद्र बेलाके समान उसका सारा दुर्वार परिवार भी एक दम :कोपटोप सहित तत्काल खड़ा होगया। कोई अपने खड्गों से आकाशको मानो कृष्ण विद्युतमय करते हों, इस तरह करने लगे। कोई

अपने उज्ज्वल वसुनन्द नामक आयुध से मानों अनेक चन्द्र वाला हो—इस तरह करने लगा। कोई मृत्युकी दन्त—पंक्तिसे बनाए गये हों ऐसे अपने तीक्ष्ण भालोंको चारो ओर उछालने लगे। कोई अग्निकी जीभ जैसी फरसियों को फेरने लगे ; कोई राहुके समान भयङ्कर पर्यन्त भाग वाले मुद्गर फेरने लगे। कोई वज्रकी उत्कट धार जैसे त्रिशूल को ग्रहण करने लगे; [और कोई यमराज के दण्ड जैसे प्रचण्ड दण्ड को ऊँचा करने लगे। कितने ही शत्रुको विस्फोट करने में कारणरूप अपने भुज दण्डों को अस्फोटन करने लगे। कितने ही मेघनाद जैसे उर्जित सिंहनाद करने लगे; कितने ही 'मारो, मारो' इस तरह कहने लगे ; कितने ही 'पकड़ो, पकड़ो' इस तरह कहने लगे। कितने ही 'खड़े रहो, खड़े रहो' और कितने ही 'चलो चलो' इस तरह कहने लगे। मागध पतिका सारा परिवार इस तरह विचित्र कोपकी चेष्टा करने लगा। इसके बाद प्रधान—मन्त्रीने आकर बाण को अच्छी तरह देखा। इतने में उसे उसके ऊपर मानो दिव्य मन्त्राक्षर हों ऐसे उदार और बड़े सारवाले नीचे के मुताबिक अक्षर दीखे:—

"साक्षात् सुर असुर और नरों के ईश्वर ऋषभ स्वामी के पुत्र भरत चक्रवर्ती तुम्हे ऐसा आदेश करते हैं, कि यदि राज्य और जीवन की कामना हो तो हमें अपना सर्वस्व देकर हमारी सेवकाई करो॥"

इसका खुलासा यह है कि, उस तीर पर यह लिखा हुआ था

कि देवता, राक्षस और मनुष्यो के साक्षात् ईश्वर ऋषभ भगवान हैं। उन्हीं के पुत्र महाराज भरत चक्रवर्ती आपको यह हुक्म देते हैं, कि अगर आप अपने राज्य और जानमाल की ख़ैरियत चाहते हो, तो अपना सर्वस्व हमारी भेंट करके हमारी टहल बन्दगी करो। अगर आप इस आज्ञा को न मानोगे—हुक्म अदूली करोगे, तो आपका राज्य छीन लिया जायगा और आपका जीवन समाप्त कर दिया जायगा।

मागधतीर्थपतिका सेवक होना।

ऐसे अक्षरों को देखकर मंत्री ने अवधिज्ञान से सारा मामला समझ लिया और वह बाण सबको दिखाया और ऊँची आवाज़ से बोला—" अरे समस्त राजा लोगों! साहस करने वाले, मतलब की बात न समझने वाले, अपने मालिक का अनभल कराने वाले, और फिर अपनी जाती को स्वामिभक्त माननेवाले आप लोगों को धिक्कार है। इस भरत क्षेत्रमें पहले तीर्थङ्कर, श्री ऋषभ स्वामीके पुत्र महाज भरत पहले चक्रवर्त्ती हुए हैं। वे अपन लोगों से दण्ड माँगते हैं और इन्द्रके समान प्रचण्ड शासन वाले वे हम सबको अपनी आज्ञा या अधीनता में रखना चाहते हैं। कदाचित समुद्र सोखा जा सके, मेरु पर्वत उखड़ जाय, यमराज मारा जाय, पृथ्वी उलट जाय, वज्र पीसा जाय, और वड़ वाग्नि बुझ जाय, पर पृथ्वी पर चक्रवर्ती की पराजय हो नहीं सकती, चक्रवर्ती को कोई जीत नहीं सकता, चक्रवर्ती अजेय है

अतएव हे बुद्धिमान राजा! इन ओछी बुद्धिवालों को मनाकर, और दण्ड तैयार करके, चक्रवर्ती को प्रणाम करनेके लिये कूच बोलदे। गन्धहस्ती को सूँघकर जिस तरह दूसरे हाथी शान्त हो जाते हैं—कान पूँछ नहीं हिलाते—उत्पात नहीं करते; उसी तरह मंत्री की बातें सुनकर और बाण पर लिखे अक्षर देखकर मगधाधिपति शान्त हो गया—उसका क्रोध हवा हो गया। शेष में, वह बाण और भेंट को लेकर भरत चक्रवर्ती के पास आया और प्रणाम करके इस भाँति कहने लगा:—"पृथ्वीनाथ! कुमुद-खण्डको पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह, भाग्य योगसे मुझे आप के दर्शनमिले हैं। भगवान् ऋषभ स्वामी जिस तरह पहले तीर्थङ्कर होकर विजयी हुए हैं, उसी तरह आप भी पहले चक्रवर्ती होकर विजयी हों, जिस तरह ऐरावत हाथी का कोई प्रतिहस्ती नहीं, वायुके समान कोई बलवान नहीं और आकाश से बढ़कर कोई मानवाला नहीं; उसी तरह आप की बराबरी करने वाला भी कोई नहीं हो सकता। कान तक खींचे हुए आपके धनुष में से निकले हुए बाण को, इन्द्र-वज्रकी तरह, कौन सह सकता है? मुझ प्रमादी पर कृपा करके, आपने कर्त्तव्य जनाने के लिये, छड़ीदार की तरह, यह बाण फेंका, इसलिये हे नृपशिरोमणि! आज से मैं आप की आज्ञा को शिरोमणि की तरह, मस्तक पर धारण करूँगा। हे स्वामिन! मैं आपके आरोपित किये—स्थापित किये जयस्तम्भ की तरह, निष्कपट भक्ति से, इस मागधतीर्थ में रहूँगा। यह राज्य, यह सब परिवार, स्वयं मैं और अन्य

सब आपका ही है, अपने सेवक की तरह मुझे आज्ञा कीजिये।

इस तरह कहकर उसने वह बाण, मागध तीर्थ का जल, मुकट और दोनों कुण्डल अर्पण किये। भरतरायने उन सब चीज़ो को स्वीकार करके उसका सत्कार किया; क्योंकि महात्मा लोग सेवाके लिए नम्र हुए मनुष्यों पर कृपा ही करते हैं।—अर्थात् बड़े लोगों की शरणमें जो कोई नम्र हो कर, उनकी सेवकाई के लिये, आता है, उस पर वे दया किया करते हैं। इसके बाद. इन्द्र जिस तरह अमरावती में जाता है, उसी तरह चक्रवर्ती रथ को वापस लौटाकर, उसी राह से छावनी में आये। रथ से उतर, स्नानकर, परिवार समेत उन्होंने अठ्ठम का पारणा किया। पीछे, आये हुए मागधाधीशका भी चक्रकी तरह, चक्रवर्तीने वहाँ बड़ी ऋद्धिके साथ अष्टान्हिक, उत्सव किया। मानो सूर्यके रथ में से ही निकल कर आया हो, इस तरह तेज से भी तीक्ष्ण चक्र अष्टाह्निका उत्सव के पीछे आकाश में चला और दक्खन दिशा में वरदाम तीर्थ की ओर रुख किया। प्रादि उपसर्ग जिस तरह धातु के पीछे जाते है। उसी तरह चक्रवर्ती भी उसके पीछे पीछे चलने लगे।

भरत चक्रि का वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण।

वरदाम पति का कोप और अधिन होना।

सदा योजन मात्रप्रयाण से चलते हुए—नित्य चार कोस

की मञ्जिल तय करते हुए ; अनुक्रम से जैसे राजहंस मान-सरोवर पहुँच जाता है; उसी तरह चक्रवर्ती दक्खन-समुद्रके नज़दीक आ पहुँचे। इलायची, लौंग, चिरौंजी और कंकोल के वृक्षों की जहाँ बहुतायत या इफ़रात है, उसी दक्षिण-सागरके निकट चक्रवर्ती ने अपनी सेना का निवास कराया, महाराजकी आज्ञा से, पहले ही की तरह, वर्द्धकिरत्नने-सैन्यके निवास-गृह और पौषधशालाकी वहाँ रचनाकी। उस वरदान तीर्थ के देवता को हृदय में धारण करके, महाराज ने अट्ठमका तप किया और पौषधशाला में पौषधव्रत ग्रहण किया। पौषध पूर्ण होने पर, पौषध घर में से निकल कर, धनुर्द्धारियों में अग्रसर, महाराजने कालपृष्ठ रूप दण्ड ग्रहण किया और फिर सारे ही सोने से बनेहुए और करोड़ों रत्नों से जड़े हुए, जयलक्ष्मी के निवास-गृह उस रथ में सवार हुए। अनुकूल पवन से चपल—हिलती हुई ध्वजा-पताकाओं से आकाश मण्डल को भूषित करता हुआ वह रथ, नाव की तरह समुद्र में जाने लगा। रथको उसकी नाभि या धूरी तक समुद्र में ले जाकर, आगे बैठे हुए सारथि ने घोड़े रोके। रोकने से रथ खड़ा हुआ; फिर आचार्य जिस तरह शिष्य या चेले को नमाते हैं, उसी तरह पृथ्वीपति ने धनुष को नमा कर प्रत्यंचा चढ़ाई, और संग्रामरूपी नाटक के आरम्भ में नान्दी जैसा, और कालके आव्हान मे मंत्र—जैसा टंकार किया। फिर ललाट पर किए हुए तिलक की शोभा को चुरानेवाला बाण तरकश से निकाल कर धनुष पर चढ़ाया। चक्ररूप किये हुए धनुष के मध्य भाग में धुरे का भ्रम

करने वाले उस बाण को महाराज ने कान तक खींचा। कान तक आया हुआ बाण—"मैं क्या करूं ?" इस तरह प्रार्थना करता हुआ सा दिखई देता था। चक्रवर्ती ने उसे वरदामपति की ओर छोड़ा। आकाश में प्रकाश करने वाले उस बाण को पर्वत, वज्र, सर्पने गरुड़ और समुद्र दूसरा बड़वानल समझकर भय से भीत हो गये ; अर्थात् पर्वतों ने उसे वज्र समझा, सर्पों ने उसे गरुड़ समझा और समुद्र ने दूसरा बड़वानल समझा और इस कारण डर गये। बारह योजन या छियानवे मील उलाँघ कर, वह बाण, उल्कापतन की तरह, वरदामपति की सभा में गिरा। शत्रुके भेजे हुए घात करने वाले मनुष्य की तरह, उस बाणको गिरा हुआ देख, वरदामपति कुपित हुआ और तूफानी समुद्रकी तरह, वह उद्भ्रान्त भ्रकुटियों में बल डालकर, उत्कट वाणी से नीचे लिखे अनुसार बोला:—

"पाँव से छूकर आज इस केशरी सिंहको किसने जगाया ? आज मृत्युने किस का पन्ना खोला ? कोढ़ीकी तरह अपने जीवन में आज किसे वैराग्य हुआ कि जिसने अपने साहस से मेरी सभा में यह बाण फैंका ? इस बाण के फैंकनेवाले को इस बाण से ही मारूँगा।" यह कहकर, और क्रोध मे भरकर उसने वह बाण उठाया। मागधपति की तरह, वरदामपतिने भी बाण के ऊपर पूर्व्वोक्त अक्षर देखे। जिस तरह नागदमनी औषधियों से नाग शान्त होता है ; उसी तरह उन अक्षरों को पढ़कर वह तत्काल शान्त हो गया, और कहने लगा:—"अहो ! मैंडक जिस तरह

काले साँपको थप्पड़ मारनेको तैयार हो, मैढ़ा जिस तरह अपने सींगों से हाथी को मारने की इच्छा करे और हाथी अपने दाँतोंसे पर्वत को ढाहने की चेष्टा करें; ठीक उसी तरह मन्दबुद्धि से मैं ने भी भरत चक्रवर्ती से युद्ध करने की इच्छा की!" ख़ैर, अभी तक कुछ भी नहीं बिगड़ा, यह निश्चय करके उसने अपने नौकरों को भेंटका सामान जुटाने की आज्ञा दी। फिर बाण और अपूर्व भेंटों को लेकर, वह उसी तरह चक्रवर्ती के पास जानेको तैयार, हुआ, जिस तरह इन्द्र वृषभध्वज के पास जाता है चक्रवर्ती के पास पहुँचकर और नमस्कार करके वह यों बोलाः—हे पृथ्वी के इन्द्र! इनकी तरह, आपके बाण द्वारा बुलाये जाने पर मैं आज यहाँ हाज़िर हुआ हूँ। आपके स्वयं पधारने पर भी, मैं सामने नहीं आया, मेरी मूर्खता के इस दोष को आप क्षमाकरें! क्योंकि अज्ञता दोषको आच्छादन करती है; अर्थात् मूर्खता दोष को ढकती है। हे स्वामिन! थका हुआ आदमी जिस तरह आश्रयस्थल-रहने का स्थान पाता है और प्यासोंको जिस तरह जलपूर्ण सरोवर मिलता है; उसी तरह मुझ स्वामी रहित को आज आपके समान स्वामी मिला है। हे पृथ्वीनाथ! समुद्र में जिस तरह वेलंधर पर्वत होते हैं, उसी तरह आज से मैं आपका नियता किया हुआ, आपकी मर्य्यादा में रहूँगा।' यह कहकर भक्तिभावसे पूर्ण बरदामपति ने पहले की धरोहर रक्खी हो, इस तरह वह बाण वापस सौंपा। सूर्यकी कान्ति से गुथे हुए के जैसा और अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला एक रत्नमय

कटिसूत्र या कमर में पहनने की कर्द्धनी तथा यश के समूह—जैसी बहुत दिनों की सञ्चित की हुई मोतियों की राशि उसने महाराज भरतको भेंट की इनके सिवा अपनी उज्ज्वल कान्ति से प्रकाश-मान रत्नाकर-सागर के सर्व्वस्व जैसा रत्नों का ढेर भी महाराज को अर्पण किया। ये सब स्वीकार करके महाराज ने वरदापमति को अनुग्रहीत किया और उसे वहाँ अपने कीर्त्तिकर की तरह मुक़र्रर किया। इसके बाद् वरदामपतिको कृपापूर्व्वक बुलाकर विदा किया और विजयी महाराज स्वयं अपने कटक में पधारे।

रथ में से उतर कर राजचन्द्रने परिजनोंके साथ अष्टम भक्त का पारणा किया और इसके बाद बरदाम पतिका अष्टान्हिक उत्सव किया। महात्मा लोग आत्मीय जनों को लोक में महत्व प्रदान करने के लिये मान देते हैं।

प्रभास तीर्थ की ओर प्रयाण।

प्रभास पति का अधिन होना।

इसके पीछे, पराक्रममें मानो दूसरा इन्द्र हो, इस तरह चक्र-वर्त्ती चक्रके पीछे-पीछे, पश्चिम दिशामें प्रभास तीर्थकी ओर चले। सेनाके चलने से उड़ी हुई धूल से पृथ्वी और आकाश के बीचले भाग को भरते हुए, कितने ही दिनों में वे, पश्चिम समुद्रके ऊपर आ पहुँचे। सुपारी, तांबूली और नारियलके वन से व्याप्त पश्चिम स-मुद्रके किनारे पर उन्होंने अपनी सेनाका पड़ाव किया। वहाँ प्रभा-सपतिके उद्देश से अष्टमभक्त व्रत किया और पहलेकी तरह पौषध

शालामें पौषध लेकर बैठे। पौषधके अन्तमें मानो दूसरे वरुण हों, इस तरह चक्रवर्तीने रथमें बैठ कर सागरमें प्रवेश किया। रथको पहियेकी धूरी तक पानी में ले जाकर उन्होंने अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई, इसके बाद, जय-लक्ष्मी की क्रीड़ा करनेकी वीणारूप धनुर्यष्ठिकी तंत्री-जैसी प्रत्यचाको आपने हाथ से शब्दायमान् कर, झंकार देकर, मानो समुद्रको छड़ी—दण्ड देना हो, समुद्रको वेत्राघातकी सज़ा देनी हो,समुद्रके बेत लगवाने हों इस तरह तरकशमे से तीर निकाल कर, आसन पर अतिथि को बैठानेकी तरह उसे धनुष-आसन पर बिठाया। सूर्यबिम्बमें से खींची हुई किरण के जैसे उस बाणको उन्होंने प्रभास देवकी ओर चलाया। वायु-वेग से, बारह योजन—छियानवे मील समुद्रको पार करके,आकाश में चाँदना करता हुआ वह तीर प्रभासपतिके सभास्थानमें जा पड़ा। बाणको देखते ही प्रभासेश्वर कुपित हुए ; परन्तु उस पर लिखे हुए अक्षर देखकर, अन्य रसको प्रकट करने वाले नटकी तरह, तत्काल शान्त हो गया। फिर बाण और भेंटकी दूसरी चीजें लेकर प्रभासपति चक्रवर्त्तीके पास आये और इस प्रकार कहने लगे:— "हे देव! आप स्वामीके द्वारा प्रकाशित हुआ, मैं आज ही सच्चा प्रभास हुआ हूँ। क्योंकि कमल सूरजकी किरणों से ही कमल-पानीको सुशोभित करने वाला होता है। हे प्रभो! मैं पश्चिममें सामन्त राजाकी तरह रह कर, सदा, पृथ्वीके शासक आपकी आज्ञा पालन करूँगा यह कह कर महाराजका फेंका हुआ बाण, युद्धमें फेंके हुए बाणको उठाकर लाने वाले सेवककी तरह भरते-

श्वरको अर्पण किया उसके साथही अपने मूर्तिमान तेज-जैसे कड़े कौंधनी, मुकुट, हार तथा अन्यान्य द्रव्य चक्रवर्त्ती को भेंट किये। उसे आश्वासन देने के लिए—राजी करने के लिए—उसकी दिल-शिकनीका ख़याल करके महाराजने भेटके समस्त द्रव्य ले लिये। क्योंकि भेट लेना स्वामीकी कृपा का पहला चिह्न है। क्यारीमें जिस तरह वृक्षको स्थापन करते हैं, उसी तरह उसे वहाँ स्थापन करके—मुकर्रर करके शत्रुनाशन महाराज अपने कटकमें पधारे। कल्पवृक्षके समान गृहिरत्न द्वारा लाये गये दिव्य भोजनोंसे उन्होंने अष्टमभक्त का पारणा किया और प्रभासदेवका अष्टान्हिका उत्सव किया; क्योंकि पहली वार तो सामन्त जैसे राजाकीभी सत्कृति करनी उचित है।

सिन्धु देवि प्रभृति को साधना।

जिस तरह दीपकके पीछे-पीछे प्रकाश चलता है; उसी तरह चक्रके पीछे पीछे चलने वाले चक्रवर्त्ती महाराज, समुद्रके दक्खन किनारेके नजदीक, सिन्धनदीके किनारे पर आ पहुँचे। उसके किनारे किनारे पूर्वाभिमुख चलकर सिन्धदेवी के सदनके समीप उन्होंने पड़ाव डाला। वहाँ अपने मनमें सिन्धुदेवी का स्मरण कर उन्होंने अष्टमतप किया। इससे, वायुसे ताड़ित लहरोंकी तरह सिन्धुदेवी का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से चक्रवर्त्ती को आये हुए समझ, उत्तमोत्तम दिव्य वस्तुएँ भेंट में देने के लिये लेकर, उनके सम्मानार्थ वह

उनके सामने आई। देवीने आकाशमें ठहरकर "जय जय" कहते हुए आशीर्वाद पूर्वक कहा—"हे चक्रवर्त्ती! मैं यहाँ आपकी टहलुवी होकर रहती हूँ आप आज्ञा दें वही काम करूं।" यह कहकर लक्ष्मी-देवी के सर्वस्व और निधानकी सन्तति जैसे रत्नोंसे भरे हुए १००८ कुम्भ या घड़े, कीर्त्ति और जय लक्ष्मीके एक साथ बैठनेको बने हों ऐसे रत्नमय दो भद्रासन, शेष नागके मस्तक पर रहने वाली मणियोंसे बने हों ऐसे प्रदीप्त रत्नमय बाहुरक्षक—बाज़ूबन्द, बीच में सूर्यविम्बकी कान्ति रक्खी हो ऐसे कड़े, और मुट्ठीमें समा जाने वाले सुकोमल—नर्मानर्म दिव्यवस्त्र उसने चक्रवर्त्तीको भेंट किये। सिन्धुराजकी तरह उन्होंने वे सब चीजें स्वीकार कर लीं। और मधुर आलाप—मीठी मीठी बातोंसे देवीको प्रसन्न करके उन्होंने उसे विदा किया। पीछे पूर्णमासीके चन्द्रमा जैसे सुवर्णके-पात्रमें अष्टमभक्त का पारणा किया और देवीका अष्टान्हिका उत्सव करके चक्रकी बताई हुई राहसे आगे चले।

उत्तर—पूर्व दिशाके मध्य ईशानकोण—की तरफ चलते हुए; अनुक्रमसे दोनों भरतार्द्धके बीचों-बीचमें सीमा रूप से स्थित, वैताढ्य पर्वतके पास आये। उस पर्वतके दक्खन भागके ऊपर मानो कोई लम्बा चौड़ा द्वीप हो, ऐसा पड़ाव महाराजने डाला। वहीं ठहरकर महाराजने अष्टम तप किया, इतनेमें ही वैताढ्यादि कुमार का आसन काँपा। उसने अवधि ज्ञानसे जान लिया कि; भरत- क्षेत्रमें यह पहला चक्रवर्त्ती हुआ है। इसके बाद उसने चक्र-वर्त्तीके पास आकर, आकाशमें ही ठहर कर कहा—"हे

प्रभो! आपकी जय हो! मैं आपका सेवक हूँ। मुझे जो आज्ञा देनी हो सो दीजिये। मैं आपकी आज्ञापालन या हुक्म को तामील करने के लिए तैयार हूं।' यह कहकर बड़ा भारी ख़ज़ाना खोल दिया हो, इस तरह मूल्यवान—कीमती कीमती रत्न, रत्न और जवाहिरों के गहने-ज़ेवर; दिव्य वस्त्र—सुन्दर सुन्दर कपड़े और प्रताप सम्पत्तिका क्रीड़ा स्थान जैसा भद्रासन उसने महाराज को भेंट किया। पृथ्वीपतिने उसकी दी हुई सारी चीज़ें लेली; क्योंकि निर्लोभ स्वामी भी सेवकों पर अनुग्रह करने के लिये उनकी भेंट स्वीकार कर लेते हैं। इसके बाद महाराज ने उसे इज़्ज़तके साथ बुलाकर, गौरवके साथ विदा किया। महा पुरुष अपने आश्रय में रहे हुए साधारण पुरुषों की भी अवज्ञा नहीं करते। अष्टम भक्त का पारणा करके, वहीं वैताल देव का अष्टान्हिका उत्सव किया।

वहाँ से चक्ररत्न तमिस्रा गुहा की तरफ चला। राजा भी पदन्वेषी या खोजों के पीछे पीछे चलनेवाले की तरह चक्रके पीछे पीछे चले। अनुक्रम से, तमिस्रा के निकट, मानो विद्याधरों के नगर वैताढ्य पर्वत से नीचे उतरते हों इस तरह अपनी सेनाका पड़ाव कराया। उस गुफा के स्वामी कृतमालदेवको मन में याद करके, उन्होंने अष्टम तप किया। इस से देवका आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से चक्रवर्ति को आया हुआ समझ, बहुत दिनोंके बाद आये हुए गुरु की तरह, चक्रवर्ती रूपी अतिथि की पूजा-अर्चना करनेके लिये वह वहाँ आया और कहने लगा—

"हे स्वामिन्! इस तमिस्रा गुफाके द्वार में, मैं आपके द्वारपाल की तरह रहता हूँ। यह कह कर उसने भूपति की सेवा अंगीकार की। स्त्री रत्न के लायक़ अनुत्तम सर्वश्रेष्ठ चौदह तिलक और दिव्य आभरण समूह उसने महाराज के भेंट किये। उसके साथ ही, मानो महाराज के लिए ही पहले से रख छोड़ी हों ऐसी, उनके योग्य मालाएँ और दिव्य वस्त्र भी अर्पण किये। चक्रवर्ती ने उन सब को स्वीकार कर लिया; क्योंकि कृतार्थ हुए राजा भी दिग्विजय की लक्ष्मी के चिह्नरूप ऐसे दिशादण्ड को नहीं छोड़ते। अध्ययन के बाद उपाध्याय जिस तरह शिष्यको आज्ञा देता है—सबक़ पढ़लेने बाद उस्ताद जिस तरह शागिर्द को छुट्टी देता है; उसी तरह भरतेश्वर ने उस से अच्छी-अच्छी मीठी-मीठी बातें करके उसे विदा किया। इसके बाद मानो अलग किये हुए अपने अंश हों और ज़मीन पर पात्र रखकर सदा साथ जीमने वाले राज कुमारों के साथ उन्होंने पारणा किया। फिर कृतमालदेव का अष्टाह्निका उत्सव किया। नम्रता से वश किये हुए स्वामी सेवक के लिये क्या नहीं करते?

दक्षिण सिंधु निष्कूट साधने के लिये सेनानी को भेजना।

दूसरे दिन, इन्द्र जिस तरह नैगमेषी देवता को आज्ञा देता है; उसी तरह महाराज ने सुषेण सेनापति को बुलाकर आज्ञा दी— 'तुम चर्मरत्न से सिन्धु नदी को पार करके, सिन्धु, समुद्र और

वैताढ्य पर्वत के बीच में रहने वाले दक्षिणसिन्धु निष्कूट को साधो और वद्री वन की तरह वहाँ रहने वाले म्लेच्छों को आयुध वृष्टि से ताड़नकर, चर्मरत्नके सर्वस्व फलको प्राप्त करो; अर्थात् म्लेच्छों को अपने अधीन करो। वहीं पैदा हुएके समान, जल स्थल के ऊँचे नीचे सब भागों और किलों तथा दुर्गम स्थानों में जाने को राहों के जाननेवाले, म्लेच्छ-भाषा मे निपुण, पराक्रम में सिंह, तेज में सूर्य, बुद्धि और गुण में वृहस्पति के समान, सब लक्षणों में पूर्ण सुषेण सेनापतिने चक्रवर्ती की आज्ञा को शिरोधार्य्य की। फौरन ही स्वामी को प्रणाम कर वह अपने डेरे में आया। अपने प्रतिबिम्ब-समान सामन्त राजाओं को कूच के लिये तैयार होने की आज्ञा दी फिर स्वयं स्नानकर, बलिदे, पर्वतसमान ऊँचे गजरत्न पर सवार हुआ; उस समय उसने क़ीमती क़ीमती थोड़से ज़ेवर भी पहन लिये। कवच पहना, प्रायश्चित्त और कौतुक मङ्गल किया। कंठ में जयलक्ष्मी को आलिंगन करने के लिये अपनी भुजलता डाली हो, इस तरह दिव्य हार पहना। प्रधान हाथी की तरह वह पट्ट से सुशोभित था। मूर्त्तिमान शक्ति की तरह एक छुरी उसकी कमर में रक्खी हुई थी। पीठ पर सरल आकृतिवाले सोने के दो तरकश थे, जो पीठ पीछे भी युद्ध करने के लिये दो वैक्रिय हाथ-जैसे दीखते थे। गणनायक, दण्डनायक, सेठ, सार्थवह, सन्धिपाल और नौकर-चाकरों से वह युवराज की तरह घिरा हुआ था। मानों आसन ही के साथ पैदा हुआ हो, इस तरह उसका अग्रासन

निश्चल था। सफेद छत्र और चँवर से सुशोभित देवतुल्य उस सेनापति ने अपने पाँवके अँगूठे से हाथी को चलाया। चक्रवर्ती की आधी सेनाके साथ वह सिन्धु नदीके किनारे पर पहुँचा। सेनाके चलने से उड़नेवाली धूल से मानो पुल बाँधता हो, ऐसी स्थिति उसने करदी। जो बारह योजन—छियानवे मील तक बढ़ सकता था, जिस पर सवेरा का बोया हुआ अनाज सन्ध्या समय उग सकता था, जो नदी, द्रह तथा समुद्रके पार उतार सकता था, उस चर्मरत्न को सेनापति ने अपने हाथ से छूआ। स्वाभाविक प्रभाव से उसके दोनों सिरे किनारे तक बढ़कर चले गये। तब सेनापति ने उसे तेल की तरह पान पर डाला। उस चर्म रत्न के ऊपर होकर वह पैदल सेना सहित नदीके परले किनारे पर जा उतरा।

दक्षिण सिंधु निष्कूट की साधना।

सिन्धके समस्त दक्षिण निष्कूट को साधने की इच्छा से वह प्रलय काल के समुद्र की तरह फैल गया। धनुष के निर्घोष शब्द से, दारुण और युद्ध में कौतुक वाले उस सेनापति ने सिंह की तरह, सिहल लोगों को लीलामात्र से पराजित कर दिया। बर्बर लोगों को मोल खरीदे हुए किङ्करों—क्रीत दासों या गुलामों की तरह अपने अधीन किया और टंकणोंको घोड़ों के समान राज चिह्न से उसने अङ्कित किया। रत्न और माणिकों से भरे हुए जलहीन रत्नाकर सागर जैसे यवन द्वीपको उस नर केशरीने लीला

मात्र से जीत लिया उसने कालमुख जातिके म्लेच्छों को जीत लिया इससे,वे भोजन न करने पर भी मुँहमें पाँच अंगलियाँ डालने लगे। उसके फैलने से ओनक नामके म्लेच्छ लोग वायुसे वृक्षके पल्लवों की तरह पराङ्मुख होगये। बाज़ीगर या सपेरा जिस तरह सब तरह के साँपों को जीत लेता है, उसी तरह उसने वैताढ्य पर्वत के पास रहने वाली सब जातियाँ उसने जीत लीं। अपने प्रौढ़ प्रताप को बेरोक टोक फैलाने वाले उस सेनापति ने .वहाँसे आगे चलकर, जिस तरह सूर्य सारे आकाश को आक्रान्त कर लेता है; उसी तरह उसने कच्छ देश की सारी पृथ्वी आक्रान्त करली। जिस तरह सिंह सारे वनको दवा लेता है; उसी तरह उसने सारे निष्कूट को दवा कर, कक्छ देश की समतल भूमिमे आनन्दसे डेरा डाला। जिस तरह स्त्रियाँ पतिके पास आती हैं, उसी तरह म्लेच्छ देशके राजा लोग भक्ति से भेंट ले लेकर, सेनापति के पास आने लगे। किसी ने सुवर्ण गिरिके शिखर या मेरूपर्वत की चोटी जितना सुवर्ण और रत्नराशि दी। किसीने चलते फिरते विन्ध्याचल जैसे हाथी दिये। किसीने सूरज के घोड़ोको उल्लंघन करने वाले—चाल और तेज़ीमें परास्त करने वाले घोड़े दिये और किसीने अञ्जन से रचे हुए देवरथ जैसे रथ दिये। इनके सिवा, और भी सार रूप पदार्थ उन्हों ने दिये। क्योंकि पहाड़ो में से नदियों द्वारा खींचे हुए रत्न भी अनुक्रम से शेषमें, रत्नाकर मे ही आते हैं। इस तरह भेंटें देकर उन्होंने सेनापति स कहा— "आज से हम लोग तुम्हारी आज्ञा पालन करने वाले—गुलाम—

होकर; आपके नौकरों की तरह, अपने अपने देशोंमें रहेंगे।" सेना पति ने उनका यथोचित सत्कार करके उन्हें विदा किया और आप पहले की तरह सुखसे सिन्धु नदीके पार वापस आगया। मानो कीर्त्ति रूपी वल्लिका दोहद हो इस तरह म्लेच्छों के पास से लाया हुआ सारा दण्ड उसने चक्रवर्त्ती के सामने रख दिया। कृतार्थ चक्रवर्त्तीने उसे अनुग्रह पूर्व्वक सत्कार करके विदा किया। वह भी खुशी खुशी अपने डेरे पर आया।

तमिस्रा गुफा को खोलना।

यहाँ भी भरतराज अयोध्याकी तरह सुख से रहते थे; क्योंकि सिंह जहाँ जाता है वहीं उसका स्थान हो जाता है। एक रोज़ महाराजने सेनापतिको बुलाकर आदेश किया—तमिस्रा गुफाके द्वार खोलो। नरपतिको उस आज्ञाको मालाकी तरह सिर पर चढ़ाकर सेनापति शीघ्रही गुफाद्वारके पास आ रहा। तमिस्राके अधिष्ठायक देव कृतमालको मनमे याद करके उसने अष्टम तप किया; क्योंकि सारी सिद्धियाँ तपोमूल हैं; यानी सिद्धियों की जड तप है। इसके बाद सेनापति स्नान कर श्वेतवस्त्ररूपी पंख को धारण कर, जिस तरह सरोवरमें से हंस निकलता है उस तरह स्नान भुवनसे निकले। और सोने के लीला-कमलकी तरह, सोनेकी धूपदानी हाथमें ले, तमिस्राके द्वारके पास आये। वहाँके किवाड़ देख, उन्होंने पहले प्रणाम किया क्योंकि शक्तिमान् महापुरुष पहले सामभेदका ही

प्रयोग करने हैं। वहाँ वैताढ्य पर्वत पर सञ्चार करने वाली विद्याधरोंकी स्त्रियोंको स्तम्भन करने या रोकने में औषधिरूप महर्द्धिक अष्टाह्निका उत्सव किया, और मांत्रिक जिस तरह मण्डल बनाता है, उस तरह सेनापतिने अखण्ड तन्दुलों या चाँवलों से वहाँ अष्टमंगलिक बनाये। फिर इन्द्र-वज्रके समान-शत्रुओं का नाश करने वाला चक्रवर्त्तीका दण्डरत्न अपने हाथमें लिया और किवाड़ों पर चोट मारनेकी इच्छासे वह सात-आठ क़दम पीछे हटा; क्योंकि हाथी भी प्रहार करने या चोट करनेकी इच्छा से पीछे हटता है। पीछे सेनापतिने दण्डसे किवाड़ पर तीन चोटें मारी और बाजेकी तरह उस गुफ़ाको बड़े ज़ोर से गुंजाई। तत्कालही खूब ज़ोरसे मींची हुई आँखोंकी तरह, वैताढ्य पर्वतके खूब ज़ोरसे बन्द किये हुए वज्र निर्म्मित किवाड़ खुल गये। दण्डेकी चोटोंसे खुलने वाले ये किवाड़ ज़ोर ज़ोर से चीख़ते हों, इस तरह तड़ तड़ शब्द करने लगे। उत्तर दिशाके भरतखण्डको जय करनेमें प्रधान मंगल रूप उन किवाड़ोंके खुलनेका वृत्तान्त चक्रवर्त्तीको जनाया। इस ख़बरके मिलते ही, गजरत्न पर, सवार होकर, प्रौढ़ पराक्रम वाले महाराजने चन्द्रकी तरह तमिस्रा गुफ़ामें प्रवेश किया।

प्रवेश करते समय, नरपतिने चार अंगुल प्रमाणका सूर्यके समान प्रकाशमान् मणिरत्न ग्रहण किया। वह एक हज़ार यक्षों से अधिष्ठित था। यदि वह शिखाबन्धके समान मस्तक पर धारण किया जाता है, चोटीमें बाँधा जाता है, तो तिर्यञ्च देव और

मनुष्य-सम्बन्धी उपद्रव नहीं होते उस रत्नके प्रभावसे सारे दुःख अन्धकार की तरह नाश हो जाते हैं तथा शास्त्रके घावकी तरह रोग भी निवारण हो जाते हैं। सोने के घड़े पर जिस तरह सोनेका ढक्कन रखते हैं, उसी तरह रिपुनाशक राजा ने हाथीके दाहिने कुम्भस्थल पर उस रत्नको रक्खा। पीछे-पीछे चलनेवाली चतुरंगिणी सहित चक्रको अनुसरण करने वाले, केशरी सिंहके समान गुफामें प्रवेश करने वाले नरकेशरी चक्रवर्त्तीने चार अंगुल प्रमाणका दूसरा काकिंणी रत्न भी ग्रहण किया। वह रत्न सूर्य, चन्द्र और अग्नि के जैसा कान्तिमान् था, आकाशमे अधिकारणी के बराबर था हजार वृक्षोंसे अधिष्ठित था। ये वज़नमें आठ तोले था। छ पत्ते और बारह कोने वाला तथा समतल था; और मान उन्मान एवं प्रमाणसे युक्त था। उसमें आठ कणिकायें थीं और वह बारह योजन; यानी छियानवे मील तकके अन्धकार को नाश कर सकता था। गुफाके दोनों ओर, एक योजन या चार चार कोसके फासले पर, उस काकिंणी रत्नसे, अनुक्रमसे गो-मुत्रिके सदृश मण्डल लिखते हुए चक्रवर्त्ती चलने लगे। प्रत्येक मण्डल पाँच सौ धनुषके विस्तार वाला एक योजन—चार कोस तक प्रकाश करने वाला था। वे सब गिन्तीमें उनचास हुए। जहाँ तक महीतल—पृथ्वी पर कल्याणवन्त चक्रवर्त्ती जीते हैं, वहाँतक गुफाके द्वार खुले रहते हैं।

तमीस्रा गुफामें प्रवेश।

चक्ररत्नके पीछे-पीछे चलने वाले चक्रवर्त्तीके पीछे चलनेवाली

उनकी सेना, मण्डलोंके प्रकाशसे, अस्खलिततासे—बेखटके चलने लगी। संचार करने वाली चक्रवर्त्तीकी सेना से वह गुफा असुरादिककी सैन्यसे रत्नप्रभाके मध्य भाग जैसी शोभने लगी। मथनदण्ड या रईसे मथनीमे जैसी आवाज़ होती हैं, उस संचार करने वाली सेना से वह गुफा उद्दाम घोष—घोर शब्द करने लगी अर्थात् सेनाके चलने से गुफामें घोर रव होने लगा।

जिस गुफामें किसीने भी सञ्चार नहीं किया था, उस गुफाके मार्गमें रथोंके कारण लीकें बन गईं और घोड़ोंकी टापोंसे कंकर उड़ गये, अतः वह नगर मार्गके जैसा हो गया सेनाके लोगोंके चलने से वह गुफा लोकनालिका या पगडण्डीके समान टेढी तिरछी होगई। चलते-चलते तमिस्रा गुफाके मध्य भागमें—अधो वस्त्रके ऊपर रहने वाली कटिमेखला या कर्द्धनीके समान—उन्मग्ना या निमग्ना नामकी दो नदियोंके निकट चक्रवर्त्ती जा पहुँचे। वे नदियाँ ऐसी दीखती थीं गोया दक्खन और उत्तर भरतार्द्धसे आने वाले लोगोंके लिये, वैताढ्य पर्वतने नदियोंके बहाने से दो आज्ञा रेखायें खींच रखी हों। उनमें से उन्मग्ना नदीमें पत्थरकी शिला तूम्बीकी तरह तैरती हैं; और निमग्नामें तूम्बी भी पत्थरकी शिलाकी तरह डूब जाती है। वे दोनों नदियाँ तमिस्रा गुफाकी पूर्व भित्तिमें से निकलती हैं और पश्चिम भित्ति के बीचमें होकर, सिन्धु नदीमें मिलती हैं। उन नदियोंके ऊपर मानो वैतालकुमार देवकी विशाल एकांत शय्या हो, ऐसी एक निर्दोष पुलिया बना दी। वह पुलिया वार्द्धकिरत्नने क्षण भरमें

तैयार कर दी, क्योंकि गुहाकार कल्पवृक्षको जितनी देर भी उसे नहीं लगती। उस पुलियाके ऊपर अच्छी तरहसे जोड़े हुए पत्थर इस तरहसे लगाये गये थे, जिससे सारी पुलिया और उपरकी राह एकही पत्थरसे बनी हुई, की तरह शोभती थी हाथके समान समतल और वज्रवत् मज़बूत होने के कारण से वह पुलिया और राह गुफाद्वारके दोनों किवाड़ोंसे बनाई हुई सी जान पड़ती थी। पदविधि या समासविधिकी तरह, समर्थ चक्रवर्त्ती सेना सहित उन दोनों दुस्तर नदियोंके पार उतर गये। सेनाके साथ चलने वाले महाराज, अनुक्रमसे, उत्तर दिशाके मुख जैसे, गुफाके उत्तर द्वारके पास आ पहुँचे। उसके दोनों किवाड़ मानों दक्खनी दरवाज़ेके किवाड़ोंका शब्द सुन कर भयभीत हो गये हों, इस तरह—आपसे आप खुल गये। वे किवाड़ खुलते वक्त "सर सर" शब्द करने लगे। उस "सर सर" शब्दसे ऐसा जान पड़ता था, मानो ये चक्रवर्त्तीकी सेनाको गमन करनेकी प्रेरण करते हों—आगे बढ़नेको कहते हों। गुफाकी दोनों ओर की दीवारोंसे वे दोनों किवाड़ इस तरह चिपट गये कि गोया पहले थे ही नहीं और दो भोगलों से दीखने लगे। पीछे सूर्य जिस तरह बादलों में से निकलता है, इस तरह पहले चक्रवर्त्तीके आगे-आगे चलने वाला चक्र गुफामें से निकला और पातालके छेदमें से जिस तरह बलिन्द्र निकलते हैं, उस तरह पीछे पृथ्वीपति भरत महाराज निकले। पीछे विन्ध्याचलकी गुफा की तरह, उस गुफामें से निःशंक होकर मौजके साथ चलते हुए गजेन्द्र निकले।

समुद्र में से निकलनेवाले सूर्यके घोड़ोंका अनुसरण करते हुए सुन्दर घोड़े अच्छी चालोंसे चलते हुए निकले। धनाढ्य लोगोंके घरों में से निकलते हों, इस प्रकार अपनी अपनी आवाज़ोंसे आकाशको गुंजाते हुए निकले। स्फटिक मणिके बीमले में से जिस तरह सर्प निकलता उस तरह वैताढ्य पर्वतकी गुफा में से बलवान पैदल भी निकले।

तमिस्रा गुफा से बाहर निकलना।

इस प्रकार पचास योजन अथवा चार सौ मील लम्बी गुफा को पार करके, महाराज भरतेशने उत्तर भरतार्द्धको विजय करने के लिये उत्तर खण्डमें प्रवेश किया। उस खण्डमें "अपात" नामक भील रहते थे। वे पृथ्वी पर रहने वाले दानवों जैसे धनाढ्य, पराक्रमी और महातेजस्वी थे। अनेक बड़ी बड़ी हवेलियों, शयन, आसन, और वाहन एवं बहुतसा सोना चाँदी होने के कारण—कुबेरके गोती भाइयोंसे दीखते थे। वे बहु कुटुम्बी और बहुतसे दास परिवार वाले थे और देवताओंके बगीचोंके वृक्षोंकी तरह कोई भी उनका पराभव कर न सकता था। बड़े गाडे के भारको खींचने वाले बड़े बड़े बैलोंकी तरह, वे अनेक युद्धोंमें अपनी शक्ति और पराक्रम प्रकाशित करते थे। निरन्तर जब यमराजके समान भरतपतिने उन पर बलात्कार से—ज़बर्दस्ती चढ़ाई की, तब अनिष्ट सूचक बहुतसे उत्पात होने लगे। चलती हुई चक्रवर्त्तीकी सेनाके भार से मानो पीड़ित हुई हो, इस

तरह गृहउद्यानको कंपाती हुई पृथ्वी धूजने लगी। चक्रवर्त्तीके दिगन्त-व्यापी प्रौढ़ प्रतापसे हुआ हो, इस तरह दिशाओंमें दावानल जैसा दाह होने लगा। उड़ती हुई बहुतसी धूलसे दिशाएँ पुष्पिणी-रजश्वला स्त्री की तरह अनालोकपात्र—न देखने योग्य हो गईं। दुष्ट और दुःश्रव निर्घोष करने वाले मगर जिस तरह समुद्रमें परस्पर टकराते हों, इस तरह दुष्ट पवन परस्पर टकराने लगे। आकाशमें से चारों तरफ़, मशालोंके समान समस्त म्लेच्छ-व्याघ्रों के हृदयोंको क्षुभित करने वाला उल्कापात होने लगा, अर्थात् आकाशसे तारे टूट टूट कर गिरने लगे, जिसको देख कर म्लेच्छों के हृदय हिलने लगे। क्रोध करके उठे हुए यमराजके हस्ताघात पृथ्वी पर पड़ते हों, इस तरह भयङ्कर शब्दोंके साथ वज्रपात होने लगा; अर्थात् भयङ्कर गर्जनाके साथ पृथ्वी पर बिजलियाँ पड़ती थीं; उनसे ऐसा जान पड़ता था, मानो यमराज क्रोधमें भर कर पृथ्वी पर अपने भयङ्कर हाथ मार रहे हों।
मृत्यु—लक्ष्मी के छत्र हों, इस तरह कव्वों के मण्डल आकाश में जगह जगह घूमने लगे।

इस ओर; सोने के कवच, फर्सों और प्रासकी किरणों से, आकाश चारी सहस्र-किरण सूर्य को कोटि किरणवाला करनेवाले, उद्दंड दंड कोदंड और दुर से आकाश को उन्नत करने वाले, ध्वजाओं में चिते और लिखे हुए व्याघ्र, सिंह और सर्पों के चित्रों से आकाशचारी—आकाश में रहनेवाली स्त्रियों को भय भीत करनेवाले और बड़े-बड़े हाथियों के घटारूपी मेघों से

दिशाओं को अन्धकारमय करनेवाले महाराज भरत आगे बढ़ने लगे। उनके रथ के आगे जो मगरो के मुख लगे हुए थे, वे यमराज के मुख को स्पर्द्धा करते थे। वे घोड़ोंकी टापों की आवाज़ों से धरती को और जय-बाजों के घोर शब्द से आकाश को फोड़ते हों, ऐसे जान पड़ते थे और आगे-आगे चलनेवाले मंगल ग्रह से जिस तरह सूर्य भयङ्कर लगता है; उसी तरह आगे आगे चलनेवाले चक्र से वे भयङ्कर दीखते थे।

म्लेच्छों के साथ युद्ध करना।

उनको आते हुए देखकर किरात लोग अत्यन्त कुपित हुए और क्रूरग्रहकी मैत्रीका अनुसरण करने वाले वे इकठे हो कर, मानो चक्रवर्ती को हरण करने की इच्छा करते हों, इस तरह क्रोध सहित बोलने लगे—"साधारण मनुष्य की तरह लक्ष्मी लज्जा, धीरज और कीर्ति से वर्जित यह कौन पुरुष है, जो बालक की तरह अल्प बुद्धि से मृत्युकी कामना करता है? हिरन जिस तरह सिंह की गुहा में जाता है; उसी तरह यह कोई पुण्यचतुर्दशी-क्षीण और लक्षणहीन पुरुष अपने देश में आया मालूम होता है। महा पवन जिस तरह मेघों को इधर उधर फेंक देता है; उसी तरह इस उद्धत आकार वाले और फैलते हुए पुरुष को अपन लोग दशों दिशाओं में फैंक दें'। इस तरह ज़ोर-ज़ोर से चीख़ते-चिल्लाते हुए इकट्ठे होकर, शरभअष्टपद जिस तरह मेघ के सामने गर्जना करता और दौड़ता है उसी तरह युद्ध करने के लिये

भरत के सामने उद्यत हुए। किरातपतियोंने कछुओंकी पीठोंकी हड्डियों से बनाये हों ऐसे दुर्भेद्य कवच—जिरह बख्तर पहने। उन्होंने मस्तक पर लंबे लंबे बाल वाले निशाचरों की शिरलक्ष्मी को बतोने वाले एक तरह के बालों से ढकेहुये शिरस्त्राण धारण किये। रणोत्साह से उन की देह इस तरह फूलने लगी कि, उस से उनके कवचों के जाल टूटने लगे। उनके ऊंचे ऊंचे केश वाले मस्तकों पर शिरस्त्राण रहते न थे, इसलिये मानो हमारी रक्षा कोई दूसरा कर नहीं सकता, इस तरह मस्तकों को अमर्ष करते हों—ऐसे मालूम होते थे। कितने ही कुपित किरात यम-राज की भृकुटो जैसे बांके और सींगों से बने हुए धनुषों को लीला से सजा सजाकर धारण करने लगे। कितने ही जय-लक्ष्मी की लीला की शय्या की जैसी रणमें दुर्वार और भयङ्कर तल-वारों को म्यानों से निकालने लगे। यमराजके छोटे भाई जैसे कितने ही किरात डण्डों को ऊंचा करने लगे। कितने ही धू-म्रकेतु-जैसी भालों को आकाश में नचाने लगे। कितने ही रणो-त्सव में आमंत्रित किये हुए प्रेतराज को खुश करने के शत्रुओं को शूली पर चढ़ानेके हों ऐसे त्रिशूलों को धारण करने लगे। कितने ही शत्रुरूपी चकवेपक्षियों के प्राणनाश करने वाले बाज पक्षी जैसे लोहे के शल्यों को हाथों में धारण करने लगे। कोई मानो आकाश में से तारामण्डल को गिरानेकी इच्छा करते हों, इस तरह अपने उद्धत-हाथों से तत्काल मुद्गर फिरने लगे। जिस तरह विना विषके कोई सर्प नहीं होता, इस तरह उनमें से कोई भी हथियार

विना न था। युद्ध रस की इच्छावाले वे, मानो एक आत्मावाले हों इस तरह, एकदम से भरतकी सारी सेना पर टूट पड़े। ओलों की वर्षा करने वाले प्रलयकाल के मेघों की तरह, शस्त्रों की झड़ी लगाते हुए म्लेच्छ, भरत की आगेकी सेना से बड़े ज़ोरों के साथ युद्ध करने लगे। मानो पृथ्वी में से, दिशाओं के मुखों से और आकाशमें से, पड़ते हों इस तरह, चारों ओर से शस्त्र पड़ने लगे। दुर्जनों के वचन जिस तरह सभी के दिलों में लगते हैं, इस तरह किरात लोगों के बाणों से भरत की सेना में कोई भी ऐसा न रहा, जिसके शस्त्र न छिदा हो, बाणों से कोई भी अछूता न बचा। म्लेच्छों के आक्रमण से चक्रवर्त्तीके आगे वाले घुड़सवार-समुद्रकी वेला से नदीके पिछले हिस्से की तरंगके समान—पीछे हट कर चलायमान होने लगे ; अर्थात् समुद्र की लहरों से जिस तरह नदी के पिछले भागकी तरंगें पीछे को हटती हैं; उसी तरह म्लेच्छों के हमलों से राजा के आगे के घुड़सवार पीछे को हटने को मजबूर हुए। म्लेच्छ-सिंहों के बाण रूपी सफेद नाखुनों से चोट खाकर चक्रवर्त्ती के हाथी बुरी तरह से चिङ्घाड़ने लगे। म्लेच्छ वीरों के प्रचण्ड दण्डायुधों की मार से पैदल सिपाही गेंदोंकी तरह ज़मीन पर लुढ़कने लगे। वज्राघात से पर्वतों की तरह यवन-सेनाने गदा के प्रहारों से चक्रवर्त्ती की अगली सेना के रथ चूर्ण कर डाले। संग्राम रूपी सागर में, तिमिंगल जातके मगरों से जिस तरह मछलियाँ ग्रस्त और त्रस्त होती हैं, उस तरह म्लेच्छ लोगों से चक्रवर्ती की सेना ग्रस्त और त्रस्त हुई

अनाथकी तरह अपनी सेना को पराजित हुई देखकर, राजा की आज्ञा की तरह, क्रोध में सेनापति सुषेण को जोश आगया। उसके नेत्र और मुँह लाल होगये और क्षणभर में मनुष्य रूप में जैसे अग्निहो, इस तरह वह दुर्निरीक्ष्य हो गया; अर्थात् क्रोध के मारे वह ऐसा लाल हो गया, कि उसकी तरफ कोई देख न सकता था। राक्षस पति की तरह समस्त पराई सेना के ग्रास करने के लिये स्वयं तैयार हो गया। अंग में उत्साह—जोश—आ जाने से, उसका सोनेका कवच शरीरमें सटकर दूसरी चमड़ी के समान शोभा देने लगा। कवच पहनकर, साक्षात् जयरूप हो, इस तरह, वह सुषेण सेनापति कमलापीड़ नामक घोड़े पर सवार हुआ। वह घोड़ा अस्सी अँगुल ऊँचा और नवाणुं अँगुल विशाल था तथा एक सौ आठ अँगुल लम्बा था। उसका मस्तक भाग सदा बत्तीस अंगुल की उँचाई पर रहता था। चार अंगुल के उसके बाहु थे, सोलह अँगुलकी उसकी जाँघें थीं, चार अँगुल केघुटने थे, चार अंगुल ऊँचे खुर थे, गोलाकार और घूमा हुआ उसका बीचला भाग था; विशाल, किसी क़दर नर्म और प्रसन्न करनेवाले पिछले भाग से वह शोभायमान था, कपड़ेके तन्तु जैसे नर्म-नर्म रोम उसके शरीर पर थे। उस पर श्रेष्ठ बारह आवर्त्त या भौंरे थे। वह शुद्ध लक्षणों से युक्त था, जवान तोते के पंखों जैसी उसकी कान्ति थी। कभी भी उसने चाबुककी चोट न खाई थी, वह सवार के मनके माफ़िक़ चलनेवाला था, रत्नजड़ित सोने की लगाम के बहाने से मानो लक्ष्मी ने निज

हाथों से उसका आलिङ्गन किया हो, ऐसा दीखता था। उसके ऊपर सोने के घुंघरुओं की मालायें मधुर स्वर से छम-छम करती थीं, इसलिये मानो भौंरोंके मधुर स्वर वाली कमलों की मालाओं से चर्चित किया हुआसा वहदीखता था। पाँच रंगकी मणियों से, मिश्र सुवर्णालङ्कार की किरणों से अद्वैत रूप की पताकाके चिह्न से अंकित हुआ सा उसका मुख था। मङ्गल गृह से अंकित, आकाश के समान सोनेके कमल का उसका तिलक था और धारणा किये हुए चमरों के आभूषणों से—मानो उसके दूसरा कान-हो ऐसा दीखता था। चक्रवर्ती के पुण्य से प्राप्त हुए इन्द्र के उच्चैःश्रवा की तरह वह शोभायमान था। टेढ़े पाँव रखनेसे उसके पाँव लीला से पड़ते से दीखते थे। दूसरी मूर्त्तिसे मानो गरुड़ हो: अथवा मूर्तिमान् पवन हो, ऐसा वह एक क्षणमें सौ योजन अथवा आठ सौ मील उलाँघ जानेका पराक्रम दिखलाता था। कीचड़, जल, पत्थर, कंकड़ और खड्डोंसे विषम वन जंगल और पर्वत गुहा आदि दुर्गम स्थानोंको पार करने में वह समर्थ था। चलते समय उसके पाँव ज़मीन को ज़रा ज़रा ही छूते थे। वह बुद्धिमान और नर्म था। पाँच प्रकारकी गतिसे उसने श्रम या थकानको जीत लिया था। कमलके जैसी उसके श्वासकी सुगन्ध थी। ऐसे घोड़े पर बैठ कर सेनापतिने यमराजकी तरह, मानो शत्रुओंका पन्ना हो ऐसा खड्गरत्न ग्रहण किया। वह खड्ग पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा और आधा अंगुल मोटा था और सोने तथा रत्नोंका उसका म्यान था। उसने

उसे म्यानसे बाहर निकाल रखा था, इसलिये वह काँचली से निकले हुए सर्प जैसा दिखाई देता था। उस पर तेज़ धार थी और वह दूसरे वज्रकी तरह मजबूत और अजीब था। विचित्र कमलोंकी पंक्ति जैसे साफ अक्षरोंसे वह शोभता था। इस खड्गके धारण करने से वह सेनापति पंख वाले गरुड़ और कवच-धारी केशरी सिंह सा दीखने लगा। आकाशमें चमकने वाली बिजली की सी चपलतासे खड्गको फिराते हुए उसने रणक्षेत्रमें घोड़ेको हाँका। जलकान्त मणि जिस तरह जलको जुदा करती है; उसी तरह शत्रु सेनाको काई की तरह फाड़ता हुआ वह सेनापति रणभूमि में दाखिल हुआ।

जब सुषेण ने शत्रुओं को मारना आरम्भ किया, तब कितने ही शत्रु तो हिरनों की तरह डर गये; कितने ही पृथ्वी पर पड़े हुए खरगोश की तरह आँखे बन्द करके वहीं बैठ गये। कितने ही रोहित की तरह दुखित होकर वहीं खड़े रहे; कितने बन्दरों की तरह दरख्तों पर चढ़ गये; वृक्षों की पत्तियों की तरह कितनों ही के हथियार गिर गये; यशकी तरह कितनों ही के छत्र गिर पड़े: मन्त्र से वश किये हुए सर्पकी तरह कितनों ही के घोड़े निश्चल या अचल होगये और मिट्टीके बने हुओं की तरह कितनों ही के रथ टूट गये। अनजानों की तरह कोई किसी की राह देखने को खड़ा न रहा। सब म्लेच्छ अपने-अपने प्राण लेकर जहाँ जिसके सींग समाये भाग गया। जलके प्रवाह से जिस

तरह वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह सुषेण रूपी जलकी बाढ़से निर्बल हो, किरात कोसों दूर भाग गये। फिर कव्वों की तरह इकट्ठे हों, क्षणमात्र में विचार कर, घबराया हुआ बालक जिस तरह माँके पास आता है, उसी तरह महानदी के नजदीक आये और मृत्यु-स्नान करनेके लिये तैयार हो इस तरह उसके किनारों पर बिछौने बिछाकर बैठ गये। वहाँ उन्होंके नङ्गे और उतान हो मेघ मुख आदि नाग कुमार निकाय अपने कुल-देवताओं को याद कर अष्टम तप करने लगे। अष्टम तपके अन्तमें, मानों चक्रवर्त्ती के तेज से भीत हुए हों, इस तरह नाग कुमार प्रभृति देवताओं के आसन काँपे। अवधिज्ञानसे म्लेच्छों को इस तरह दुखी देखकर दुखित हुए पिताके समान उनके सामने आकर प्रकट हुए और आकाश में ठहर कर उन्होंने किरातों से कहा-"तुम्हारे मनमें किस बातकी चाहना है? तुम क्या चाहते हो?" आकाश में रहने वाले मेघ-मुख नागकुमार को देख, त्रसित हुए या डरे की तरह सिर पर हाथ रख कर उन्होंने कहा—"आज तक हमारे देश पर किसीने भी आक्रमण या हमला नहीं किया; लेकिन अभी कोई आया है, आप ऐसा उपाय कीजिये कि वह यहाँ से वापस चला जाय।"

किरातों की प्रार्थना सुन कर देवताओंने कहा—"किरातो! यह भरत नामका चक्रवर्त्ती राजा है, इन्द्र की तरह यह देव असुर और मनुष्यों से भी अजेय है; अर्थात् इसे सुर, असुर और नर कोई भी जीत नहीं सकते। टाँकियों से जिस तरह पहाड़ के

पत्थर नहीं टूटते ; उसी तरह पृथ्वी पर चक्रवर्त्ती राजा मंत्र, तंत्र विष, अस्त्र और विद्याओं से परास्त और अधीन किया जा नहीं सकता ; तथापि तुम्हारे आग्रह से हम कुछ उपद्रव करेंगे।" यह कहकर देवता अन्तर्द्धान होगये।

म्लेच्छों का किया हुआ उपद्रव।

क्षणमात्र में मानों पृथ्वी पर से उछल कर समुद्र आकाशमें आगये हों,इस तरह काजल जैसी श्याम कान्ति वाले मेघ आकाश में छागये। वे विजली रूपी तर्जनी अँगुली से चक्रवर्त्ती की सेना का तिरस्कार और उत्कट गर्जनासे वारम्वार आक्षेप कर उसका अपमान करते हुए से दीखते थे। सेना को चूर्ण करने के लिये, वज्रशिला जैसे महाराजा की छावनी पर तत्काल चढ़ आये और लोहेके अग्रभाग, वाण और डण्डों जैसी धाराओं से वरसने लगे। पृथ्वी चारों ओर से मेघ-जलसे भर उठी। उस जलमें रथ नावों की तरह तथा हाथी घोड़े मगर मच्छों से दीखने लगे। सूरज मानों कहीं भाग गया हो, पर्वत कहीं चले गये हों, इस तरह मेघों के अन्धकार से कालरात्रि या प्रलयका सा दृश्य होगया। उस समय पृथ्वी पर जल और अन्धकारके सिवा कुछ न दीखता था। इस कारण मानो एक समय युग्म धर्म वर्त्तते हों, ऐसा दीखने लगा। इस तरह अरिष्टकारक वृष्टि को देख कर चक्रवर्त्ती ने प्यारे सेवकके समान अपने हाथों से चर्म रत्न को स्पर्श किया। जिस तरह उत्तर दिशा की हवासे मेघ बढ़ता है, उस

तरह चक्रवर्ती के हस्तस्पर्श या हाथसे छू देने से चर्मरत्न बारह योजन या छियानवे मील बढ़ गया। समुद्र के बीचमें ज़मीन हो इस तरह जलके ऊपर रहने वाले चर्मरत्न पर महाराज सेना समेत रहे। फिर: प्रवाल या मूँगों से जिस तरह क्षीरसागर शोभता है, उस तरह सुन्दर कान्तिमयी सोने की नवाणु हजार शलाकाओं से शोभित, नालसे कमल की तरह, छेद और गाँठों रहित सरलता से सुशोभित, सोने के डण्डे से सुन्दर और जल, धूप, हवा और धूपसे रक्षा करने में समर्थ छत्ररत्न राजाके छूनेमात्र से चमरत्न की तरह बढ़ गया। उस छत्रद-एडके ऊपर अन्धकार नाश करने के लिए, सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी मणिरत्न स्थापित किया। छत्ररत्न और चर्म रत्न का वह संपूट तैरने वाले अण्डे की तरह दीखने लगा। उसी समय से दुनियाँमें ब्रह्माण्ड की कल्पना हुई। गृहिरत्न के प्रभाव से उस चर्मरत्न पर, जैसे अच्छे खेतमें वेरे ही बोये हुए अनाज शाम को पैदा हो जाते हैं; चन्द्र-सम्बन्धी महलों की तरह उसमें प्रातः कालको लगाये हुए कोहले, पालक और मूली प्रभृति सायंकाल को उत्पन्न होते हैं और सवेरे के वक्त के लगाये हुए केले आदिके फल-वृक्ष भी महान् पुरुषोंके आरम्भ के समान सन्ध्या समय फल जाते हैं। उसमे रहने वाले लोग पूर्वोक्त धान्य, साग और फलों को खाकर सुखी होते हैं और बग़ीचों में क्रीड़ा करने को जाकर रह गये हों, उस तरह कटक का श्रम भी न जानते थे मानों महलों में रहते हों उस तरह मर्त्य लोकके पति महाराज

भरत छत्ररत्न और चर्मरत्नके बीचमें परिवार सहित सुखसे रहने लगे। इस भाँति उसमें रहने पर; कल्पान्तकालकी तरह, अश्रांत वर्षा करने वाले नागकुमार देवताओं ने सात अहोरात्र—दिन-रात बिता दिये।

इसके बाद, 'यह कौन पापी मुझे ऐसा उपसर्ग करनेके लिए तैयार हुआ है' राजाके मनमें आये हुए ऐसे विचार को जानकर महा पराक्रमी और सदा पास रहनेवाले सोलह हजार यक्ष तैयार हुए, तरकश बाँधकर अपने धनुष सजाये और क्रोध रूपी अग्निसे शत्रुओं को जलाना चाहते हों, इस तरह होकर नाग कुमारों के पास आये और कहने लगे—"अरे शोक करने योग्य नाग कुमारो तुम अज्ञानी की तरह क्या पृथ्वीपति महाराज भरत को नहीं जानते ? यह राजा सारे संसार के लिये अजेय है, इस राजा पर किया हुआ उपद्रव, बड़े पर्वत पर दाँतों की चोट करने वाले हाथियों की तरह तुम्हारी ही विपत्ति का कारण होगा। अच्छा हो, यदि तुम खटमलों की तरह यहाँ से फौरन नौ दो ग्यारह हो जाओ, नहीं तो तुम्हारी जैसी पहले कभी नहीं हुई है, वैसी ही अपमृत्यु होगी।"

म्लेच्छों का अधीन होना।

ये बातें सुन कर आकुल व्याकुल हुए मेघमुख नागकुमारों ने ऐन्द्रजालिक जिस तरह अपने इन्द्रजाल का संहार करता है, बाज़ीगर अपनी माया का संहार करता है, उसी तरह क्षण भरमें ही मेघजल का संहार कर दियो। और 'तुम महाराज भरत की

शरण जाओ' इस तरह किरात लोगोंसे कहकर अपने अपने स्थानों को चले गये। देवताओंके वचन से भग्न मनोरथ होकर, दूसरी शरण न होने से, शरण के योग्य भरत महाराज की शरण में वेगये मेरू पर्वत के सार जैसी सुवर्ण राशि, और अश्वरत्नके प्रतिबिंब सदृश लाखों अश्व या घोड़े, उन्हों ने भरतराज की भेंट किये। फिर मस्तक पर अञ्जलि जोड़, सुन्दर वचन गर्भित वाणीसे वन्दीजनों के सहोदरों की तरह, ऊँचे स्वर से कहने लगे -हे जगत्पति! हे अखण्ड प्रचण्ड पराक्रमी! आपकी विजय हो, आपकी फतह हो, छः खण्ड पृथ्वी-मण्डल में आप इन्द्र के समान होओ। हे राजन्! हमारी पृथ्वी के क़िले जैसे वैताढ्य पर्वतके बड़े गुफा-द्वार को आपके सिवाय दूसरा कौन खोल सकता है? हे विजयी राजा! आकाश में ज्योतिश्चन्द्र की तरह, जल के ऊपर सारी सेनाका पड़ाव रखनेमें आपके सिवा दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? हे स्वामिन्! अद्भुत शक्ति होनेके कारण आप देवताओं से भी अजेय हो, यह बात हमें अब मालूम हुई है; इसलिये हम मूर्खों का अपराध क्षमा करें। हे नाथ! नया जन्म देने वाले अपने हाथ हमारी पीठ पर रक्खें। आजके दिन से हम आपकी आज्ञा में चलेंगे।' कृतज्ञ महाराज ने उनको अपने अधीन कर, उनका सत्कारकर बिदा किया।; उत्तम पुरुषोंके क्रोध की अवधि प्रणाम नमस्कार तक ही होती है; अर्थात् उत्तम पुरुष चाहे जैसे कुपित क्यों न हो, प्रणाम करते ही शान्त हो जाते हैं, उनका क्रोध काफूर हो जाता है। चक्रवर्त्ती की आज्ञा से सेनापति सुषेण पर्वत और

समुद्र की मर्य्यादा वाले सिन्धके उत्तर निष्कूट को विजय करके आया ; और अनार्य लोगों को अपनी संगति या सुहबत से आर्य बनाने की इच्छा करते हों इस तरह सुखोपभोग करते हुए चक्र-वर्त्ती वहाँ बहु काल तक रहे।

हिमाचल कुमार देव को साधना।

एक दिन दिग्विजय करने में ज़मानत-स्वरुप, तेजसे विशाल चक्ररत्न आयुधशाला से निकला और क्षुद्र हिमालय पर्वत पर की ओर, पूरब दिशाकी राहसे चला। जलका प्रवाह जिस तरह नीककी राहसे चलता है, उसी तरह चक्रवर्त्ती भी चक्रके मार्गसे चले। गजेन्द्रकी तरह लीलासे चलते हुए महाराज कितने ही कूचोंके बाद क्षुद्र हिमाद्रिके दक्षिण नितम्ब या दक्खन भागके निकट आये। भोजपत्र, तगर और देवदारुके वनसे आकूल उस भागके एक भाग पाण्डुक वनमें इन्द्रकी तरह महा-राजा भरतने अपनी छावनी डाली। वहाँ क्षुद्र हिमाद्रि कुमारदेव को उपदेश करके महाराजा भरतने अष्टम तप किया, क्योंकि कार्यसिद्धिमें तपही आदि मंगल है। रातका अवसान या अन्त होने पर, जिस तरह सूर्य पूरब समुद्रके बाहर निकलता है, उसी तरह अष्टमभक्तके अन्तमें तेजस्वी महाराज रथ पर चढ़कर कटक—क्षुद्र हिमालय पर्वतको रथके अगले भागसे तीन वार तड़ित किया। धनुर्धरकी वैशाख आकृतिमें रह कर तीरन्दाज़ के से पैंतरे बदल कर, महाराजने अपने नामसे अङ्कित बाण हिमाचल

कुमार पर छोड़ा। पक्षीकी तरह आकाशमें बहत्तर योजन या पाँच सौ छिहत्तर मील चलकर वह बाण उसके सामने गिरा। अङ्कुश को देखकर मतवाला हाथी जिस तरह कुपित होता है; उसी तरह शत्रु के बाणको देखकर उसके नेत्र लाल हो गये; परन्तु बाण को हाथमें लेते ही उसपर सर्पके समान भयकारक नामाक्षर पढ़कर, वह दीपकके समान शान्त हो गया, उसका क्रोध जाता रहा, गुस्सा हवा हो गया। इस कारण प्रधान पुरुषकी तरह उस बाणको साथ रख, भेंट ले वह भरतराजके पास आया। आकाशमे रह कर उच्चस्वरसे "जय जय" कह, बाणकारक पुरुष की तरह, उसने चक्रवर्त्तीको उनका बांण सोपा और पीछे देव-वृक्षके फलोंकी माला, गोशीर्ष चन्दन, सर्वौषधि और पद्मद्रहका जल—ये सब महाराजको भेंट किये, क्योंकि उसके पास यही चीज़ें सार थीं। इनके सिवा कड़े, बाजूबन्द और दिव्य वस्त्र भेंटके मिषसे दण्डमें महाराजको दिये और कहा—"हे स्वामिन्! उत्तर दिशा के अन्तमें, आपके चाकरकी तरह मैं रहूँगा।" इस प्रकार कह कर जब वह चुप हो गया तब महाराजने उसका सत्कार कर उसे विदा किया। इसके बाद, क्षुद्र हिमालयके शिखर और शत्रुओंके मनोरथ जैसा अपना रथ वहाँसे वापस लौटाया। इसके बाद ऋषभनन्दन ऋषभकूट पर्वत पर गये और हाथी जिस तरह अपने दाँतोसे पर्वत पर प्रहार या चोट करता है; उसी तरह रथ शीर्षसे तीन बार ताड़न किया। पीछे सूर्य जिस तरह किरणकेशको ग्रहण करता है; उस तरह चक्रवर्त्तीने, रथको

वहाँ ठहराकर, हाथमें कांकिणी रत्न ग्रहण किया। उस कांकिणी रत्नसे, उस पर्वतकी पूरबी चोटी पर उन्होंने लिखा—

"अवसर्प्पिणी कालके तीसरे आरेके प्रान्त भागमें, मैं चक्रवर्ती हुआ हूँ, ये शब्द लिखकर चक्रवर्ती अपनी छावनीमें आये और उसके लिए किये हुए अष्टम तपका पारणा किया। फिर हिमालय कुमारकी तरह, उस ऋषभकूटपतिका, चक्रवर्त्तीकी सम्पत्तिके योग अष्टान्हिका उत्सव किया।

नमि और विनमि के साथ युद्ध करना।

गंगा और सिन्धु नदीके बीचकी ज़मीनमें मानो समाते न हों इस कारण आकाशमें उछलने वाले घोड़ोंसे, सेनाके बोझसे ग्लानिको प्राप्त हुई पृथ्वी पर छिड़काव करना चाहते हों. ऐसे पदजलके प्रवाहको भराने वाले गन्धहस्तियोंसे, उत्कट चक्र-धार से पृथ्वीको सीमान्तसे भूषित करने वाले उत्तम रथोंसे, और मानो नराद्वैतको बताने वाले अद्वैत पराक्रमशाली भूमिपर फैलने वाले करोड़ों पैदलोंसे घिरे हुये चक्रवर्त्ती महाराज सवारोंका अनुसरण करके चलने वाले जात्यगजेन्द्रकी तरह, चक्रके अनुगत होकर, वैताढ्य पर्वत पर आये। जहाँ शबर स्त्रियाँ—भील रमणियाँ आदीश्वरके आनन्दित गीत गाती थीं, वहीं पर्वतके उत्तर भागमें महाराजने छावनी डाली। वहाँ रह कर भी उन्होंने नमि विनमि नामके विद्याधरों पर दण्ड माँगने-वाला बाण फैंका। बाणको देखते ही दोनों विद्याधरपति कोपाटोप कर—भयङ्कर क्रोधके आवेशमें आ, इस प्रकार विचार करने लगे

"जम्बूद्वीपके भरतखण्डमें यह भरतराज पहले चक्रवर्ती हुए हैं। ऋषभकूट पर्वत पर चन्द्रबिम्ब की तरह अपना नाम लिख कर, वापस लौटते हुए वे यहाँ आये हैं। हाथीके आरोहक या चढ़ने वाले की तरह उन्हों ने इस वैताढ्य पर्वत के पार्श्वभाग या बग़ल में डेरे डाले हैं। सर्वत्र विजय लाभ करने या सब जगह फतहयाबी हासिल करने की वजह से उन्हें अपने भुजबल का गर्व हुआ है; अतः वह अब अपने से भी जय प्राप्त करने की लालसा करते हैं—अपने ऊपर भी विजयी होना चाहते हैं। मैं समझता हूँ, इसी कारणसे उन्होंने यह उद्दंडदण्डरूप बाण अपने ऊपर छोड़ा है; इस तरह विचार कर दोनों ही युद्धके लिये तैयार हो, अपनी सेनासे पर्वत शिखर या पहाड़की चोटीको आच्छादन करने—ढकने लगे; अर्थात् पहाड़की चोटी पर ज़ोरसे फौजें इकट्ठी करने लगे। सौधर्म और ईशानपतिकी देव-सेनाकी तरह, उन दोनों की आज्ञासे विद्याधरोंकी सेना आने लगी। उनके किलकिला शब्दोंसे या किलकारियोंसे वैताढ्य पर्वत हँसता हुआ—गरजता हुआ और फटता हुआ सा जान पड़ता था। विद्याधरेन्द्रके सेवक वैताढ्य गिरिकी गुफाकी जैसी सोनेकी विशाल दुंदुभि या नगाड़ा बजाने लगे। उत्तर और दक्खन श्रेणीकी भूमि, गाँव और शहरके स्वामी या अधिपति, रत्नाकरके पुत्रोंकी तरह विचित्र-विचित्र रत्नाभरण धारण करके गरूड़ की तरह अस्खलित गतिसे आकाशमें चलने लगे। नमि विनमिके साथ चलते हुए वे उनकी तीसरी मूर्त्ति से दीखते थे। कोई विचित्र

माणिकोंकी प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करने वाले विमानों में बैठ कर, वैमानिक देवोंसे अलग न हो जायँ, इस तरह चलने लगे। कोई पुष्करावर्त्त मेघ जैसे मद विन्दुओंको बरसाने वाले और गर्जना करने वाले गन्धहस्ती पर बैठ कर चले। कोई सूर्य और चन्द्रके तेजसे व्याप्त हों ऐसे सोने और जवाहिरातसे बने हुए रथों पर सवार होकर चले। कितने ही आकाशमें सुन्दर चाल से चलने वाले और अत्यन्त वेगवान, वायुकुमार देव जैसे घोड़ों पर बैठ कर चलने लगे और कितने ही हाथोंमें हथियार ले, वज्र के कवच पहन, बन्दरोंकी तरह कूदते उछलते पैदल ही चलने लगे। इस तरह विद्याधरोंकी सेनासे घिरे हुए नमि विनमि वैताढ्य पर्वतसे उतर कर, महाराज भरतके पास आये।

नमि और विनमि का अधीन होना।

आकाशमें से उतरती हुई विद्याधरोकी सेना मणिमय विमानों से आकाशको बहुसूर्यमय प्रज्वलित तथा प्रकाशमान् अस्त्र शस्त्रों से विद्युतमय और उद्दाम दुंदुभि ध्वनिसे घोषमय करती हुई सी मालूम होती थी : अर्थात् विद्याधर-सेनाको आकाश से नीचे उतरती हुई देखने से ऐसा मालूम होता था, गोया आस्मानमें अनेक सूरज प्रकाश कर रहे हैं, बिजलियाँ चमक रही हैं और गरजना हो रही है। 'अरे दण्डार्थि' ओ दण्ड माँगनेवाले! तू हम लोगोंसे दण्ड लेगा?' यह कहते हुए, विद्यासे उन्मत्त और गर्वित उन दोनों विद्याधरोंने भरतपतिको युद्धके लिये ललकारा।

पीछे सेना सहित उन दोनोंके साथ अलगअलग और मिलकर, विविध प्रकारसे युद्ध होने लगा। क्योंकि जय लक्ष्मी युद्धसे ही उपार्जन करने योग्य है ; अर्थात विजय लक्ष्मी युद्धसे ही प्राप्त की जाती है। बारह वर्ष तक युद्ध करके, अन्तमें चक्रवर्ती ने उन दोनों विद्याधरोंको जीत लिया। पराजित होने के बाद, हाथ जोड़ और प्रणाम करके उन्होंने भरतेश्वरसे कहा—"हे कुल-स्वामी! सूर्यसे दूसरा अधिक तेजस्वी नहीं,वायुसे अधिक दूसरा वेगवान नहीं और मोक्षसे अधिक दूसरा सुख नहीं, उसी तरह आपसे अधिक दूसरा कोई शूरवीर नहीं। हे ऋषभपुत्र ! आज आपको देखने से हम साक्षात ऋषभदेवको ही देख रहे हैं। हमने अज्ञानतासे जो कष्ट आपको दिया है, उसके लिये क्षमा कीजिये; क्योंकि हमने आपको मूर्खतासे जागृत किया है। जिस तरह पहले हम ऋषभस्वामीके दास थे ; उसी तरह अबसे हम आपके सेवक हुए। क्योंकि स्वामीकी तरह, स्वामी पुत्र की सेवा भी लज्जाकारक नहीं होती। हे महाराज! दक्षिण औरउत्तर भरतार्द्ध के मध्यमें स्थित वैताढ्य पर्वतके दोनों ओर, दुर्गरक्षककी तरह, आपकी आज्ञामें रहेंगे।" इस तरह कहकर विनमि राजाने जो कि महाराजको कुछ भेंट देने की इच्छा रखते थे,मानो कुछ मांगना चाहते हों इस तरह, नमस्कार कर हाथ जोड़,—मानो स्थिर हुई लक्ष्मी हो ऐसी,स्त्रियोंमें रत्नरूप अपनी सुभद्रा नामक पुत्री चक्रवर्तीके अर्पण की।

मानो सूत लगा कर बनाई हो, ऐसी उसकी सम चौरस

आकृति थी ; त्रिलोकीके माणिक्योंके तेजपुञ्ज जैसी उसकी कान्ति थी, कृतज्ञ सेवकोंसे घिरी हुई की तरह वह यौवनावस्था तथा नित्य स्थिर रहने वाले शोभायमान केशों और नाखूनोंसे अतीव सुन्दरी मालूम होती थी, दिव्य औषधिकी तरह वह समस्त रोगोंको शान्त करने वाली थी और दिव्य जलकी तरह वह इच्छानुरूप शीत और उष्ण स्पर्श वाली थी। वह तीन ठौरसे श्याम, तीन ठौरसे सफेद और तीन ठौरसे ताम्र, तीन ठौरसे उन्नत, तीन ठौर से गम्भीर, तीन ठौरसे विस्तीर्ण, तीन ठौरसे दीर्घ और तीन ठौरसे कृश थी। अपने केश कलापसे वह मयूरके कलापको जीतती थी और ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाका पराभव करती थी। रति और प्रीति की क्रीड़ा वापिका सी उसकी सुन्दर दृष्टि थी। ललाटके लावण्य-जल की धारा सी उसकी दीर्घ और मनोहर नाक थी। नवीन दर्पके जैसे उसके मनोहर गाल थे। दो झूलोंके जैसे कन्धों तक पहुँचने वाले उसके दोनों कान थे। एक साथ पैदा हुए से विम्बाफल सदृश उसके दोनों होठ थे। हीरे की कनियोंकी शोभा को पराभव करने वाले उसके दाँत थे। पेटकी तरह उसके कण्ठमें तीन रेखायें थी। कमलनाल जैसी सरल और विषके समान कोमल उसकी भूजायें थी। कामदेव के कल्याण कलश जैसे दो स्तन थे। स्तनोंने उदरकी सारी पुष्टता हरली थी, इसलिये उसका उदर कृश और कोमल था। नदीके भँवरोंके समान उसका नाभिमण्डल था। नाभि रूपी वापिकाके किनारेके ऊपरकी दूर्वावली—दूब हो—ऐसी उसकी

रोमावली थी। कामदेवकी शय्याके जैसे उसके विशाल नितम्ब थे। हिडोलेके सुन्दर खम्भोंके जैसे उसके दोनो ऊरूदण्ड थे। हिरनीकी जाँघोंका तिरस्कार करने वाली उसकी दोनों जाघें थीं। मोथोंकी तरह उसके चरण भी कमलोंका तिरस्कार करने वाले थे। हाथों और पावोंकी अंगुलियोंसे वह पल्लवित लता सी दीखती थी। प्रकाशमान नखरूपी रत्नोंसे वह रत्नाचलकी तरी सी मालूम होती थी, विशाल, स्वच्छ, कोमल और सुन्दर वस्त्रोंसे वह मन्द मन्द वायुसे तरंगित सरिताके समान दीखती थी। स्वच्छ, कान्तिसे तरङ्गित सुन्दर सुन्दर अवयवोंसे वह अपने सोने और जवाहिरातके गहनोंकी खूबसूरतीको बढ़ाती थी। छायाकी तरह उसके पीछे-पीछे छत्रधारिणी स्त्रियाँ उसकी सेवा के लिये रहती थीं। दो हंसोंके बीचमें कमल जिस तरह मनोहर मालूम होता है, उसी तरह दो चँवरोंके अगल बग़ल फिरनेसे वह मनोमुग्धकर जान पड़ती थी। अप्सराओंसे लक्ष्मी की तरह और नदियोंसे जान्हवी—गंगाकी तरह वह सुन्दरी वाला, समान उम्र वाली हज़ारो सखियोंसे घिरी रहती थी।

नमि राजाने भी महामूल्यवान रत्न चक्रवर्त्तीको भेंट किये। क्योंकि स्वामी घर आवे तब महात्माओंको क्या आदेय है? इसके वाद महाराज भरतसे विदा होकर नमि, विनमि अपने राज्यमें आये और अपने पुत्रोंके पुत्रोंको राज्य सौंप, विरक्त हो, ऋषभदेव भगवानके चरण-कमलमें जा, व्रत ग्रहण किया।

गंगा देवीकी साधना करके उसके यहाँ रहना ।

वहाँसे चक्ररत्नके पीछे चलने वाले तीव्र तेजस्वी भरत महाराज गङ्गा तटके ऊपर आये। गंगा-तटके पासही महाराजने अपनी सेना सहित पड़ाव किया। महाराजाकी आज्ञासे सुषेण सेनापतिने सिन्धकी तरह, गङ्गोत्तरीके उत्तर निष्कुटको अपने अधीन किया। फिर चक्रवर्तीने अष्टम भक्तसे गङ्गा देवीकी साधना की। समर्थ पुरुषोंका उपचार तत्काल सिद्धिके लिये होता है। गंगा देवीने प्रसन्न होकर महाराजको दो रत्नमय सिंहासन और एक हजार आठ रत्नमय कुम्भ—घड़े दिये। गङ्गादेवी, रूप और लावण्यसे कामदेवको भी किंकर तुल्य करने वाले महाराजको देखकर क्षोभको प्राप्त हुई; अर्थात् वह महाराजका कामदेवको शर्माने वाला रूप-लावण्य देखकर उन पर आशिक हो गई। गङ्गादेवीने मुखचन्द्रको अनुसरण करने वाले मनोहर तारागण जैसे मोतियोंके गहने सारे शरीरमें पहने थे। केलेके अन्दरकी त्वचा या गाभे जैसे वस्त्र उन्होंने शरीरमें पहने थे। जो उसके प्रवाह जलके परिणामको पहुँचे जान पड़ते थे। रोमाञ्च रूपी कँचुकि या आँगीसे उसकी स्तनोंके ऊपरकी कंचुकि तड़ातड़ फटती थी और स्वयम्बरकी मालाकी तरह वे अपनी धवल दृष्टि महाराज पर फेंकती थीं। इस दशाको प्राप्त हुई गङ्गादेवीने क्रीड़ा करनेकी इच्छासे प्रेमपूरित गदगद् वाणीसे महाराज भरतकी बहुत कुछ खुशामद और प्रार्थना की और उन्हें

अपने रतिगृहमें ले गईं। वहाँ महाराजने उनके साथ नाना प्रकारके भोग-विलास किये और एक हजार वर्ष एक दिनकी तरह बिता दिये। शेषमें महाराजने गङ्गादेवीको समझा-बुझा कर उनसे विदा ली और रतिगृहसे बाहर आये। इसके बाद उन्होंने अपनी प्रबल सेनाके साथ खण्डप्रपाता गुफाकी ओर कूंच किया।

खंड प्रपाता खोलकर निकलना।

जिस तरह केशरी सिंह एक वनसे दूसरे वनमें जाता है; इसी तरह अखण्ड पराक्रमशाली चक्रवर्ती महाराज उस स्थानसे खण्डप्रपाताके नज़दीक पहुँचे। गुफासे थोड़ी दूर पर इस बलिष्ट राजाने अपनी छावनी डाली। वहाँ उस गुफाके अधिष्ठायक नाट्यमाल देवको मनमें याद कर उन्होंने अष्टम तप किया। इससे उस देवका आसन काँपने लगा। अवधिज्ञान से भरतचक्रवर्तीको आये हुए जान, जिस तरह क़र्ज़दार साहूकारके पास आता है, उसी तरह वह भेंट लेकर महाराजके सामने आया। महत् भक्तिवाले उस देवने छे खण्ड पृथ्वीके आभूषणरूप महाराजको अर्पण किये और उनकी सेवा बन्दगी स्वीकार की। नाटक कर चुके हुए नटकी तरह, नाट्यमाल देवको विचारशील चक्रवर्तीने प्रसन्न होकर विदा किया। और फिर पारणा कर उस देवका अष्टाह्निका उत्सव किया। इसके बाद चक्रवर्तीने सुषेण सेनापतिको खण्ड-

प्रपाता गुफा खोलनेका हुक्म दिया। सेनापतिने मंत्रके समान, नाट्यमाल देवको मनमें याद करके, अष्टमकर पौषधालय में पौषधव्रत ग्रहण किया। अष्टमके अन्तमें पौषधागारसे निकल कर प्रतिष्ठामें श्रेष्ठ आचार्य्य जिस तरह बलि-विधान करता है, उसी तरह बलि-विधान किया। फिर प्रायश्चित्त और कौतुक मंगलकर, थोड़ेसे कीमती कपड़े पहन, हाथमें धूपदानी ले, गुफाके पास जा, उसे देखते ही पहले नमस्कार कर, उसके द्वारकी पूजा की और वहाँ अष्टमंगलिक लिखे। इसके बाद किवाड़ खोलनेके लिये सात आठ कदम पीछे हटा। इसके बाद मानो किवाड़ खोलनेकी सुवर्णमय कुंजी हो, इस तरह दण्डरत्न ग्रहण किया और उससे द्वारपर प्रहार किया—चोटें मारी। सूर्यकी किरणोंसे जिस तरह कमल खिलता है; उसी तरह दण्डरत्नकी चोटोंसे दोनो द्वार खुल गये। गुफ़ाका द्वार खुलनेकी ख़बर महाराजको दी गई। समाचार मिलते ही हाथीके कन्धे पर सवार हो, हाथीके दाहने कुम्भस्थलके ऊँचे स्थान पर "मणिरत्न" रखकर महाराजने गुफामें प्रवेश किया। आगे-आगे महाराज और पीछे-पीछे फौज चलती थी। गुफामें अँधेरा था, इसलिये महाराज पहलेकी तरह काँकिणी रत्नसे मंडल बनाते हुए गुफामें चले। जिस तरह दो सखियाँ तीसरीसे मिलती हैं, उसी तरह गुफाकी पश्चिम ओर की दीवारमें से निकल कर, पूरबकी दीवारके नीचे होकर उन्मग्ना और निमग्ना नामकी दो नदियाँ गंगामें मिलती हैं। वहाँ

पहुँचते ही, पहले की तरह, दोनों नदियों पर पुलिया और पग-दण्डी बना, चक्रवर्त्ती सेना समेत पार हो गये। सेनाके शल्यसे दुखित हो वैताढ्य पर्वतने प्रेरणा की हो, इस तरह गुफाके दक्खन, द्वार तत्काल आप-से-आप खुल गये। केशरी सिंहके समान नरकेशरी भरत महाराज गुफाके बाहर निकले और गंगाके पश्चिमी किनारे पर उन्होंने पड़ाव डाला।

नौ निधानकी प्राप्ती।

वहाँ नौनिधानको उद्देश करके पृथ्वीपतिने पहलेके तपसे उपार्जन की हुई लब्धियोंसे होनेवाले लाभके मार्गको दिखाने वाला अष्टम तप किया। अष्टमके शेषमे नौनिधि प्रकट हुए और चक्रवर्त्तीके पास आये। उनमेंसे प्रत्येक निधि एक एक हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित थे। उन नौऊ निधियोंके नैसर्ग, पाँडुक, पिंगल, सर्वरत्नक, महापद्म, काल, महाकाल, माणव और शंखक ये नाम थे। आठ चक्रों पर वे प्रतिष्ठित थे। वे आठ योजन—चौंसठ मील ऊँचे, नौ योजन—बहत्तर मील विस्तृत और दश योजन—अस्सी मील लम्बे थे। वैडूर्यमणिके किवाड़ोंसे उनके मुँह ढके हुए थे। वे एक समान सुवर्ण और रत्नोंसे भरे हुए थे एवं उनपर चक्र, चन्द्र ओर सूर्यके चिह्न थे। उन निधियोंके नामानुसार पल्योपम आयुष्य वाले नागकुमार निकायके देव उनके अधिष्ठायक होकर रहते थे।

उनमेंसे नैसर्ग नामके निधिसे छावनी, शहर, गाँव, खान,

द्रोणमुख, मंडप और पत्तन आदि स्थानोंका निर्माण होता है; यानी ये सब स्थान तैयार होते हैं। पांडुक नामकी निधिसे मान, उन्मान और प्रमाण—इन सबकी गणित और बीज तथा धान्य या अनाजकी उत्पत्ति होती है। पिंगल नामकी निधिसे नर, नारी, हाथी और घोड़ोंके सब तरहके आभूषणोंकी विधि जानी जा सकती है। सर्वरत्नक नामकी निधिसे चक्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय और सात पंचन्द्रिय रत्न पैदा होते हैं। महापद्म नामकी निधिसे सब तरहके शुद्ध और रंगीन वस्त्र तैयार होते हैं। काल नामकी निधिसे भूत, भविष्यत और वर्तमान कालका ज्ञान, खेती प्रभृति कर्म एवं अन्य शिल्प—कारीगरीके कामोंका ज्ञान होता है। महाकालकी निधिसे प्रवाल—मूंगा, चाँदी, सोना, मोती, लोहा तथा लोह प्रभृति धातुओंकी खान उत्पन्न होती है। माणव नामक निधिसे योद्धा - आयुध, हथियार और कवच—ज़िरहवख्तरकी सम्पत्तियों तथा सब तरहकी युद्ध-नीति और दण्ड-नीति प्रकट होती हैं। नवीं शंखक नामकी महानिधिसे चार प्रकारके काव्योंकी सिद्धि, नाट्य—नाटककी विधि और सब तरहके बाजे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारके गुणोंवाली नौ निधियाँ आकर कहने लगीं कि, "हे महाभाग! हम गंगाके मुखमें मागधतीर्थकी निवासिनी हैं। आपके भाग्यके वश होकर, आपके पास आई हैं; इसलिये अपनी इच्छानुसार—अविश्रान्त होकर—हमारा आप भोग लीजिये और दीजिये। कदाचित समुद्र भी क्षयको प्राप्त हो जाय, समुद्र भी

घट जाय, पर हम कभी भी क्षयको प्राप्त नहीं होतीं। हममें कमी नहीं आती।" यह कह कर सारी निधियाँ—नौऊ निधियाँ महाराजके अधीन हो गईं। इसके बाद विकार-रहित राजाने पारणा किया, और वहीं उनका अष्टाह्निका उत्सव किया। महाराजकी आज्ञासे सुषेण सेनापति भी गंगाके दक्खिन निस्कूट को, छोटे भीलोंके गाँवकी तरह, लीलामात्रमें जीतकर आ गया। पूर्वापर समुद्रको लीलासे आक्रान्त करके रहनेवाला मानों दूसरा वैताढ्य पर्वत हो, इस तरह महाराज भी वहाँ बहुत समय तक रहे।

अयोध्याकी ओर प्रयाण

एक दिन सारे भारत क्षेत्रको साधन करने वाला भरत-पतिका चक्र अयोध्याकी ओर चला। महाराज भी स्नान कर, कपड़े पहन, वलिकर्म प्रायश्चित्त और कौतुक मंगल कर इन्द्रके समान गजेन्द्र पर सवार हुए। कल्पवृक्ष ही हों ऐसी नवनिधियोंसे पुष्ट भण्डार वाले, सुमंगलाके चौदह स्वप्नोंके अलग अलग फल हों ऐसे चौदह रत्नोंसे निरन्तर युक्त, राजाओंकी कुल-लक्ष्मी जैसी, जिन्होंने कभी सूरज भी आँखोंसे नहीं देखा, ऐसी अपनी व्याहता बत्तीस हज़ार राजकन्याओं सहित मानों अप्सरा हों ऐसी बत्तीस हज़ार देशोंसे व्याही हुई अन्य बत्तीस हज़ार सुन्दरी स्त्रियोंसे सुशोभित, सामन्त जैसे अपने आश्रित बत्तीस हज़ार राजाओं तथा विन्ध्याचल जैसे चौरासी लाख हाथियोंसे विराजित और मानों

समस्त जगतसे इकट्ठे किये हों ऐसे चौरासी लाख घोड़ों, उतने ही रथों और पृथ्वीको ढक देने वाले छियानवे करोड़ योद्धाओंसे घिरे हुए भरत चक्रवर्ती रवानः होनेके पहले दिनसे साठ हज़ारवें वरस चक्रके मार्गको अनुसरण करते हुए अयोध्या की ओर चले। इसका खुलासा यह है, कि महाराज जब अयोध्याको चले, तब नवनिधियोंसे भरे भण्डार, चौदह रत्न, बत्तीस हज़ार राजकन्यायें, अन्य बत्तीस हज़ार सुन्दरी स्त्रियाँ, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छियानवे करोड़ योद्धा और बत्तीस हज़ार सामन्त राजा— ये सब उनके साथ थे। वे प्रयाणके दिनसे ६० हज़ारवें वर्ष फिर अयोध्याको वापस लौटे।

रास्तेमें चलते हुए चक्रवर्त्ती, सेनासे उड़ी हुई धूलके स्पर्श से मलिन हुए खेचरोंको पृथ्वी पर लेटाये हों ऐसा कर देते थे; पृथ्वीके मध्य भागमें रहने वाले भवनपति और व्यन्तरोंको— सेनाके भारसे—पृथ्वीके फट पड़नेकी आशङ्कासे भयभीत कर देते थे; गोकुलमें विकस्वर दृष्टिवाली गोपाङ्गनाओंका माखन रूप अर्घ्य अमूल्य हो इस तरह भक्तिसे ग्रहण करते थे; वन-वनमें हाथियोंके कुम्भस्थलमें से पैदा हुए मोतियोंकी भीलोंद्वारा दी हुई भेंटको ग्रहण करते थे, पर्वत-पर्वतके राजाओं द्वारा आगे रखे हुए रत्न और सोनेकी खानोंके महत् सार को अनेक वार स्वीकार करते थे। मानों गाँव-गाँवमें उत्कण्ठित बान्धव हों, ऐसे गाँवके बड़े बूढ़ोंके नज़राने प्रसन्नतासे

स्वीकार करते और उन पर कृपा करते थे, खेतोंमे पड़ने वाली गायोंकी तरह, गावोंमें चारों ओर फैलने वाले सैनिकोंको अपने आज्ञारूपी उग्रदण्डसे रोकते थे, बन्दरोंकी तरह वृक्षोंपर चढ़ कर अपने तईं (महाराजके तईं) हर्ष-पूर्वक देखने वाले गाँवके बालकोंको पिताकी तरह प्रेमसे देखते थे, धन, धान्य और जीवनसे निरुपद्रवी गाँवोंकी सम्पत्तिको अपनी नीतिरूपी लता के फलरूपसे देखते थे; नदियोंको कीचयुक्त करते थे; सरोवरों सोखते थे और बावड़ी तथा कूओंको पाताल-विवरकी तरह खाली करते थे। दुर्विनीत शत्रुओंको शिक्षा देनेवाले महाराज भरत इस तरह मलय-पवनकी तरह लोगोंको सुख देते हुए और धीरे-धीरे चलते हुए अयोध्यापुरीके समीप आ पहुँचे। मानों अयोध्याका अतिथिरूप सहोदर हो, इस तरह अयोध्याके पासकी ज़मीनमें महाराजने पड़ाव डाला। फिर राज शिरोमणि भरतने राजधानीको मनमे यादकर उपद्रव रहित प्रीतिदायक अष्टम तप किया। अष्टम भक्तके अन्तमे पौषधालयसे बाहर निकल, अन्य राजाओंके साथ दिव्य भोजनसे पारणा किया।

अयोध्याकी विशेष शोभा।

इधर अयोध्यामे स्थान-स्थान पर, मानों दिग्दिगन्तसे आई हुई लक्ष्मीके खेलनेके झूले हो; ऐसे ऊंचे ऊंचे तोरण बँधने लगे। जिस तरह भगवानके जन्म समयमे देवता सुगन्धित जलकी वर्षा करते हैं, उसी तरह नगरके लोग प्रत्येक

राह-वाटमें केशरके जलसे छिड़काव करने लगे। मानों निधियाँ अनेक रूपसे आगे हो आगई हों, इस तरह मंच सोनेके खम्भोंसे बनवाने लगे। उत्तर कुरु देशमें पांच नदियोंके दोनों ओर रहने वाले दश दश सुवर्णगिरि शोभते हैं, इसी तरह राहकी दोनों ओर आमने-सामनेके मंच शोभने लगे। प्रत्येक मंचमें बाँधे हुए रत्न-मय तोरण इन्द्रधनुषकी श्रेणीकी शोभाका पराभव करने लगे और गन्धर्वोंकी सेना विमानोंमें बैठती हों, इस तरह गानेवाली स्त्रियाँ मृदंग और वीण बजानेवाले गन्धर्वोंके साथ, उन मंचों पर बैठने लगीं। उन मंचोंके ऊपरके चन्दवोंके साथ बंधी हुई मोतियोंकी झालरें, लक्ष्मीके निवास गृहकी तरह कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करने लगीं। मानो प्रमोदको प्राप्त हुई नगरदेवीका हास्य हो इस तरह चँवरोंसे, स्वर्गमण्डनकी रचना के चित्रोंसे, कौतुकसे आये हुए नक्षत्र—तारे हों ऐसे दर्पणोंसे, खेचरोंके हाथोंके रूमाल हों ऐसे वस्त्रोंसे और लक्ष्मीकी मेखला विचित्र मणिमालाओंसे नगरके लोग ऊँचे किये हुए खम्भोंमें हारकी शोभा करने लगे। लोगों द्वारा बाँधी हुई घुंघरुओं वाली पताकायें, सारस पक्षीके मधुर शब्द वाले शरद् ऋतुके समय को बनाने लगी। व्यापारी लोग हरेक दूकान और मन्दिरोंको यक्ष कर्दमके गोबरसे लीपने लगे और उनके आँगनोंमें मोतियोंके साथिये पूरने लगे। जगह-जगह अगरके चूर्णकी धूपका धूआँ ऊँचा उठ रहा था, इससे ऐसा जान पड़ता था, गोया स्वर्गको भी धूपित करनेकी इच्छा करते हैं।

इस तरह नगरके लोगोंकी सजायी हुई नगरीमें प्रवेश करने की इच्छासे पृथ्वीन्द्र चक्रवर्त्ती शुभ मुहूर्त्तमें मेघवत् गर्जना करनेवाले हाथी पर चढ़े। आकाश जिस तरह चन्द्रमण्डलसे शोभता है; उसी तरह कपूरके चूर्ण जैसे सफेद छत्रोंसे वे शोभते थे। दो चँवरोंके मिषसे, अपने शरीरोंको छोटा बनाकर, आई हुई गंगा और सिन्धुने उनकी सेवा की हो, ऐसा मालूम होता था। स्फटिक पर्वतोंकी शिलाओंमें से सार लेकर बनाये हो, ऐसे उज्वल, अति सूक्ष्म, कोमल और घन—ठोस कपड़ोंसे वे शोभते थे, मानों रत्नप्रभा पृथ्वीने प्रेमसे अपना सार अर्पण किया हो, ऐसे विचित्र रत्नालङ्कारोंसे उनके सारे अंग अलंकृत थे। फणों पर मणिको धारण करनेवाले नागकुमार देवोंसे घिरे हुए नागराजकी तरह, वे माणिक्यमय मुकुटवाले राजाओंसे घिरे हुए थे। जिस तरह चारण देवराज इन्द्रके गुणोंका कीर्त्तन करते हैं; उसी तरह जय जय शब्द बोलकर आनन्दकारी चारण और भाट उनके अद्‌भुत गुणोंका कीर्त्तन करते थे और मंगल बाजे प्रति शब्दके मिषसे, आकाश भी उनकी मंगल ध्वनि करता हुआ सा जान पड़ता था। इन्द्रके समान तेजस्वी और पराक्रमके भण्डार महाराज चलनेके लिए गजेन्द्रको प्रेरणा कर आगे चलने लगे। मानों स्वर्गसे उतरे हों अथवा पृथ्वी में से निकले हों; इस तरह बहुत समयके बाद आनेवाले राजाके दर्शन करनेकी इच्छासे दूसरे गाँवोंसे भी आदमी आये थे। महाराजकी सारी सेना और दर्शनार्थ आये हुए लोग—

इन दोनोंके इकट्ठे होनेसे, सारा मृत्युलोक एक स्थानमें पिण्डी-भूत हुआ सा जान पड़ता था। सेना और आये हुए लोगों की भीड़से उस समय तिलका दाना भी फेंकनेसे ज़मीन पर न पड़ता था। कितने ही लोग भाटोंकी तरह खड़े होकर खुशीसे स्तुति करते थे। कोई कोई चंचल भँवरोंकी तरह अपने वस्त्राञ्चलसे हवा करते थे। कोई मस्तक पर अञ्जलि जोड़ कर सूर्यकी तरह नमस्कार करते थे। कोई मालाकार रूपमें फल और फूल अर्पण करते थे। कोई कुलदेवकी तरह उनकी वन्दना करता था और कोई गोत्रके बूढ़े आदमीकी तरह उन्हें आशीर्वाद देता था।

अयोध्या नगरीमें प्रवेश।

जिस तरह ऋषभदेव भगवान् समवशरणमें प्रवेश करते हों, इस तरह महाराजने चार दरवाजेवाली अपनी नगरीमे पूरवी दरवाजेसे प्रवेश किया। लग्न-घड़ीके समय एक साथ बाजोंकी आवाज हो, इस तरह उस समय प्रत्येक मञ्च पर संगीत होने लगा। महाराज आगे चले, तब राजमार्गके घरोंमें रहनेवाली स्त्रियाँ हर्षसे वृष्टिके समान धानी उड़ाने लगीं। पुरवासियों द्वारा फूलोंकी वर्षासे ढका हुआ महाराजका हाथी पुष्पमय रथ-जैसा बन गया। उत्कंठित लोगोंकी अत्यन्त उत्कंठा देखकर चक्रवर्त्ती 'राजमार्गमें धीरे-धीरे चलने लगे। लोग हाथीसे न डर कर, महाराजके' पास आकर फल वगैरह

भेंट करने लगे। क्योंकि हर्ष ऐसा ही बलवान है। राजा हस्तीके कुम्भस्थलमें अंकुशकी ताड़ना करके उसे हर मंचके सामने खड़ा रखते थे। उस समय दोनो तरफके मंचोंके ऊपर, आगे खड़ी हुई सुन्दरी रमणियाँ एक साथ कपूरसे चक्रवर्त्ती की आरती उतारती थीं। दोनों तरफ आरती होनेसे, महाराज दोनों ओर सूर्य-चन्द्र धारण करने वाले मेरु पर्वतकी शोभा को हरण करते थे। अक्षतोंके साथ मोतियोसे भरे हुए थाल ऊँचेकर चक्रवर्त्तीको बधाई देनेके लिए दूकानोंके आगे खड़े हुए वणिक लोग उनको दृष्टिसे आलिङ्गन करते थे। राजमार्ग की बड़ी बड़ी हवेलियोंके दरवाज़ोंमे खड़ी हुई कुलीन स्त्रियों के किये हुए माँगलिकको महाराज अपने बहनोंके किये हुए माँगलिककी तरह मानते थे। दर्शनोंकी इच्छासे पीड़ित कितने ही लोगोको देखकर, वे अपना अभयप्रद हाथ ऊंचा करके छड़ीदारोंसे उनकी रक्षा करवाते थे। इस तरह चलते-चलते महाराजने अपने पिताके सतमञ्जिले महलमें प्रवेश किया। उस महलके आगेकी जमीनमें राजलक्ष्मीके क्रीड़ापर्वत—जैसे दो हाथी बँधे थे। दो चकवोंसे जिस तरह जल-प्रवाह शोभता है, उसी तरह दो सोनेके कुलड़ोंसे उस महलका विशाल द्वार सुशोभित था और इन्द्रनीलमणिसे बने हुए कंठाभरणकी तरह, आमके पत्तोंके मनोहर तोरण वन्दनवारोंसे वह राजमहल शोभता था। उसमें कितनी ही जगह मोतियोंसे, कितनी ही जगह कपूरसे और कितनी ही जगह चन्द्रकान्तमणिसे, स्वस्तिक

और मंगलिक किये गये थे। कहीं चीनी कपड़ोंसे, कहीं रेशमी कपड़ोंसे और कहीं दिव्य वस्त्रोंसे लगाई हुई पताकाओंकी पंक्तियोंसे वह महल शोभायमान था। उस महलके आँगनमे कहीं कपूरके पानीसे, कहीं फूलोंके रससे और कही हाथियोंके मद-जलसे छिड़काव किया गया था। उसके ऊपर जो सोनेके कलश रखे थे, उससे ऐसा मालूम होता था, गोया उनके मिशसे वहाँ सूर्यने विश्राम किया है। उस राजगृहके आँगनमे अग्र-वेदी पर अपने पैर जमाकर छड़ीदारने हाथका सहारा देकर महाराजको हाथीसे उतारा और प्रथम आचार्यके समान अपने सोलह हजार अंगरक्षक देवोंका पूजन कर महाराजने उन्हें बिदा किया। इसी तरह बत्तीस हज़ार राजे, सेनापति, प्रोहित, गृहपति और वर्द्धकिको भी महाराजने विसर्जन किया। हाथियोंको जिस तरह आलान—स्तम्भसे बाँधनेकी आज्ञा देते हैं; उसी तरह तीनसौ तिरेसठ रसोइयोंको अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। उत्सवके अन्तमें अतिथिकी तरह सेठोंको, *श्रेणी-प्रश्रेणियोंको, दुर्गपालों और सार्थवाहोंको भी जाने की छुट्टी दी। पीछे इन्द्राणीके साथ इन्द्रकी तरह, स्त्रीरत्न सुभद्राके साथ बत्तीस हज़ार राजकुलमें जन्मी हुई रानियोंके साथ उतनी ही; यानी बत्तीस हज़ार देशके अगेवानोंकी कन्याओंके साथ बत्तीस-बत्तीस पात्रवाले उतने ही नाटकोंके साथ मणिमय शिलाओंकी पंक्तिपर दृष्टि

* माली वगैरः नौ जातियाँ श्रेणी कहलाती हैं और घांची प्रभृति नौ जातियाँ, प्रश्रेणी कहलाती हैं।

फेंकते हुए महाराजने, यक्षपति कुवेर जिस तरह .कैलाशमें प्रवेश करते हैं ; उसी तरह उत्सवके साथ राजमहलमें प्रवेश किया । वह क्षणभर पूरबकी तरफ मुँह करके सिंहासन पर बैठे और कितनी ही सत्कथाएं करके स्नानागार या गुशलखानेमें गये। हाथी जिस तरह सरोवरमें स्नान करता है, उसी तरह स्नान करके परिजनोंके साथ अनेक प्रकारके रसोंवाले आहारका भोजन किया। पीछे योगी जिस तरह योग मे काल निर्गमन करता है—समय बिताता है; उसी तरह राजा ने नवरस पूर्ण नाटकों और मनोहर संगीतमे कितनाही समय बिताया ।

चक्रवर्तीका राज्याभिषेकोत्सव ।

एक समय सुरनरोंने आकर प्रार्थना की कि महाराज! आपने विद्याधरपति समेत षट्खण्ड पृथ्वीका साधन किया है—छहों खण्ड मही जीत ली है ; इस कारण हे इन्द्रके समान पराक्रमशाली ! अगर आप हमे आज्ञा दें, तो हम स्वच्छन्दतापूर्वक आपका महाराज्याभिषेक करें । महाराजने आज्ञा दे दी,--तब देवताओंने शहरके वाहर ईशान कोणमें, सुधर्मा सभाके एक खण्ड जैसा मण्डप बनाया । वे सरोवर, नदियाँ समुद्र और अन्यान्य तीर्थोंसे जल, औषधि और मिट्टी लाये । महाराजने पौषधालयमें जाकर अष्टम तप किया, क्योंकि तपसे मिला हुआ राज्य तपसे ही सुखमय रहता है। अष्टम तप पूर्ण होनेपर

अन्तःपुर और परिवारसे घिर कर हाथी पर बैठे और उस मण्डपमें गये। फिर अन्तःपुर और हज़ारों नाटकोके साथ उन्होंने उच्च रूपसे बनाये हुए अभिषेक-मण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ स्नान-पीठमें सिंहासन पर चढ़े, उस समय हाथीके पर्वत-शिखर पर चढ़नेका सा दृश्य हुआ। मानों इन्द्रकी प्रीतिके लिये हो, इस तरह वे पूरब दिशाकी ओर मुंह करके रत्नसिं-हासन पर बैठे। थोड़ेही हों इस तरह बत्तीस हज़ार राजा लोग उत्तर ओरकी सीढ़ियोंसे स्नान-पीठ पर चढ़े और चक्र-वर्त्तीके पास भद्रासनोंपर हाथ जोड़कर उसी तरह बैठे, जिस तरह देवता इन्द्रके सामने हाथ जोड़कर बैठते हैं। सेनापति, गृहपति, वर्द्धकि, पुरोहित और सेठ-साहूकार प्रभृति दक्खनकी सीढ़ियोसे स्नान-पीठ पर चढ़े। मानों चक्रवर्त्तीसे प्रार्थना करनेकी इच्छा रखते हों, इस तरह अपने योग्य आसनों पर हाथ जोड़कर बैठ गये। पीछे आदिदेवका अभिषेक करनेके लिये इन्द्र आये हों उस तरह इस नरदेवका अभिषेक करनेके लिये उनके आभियोगिक देव निकट आये। जलपूर्ण होनेसे मेघ जैसे, मानों चकवा पक्षी हो इस तरह मुख भाग पर कमल वाले और भीतरसे जल गिरते समय बाजेकी सी आवाज़ करने वाले स्वाभाविक और वैक्रियक रत्न कलशोंसे वे सब महा-राजका अभिषेक करने लगे। मानों अपने ही नेत्र हों ऐसे जल से भरे हुए कलशोंसे बत्तीस हज़ार राजाओंने, शुभ मुहूर्त्तमें उनका अभिषेक किया और अपने सिरपर कमल कोषकी तरह

हाथ जोड़े और "आपकी जय हो, आप विजयी हों" कहकर चक्रवर्त्तीको बधाने लगे। इसके बाद सेनापति और सेठ प्रभृति जलसे अभिषेक करके उस जलके जैसे उज्ज्वल वाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने पवित्र रोएं वाले कोमल गंध-कषायी वस्त्रसे, माणिक्यकी तरह, उनका शरीर पोंछ कर साफ किया तथा गेरू जिस तरह सोनेकी कान्तिको पोषण करता है, उसकी कान्तिको बढ़ाता है, उस तरह शरीरकी कान्तिको पोषण करनेवाले गोशीर्ष चन्दनका लेप महाराजने अंगमें किया। इन्द्रने जो मुकुट ऋषभ-स्वामीको दिया था, दैवताओंने वही मुकुट अभिषिक्त और राजाओंमें श्रेष्ठ चक्रवर्त्तीके सिर पर रखा। उनके मुख-चन्द्रके पास रहने वाले चित्रा और स्वाती नक्षत्र जैसे रत्नोंके कुण्डल उनके दोनों कानोमे पहनाये। जिसमें धागा नहीं दीखता, जो मानों हारके रूपमें ही पैदा हुआ हो, ऐसा सीपके मोतियोंका हार उनके गलेमें पहनाया। मानों सब अलङ्कारोंका हार रूप राजाका युवराज हो ऐसा एक सुन्दर अर्द्धहार उनके उरस्थल या छाती पर पहनाया, मानों कान्ति-मान अभ्रकके सम्पुट हों ऐसे उज्ज्वल कान्तिसे शोभने वाले देवदूष्य वस्त्र महाराजको पहनाये। और मानों लक्ष्मीके उरस्थल रूपी मन्दिरकी कान्तिमय किले जैसी एक सुन्दर फूलोंकी माला उनके कण्ठमें पहनाई। इस प्रकार कल्पवृक्षके जैसे अमूल्य कपड़े और माणिकके गहने पहन कर महाराजाने स्वर्गखण्डकी तरह उस मण्डपको सुशोभित किया। फिर समस्त पुरुषोंमें

अग्रणी और महा बुद्धिमान् महाराजने छड़ीदार द्वारा सेवक पुरुषोंको बुलवा कर हुक्म दिया—"हे अधिकारी पुरुषों! तुम हाथी पर बैठ और सब जगह घूम घूम कर इस विनीता नगरी को बारह बरसके लिए किसी भी प्रकारको जकात-चुंगी, महसूल, कर, दण्ड, कुदण्ड और भयसे रहित कर सुखी करो।" अधिकारियोंने तत्काल उसी तरह उद्घोषण कर, ढिंढोरा पीट, महाराजके हुक्मकी तामील की। कार्यसिद्धिमे चक्रवर्तीकी आज्ञा पन्द्रहवाँ रत्न है।

इसके बाद महाराजा रत्नमय सिंहासनसे उठे। उनके साथ उनके प्रतिबिम्बकी तरह और सब लोग भी उठे। पर्वतके जैसी स्नान-पीठ परसे भरतेश्वर अपने आनेके मार्गसे नीचे उतरे। साथ ही और लोग भी अपने अपने रास्तेसे उतरे। फिर मानों अपना असह्य प्रताप हो, ऐसे उत्तम हाथी पर बैठ चक्रवर्ती अपने महलमें पधारे। वहाँ स्नानघर या ग़ुशलख़ानेमें जाकर, निर्मल जलसे स्नान कर उन्होंने अष्टम भक्तका पारणा किया। इस तरह बारह वर्षमें अभिषेकोत्सव समाप्त हुआ। तब चक्रवर्त्तीने स्नान, पूजा, प्रायश्चित्त और कौतुक मंगल कर, बाहरके सभास्थानमें आ, सोलह हज़ार आत्मरक्षक देवोंका सत्कार कर उनको विदा किया। फिर विमानमें रहने वाले इन्द्रकी तरह महाराजा अपने उत्तम महलमें रह कर विषय-सुख भोगने लगे।

महाराजकी आयुधशाला या अस्त्रागारमें चक्र, छत्र, खड्ग और दण्ड—ये चार एकेन्द्रिय रत्न थे। जैसे रोहणाचलमें माणिक्य भरे रहते हैं, वैसेही उनके लक्ष्मीगृहमें कांकिणीरत्न, चर्म

रत्न, मणिरत्न और नवों निधियाँ वर्तमान थीं। उन्हींकी नगरी में उत्पन्न हुए सेनापति, गृहपति, पुरोहित और वर्द्धकि—ये चार नर-रत्न थे। वैताढ्य-पर्वतके मूलमें उत्पन्न होनेवाले गजरत्न और अश्वरत्न तथा विद्याधरोंकी उत्तम श्रेणीमें उत्पन्न स्त्री-रत्न भी उन्हें प्राप्त थे। उनकी मूर्त्ति नेत्रोंको आनन्द देनेवाली तथा चन्द्रमाकी तरह शोभायमान थी। अपने असहनीय प्रतापके कारण वे सूर्यके समान चमक रहे थे। जैसे समुद्रके मध्यभागमें क्या है, यह कोई जल्दी नहीं जान पाता, वैसे ही उनके हृदयमें क्या है, यह बात कोई शीघ्र नहीं मालूम कर पाता था। उन्हें कुबेर की तरह मनुष्यों पर स्वामिता मिली हुई थी। जम्बूद्वीप, जैसे गङ्गा और सिन्धु आदि नदियोंसे शोभा पाता है, वैसेही वे भी पूर्वोक्त चौदहों रत्नोंसे शोभित थे। विहार करते हुए ऋषभप्रभुके चरणोंके नीचे जैसे नव सुवर्ण-कमल रहते हैं, वैसे ही उनके चरणों के नीचे नवों निधियाँ निरन्तर पड़ी रहती थीं। वे सदा सोलह हज़ार पारिपार्श्वक देवताओंसे घिरे रहते थे, जो ठीक बड़े दामों पर खरीदे हुये आत्मरक्षकसे मालूम पड़ते थे। बत्तीस हज़ार राजकन्याओंकी भांति बत्तीस हज़ार राजागण निर्भर भक्तिके साथ उनकी उपासना करते रहते थे। बत्तीस हज़ार नाटकोंकी तरह बत्तीस हज़ार देशोंकी बत्तीस हज़ार राजकन्याओंके साथ वे रमण किया करते थे। संसारके वे श्रेष्ठ राजा तीन सौ तिरेसठ दिनोंके वर्षकी भाँति तीन सौ तिरेसठ रसोइदारों से सेवित थे। अठारह लिपियोंका प्रवर्त्तन करनेवाले भगवान्

ऋषभदेवकी भाँति उन्होंने भी संसारमे अठारह श्रेणी-प्रश्रेणि-योंका व्यवहार चलाया था। चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ, छियानवे करोड़ अशिक्षितों तथा इतने ही पैदल सिपाहियोंसे वे शोभित थे। बत्तीस हज़ार देश और बहत्तर हज़ार बड़े-बड़े नगरोंके वे अधिपति थे। निन्नानवे हज़ार द्रोणमुख और अड़तालीस हज़ार किलेबन्द शहरोंके अधिपति थे। आडम्बर-युक्त लक्ष्मीवाले चौबीस हज़ार करबट, चौबीस हज़ार मण्डप और बीस हज़ार खानोंके वे मालिक थे। सोलह हज़ार खेड़ो (ज़िलो) के वे शासनकर्त्ता थे। चौदह हज़ार संवाद तथा छप्पन द्वीपोंके वे ही प्रभु थे। उनचास छोटे-छोटे राज्योंके वे नायक थे। इस प्रकार वे इस समस्त भरत-क्षेत्रके शासन-कर्त्ता स्वामी थे।

इस प्रकार अयोध्या नगरीमें अखण्डित आधिपत्य चलाने-वाले महाराजने अभिषेकोत्सव समाप्त हो जानेपर एक दिन अपने सम्बन्धियोंका स्मरण किया। तत्काल ही अधिकारी पुरुषोंने साठ हज़ार वर्षसे महाराजके दर्शनोंके लिये उत्सुक बने हुए सब सम्बन्धियोंको उन्हें ला दिखलाया। उनमें सबसे पहले बाहुबलीके साथ जन्मी हुई, गुणोंसे सुन्दर बनी हुई सुन्दरीका नाम पहले बतलाया। वह सुन्दरी गरमीके दिनोंमें पतली धारवाली नदीकी तरह दुबली, पालेकी मारी कमलिनी की तरह कुम्हलायी हुई, हेमन्त ऋतुकी चन्द्रकलाकी तरह नष्ट लावण्यवती थी और शुष्क पत्रोंवाली कदलीकी तरह उसके गाल

फीके और कृश हो गये थे। सुन्दरीकी यह बदली हुई सूरत देख कर महाराजने क्रोधके साथ अपने अधिकारियोंसे कहा,—"ऐं! यह क्या? क्या मेरे घरमें अच्छा अनाज नहीं है? लवण-समुद्रमें लवण नहीं रह गया? सब रसोंके जानने वाले रसोइये नहीं हैं? अथवा तुम लोग निरादर-युक्त और कामके चोर हो गये हो? क्या दाख और खजूर आदि खाने लायक़ मेवे अपने यहां नहीं हैं? सुवर्ण-पर्वतमें सुवर्ण नहीं रह गया? बग़ीचोंके वृक्ष क्या अब फल नहीं देते? क्या नन्दन वनके वृक्ष भी अब नहीं फलते? घड़ेके समान थनोंवाली गायें क्या अब दूध नहीं देतीं? क्या कामधेनुके स्तनोंका प्रवाह भी सूख गया? अथवा इन सब खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थोंके रहते हुए भी सुन्दरी किसी रोगसे पीड़ित होनेके कारण खाती ही नही है? यदि इस के शरीरमें ऐसा कोई रोग हो गया है, जो कायाके सौन्दर्यका नाश करने वाला है, तो क्या हमारे यहाँके सब वैद्य मर गये हैं? यदि अपने घरमें दिव्य औषधि नहीं रही, तो क्या आजकल हिमाद्रि पर्वत भी औषधि-रहित हो गया है? अधिकारियों! मैं इस दरिद्रीकी पुत्रीकी तरह दुबल बनी हुई सुन्दरीको देख कर बहुत ही दुःखित हुआ। तुम लोगोंने मुझे शत्रुकी तरह धोखा दिया।"

भरत-पतिको इस प्रकार क्रोधसे बोलते देख, अधिकारियोंने प्रणाम कर कहा,—"महाराज! स्वर्ग-पतिकी तरह आपके घरमें सब कुछ मौजूद है। परन्तु जबसे आप दिग्विजय करने चले

गये, तबसे यह सुन्दरी केवल प्राणरक्षणके निमित्त आम्बिल तप * कर रही है। आपने इसे दीक्षा लेनेको मना कर दिया था, इसीलिये यह भावदीक्षित होकर रहती आयी है।"

यह सुन, राजाने सुन्दरीकी ओर देखकर पूछा,—"हे कल्याणी! क्या तुम दीक्षा लेना चाहती हो?"

सुन्दरीने कहा,—"हाँ!"

यह सुन, भरतरायने कहा,—"ओह! केवल प्रमाद और सरलताके कारण मैं अबतक इसके व्रतमें विघ्नकारी बनता आया। यह बेटी तो ठीक पिताजीके ही समान निकली और मैं उन्हींका पुत्र होकर सदा विषयोंमें आसक्त और राज्यमें अतृप्त बना रहा। यह आयु समुद्रकी जलतरंगकी तरह नाशवान् है, परन्तु विषय-भोगमें पड़े हुए मनुष्य इसे नहीं जानते। देखते-ही-देखते नाशको प्राप्त हो जानेवाली बिजलीके सहारे जैसे रास्ता देख लिया जाता है, वैसे ही इस चंचल आयुमें भी साधु-जनोंको मोक्षकी साधना कर लेनी चाहिये। मांस, विष्ठा, मूत्र, मल, प्रस्वेद और व्याधियोंसे भरे हुए शरीरको सँवारना—सिंगारना क्या है, घरकी मोरीका श्रृङ्गार करना है। प्यारी बहन! शाबाश! तुम धन्य हो, कि इस शरीरके द्वारा मोक्षरूपी फलको उत्पन्न करनेवाले व्रतको ग्रहण करनेकी इच्छा तुम्हारे मनमे उत्पन्न हुई। चतुर लोग खारी समुद्रमेंसे भी रत्न निकाल लेते हैं।" यह कह, महा-

---

* एक धार्मिक व्रत, जिसमें खट्टे, चरपरे, गरम और भारी पदार्थ नहीं खाये जाते।

राजने हर्षित हृदयसे सुन्दरीको दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दी। इस आज्ञाको पाकर वह सुन्दरी, जो तपसे कृश हो रह थी, ऐसी हर्षित हुई, कि आनन्दके उच्छ्वासके मारे वह हृष्ट-पुष्ट मालूम पड़ने लगी।

इसी समय जगत्‌रूपी मयूरको मेघके समान हर्ष देनेवाले भगवान् ऋषभ-स्वामी विहार करते हुए अष्टापद गिरिपर आ पहुँचे। उस पर्वतके ऊपर देवताओंने रत्न, सुवर्ण और चाँदीका मानों दूसरा पर्वत ही हो, ऐसा उत्तम समवशरण बनाया। उसी में बैठ कर प्रभु देशना देने लगे। गिरिपालकोंने तत्काल भरत-पतिसे आ कर यह बात कही। यह वृत्तान्त श्रवण कर मेदिनी-पतिको उससे भी अधिक आनन्द हुआ, जितना उन्हें भरत-क्षेत्रके छओं खण्डों पर विजय प्राप्त करनेसे होता। स्वामीके आगमनका समाचार सुनाने वाले सेवकोंको उन्होंने साढ़े बारह करोड़ मुहरें इनाममें दी और सुन्दरीसे कहा,—"देखो, तुम्हारे मनोरथके मूर्त्तिमान् स्वरूप जगद्गुरु विहार करते हुए यहीं आ पहुँचे हैं।" इसके बाद चक्रवर्त्तीने दासीजनोंकी तरह अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे सुन्दरीका निष्क्रमणाभिषेक करवाया। सुन्दरीने स्नान कर, पवित्र विलेपन लगा, मानों दूसरा विलेपन किया हो ऐसी उज्जल किनारीदार साड़ी तथा उत्तम रत्नालङ्कार पहन लिये। यद्यपि उसने शीलरूपी सर्वोत्तम अलङ्कार धारण कर ही रखा था, तथापि आचारकी रक्षाके लिये उसने अन्य अलङ्कार भी पहन लिये। उस समय रूप सम्पत्तिसे सुशोभित सुन्दरी

आपकी स्तुति करते हैं, वे आवागमनके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं; फिर जो आपकी सेवा और ध्यान करते हैं, उनका तो कहना ही क्या है?”

इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करनेके बाद नमस्कार कर, भरतेश्वर ईशान-कोणमे योग्य स्थान पर जा बैठे। तदनन्तर सुन्दरी, भगवान् वृषभध्वजको प्रणाम कर, हाथ जोड़े, गद्गद वचनोंसे बोली,—“हे जगत्पति! इतने दिनों तक मैं मन-ही-मन आपका ध्यान कर रही थी; पर आज बड़े पुण्योंके प्रभावसे मेरा ऐसा भाग्योदय हुआ, कि मैं आपको प्रत्यक्ष देख रही हूँ। इस मृगतृष्णाके समान झूठे सुखोंसे भरे हुए संसार रूपी मरूदेशमें आप अमृतकी झीलोंके समान हम लोगोंके पुण्यसे ही प्राप्त हुए हैं। हे जगन्नाथ! आप ममरहित हैं, तो भी आप जगत पर वात्सल्य रखते हैं, नहीं तो इस विषम दुःखके समुद्रसे उसका उद्धार क्यों करते हो? हे प्रभु! मेरी बहन ब्राह्मी, मेरे भतीजे और उनके पुत्र —ये सब आपके मार्गका अनुसरण कर कृतार्थ हो चुके हैं। भरतके आग्रह से ही मैंने आज तक व्रत नहीं ग्रहण किया, इसलिये मैं स्वयं ठगी गयी हूं। हे विश्वतारक! अब आप मुझ दीनाको तारिये। सारे घरको प्रकाश करने वाला दीपक क्या घड़ेको प्रकाश नहीं करता? अवश्य करता है। इसलिये हे विश्व-रक्षा करनेमें प्रीति रखने वाले! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो और मुझे संसार-समुद्रसे पार उतारने वाली नौकाके समान दीक्षा दीजिये।

सुन्दरीकी यह बात सुन कर प्रभुने "हे महासत्वे! तू धन्य है," ऐसा कह सामायिक सूत्रोचार-पूर्वक उसे दीक्षा दी। इसके बाद उन्होंने उसे महाव्रत रूपी वृक्षोंके उद्यानमें अमृत की नहरके समान शिक्षा मय देशना सुनाई, जिसे सुनकर वह महामना साध्वी अपने मनमें ऐसा मान कर मानों उसे मोक्ष प्राप्त ही होगया हो, बड़ी बड़ी साध्वियोंके पीछे अन्य *व्रतिनी-गण के बीचमें जा बैठी। प्रभुकी देशना सुन, उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर, महाराज भरतपति हर्षित होते हुए अयोध्या-नगरी में चले आये।

वहाँ आते ही अधिकारियोंने अपने सब सज्जनोंको देखने की इच्छा रखने वाले महाराजको उन लोगोंको दिखला दिया, जो आये हुए थे और जो लोग नहीं आये थे उनकी याद दिला दी। तब महाराज भरतने उन भाइयोंको बुलानेके लिये अलग-अलग दूत भेजे, जो अभिषेक-उत्सवमें नहीं आये हुए थे। दूतोंने उनसे जाकर कहा,—"यदि आप लोग राज्य करनेकी इच्छा करते हैं, तो महाराज भरतकी सेवा कीजिये।" दूतोंकी बात सुन, उन लोगोंने विचार कर कहा,—"पिताने भरत और सब भाइयोंके बीच राज्यका बँटवारा कर दिया था। फिर यदि हम उसकी सेवा करें तो, वह हमें अधिक क्या दे देगा? क्या वह सिर पर आयी हुई मृत्युको टाल सकेगा? क्या वह देहको जर्जर करने वाली जरा-राक्षसीको दबा सकता है? क्या वह पीड़ा देने

* व्रतिनी-गण—साध्वियोंका समूह।

वाली व्याधि-रूपी व्याधोंको मार सकेगा? अथवा उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तृष्णाको चूर्ण कर सकेगा? यदि हमारी सेवाके बदलेमें वह इस तरहका कोई फल हमें नहीं दे सकता, तो फिर इस संसारमें, जहाँ सब मनुष्य समान हैं, कौन किसकी सेवा करे? उनको बहुत बड़ा राज्य मिल गया है, तो भी यदि उन्हें सन्तोष नहीं होता और वे बल पूर्वक हमारा राज्य छीन लेना चाहते हैं, तो हम भी एक ही बापके बेटे हैं; पर चूँकि तुम्हारे स्वामी हमारे बड़े भाई हैं, इसलिये हम बिना पिताजीको यह सब हाल सुनाये, उनके साथ युद्ध करनेको नहीं तैयार हैं। दूतोंसे ऐसा कह कर, ऋषभदेव जी के वे ९८ पुत्र, अष्टापद-पर्वतके ऊपर समवशरण के भीतर विराजने वाले ऋषभ-स्वामीके पास आये। वहाँ पहुँचते ही प्रथम तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर उन्होंने परमेश्वरको प्रणाम किया। इसके बाद हाथ जोड़े हुए वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे।

"हे प्रभो! जब देवता भी आपके गुणोंको नहीं जान सकते, तब दूसरा कौन आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सकता है? तो भी अपनी बाल-चपलताके कारण हम लोग आपकी स्तुति करते हैं। जो सदा आपको नमस्कार किया करते हैं, वे तपस्वियोंसे बढ़ कर हैं और जो तुम्हारी सेवा करते हैं, वे तो योगियोंसे भी अधिक हैं। हे विश्वको प्रकाशित करने वाले सूर्य! प्रति दिन आपको नमस्कार करने वाले जिन पुरुषोंके मस्तक पर आपके चरण-नखकी किरणें आभूषण-रूप होकर

चमकती हैं, वे धन्य हैं। हे जगत्पति! आप किसीसे कुछ भी साम या बलके द्वारा ग्रहण नहीं करते, तो भी आप त्रैलोक्य चक्रवर्त्ती हैं। हे स्वामिन्! सारे जलाशयके जलमें रहने वाले चन्द्रबिम्बकी तरह आप एक समान सारे जगत्‌के लोगोंके चित्तमें निवास करते हैं। हे देव! आपकी स्तुति करने वाला पुरुष सबको स्तुति करने योग्य हो जाता है, आपकी पूजा करने वाला सबसे पूजा पाने योग्य हो जाता है, आपको नमस्कार करने वाला सबके द्वारा नमस्कृत होने योग्य हो जाता है, इसीलिये आपकी भक्ति उत्तम फलोंको देने वाली कही जाती है। दुःखरूपी दावानलसे जलते हुए जनोंके लिये आप मेघके समान और मोह-रूपी अन्धकारमे मूर्ख बने हुए लोगोंके लिये दीपक-स्वरूप हैं। पथके छायायुक्त वृक्षकी भाँति आप राजा, रङ्क, मूर्ख और गुणवान् सबके लिये समान उपकारी हैं।" इस प्रकार स्तुति कर वे सबके सब प्रभुके चरणकमलोंमें अपनी दृष्टिको भ्रमर बनाये हुए एक मत होकर बोले,—"हे स्वामिन्! आपने हमें और भरतको योग्यताके अनुसार अलग-अलग देश के राज्य बाँट दिये हैं। हम तो आपके दिये हुए राज्यको लेकर संतुष्ट हैं; क्योंकि स्वामीकी निश्चित की हुई मर्यादाको विनयी मनुष्य नहीं भङ्ग करते; पर हे भगवन्! हमारे बड़े भाई भरत अपने और दूसरोंके छीने हुये राज्योंको पाकर भी अब तक वैसे ही असंतुष्ट हैं, जैसे जलको पाकर भी वड़वाग्निको सन्तोष नहीं होता। उन्होंने जैसे औरोंके राज्य छीन लिये हैं,

वैसेही हमारे राज्य भी हड़प कर लेना चाहते हैं। उन्होंने और-और राजाओंकी तरह हमारे पास दूत भेज कर यह कहला भेजा है, कि या तो तुम अपने राज्य छोड़ दो अथवा मेरी सेवा करो। हे प्रभु! हम लोग अपने बड़े भाई भरतकी इस बातको सुनते ही क्यों अपने पिताका दिया हुआ राज्य नामर्दोंकी तरह छोड़ दें? हम अधिक धन-दौलत भी तो नहीं चाहते, फिर हम उनकी सेवा क्यों करें? जब हम राज्य भी नहीं छोड़ते और सेवा करने को भी तैयार नहीं होते, तब युद्ध होना एक प्रकारसे निश्चित सा ही है। तो भी आपसे पूछे बिना हम लोग कुछ भी नहीं कर सकते।"

पुत्रोंकी यह प्रार्थना सुन जिनके निर्मल केवल-ज्ञानमें सारा जगत साफ़ दीख रहा है, ऐसे कृपालु भगवान् आदीश्वर ने उन्हें इस प्रकार आज्ञा दी,—"पुत्रो! पुरुष-व्रत-धारी वीर पुरुषों को चाहिये, कि अत्यन्त द्रोह करने करने वाले वैरियोंके ही साथ युद्ध करें। राग, द्वेष, मोह और कषाय—ये जीवोंके सैकड़ों जन्मों तक दुःख देने वाले शत्रु हैं। राग, सद्गतिकी राहमें ले जाने वालोंके लिये लोहेकी ज़ंजीरकी तरह बन्धनका काम देता है। द्वेष, नरकमें पहुँचाने वाला बड़ा भारी ज़बरदस्त गवाह है। मोहने तो मानों इस बातका ठेका ही ले रखा है, कि मैं लोगोंको संसारके भँवर-जालमें घुमाया करूँगा और कषाय? यह तो मानों अग्निके समान अपने ही आश्रितजनों को जला कर खाक कर देता है। इसलिये अविनाशी उपाय

रूपी अस्त्रोंसे निरन्तर युद्ध करते हुए पुरुषोंको चाहिये, कि इन वैरियोंको जीतें और सत्य शरण भूत धर्मकी सेवा करें, जिससे शाश्वत आनन्दमय पदकी प्राप्ति सुलभ हो। यह राज-लक्ष्मी अनेक योनियोंमें भ्रमण करने वाली, अतिशय पीड़ा देनेवाली, अभिमान रूपी फल देने वाली और नाशवान है। इसलिये हे पुत्रों! पूर्वमें स्वर्गके सुखोंसे भी जब तुम्हारी तृष्णा न मिटी, तब कोयला करने वालेके समान मनुष्य सम्बन्धी भोगोंसे वह कैसे मिटेगी? कोयला करने वालेका सम्बन्ध इस प्रकार है—

"कोई कोयला करने वाला पुरुष पानीसे भरी हुई मशक लिये हुए एक निर्जल अरण्यमें कोयला करनेके लिये गया। वहाँ मध्याह्न और अँगारेकी गरमीसे उसे ऐसी तृषा उत्पन्न हुई, कि वह अपने साथ लायी हुई मशकका सारा पानी पी गया, तो भी उसकी प्यास नहीं मिटी। इतनेमें उसे नींद आगयी। स्वप्नमे ही वह मानों अपने घर पहुँच गया और घरके अन्दर जितने घड़े, आदि पात्र जलसे भरे रखे थे। उन सबको सफ़ाचट कर गया, तथापि जैसे तेल पीकर अग्नि तृप्त नहीं होती, वैसे ही उसकी भी तृषा नहीं दूर हुई। तब उसने बावली कुएँ और सरोवरका जल सोख लिया। इसी तरह नदियों और समुद्रोंका जल भी उसने सोख लिया, पर उसकी नारकी जीवोंकी सी तृषा-वेदना नहीं दूर हुई। इसके बाद उसने मरुदेशमें (मारवाड़में) जाकर रस्सीके सहारे दर्भका दोना बना कर जलके निमित्त कुएँमें डाला—क्योंकि आर्त्त मनुष्य क्या नहीं करता? कुएँमें जल बहुत नीचे था; इसलिये

वह दोना ऊपर आते-न-आते उसका सारा जल बह गया। तो भी जैसे भिक्षुक तेलसे भींगे हुए कपड़ेको निचोड़ कर खाता है, वैसे ही वह दोनेको निचोड़ कर पीने लगा। परन्तु जो तृषा समुद्रका जल पी कर भी नहीं मिटी, वह दोनेके निचोड़े हुए जल से कैसे मिट सकती थी?" इसी तरह तुम्हारी स्वर्गके सुखोंसे भी नहीं मिटने वाली तृष्णा राजलक्ष्मीसे ही क्योंकर मिट सकती है? इसलिये पुत्रों! तुम जैसे विवेकी मनुष्योंको चाहिये, कि अमन्द आनन्दके झरनेके समान और मोक्ष प्राप्तिके कारण-स्वरूप संयमके राज्यको ग्रहण करो।"

स्वामीको यह बात सुन उनके उन ९८ पुत्रोंको तत्काल वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने उसी समय भगवान्से दीक्षा ले ली। "अहा! इनका धैर्य, सत्त्व और वैराग्य बुद्धि भी कैसी अपूर्व है।" ऐसा विचार करते हुए वे दूत लौट गये और उन्होंने चक्रवर्तीसे यह सब हाल कह कर सुनाया। इसके बाद जैसे तारापति चन्द्रमा सब ताराओंकी ज्योतिको स्वीकार कर लेता है, सूर्य जैसे सब अग्नियोंके तेजको स्वीकार करता है और समुद्र सारी नदियोंके जलको स्वीकार कर लेता है, वैसे ही चक्रवर्त्तीने उन सबके राज्योंको स्वीकार कर लिया।

पञ्चम सर्ग

एक दिन भरतेश्वर सुखसे सभामें बैठे हुए थे। इसी समय सुषेण सेनापतिने उन्हें नमस्कार कर कहा,—"हे महाराज! आपने दिग्विजय किया, तो भी जैसे मतवाला हाथी आलान-स्तम्भ के पास नहीं आता, वैसे ही आपका चक्र अभीतक नगरीमें प्रवेश नहीं करता।"

भरतेश्वरने कहा,—"सेनापति! क्या इस छः खण्डोंवाले भरतक्षेत्रमें आज भी ऐसा कोई वीर है, जो मेरी आज्ञाको नहीं मानता?"

तब मन्त्रीने कहा,—"हे स्वामिन्! मैं जानता हूँ, कि महाराज ने क्षुद्र हिमालय तक सारा भरत-क्षेत्र जीत लिया है। जब आप दिग्विजय कर आये, तब आपके जीतने योग्य कौन बाक़ी रह गया? क्योंकि चलती हुई चक्कीमें पड़े हुए चनोंमें से एक भी दाना बिना पिसे नहीं रहता। तथापि आपका चक्र जो नगरीमें प्रवेश नहीं कर रहा है, उससे यही सूचित होता है, कि अबतक कोई ऐसा उन्मत्त पुरुष जरूर बाक़ी रह गया है, जो आपकी आज्ञाको नहीं मानता और आपके जीतने योग्य है। हे प्रभु! मुझे तो देवताओंमें भी ऐसा कोई नहीं दिखलाता, जो दुर्जय हो और जिसे आप हरा न सकें। परन्तु नहीं—अब मुझे याद आयी।

इस जगत्‌में एक दुर्जेय पुरुष आपके जीतने योग्य बाक़ी रह गया है। वह है, ऋषभस्वामीका पुत्र और आपका छोटा भाई बाहुबली। वह महाबलवान् है और बड़े-बड़े बलवानोंका बल तोड़ देनेवाला है। जैसे एक ओर सारे अस्त्र और दूसरी ओर अकेला वज्र बराबर होता है, वैसेही एक ओर समस्त राजागण और दूसरी तरफ़ बाहुबली बराबर है। जैसे आप श्रीऋषभदेवके लोकोत्तर पुत्र हैं, वैसा ही वह भी है। यदि आपने उसे नहीं जीता, तो समझ लीजिये, कि किसीको नहीं जीता, यद्यपि इस समय इस भरतखण्डमें आपके समान कोई पुरुष नहीं दिखलाई देता, तथापि उसे जीत लेनेसे आपका बड़ा उत्कर्ष होगा। वह बाहुबली आपकी जगत् भरसे मानी जाने वाली आज्ञाओंको नहीं मानता, इसी लिये यह चक्र उसके पराजित होनेके पहले शर्मके मारे नगरमें जाना नहीं चाहता। रोगकी तरह अन्य शत्रुकी भी उपेक्षा करनी उचित नहीं, इस लिये आप बिना विलम्ब उसे जीत लेनेका यत्न कीजिये।"

मन्त्रीके ऐसे वचन सुन, दावानल और मेघोंकी वृष्टिमें पर्वत की तरह एकही समय कोप और शान्तिसे युक्त होकर भरतेश्वर ने कहा,--"एक ओर तो यह बात बड़ी लज्जाकी मालूम पड़ती है, कि अपना छोटा भाई मेरी आज्ञा नहीं मानता और दूसरी ओर छोटे भाईके साथ लड़नेको मेरा जी नहीं चाहता। जिसका हुक्म अपने घर वाले ही नहीं मानते उसकी आज्ञा बाहर भी उपहासजनक ही होती है। उसी प्रकार मेरे छोटे भाईको इस

अविनयकी असह्यता भी मेरे लिये अपवाद-रूप है। अभिमानसे भरे हुए लोगोंका शासन करना राजधर्म अवश्य है ; पर भाइयों में परस्पर मेल-जोल रहना चाहिये, यह भी तो व्यवहारकी बात है ? इस लिये मैं तो इस मामलेमें बड़ी दुविधामें पड़ गया।"

मन्त्रीने कहा,—"महाराज! आपका यह सङ्कट आपके महत्त्व को देखकर आपका छोटा भाई ही दूर कर सकेगा। सामान्य गृहस्थोंमें भी यह चाल है, कि बड़ा भाई जो आज्ञा देता है, उसे छोटा भाई मान लेता है। अतएव आप भी अपने छोटे भाईके पास लोक रीतिके अनुसार दूत भेजकर उन्हें आज्ञा दें। महाराज! जैसे केशरी (सिंह) अपने कन्धेपर खोगीर नहीं सहन कर सकता, वैसे ही यदि आपका वह छोटा भाई, जो अपनेको बड़ा वीर समझता है, आपकी जगन्मान्य आज्ञाको नहीं माने, तो आपको भी उसे उचित शिक्षा देनी ही पड़ेगी, क्योंकि आपमें इन्द्रका सा पराक्रम भरा हुआ है। ऐसा करनेसे न तो लोकाचारका ही उल्लंघन होगा, न आपकी लोकमे बदनामी होगी।"

महाराजने मन्त्रीका यह वचन स्वीकार कर लिया ; क्योंकि शास्त्र और लोकव्यवहारके अनुसार कही हुई बातें मानही लेनी चाहिये। इसके बाद उन्होंने नीतिज्ञ, दृढ़ और वाक्चतुर दूत सुवेगको सिखा-पढ़ाकर बाहुबलीके पास भेजा। अपने स्वामी की वह उत्तम शिक्षा, दीक्षाकी भाँति अङ्गीकार कर वह दूत रथ पर आरूढ़ हो, तक्षशिलाकी ओर चल पड़ा।

सब सैन्योंको साथ लिये हुए, अत्यन्त वेगयुक्त रथमें बैठा

हुआ वह दूत जब विनीता-नगरीके बाहर निकल आया, तब ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों वह भरतपतिकी शरीरधारिणी आज्ञा ही हो। मार्गमें जाते-जाते उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा, मानों कार्यके आरम्भमें ही उसे बार-बार दैवकी वामगति दिखाई देने लगी। अग्नि-मण्डलके मध्यमें नाड़ीको धौंकनेवाले पुरुषकी तरह उसकी दक्षिण नाड़ी बिना रोगके ही बारम्बार चलने लगी। तोतली बोली बोलनेवालोंकी जीभ जिस प्रकार असंयुक्त वर्णोका उच्चारण करनेमें भी लड़खड़ाने लगती है, उसी प्रकार उसका रथ बराबर रास्तेमें भी बार-बार फिसलने लगा। उसके घुड़सवारोंने आगे बढ़कर रोका, तो भी मानों किसीने उलटी प्रेरणा कर दी हो, उसी प्रकार कृष्णसार मृग उसकी दाहिनी ओरसे बायीं ओर चला आया। सूखे हुए काँटेदार वृक्षपर बैठा हुआ कौआ अपनी चोंचरूपी हथियारको पाषाण पर घिसता हुआ कटुस्वरमें बोलने लगा। उसकी यात्रा रोक देनेकी इच्छासे ही दैवने मानों अड्ङ्गा लगा दिया हो, ऐसा एक काला नाग लम्बा पड़ा हुआ उसके आड़े आया। पीछेकी बातका विचार करनेमें पण्डित, उस सुवेगको मानों पीछे लौट जानेकी सलाह देनेके ही लिये, हवा उलटी बहने और उसकी आँखोंमें धूल डालने लगी। जिसके ऊपर आटा लगा हुआ नहीं है अथवा जो फूट गया हो, ऐसे मृदङ्गकी तरह बेसुरा शब्द करनेवाला गधा उसकी दाहिनी ओर आकर शब्द करने लगा। इन अपशकुनोंको सुवेग भली भाँति जानता-समझता था, तो भी वह आगे चलता ही गया।

कारण, नमकहलाल नौकर स्वामीके कार्यमें बाणकी तरह कभी स्खलनको प्राप्त नहीं होते, बहुतेरे गाँवों, नगरों, खानों और कसबोंको पार करता हुआ वह वहाँके लोगोंको क्षणभरके लिये बवंडरसा ही मालूम पड़ता था। स्वामीके कार्यमें दण्डकी तरह डटे हुए उसने वृक्ष-समूह, सरोवर और सिन्धु-तट आदि स्थानोंमें भी विश्राम नहीं किया। इस प्रकार यात्रा करता हुआ वह एक ऐसे भयानक जङ्गलमें पहुँचा, जो मृत्युकी एकान्त रतिभूमि मालूम पड़ती थी। वह जङ्गल धनुष बनाकर हाथियोंका शिकार करने वाले और चमरी-मृगोंकी खालके बख़्तर पहननेवाले राक्षसोंके समान भीलोंसे भरा हुआ था। वह वन यमराजके नाते-गोतों के समान चमरी-मृगों, चीतो, बाघो, सिंहों और सरभों आदि क्रूर प्राणियोंसे भरा हुआ था। परस्पर वैर रखनेवाले सर्पों और नेवलोंके बिलोंसे वह जंगल बड़ा भयङ्कर लगता था। भालुओंके केश धारण करनेके लिये व्यग्र बनी हुई नन्हीं नन्हीं भीलनियाँ उस वनमें घूमती-फिरती रहती थीं। परस्पर युद्ध कर जंगली भैंसे वनके जीर्ण वृक्षोंको ताड़ा करते थे; शहद निकालनेवालोंके द्वारा उड़ायी हुई मधुमक्खियोंके मारे उस जंगलमें चलना फिरना मुश्किल था। इसी प्रकार आसमान चूमनेवाले ऊँचे ऊँचे वृक्षोंके मारे वहाँ सूर्य भी नहीं दिखलाई देते थे। जैसे पुण्यवान् मनुष्य विपत्तियोंको पार कर जाता है, वैसेही ख़ूब तेज़ रथमें बैठा हुआ सुवेग भी उस भयङ्कर जंगलको बड़ी आसानीसे पार कर गया। वहाँसे वह बहली-देशमें आ पहुँचा।

उस देशमें रास्तेके किनारे वाले वृक्षोंके नीचे अलङ्कार पहने हुई बटोहियोंको स्त्रियाँ निर्भय हो कर बैठी रहती थीं, जिससे वहाँ के सुराज्यका पता चलता था। प्रत्येक गोकुलमें वृक्षोंके नीचे बैठे हुए गोपालोंके पुत्र हर्षित-चित्तसे ऋषभदेवके चरित्र गाया करते थे। उस देशके सभी गाँव, ऐसे बहुतसे फलवाले और घने वृक्षोंसे अलंकृत थे, जो ठीक भद्रशाल-वनमें से लाकर लगाये हुएसे मालूम पड़ते थे। वहाँ गाँव-गाँव और घर-घरके गृहस्थ, जो दान देनेमें दीक्षित थे, याचकोंको खोजमें फिरते थे। कितने ही गाँवोंमें ऐसे विशेष समृद्धिशाली यवनगण निवास करते थे, जो राजा भरतके भाससे उत्तर-भारतसे आये हुए मालूम पड़ते थे। भरतक्षेत्रके छः खण्डोंसे मानो यह एक निराला ही खण्ड था, इस तरह वहाँके लोग राजा भरतके हुक्म-हाकिम से अनजान थे। इस प्रकार उस बहेली देशमें जाता हुआ सुवेग, वहाँके सुखी प्रजा-जनोंसे, जो बाहुबली राजाके सिवा और किसी को जानते ही नहीं थे, बारम्बार बातें किया करता था। उसने देखा, कि जंगलों तथा पर्वतोंमें घूमने-फिरनेवाले मदमत्त शिकारी भी बाहुबलीकी आज्ञासे मानो लँगड़े हो गये हैं। प्रजा-जनोंके अनुराग-पूर्ण वचनों और उनकी चढ़ी-चढ़ी हुई समृद्धि देखकर वह बाहुबलकी नीतिको अद्वैत मानने लगा। इस प्रकार राजा भरतके छोटे भाईका उत्कर्ष सुन-सुनकर विस्मित होता हुआ सुवेग अपने स्वामीके दिये हुए संदेसेको बार-बार याद करता हुआ तक्षशिला नगरीके पास आ पहुँचा। नगरीके बाहरी हिस्से

में रहनेवाले लोगोंने एक बार आँख उठाकर सहज रीतिसे उसकी ओर मामूली पथिककी दृष्टिसे देखा, क्रीड़ा-उद्यानमें धनुर्विद्याकी क्रीड़ा करनेवाले वीरोंके भुजास्फोटसे उसका घोड़ा डर गया और नगर-निवासियोंको समृद्धि देखनेमें लगे हुए सारथीका ध्यान पूरी तरह अपने काममें नहीं होनेके कारण उसका रथ कुराह जा कर स्खलनको प्राप्त हुआ। बाहरके उद्यान-वृक्षोके पास उसने उत्तमोत्तम हाथी बँधे देखे, मानों सब द्वीपों के चक्रवर्त्ती राजाओं के गज-रत्न वहीं लाकर रख दिये हों। मानों ज्योतिष्क देवताओंके विमान छोड़ कर आये हों, ऐसे उत्तम अश्वोंसे बड़ी-बड़ी अश्वशालाएं उसे भरी हुई दिखाई दीं। भरतके छोटे भाईके ऐश्वर्यको आश्चर्यके साथ देखते-देखते उसके सिरमें मानों पीड़ा हो गयी ; इसी लिये वह बार-बार सिर धुनता हुआ तक्ष-शिला-नगरीमें प्रविष्ट हुआ। अहमिन्द्रके समान स्वच्छन्द वृत्तिवाले और अपनी-अपनी दूकान पर बैठे हुए धनाढ्य वणिकोंको देखते हुए वह राजद्वार पर आ पहुँचा। मानों सूर्यके तेजको लेकर ही बनाये गये हों, ऐसे चमचमाते हुए भालोंको हाथमें लिये हुए पैदल सिपाहियोंकी सेना उस राजद्वारके पास खड़ी थी। कहीं-कहीं ईखके पत्तेकी तरह नुकीले अग्रभागवाली बर्छियाँ लिये हुए पहरेदार ऐसे शोभित हो रहे थे, मानों शौर्यरूपी वृक्ष ही पल्लवित हुए हों। कहीं एक दाँतवाले हाथीकी तरह पाषाण भङ्ग करने पर भी भङ्ग न होनेवाले लोहेके मुद्गर धारण किये हुए वीर खड़े थे। मानों चन्द्रके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण

कर रखी हो, ऐसी ढाल-तलवारसे सजे हुए प्रचण्ड शक्तिशाली वीर पुरुषोंके समूहसे राजद्वार शोभित हो रहा था। कहीं दूरही से नक्षत्रों तक बाण मारनेवाले और शब्दवेध करनेवाले वीर पुरुष, बाणोंका तरकस पीठपर रख, हाथमें कालपृष्ठ धनुष लिये खड़े थे। राजद्वारके दोनों ओर द्वारपालकी तरह दो हाथी अपने लम्बी सूंड़ लिये खड़े थे, जिससे वह राजद्वार बड़ा भयावना दीख रहा था। उस नरसिंहका ऐसा भड़कीला सिंहद्वार (प्रवेश-द्वार) देख, सुवेगका मन विस्मयसे भर गया। राजद्वार के पास आकर वह भीतर जानेकी आज्ञा पानेके लिये ठहर गया; क्योंकि राजद्वारकी यही मर्यादा थी। उसकी बात सुन, द्वारपालने भीतर जाकर राजा बाहुबलीसे निवेदन किया, कि आपके बड़े भाईका सुवेग नामका एक दूत आकर बाहर खड़ा है। राजा के उसे बुला लानेकी आज्ञा देने पर द्वारपाल उस बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुवेगको उसी प्रकार सभामें ले गया, जिस प्रकार सूर्यमण्डलमें बुध प्रवेश करता है।

वहाँ पहुंच कर पहलेसे ही आश्चर्यमें पड़े हुए सुवेगने रत्न जड़े सिंहासन पर बैठे हुए बाहुबलीको तेजके मूर्त्तिमान देवताकी भाँति विराजित देखा। आकाशके सूर्यकी तरह रत्नमय मुकुट धारण करनेवाले बड़े-बड़े तेजस्वी राजा उनकी उपासना कर रहे थे। अपने स्वामीकी विश्वासरूपी सर्वस्व वल्लीकी सन्तान, मण्डप-रूप, बुद्धिमान् और परीक्षामें सच्चे उतरे हुए, मंत्रियोंके समूहसे वे घिरे हुए थे। प्रदीप्त मुकुटमणियोंवाले और संसार

जिनके प्रतापको नहीं सहन कर सकता था, ऐसे नागकुमारोंके से राजकुमार उनके आस-पास बैठे हुए थे। बाहर निकली हुई जिह्वावाले सर्पोंकी भाँति खुले हुए हथियारोंको हाथमें लिये हुए हज़ारों आत्मरक्षकोंसे घिरे हुए थे। मलयाचलकी तरह भयङ्कर मालूम होते थे। जैसे चमरीमृग हिमालय-पर्वतको चँवर डुलाते हैं, वैसेही सुन्दर-सुन्दर वाराङ्गनाएँ उन पर चँवर डुलाती थीं। बिजली सहित शरद् ऋतुके मेघकी तरह पवित्र वेश और छड़ी धारण करनेवाले छड़ीदारोंसे वे सुशोभित थे। सुवेगने भीतर प्रवेश कर, शब्दायमान, स्वर्ण-शृंखला-युक्त हाथीकी तरह ललाट को पृथ्वीमें टेक कर बाहुबलीको प्रणाम किया। तत्काल महाराजने कनखियोंसे इशारा किया और प्रतिहारी झटपट उसके लिये एक आसन ले आया, जिस पर वह बैठ गया। तदनन्तर प्रसादरूपी अमृतसे धुली हुई उज्ज्वल दृष्टिसे सुवेगकी ओर देखते हुए राजा बाहुबली ने कहा,—"सुवेग! कहो, भैया भरत सकुशल तो हैं। पिताजीकी लालित-पालित विनीताकी सारी प्रजा सानन्द है न? कामादिक छः शत्रुओंकी तरह भरतक्षेत्रके छओं खंडों को महाराजने निर्विघ्न जीत लिया है न? साठ हज़ार वर्ष तक विकट युद्ध करनेके बाद सेनापति आदि सब लोग सकुशल लौट आये हैं न? सिन्दूरसे लाल रंगमें रँगे हुए कुम्भस्थलोंवाले, आकाशको सन्ध्याकालके मेघोंकी तरह रञ्जित करनेवाले हाथियोंकी श्रेणी ज्यों की त्यों है न? हिमालय तक पृथ्वीको आक्रान्त कर लौटे हुए महाराजके उत्तम अश्व ग्लानि-रहित हैं न? अखण्ड

हृदय भी फट जाये। स्वामीके सम्बन्धमें यदि अपना अल्प छिद्र भी हो, तो उसे ढकना चाहिये, क्योंकि छोटेसे छिद्रके ही सहारे पानी सारे सेतुका नाश कर देता है। यदि अबतक मैं न गया, तो आज क्यों जाऊँ? ऐसी शङ्का आप न करें और अभी वहाँ चलें; क्योंकि उत्तम गुणवाले स्वामी भूलों पर ध्यान नहीं देते। जैसे आकाशमें सूर्यके उदय होने पर कोहरा नष्ट हो जाता है, वैसे ही आपके वहाँ जानेसे चुगलख़ोरोंके मनोरथ नष्ट हो जायेंगे। जैसे पूर्णिमाके दिन सूर्यके साथ चन्द्रमाका संगम होजाता है। वैसेही स्वामीके साथ आपका सङ्गम होतेही आपके तेजकी वृद्धि हो जायेगी। स्वमीके समान आचरण करनेवाले बहुतसे बलवान पुरुष अपना स्वामित्व छोड़कर महाराजकी सेवा कर रहे हैं। जैसे सब देवताओंके द्वारा इन्द्र सेवा करने योग्य है, वैसेही निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ चक्रवर्त्ती सब राजाओं द्वारा सेवन करने योग्य हैं। यदि आप केवल उन्हें चक्रवर्त्ती जान कर ही उनकी सेवा करेंगे, तो भी उससे आपके अद्वितीय भ्रातृ-प्रेमका प्रकाश होगा। कदाचित् आप उनको अपना भाई समझ कर वहाँ नहीं जायेंगे, तो भी यह उचित नहीं होगा; क्योंकि आज्ञा को श्रेष्ठ समझनेवाले राजा ज्ञातिभाव करके भी निग्रह करते हैं। लोहचुम्बकसे खिंचकर चले आने वाले लोहेकी तरह महाराज भरतपतिके उत्कृष्ट तेजके प्रभावसे आकर्षित होकर सभी देव, दानव और मनुष्य उनके पास चले आते हैं। इन्द्रने भी महाराज भरतको अपना आधा आसन देकर मित्र बना लिया है, फिर आप

केवल वहाँ जाकर ही उनको क्यों नहीं अपने अनुकूल बना लेते ? यदि आप अपनेको वीर मानते हुए महाराजका अपमान करेंगे, तो ठीक समझ लीजिये, आप उनके पराक्रमरूपी समुद्रमें सत्तूकी पिण्डीकी तरह हो जायेंगे। चलते-फिरते पर्वतोंकी तरह उनके चौरासी लाख ऐरावत-समान हाथी, जिस समय सामने आयेंगे उस समय कौन ऐसा हैं, जो उनके आक्रमणको सहन कर सके ? क्या कोई ऐसा माईका लाल है, जो कल्पान्त समुद्रके कल्लोलकी तरह सारी पृथ्वीको प्लावित करनेवाले उनके अश्वों और रथोंको रोक सके ? छियानवे करोड़ ग्रामोंके अधिपति महाराजके छियानवे करोड़ प्यादे सिंहके समान किसको त्रास नहीं देते ? उनका एक सुषेण नामक सेनापति ही हाथमें दण्ड लिये चला आता हो, तो उस यमराजके समान सेनापतिका प्रताप देव, और असुर भी नहीं सहन कर सकते जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करता है, वैसेही शत्रुओंको दूर भगा देनेवाले चक्रको धारण करनेवाले भरत चक्रवर्तीके सामने तीनों लोक कोई चीज़ नहीं है। इस लिये हे बाहुबली! यदि आप राज्य और जीवनकी रक्षा चाहते हैं, तो उन महाराजकी सेवा करनी आपके लिये उचित है।"

सुवेगकी ये बातें सुन, अपने बाहुबलसे जगत्‌को नाश करनेवाले बाहुबलीने दूसरे समुद्रकी तरह गम्भीर स्वरसे कहा,— "हे दूत! तू बड़ा ही होशियार है। तेरी ज़बान भी खूब तेज़ है, तभी तो तू मेरे मुंह पर ही इतनी बातें बक गया। बड़े भाई होनेके कारण राजा भरत मेरे पिताके समान हैं। यह उनका

बड़प्पन है, कि वे अपने भाईसे मिलना चाहते हैं ; परन्तु सुर, असुर और अन्य राजाओंकी लक्ष्मी पाकर ऋद्धिशाली बने हुए वे अल्प वैभवशाली राजा मेरे जानेसे लज्जित होंगे, यही सोचकर मैं अब तक वहाँ नहीं गया। साठ हज़ार वर्ष तक पराये राज्यों का हरण करनेमें लगे हुए उनका अपने छोटे भाइयोंका रा॰ हड़प जानेके लिये व्यग्र होना अकारण नहीं है। यदि वे अ॰ भाइयों पर प्रेम रखते, तो उनके पास राज्य अथवा संग्राम॰ इच्छासे दूत किस लिये भेजते ? ऐसे लोभी, पर साथ ही ब॰ भाईके साथ कौन युद्ध करे ? यही सोच कर मेरे परम उदा॰ हृदय भाइयोंने पिताका अनुसरण किया। उनका राज्य हड़॰ कर जानेका बहाना ढूंढ़ने वाले तुम्हारे स्वामीकी सारी क़लई इ॰ बातसे खुल गयी। इसी तरह मुझे भी झूठा स्नेह दिखला कर फँसानेके लिये उन्होंने तुमसे चतुर वक्ताको मेरे पास भेजा है। मेरे अन्य भाइयोंने जिस प्रकार दीक्षा ले, उन्हें अपना राज्य देकर हर्षित किया है, वैसा ही हर्ष मैं भी उन राज्यके लोभीको वहाँ पहुँच कर दूँ ? ऐसा तो नहीं हो सकता। क्योंकि मैं वज्रसे भी कठोर हूँ ; परन्तु अल्प वैभव वाला होकर भी मैं भाईके तिरस्कारके भ॰ [illegible] उनकी वृद्धिमें हिस्सा बँटाने नहीं जाता। वह फूलसे कोमल हैं, पर मायावी हैं ; क्योंकि उन्होंने भाई-भाई के झगड़ेसे डरने वाले अपने छोटे भाइयोंका राज्य आप हड़प लिया। हे दूत ! मैं भाइयोंका राज्य हड़प कर जाने वाले भरतकी उपेक्षा करता हूँ, इस लिये सचमुच मैं निर्भयसे भी

निर्भय हूँ। गुरुजनमें विनय-भक्ति रखना प्रशंसनीय है, इसमें सन्देह नहीं ; पर वह गुरु भी दरअसल गुरु (श्रेष्ठगुणयुक्त) हो ; पर गुरुके गुणोसे रहित गुरुजनमें विनय-भक्ति रखना उलटा लज्जा-जनक है। गर्वयुक्त, कार्याकार्यके नहीं जाननेवाले और बुरी राह पर चलनेवाले गुरुजनोंका त्याग ही करना उचित है। मैंने क्या उनके हाथी-घोड़े छीन लिये हैं या उनके नगर आदिको ध्वंस कर डाला है, जो तू कहता है, कि वे मेरे अविनय को अपने सर्वसह स्वभावके कारण सहन कर रहे हैं ? दुर्जनोंके प्रतिकारके लिये भी मैं वैसे कार्योंमें प्रवृत्त नहीं होता ; फिर विचार कर कार्य करने वाले सत्पुरुषोंको क्या दुष्टोंके कहनेसे ही दूषण लग जायेगा ? अभी तक मैं उनके पास नहीं आया, इस बातसे उदास होकर क्या वह कहीं चले गये हैं, जो मैं उनके पास जाऊँ ? भूतकी तरह बहाना ढूंढ़नेवाले भरतपति, सर्वत्र अप्रमत्त और अलुब्ध रहनेवाले मुझमें कौनसा दोष ढूंढ़ निकालेंगे ? उनका कोई देश या दूसरी कोई वस्तु मैंने नहीं ली, फिर वे मेरे स्वामी कैसे हुए ? हमारे और उनके स्वामी तो ऋषभस्वामी हैं, फिर वे मेरे स्वामी किस तरह हुए ? मैं तो स्वयं तेजकी मूर्त्ति हूँ, फिर मेरे वहाँ पहुँचने पर उनका तेज कैसे रहेगा ? कारण, सूर्यका उदय होने पर अग्निका तेज मन्द हो जाता है। जो राजा स्वयं स्वामी होते हुए भी उन्हें स्वामी मानकर उनकी सेवा करते हैं, वे असमर्थ हैं ; तभी तो वे उन दरिद्र राजाओं पर निग्रह और अनुग्रह करनेको समर्थ हैं।

यदि मैं भाईचारेके नाते भी उनकी सेवा करूं, तो लोग उसे चक्रवर्त्तीके ही नाते की हुई सेवा समझेंगे ; क्योंकि लोगोंके मुँह पर कौन हाथ रख सकता है ? मैं उनका निर्भय भाई हूँ और वे आज्ञा करने योग्य हैं ; पर इसमें जातिपनके स्नेहका क्या काम है ? एक जाति ऐसे वज्रसे क्या वज्रका भी विदारण नहीं हो जाता ? सुर, असुर और मनुष्योंकी उपासनासे वे भले ही प्रसन्न हों; पर उससे मेरा क्या आता-जाता है ? सजा-सजाया रथ भी ठीक रास्तेमें ही चलनेको समर्थ होता है, टेढ़े-मेढ़े रास्तेमें तो गिर कर चूर-चूर ही हो जाता हैं। इन्द्र पिताजीके भक्त हैं, इसलिये यदि उन्होंने उनका ज्येष्ठ पुत्र समझ कर भरतराजको अपने आधे आसन पर बैठाया, तो इससे वे इतना अभिमान क्यों करते हैं? इस भरतरूपी समुद्रमें और-और राजा भले ही सैन्य-सहित सत्तूकी पिण्डियों की तरह समा जायें; पर मैं तो वड़वानल हूँ और अपने तेजके कारण दुस्सह भी हूँ। जिस तरह सूर्यके तेजके आगे और सबका तेज छिप जाता है, उसी तरह राजा भरत अपने समस्त हाथी-घोड़े, पैदल और सेनापतियोंके साथ मेरे सामने झेंप जायेंगे। लड़कपन ही में मैंने हाथीकी तरह उन्हें पैरोंसे दबा कर, हाथसे उठा कर मिट्टीके ढेलेकी तरह आसमानमें उछाल दिया था। आसमानमें बहुत ऊँचे जाकर जब वे नीचे गिरने लगे, तब मैंने यही सोचकर उन्हें फूलकी तरह स्वयंअपने ऊपर ले लिया, कि कहीं उनके प्राण न चले जायें; परन्तु अब मालूम होता है, कि वे वाचाल हो गये हैं और हारे हुए राजाओंकी खुशामद भरी बातों

से अपना नया जन्म समझते हैं, इसीलिये ये सब बातें भूल गये हैं। परन्तु वे खुशामदी टट्टू किसी काम नहीं आयेंगे और उन्हें अकेले ही बाहुबलीके बाहुबलसे होने वाली व्यथाको सहन करना पड़ेगा। रे दूत! तू अभी यहाँसे चला जा। राज्य और जीवनकी इच्छा हो, तो वह भलेही यहाँ आयें, पर मैं तो पिताके दिये हुए राज्य से सन्तुष्ट हूँ, इसलिये उनकी पृथ्वीकी मैं उपेक्षा करता हूँ और वहाँ जाना बेकार समझता हूँ।

बाहुबलीके ऐसा कहतेही रङ्ग बिरङ्गे शरीर वाले और स्वामीकी आज्ञा रूपी दृढ़ पाशमें बँधे हुए अन्यान्य राजा भी क्रोध से लाल नेत्र किये हुए सुवेगकी ओर देखने लगे। रोषके मारे "मारो—मारो" की आवाज़ लगाते हुए कुमार ओठ फड़काते हुए वारम्वार उसके ऊपर विकट कटाक्ष निक्षेप करने लगे कमर बाँधे तैयार, खड्ग हिलाते हुए अङ्गरक्षक मानों मारनेकी इच्छा से ही उसे भृकुटी पर चढ़ाकर देखने लगे। मन्त्रीगण इस हालत को देख उसके जानकी चिन्ता करने लगे। उन्हें भय होने लगा, कि कहीं स्वामीका कोई साहसी सिपाही इस ग़रीबको न मार डाले। इतनेमें हाथ तैयार कर पैरको ऊँचे किये हुए होनेके कारण उसकी गरदन नापनेको तैयार मालूम पड़ने वाले छड़ीवरदारों ने उसे आसनसे उठा दिया। इससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ तो भी धैर्यका अवलम्बन कर वह सभासे बाहर निकला। क्रोध से भरे हुए बाहुबलीके जोशीले शब्दोंके अनुमानसे ही राजद्वार पर रहने वाली पैदल-सेना क्रोधसे तमतमा उठी। कितनेही क्रोधसे

ढाल फेरने लगे, कितने ही तलवार नचाने लगे, कितने ही फेंकने के लिये चक्र सुधारने लगे, किसी ने मुद्गर उठाया, कोई त्रिशूल सम्हालने लगा, कोई तरकस बाँधने लगा, कोई दण्डग्रहणकरने लगा और कोई परशुकी प्रेरणामें लग गया। उनकी यह हालत देख चारों ओरसे पग-पग पर अपने मौत थहरानेका समान देख कर सुवेग चंचल चरणोंसे चलता हुआ नरसिंह वाहुवलीके सिंह द्वार से वाहर निकला। वहाँसे रथमें वैठकर चलते हुए उसने नगरके लोगोंको इस प्रकार आपसमें बातें करते हुए सुना,—

पहला-आ०—यह कौन नया आदमी राजद्वारसे वाहर निकला?

दूसरा आ०—यह तो भरत राजाका दूत मालूम पड़ता है।

पहला,—तो क्या इस पृथ्वीमें वाहुवलीके सिवा और राजा हैं?

दूसरा,—अयोध्यामें वाहुवलीके वड़े भाई भरत राज्य करते हैं।

पहला,—उन्होंने इस दूतको यहाँ किसलिये भेजा था?

दूसरा,—अपने भाई राजा वाहुवलीको बुलानेके लिये।

पहला,—इतने दिनों तक हमारे राजाके भाई कहाँ गये हुए थे।

दूसरा,—भरतक्षेत्रके छओं खण्डोंको जीतने गये हुए थे

पहला,—आज इतनी उत्कण्ठासे उन्होंने अपने छोटे भाईको क्यों बुलवाया?

दूसरा,—अन्यान्य छोटे-छोटे राजाओंकी तरह इनसे भी अपनी सेवा करानेके लिये।

पहला,—और-और राजाओंको जीत कर अब भव इस पृथ्वी पर सबको क्यों तैयार हो रहे हैं?

दूसरा,—अखण्ड चक्रवर्त्ती होनेका अभिमान इसका कारण है।

पहला,—कहीं अपने छोटे भाईसे हार गये, तब तो सारी हैंकड़ी किरकिरी हो न जायगी? फिर वे संसारको अपना मुँह कैसे दिखला सकेंगे?

दूसरा,—सब जगहोंसे जीत कर आया हुआ मनुष्य अपनी भावी पराजयकी कल्पना तक नहीं कर सकता।

पहला,—इस भरतराज्यके मन्त्रियोंमें क्या कोई चूहे जैसा भी नहीं है।

दूसरा,—उसके यहाँ कुल-क्रमसे चले आते हुए बहुतसे बुद्धिमान मन्त्री हैं।

पहला,—फिर साँपके मस्तकको खुजलानेकी इच्छा करने वाले उस भरतराजाको मन्त्रियों ने क्यों नहीं रोका?

दूसरा,—रोकना तो दूर, उन्होंने उलटा उनको इसके लिये प्रेरित किया है। क्योंकि होनहार ही कुछ ऐसी प्रतीत होती है।

नगर निवासियोंकी यह बातें सुनता हुआ सुवेग नगरके बाहर चला आया। नगर द्वारके पास ही उसे दोनों ऋषभ कुमारोंके युद्धकी बात इतिहासके समान इस प्रकार सुननेमें आयी, मानों देवता उसे सुना रहे हों। सुनते ही वह क्रोधके मारे जल्दी-जल्दी पैर आगे बढ़ाने लगा। इधर युद्धकी बात भी उसकी चालसे होड़ करती हुई तेजीके साथ फैलने लगी। सहज युद्धकी बात सुनते ही हरएक गाँव-नगरके वीर योद्धागण युद्धके लिये इस तरह तैयार होने लगे, मानों राजाने उन्हें तैयार होनेकी

आंज्ञा दे दी हो। जैसे योगी शरीरको दृढ़ करते हैं, वैसे ही कोई तो अपना युद्ध-रथ रथशालासे बाहर निकालकर उसमें नये धुरे आदि लगाकर उसे दृढ़ बना रहा था, कोई अपने घोड़ोंको नगरके बाहर मैदानमें ले जाकर उन्हें पाँचों प्रकारकी चालें सिखला कर युद्धके लिये तैयार करता हुआ विश्राम करा रहा था; कोई प्रभुकी तेजोमयी मूर्त्तिके समान अपने खड्ग आदि हथियारोंको सान धराने वालेके यहाँ ले जाकर तेज़ करा रहा था; कोई अच्छे-अच्छे सींग और नयी ताँत लगवा कर अपने यमराजकी टेढ़ी भौहोंके समान धनुषोंको तैयार कर रहा था; कोई युद्धयात्रा के समय जानदार बाजोंका काम देनेवाले जङ्गली ऊँटोंको कवच आदि ढोनेके लिये ला रहा था; कोई अपने बाणोंको, कोई तरकस को, कोई सिर पर पहननेकी टोपीको, उसी प्रकार दृढ़ कर रहा था, जैसे तार्किक पुरुष अपने सिद्धान्तको दृढ़ करते हों। इसी तरह कोई-कोई अपना बख्तर दृढ़ होने पर भी विशेष दृढ़ बना रहे थे। इसी तरह कोई गन्धर्वोंके भवनके समान घरमें धरे रखे हुए तम्बूकनातोंको खोल-खोल कर देख रहे थे। राजा बाहुबलीके देशके लोग इसी प्रकार एक दूसरेसे स्पर्धा करते हुए युद्धके लिये तैयारी कर रहे थे; क्योंकि वे अपने राजा पर बड़ी भक्ति रखते थे। ऐसा ही कोई राजभक्तिकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य, संग्राम में जानेके लिये तैयार हो रहा था, इसी समय उसके किसी गुरुजनने आकर उसे मना किया। इसपर वह बिगड़ उठा। सुवेगने रास्तेमें जाते-जाते लोगोंको इसी प्रकार राजाके अनुराग

के वशवर्त्ती होकर अपने प्राण देकर भी राजाका प्रिय करनेकी इच्छा प्रकट करते हुए देखा। युद्धकी बात सुन और लोगोंकी यह तैयारी देख, बाहुबली पर अटूट भक्ति रखने वाले कितने ही पहाड़ी राजा भी बाहुबलीके पास आने लगे। ग्वालेका शब्द सुनकर जैसे गौएँ दौड़ी हुई चली आती हैं, वैसे ही उन पहाड़ी राजाओंके बजाये हुए सिंघेकी आवाज़ सुनते ही हज़ारों किरात, निकुंजोंसे निकल-निकल कर दौड़ते-हाँपते हुए आने लगे। उन शूर-वीर किरातोंमें कोई बाघकी त्वचासे कोई मोरकी पोंछोंसे और कोई लताओंसे ही जल्दी-जल्दी अपने बाल बाँधने लगे। इसी तरह कोई सर्पकी त्वचासे, कोई वृक्षोंकी त्वचासे और कोई नील गायकी त्वचासे अपने शरीरमें पहने हुए मृगचर्मको बाँधने लगे। बन्दरोंकी तरह कूदते-फाँदते हुए वे लोग हाथमें पाषाण और धनुष लिए हुए स्वामिभक्त श्वानोंकी तरह अपने स्वामीको घेर कर चलने लगे। वे सब आपसमें कह रहे थे, कि हम राजा भरतकी एक-एक अक्षौहिणी सेनाको चूर्ण कर अपने महाराज बाहुबलीको कृपाका बदला अवश्य देंगे।

उनकी ऐसी सकोप तैयारी देख, सुवेग मन-हो-मन विवेक-बुद्धिसे विचार करने लगा,— "ओह! इस बाहुबलीके देशके लोग तो इसके ऐसे वशीभूत हैं, कि मालूम होता है, मानों ये अपने बापके वैरीसे बदला लेनेके लिए तत्परताके साथ युद्धकी तैयारी कर रहे हैं। राजा बाहुबलीकी सेनाके पहले ही रणकी इच्छा करने वाले ये किरात भी इस तरफ आने वाली हमारी

सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिखला रहे हैं। मैं तो यहाँ कोई ऐसा मनुष्य नहीं देखता, जो युद्धके लिये तैयार न हो। साथ ही ऐसा भी कोई नहीं दिखलाई देता, जो बाहुबली पर अनुराग न रखता हो। इस बहली-देशमें हल जोतनेवाले खेतिहर भी शूर-वीर और स्वामिभक्त हैं। क्या यह इस देशका ही प्रभाव है, अथवा राजा बाहुबलीमें ही ऐसा कोई गुण है। सामन्त आदि पारिषद तो मूल्य देकर ख़रीदे भी जा सकते हैं; पर बाहुबलीने तो अपने गुणोंसे सारी पृथ्वीको मोल ली हुई पत्नीसी बना लिया है। जैसे अग्निके सामने तृणोंका समूह नहीं ठहरता, वैसे ही बाहु-बलीकी ऐसी सेनाके सामने तो मैं चक्रवर्त्तीकी विशाल सेनाको भी तुच्छ ही मानता हूँ। इस महावीर बाहुबलीके आगे मैं तो चक्रवर्त्तीको वैसा ही छोटा समझता हूँ, जैसा अष्टापदके सामने हाथीका छोटा बच्चा हो। शक्ति-सामर्थ्यमें पृथ्वीमें चक्रवर्त्ती और स्वर्गमें इन्द्र विख्यात हैं, पर इन दोनोंके बीचमें अथवा इन दोनोंसे भी बढ़कर ऋषभदेवका यह छोटा पुत्र जान पड़ता है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, मानों बाहुबलीके थप्पड़के सामने चक्रीका चक्र और इन्द्रका वज्र भी व्यर्थ है। इस बाहुबलीको छेड़ना क्या है, रीछके कान पकड़ना और साँपको मुट्ठीमें पकड़ना है। जैसे व्याघ्र एकही मृगको लेकर सन्तुष्ट रहता है, वैसे ही इतनीसी भूमि लेकर सन्तुष्ट रहनेवाले बाहुबलीको छेड़ कर व्यर्थ ही शत्रु बनाया गया। अनेक राजाओंसे सेवित महाराज को क्या कमी दिखलाई दी, जिसके लिये उन्होंने बाहुके लिये

सिंहको पकड़ मँगवानेकी तरह इस बाहुबलीको सेवाके लिये बुलवाया। स्वामीके हितको माननेवाले मंत्रियों और मुझको धिक्कार है, जो हम लोगोंने इस मामलेमें शत्रुकी तरह उनकी उपेक्षा की। लोग यही कहेंगे कि सुवेगने ही जाकर भरतसे बाहुबलीकी लड़ाई छिड़वायी। ओह! गुणको दूषित करनेवाले इस दूतपनको धिक्कार है!"

रास्ते भर इसी प्रकार विचार करता हुआ, नीति-निपुण सुवेग कितने ही दिन बाद अयोध्या-नगरीमें आ पहुँचा। द्वारपाल उसे सभामें ले गया। वह प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए बैठा ही था, कि महाराजने उससे बड़े आदरके साथ पूछा,—

"सुवेग! मेरा छोटा भाई बाहुबली कुशलसे है न? तुम वहाँसे बडी जल्दी चले आये, इससे मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। अथवा उसने तुम्हें खदेड़ दिया है, इसीलिये तुम झटपट चले आए हो? क्योंकि यह वीरवृत्ति तो मेरे बलवान् भ्राताके योग्य ही है।"

सुवेगने कहा,—"हे महाराज! आपके ही समान अतुल पराक्रम वाले उन बाहुबली राजाकी बुराई करनेको देव भी समर्थ नहीं है। वे आपके छोटे भाई हैं, इसीलिये मैंने पहले उनसे स्वामीकी सेवा करनेके लिये आनेको विनय-पूर्वक हितकारी वचन कहा: इसके बाद औषधकी तरह कड़वे, पर परिणाममें उपकारी तीखे वचन कहे: पर क्या मीठे, क्या कड़वे, किसी तरहके वाक्योंसे वे आपकी सेवा करनेको नहीं तैयार हुए। जैसे सन्निपातके रोगीको दवा थोड़े ही असर करती है? वह बलवान् बाहुबली

बतलायें—मुझे इसकी कोई परवा नहीं। संसारमें धन से अथवा पुरुषार्थसे सब कुछ मिल जा सकता है ; पर ऐसा भाई किसी तरह नहीं मिल सकता। मंत्रियो! मेरा यह कहना मेरे योग्य है या नहीं ? तुम लोग क्यों चुपचाप मौनी बाबा बने बैठे हो ? जो उचित जान पड़े, वह कहो।"

बाहुबलीकी दुर्विनीतता और अपने स्वामीकी इस क्षमासे चोट खाये हुए की तरह सेनापति सुषेणने कहा,—"ऋषभस्वामी के पुत्र भरतराजको तो क्षमा करनी ही चाहिये, पर यह क्षमा उन्हीं लोगोंपर दिखलायी जानी चाहिये, जो कृपाके पात्र हों। जो जिसके गाँवमें रहता है, वह उसके अधीन होता है और यह बाहुबली तो एकही देशका राजा है, तथापि मुँहसे भी आपकी वश्यता स्वीकार नहीं करता। प्राणोंका ग्राहक, पर प्रतापकी वृद्धि करनेवाला शत्रु अच्छा ; परन्तु अपने भाईके प्रतापको नष्ट करनेवाला बन्धु अच्छा नहीं। राजा, अपने भण्डार, सैन्य, मित्र, पुत्र और शरीरसे भी अपने तेजकी रक्षा करते हैं, क्योंकि तेजही उनका जीवन है। अपने आपके राज्यमें ही क्या नहीं था, जो आप छओं खण्डोंपर विजय प्राप्त करने गये ? यह सब तेजहीके लिये तो ? एक बार जिस सतीका शील नष्ट हो गया, वह सदा असती ही कहलाती है, वैसेही एक स्थानपर नष्ट हुआ तेज सभी जगहोंसे नष्ट हुआ समझा जाता है। गृहस्थ में भाई-भाईके बीच द्रव्यका बराबर बँटवारा होता है : तो भी वे तेजको छीननेवाले भाईकी ज़रा भी उपेक्षा नहीं करते। अखिल भरतखण्डकी विजय कर

लेने पर भी यदि आपकी यहीं अविजय हो गयी, तो फिर यही कहना पड़ेगा, कि समुद्रको तैर जानेवाला पुरुष गढ़ैयामें डूब गया ! क्या आपने यह कहीं देखा या सुना है, कि चक्रवर्त्तीकी प्रतिस्पर्द्धा करनेवाला राजा भी सुखसे राज्य कर सका हो ? हे प्रभु ! जो अपना अदब न करता हो, उसके साथ भाईचारा दिख-लाना, एक हाथसे ताली बजाना है। वेश्याओंकी तरह स्नेह-रहित बाहुबली राजापर भरतराज स्नेह रखते हैं, ऐसा कहनेसे यदि आप लोगोंको रोकें, तो भलेही रोकें ; परन्तु आज तक जो चक्र नगरके बाहर यही प्रण करके ठहरा हुआ है, कि मैं तो सब शत्रुओंको जीत करही अन्दर प्रवेश करूँगा,उसे आप कैसे रोकेंगे ? भाई होकर भी जो आपका शत्रु है। ऐसे बाहुबलीकी उपेक्षा करना आपके लिये उचित नहीं है ; आगे इस विषयमे आप अपने अन्यान्य मंत्रियोंसे भी पूछ लीजिये।"

सुषेणके ऐसा कह लेने पर महाराजने एक बार अन्यान्य सब लोगोंकी ओर देखा। इतनेमें वाचस्पतिके समान प्रधान मंत्री ने कहा,—"सेनापतिने जो कुछ कहा, वह ठीक ही है। ऐसी बातें कहनेको दूसरा कौन समर्थ हो सकता है ? जो पराक्रम और प्रयासमे भीरु होते हैं, वे अपने स्वामीके तेजकी उपेक्षा करते हैं। स्वामी अपने तेजके लिये जो कुछ आदेश करते हैं, उसके विषयमे अधिकारीगण स्वार्थानुकूल उत्तर दिया करते और व्यर्थ का तुलकलाम किया करते हैं। पर सेनापति महोदय वैसेही आप-के तेजकी वृद्धि करनेवाले हैं, जैसे वायु अग्निको बढ़ा देती है।

चक्ररत्नकी तरह सेनापति भी आपके इस बाक़ी बचे हुए शत्रुको भी पराजित किये बिना सन्तुष्ट नहीं होंगे। इस लिये आप अब विलम्ब न करें। आपकी आज्ञासे सेनापति हाथमें दण्ड लिये हुए शत्रुका शासन करनेको प्रस्थान करें, इसके लिये आप अभी बिगुल बजवा दें। सुघोषाके घोषको सुनकर जैसे देवतागण प्रस्तुत हो जाते हैं, वैसेही आपकी बिगुलकी आवाज़ सुनते ही आपके सब सैनिक वाहनों और परिवारोंके साथ एकत्र हो जायें और आप भी तेजकी वृद्धिके लिये उत्तरकी ओर तक्षशिलापुरीके लिये सूर्यकी तरह प्रस्थान करें। आप स्वयं जाकर अपने आँखों भाईका स्नेह देख आयें और सुवेगकी बातोंकी सचाई भूठाईकी परीक्षा कर लें।"

मन्त्रीकी यह बात राजाने स्वीकार कर ली और कहा,—अच्छा, ऐसाही होगा।" क्योंकि विद्वान् मनुष्य दूसरोंकी कही हुई उचित बातोंको भी मान लेते हैं। इसके बाद शुभदिनको, यात्राके समय किये जानेवाले मङ्गलके कार्योंका अनुष्ठान कर, महाराज पर्वतकेसे उन्नत गजेन्द्रके ऊपर आरूढ़ हुए। मानों दूसरे राजाकी सेना ही, ऐसे रथों, घोड़ों और हाथियों पर सवार हज़ारों सेवक प्रयाण-समयके बाजे बजाने लगे। एक ताल पर संगीत करनेवालोंकी तरह प्रयाण-वाद्योंका नाद सुन, सारी सेना इकट्ठी हो गयी। राजाओं, मन्त्रियों, सामन्तों और सेनापतियोंसे घिरे हुए महाराज मानों अनेक मूर्त्तियोंवाले होकर नगरके बाहर आये। एक हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित चक्ररत्न सेनापतिके समान

सारी सेनाके आगे-आगे चलने लगा। मानों शत्रुओंके गुप्तचर घूम रहे हों, इसी तरह महाराजके प्रयाणकी सूचना देनेके लिये चारों ओर धूल उड़-उड़ कर फैलने लगी। उस समय लाखों हाथियोंको जाते देख, ऐसा मालूम पड़ा, मानों पृथ्वी ही गज-शून्य हो गयी हो। घोड़ों, रथों, खच्चरों और ऊँटोंकी पलटन देख, ऐसा जान पड़ा, मानों अब दुनियाँमें कहीं कोई सवारी नहीं रह गयी है। जैसे समुद्रकी ओर दृष्टि करने वालेको सारा जगत् जलमयही दीखता है, वैसेही उनकी पैदल सेनाको देखकर सारा जगत् मनुष्यमयही मालूम पड़ने लगा। राहमें जाते-जाते महाराज प्रत्येक नगर और ग्राममें लोगोंको राह-राह यही कहते हुए पाने लगे,—"इस राजाने इस सारे भरत क्षेत्रको एक क्षेत्रकी तरह वशमें कर लिया है और मुनि जिस प्रकार चौदह पूर्वको मिलाते हैं, उसी प्रकार चौदहों रत्नोंको प्राप्त कर लिया है। आयुधोंके समान इन्होंने नवों निधियोंको वशमें कर लिया है। फिर इतना वैभव होते हुए भी महाराजने किस लिये और कहाँको प्रस्थान किया है? कदाचित् अपनी इच्छासे अपना देश देखनेके लिये जा रहे हों, तो फिर शत्रुओंको दण्ड देनेवाला यह चक्ररत्न क्यों आगे-आगे जा रहा है? परन्तु दिशाका अनुमान करनेसे तो यही मालूम होता है, कि ये बाहुबलीके ऊपर चढ़ाई करने जारहे हैं। ओह, बड़े आदमियोंके कषायका वेग भी बड़ा अखण्ड होता है। वह बाहुबली देवों और असुरोंसे भी मुश्किल से जीता जा सकता है, ऐसा सुननेमें आता है, फिर उसे जीतने

-की इच्छा करनेवाले ये राजा मानों उँगली पर मेरुपर्वत उठाने आ रहे हैं, इस युद्धमें छोटे भाईने कहीं बड़ेको जीत लिया अथवा बड़ेनेही छोटेको परास्त कर दिया; तो दोनोंही अवस्थाओंमें महाराजको ही भारी अपयश प्राप्त होगा।"

सैन्योंकी उड़ायी हुई धूलकी बाढ़से विन्ध्याचलकी वृद्धिकी तरह चारों ओर अन्धकार फैलाते; अश्वोंके हेषारव, गजोंके गर्जन, रथोंके चीत्कार और योद्धाओंके कराघातों इन चारों प्रकारके शब्दोंसे नगाड़ेके शब्दकी तरह दिशाओंको नादमय करते; ग्रीष्म ऋतुके सूर्यकी तरह रास्तेकी नदियोंको सोखते; उत्कट पवनकी भाँति मार्गके वृक्षोंको उखाड़कर फेंकते; सेनाकी ध्वजाओंके वस्त्रसे आकाशको बगुलोंसे भरा हुआ बनाते; सैन्यके भारसे दबी हुई पृथ्वीको हाथियोंके मदसे शान्त करते और प्रतिदिन चक्रके बतलाये हुए रास्तेपर चलते हुए महाराज उसी प्रकार बहलीदेशमें आ पहुँचे, जैसे सूर्य दूसरी राशिमें संक्रमण करता है। उस देशकी सीमाके पास पहुँचकर उन्होंने पड़ाव डाला और समुद्रकी तरह मर्यादा बाँधकर वहीं टिक रहे।

इसी समय सुनन्दाके पुत्र बाहुबलीने राजनीति रूपी भवनके स्तम्भ-स्वरूप चरोंके मुँहसे चक्रवर्तीके आनेका समाचार सुना। सुनतेही उन्होंने भी अपनी प्रतिध्वनिसे स्वर्गको भी शब्दायमान करनेवाली दुन्दुभि बजायी। प्रस्थानही कल्याणकारी हो, इस लिये उन्होंने मूर्तिमान कल्याणकी तरह भद्र-गजेन्द्रके ऊपर उत्साहकी तरह सवारी की। बड़े बलवान, बड़े उत्साही, कार्यमें एक

सी प्रवृत्ति रखनेवाले, दूसरोंसे अभेद्य और अपनेही अंशके समान उनके राजकुमारों, मन्त्रियों और वीरपुरुषोंसे घिरे हुए राजा बाहुबली देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी तरह शोभित होने लगे। मानो उनके मनमेंही बसे हों, ऐसे लाखों योद्धा—कुछ हाथियोंपर, कितनेही घोड़ोंपर, कितनेही रथोंपर सवार हो, तथा कितनेही पैदल बाहर निकले। बलवान् और ऊँचे-ऊँचे अस्त्रोंवाले अपने वीरोंसे एक वीरमयी पृथ्वीकी रचना करते हुए अचल निश्चय वाले बाहुबली चल पड़े। विभागरहित जयकी इच्छा रखनेवाले उनके वीर सुभट, "मैं अकेला ही शत्रुको जीत लूंगा," ऐसा एक दूसरेसे कह रहे थे। रोहणाचल-पर्वतके सभी पत्थर जैसे मणिमय होते हैं, वैसेही उस सेनामें बाजे बजानेवाले भी अपनेको वीर ही समझ रहे थे। उनके माण्डलिक राजाओं के चन्द्रमाकी सी कान्तिवाले छत्र-मण्डलसे आकाश श्वेतकमलमय दीखने लगा। हरएक पराक्रमी राजाको देखकर उन्हें अपनी भुजाके समान मानते हुए वे आगे-आगे चलने लगे। राहमें चलते हुए राजा बाहुबली अपनी सेनाके भारसे पृथ्वीका और बाजोंकी ध्वनिसे आकाशको फाड़ने लगे। उनके देशकी सीमा दूर थी; तोभी वे तत्काल वहाँ आ पहुँचे। क्योंकि रणके लिये उत्कण्ठित वीरपुरुषगण वायुसे भी अधिक वेगवान् हो जाते हैं। भरतराजके पड़ावसे न बहुत दूर न बहुत निकट, गङ्गाके तटपर बाहुबलीने पड़ाव डाला।

प्रातःकाल चारण-भाटोंने अतिथिकी भाँति उन दोनों ऋषभ-

कुमारों को युद्धोत्सवके लिये रण-निमंत्रण दिया। रातके समय बाहुबलीने सब राजाओंकी सलाहसे अपने सिंह जैसे पराक्रमी सिंह रथ नामक पुत्रको सेनापति नियुक्त किया और पट्टहस्तीकी भाँति उनके मस्तकपर प्रकाशमान प्रतापके समान देदीप्यमान सुवर्णका एक रण-पट्ट आरोपित कर दिया। राजकुमार राजाको प्रणाम कर, उनसे रण-शिक्षा ले, ऐसे आनन्दसे अपने निवास-स्थान पर आये, मानों उन्हें पृथ्वी ही मिल गयी हो। महाराज बाहुबलीने अन्यान्य राजाओंको भी युद्धके लिये आज्ञा देकर विदा किया। यद्यपि वे स्वयं रणकी इच्छा रखते थे, तथापि स्वामीकी इस आज्ञाको उन्होंने सम्मानके साथ सिर-आँखोंपर लिया।

इधर महाराज भरतने कुमारों, राजाओं और सामन्तोंकी रायसे श्रेष्ठ आचार्यकी तरह सुषेणको रणदीक्षा प्रदान की—उन्हें सेनापति बनाया। सिद्धिमंत्रकी तरह स्वामीकी आज्ञा स्वीकार कर, चक्रवाककी भाँति प्रातःकाल होनेकी बाट जोहता हुआ सुषेण अपने डेरेपर आया। कुमारों, मुकुटधारी राजाओं और सब सामन्तोंको बुलाकर राजा भरतने आज्ञा दी,—"प्यारे शूर-वीरों! मेरे छोटे भाईके साथ युद्ध करते समय बिना भूले तुम लोग सुषेण सेनापतिको मेरेही समान जानना। हे पराक्रमी योद्धाओं! महावत जैसे हाथीको वशमें कर लेता है, वैसेही तुमने अपने अतुल पराक्रमसे बड़े-बड़े अभिमानी राजाओंको वशमें कर लिया है और वैताढ्यपर्वतको लाँघकर देवों तथा असुरोंको पराजित कर, तुमने दुर्जय किरातोंको भी अपने पराक्रमसे खूबही मसल डाला

है। पर ठीक जानना, उन लोगोंमे बाहुबलीके पैदल सिपाहियोंकी बराबरी करनेवाला एक भी नहीं था। हवा जैसे रूईको उड़ा ले जाती है, वैसेही इस-बाहुबलीका जेठा बेटा सोमयशा सारी सेना को दसों दिशाओंमें उड़ाकर फेंक देनेको समर्थ है। उमरमें छोटा और पराक्रममें बड़ा उसका सिंहरथ नामका छोटा भाई शत्रुओंकी सेनाके लिये दावानलके समान है। अधिक क्या कहूं? उसके अन्य पुत्रों और पौत्रोंमें भी एक-एक ऐसा है, जो अक्षौहिणी सेनामें मल्लके समान और यमराजके सदृश भय उत्पन्न कर सकता है। उसके स्वामिभक्त सेवक भी, जो ठीक उसके प्रतिबिम्ब मालूम पड़ते हैं, बलमें उसकी समानता कर सकते हैं। औरोंकी सेनामें जैसे एकही महाबलवान् नायक होता है, वैसे उस की सेनामें सबके सब पराक्रमी हैं। महाबाहु बाहुबली तो दूर रहे, उसका एक-एक सेनाव्यूह रणमें वज्रकी तरह अभेद्य है। इसलिये जैसे वर्षाऋतुमें मेघके साथ-साथ पुरवैया हवा चलती है, वैसे ही तुम भी युद्धके लिये यात्रा करते हुए सुषेणके पीछे-पीछे चले जाओ।"

अपने स्वामीकी अमृतसमान वाणीसे मानों उनके रोम-रोम भर गये हों, इस प्रकार उनके शरीरमें पुलकावली छा गयी। मानों प्रतिवीरों (शत्रुओं) की जयलक्ष्मीको स्वयंवर-मण्डपमें धरने जाते हों, इसी तरह महाराजके द्वारा विसर्जन किये हुए वे वीर अपने-अपने डेरोंमें चले गये। दोनों ऋषभपुत्रोंकी प्रसादरूपी समुद्रको तरनेकी इच्छासे दोनों ओरके वीरश्रेष्ठ युद्धके लिये तैयार

होने लगे। सबके सब अपने कृपाण, धनुष, तरकस, गदा और शक्ति आदि आयुधोंकी देवताको तरह पूजा करने लगे। उत्साह-से नाचते हुए अपने चित्तके तालपर हो, वे वीर अपने आयुधोंके सामने ऊँचे स्वरसे बाजे बजाने लगे। इसके बाद अपने निर्मल यशके समान नवीन और सुगन्धित उबटनसे वे अपने शरीरका मार्जन करने लगे। मस्तक पर बँधे हुए काले वस्त्रके वीरपट्टका अनुकरण करनेवाली कस्तूरीकी बिन्दी (टीका) वे अपने अपने ललाटमें लगाने लगे। दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्धकथा जारी रहने और शस्त्र पूजाके लिये जागरण करनेके कारण वीरोंको नींद नहीं आयी। मानों वह उनसे डर गयी। प्रातःकाल होने वाले युद्धके लिये उत्साहसे भरे हुए दोनों ओरके वीर सैनिकोंको तीन पहरोंकी वह रात सौ पहरोंवाली मालूम पड़ी और उन्होंने बड़ी मुश्किलसे वह रात काटी।

सवेरा होतेही दोनों ऋषभपुत्रोंकी युद्ध-क्रीड़ा देखनेके कौतूहलसे ही मानों सूर्य उदयाचलकी चोटी पर चढ़ आये। उस समय एकाएक मन्दराचलसे क्षुब्ध समुद्र-जलकी भाँति, प्रलय कालके पुष्करावर्त्त-मेघकी भांति और वज्रसे ताड़ित पर्वतकी भाँति दोनों सेनाओंमें मारू बाजे बज उठे। उन रणवाद्योंके उस गूंजते हुए नादसे दिग्गजोंने तत्काल कान ऊँचे किये और डर गये—जलमें रहनेवाले जीव भयसे भ्रान्त होने लगे। समुद्र खलबला उठा, क्रूर प्राणी भी चारों ओरसे दौड़ते भागते हुए गुफाओंमें प्रवेश करने लगे, बड़े-बड़े साँप बिलोंमें घुसने लगे, पर्वत

काँप उठे और उनके शिखर गिर पड़नेलगे, पृथ्वीको धारण करने वाले कूर्मराजने अपने चरण और कण्ठका सङ्कोच करना शुरू किया; आकाश टूट पड़ने लगा और पृथ्वी फटती हुई सी मालूम पड़ने लगी। राजाके द्वारपालसे प्रेरित किये हुएके समान दोनों ओरके सैनिक रणवाद्योंसे प्रेरित होकर युद्धकेलिये तैयार होने लगे। रणके उत्साहसे शरीर फूल उठनेके कारण उनके कवचों के बन्द तड़क उठे और वे नये-नये कवच धारण करने लगे। कोई अत्यन्त प्रेमके मारे अपने घोड़ेको भी बख्तर पहनाने लगा, क्योंकि बड़े-बड़े वीर अपनी अपेक्षा भी अपने वाहनोंकी विशेष रक्षा करते हैं। कोई अपने घोड़ेकी परीक्षा करनेके लिये उसपर बैठकर उसे चलाकर देखने लगा; क्योंकि दुःशिक्षित और जड़ अश्व अपने सवारका शत्रुही होता है। बख्तर पहनकर हींसनेवाले घोड़ेकी कोई कोई वीर पूजा करने लगे; क्योंकि युद्धमें जाते समय घोड़े-का हींसना युद्धमें जीत होनेका लक्षण है। कोई बिना बख्तरका घोड़ा मिलनेसे आप भी अपना बख्तर उतार कर रखने लगा; क्योंकि पराक्रमी पुरुषोंका रणमें यही पुरुषव्रत है। कोई अपने सारथिको ऐसी शिक्षा देने लगा, जिससे वह समुद्रमें जैसे मछली चलती है, वैसे ही घोर रणमें सञ्चार करते हुए भी स्खलन नहीं पानेकी चतुराई सीख जाये। जैसे राह चलनेवाले राहखर्चके लिये पूरा सामान अपने पास रख लेते है, वैसेही बहुत दिनोंतक जारी रहनेवाली लड़ाईके लिहाज़से कितनेही वीरोंने अपने रथोंको हथियारोंसे भर लिया। कोई दूसरेही अपनी पहचान करादेने

वाले भाटचारणोंके से अपने गुण बतलानेवाले ध्वजस्तम्भोंको दृढ़ करने लगे। कोई अपने मज़बूत धुरेवाले रथमे, शत्रुसैन्य-रूपी समुद्रमें मार्ग पैदा करनेके लिये, जलकान्तरत्नके समान अश्व जोतने लगे। कोई अपने सारथिको मज़बूत बख़्तर देने लगा, क्योंकि अच्छे घोड़े जुते रहनेपर भी विना सारथि रथ निकम्मा हो जाता है। कोई मज़बूत लोहेके कंकणकी श्रेणोका सम्पर्क होनेसे कठोर बने हुए हाथियोंके दाँतको अपनी भुजाकी तरह पूजने लगे। कोई प्राप्त होनेवाली जयलक्ष्मीके वासगृहके समान पताकाओंके समूह वाली अम्बारोको हाथीके ऊपर रखने लगा। कोई-कोई वीर शकुन समझ कर हाथीके गण्डस्थलसे चूते हुए मदका कस्तूरीके समान तिलक करने लगे। कोई दूसरे हाथीकी मदगन्धसे भरी हुई वायुको भी सहन न करनेवाले मनकी तरह मतवाले हाथीपर, सवार होने लगा, सारे महावत रणोत्सवके श्रृङ्गार वस्त्रके समान सोनेके कड़े हाथियोंको पहिनाने और उनकी सूंड़ोंसे भी ऊँची नालवाले नील कमलकी लीलाको धारण करनेवाले लोहेके मुद्गर भी उनसे उठवाने लगे। कितहीने महावत यमराजके दाँतके समान हाथियोंके दाँतके ऊपर काले लोहेकी तीखी चूड़ियाँ पहनाने लगे।

इसी समय राजाके अधिकारियोंकी ओरसे आज्ञा जारी हुई, कि सैन्यके पीछे-पीछे अस्त्रोंसे लदे हुए ऊँटों और गाड़ियोंको शीघ्रही ले जाओ, नहीं तो हस्तलाघवतावाले वीर सिपाहियोंको हथियारोंका टोटा हो जायगा; बख्तरोंसे लदे हुए ऊँट भी ले

जाओ ; क्योंकि लगातार लड़ाईमें डटे हुए वीरोंके पहलेके पहने हुए कवच अवश्यही टूट जायेंगे। रथी पुरुषोंके पीछे-पीछे दूसरे रथ भी तैयार रखो ; क्योंकि जैसे वज्र पर्वतोंको ढा देता है, वैसे ही शस्त्रोंसे रथ टूट जाते हैं। पहलेके घोड़े थक जायें और युद्ध-में विघ्न हो, इस भयसे अभीसे सैकड़ों अश्व घुड़सवारोंके पीछे-पीछे जानेके लिये तैयार कर रखो। प्रत्येक मुकुटबन्ध राजाके पीछे दूसरा हाथी भी तैयार रखो, क्योंकि एकही हाथीसे संग्राम-में काम नहीं चल सकता। प्रत्येक सैनिकके पीछे पानी ढोने-वाले भैंसे तैयार रखो ; क्योंकि युद्धचेष्टा रूपी ग्रीष्मऋतुसे तपे हुए वीरोंके लिये वह चलती-फिरती हुई प्याऊका काम देगा। औषधिपति चन्द्रमाके भण्डारकी भाँति और हिमगिरिके सारके सदृश ताज़ी व्रण-संरोहिणी औषधियोंके गट्ठर उखड़वा मँगवा-ओ।” उनके ऐसे कोलाहलसे रणके बाजोंकी ध्वनिरूपी समुद्रमें ज्वार सा आ गया। उस समय सारा संसार चारों ओरसे उठते हुए तुमुल शब्दसे शब्दमय और हथियारोंकी झनझनाहटसे लौह-मय हो उठा। मानों पूर्वकी सभी बातें आँखोंदेखी हों, इस तरह से पूर्वपुरुषोंके चारित्र सुनानेवाले, व्यासकी तरह रण-निर्वाहके फल बतलाने वाले और नारदकी तरह वीर योद्धाओंको जोश दि-लानेके लिये सामने आये हुए शत्रुवीरोंका बारम्बार आदर-सहित बखान करनेवाले चरण-भाट, हरएक हाथी, रथ और घोड़ेके पास आ-आकर पर्व दिवसकी तरह रणसे चंचल होकर इधरसे उधर घूमने-फिरने लगे।

इधर बाहुबली स्नान कर, देवपूजाके लिये मन्दिरमें गये। बड़े आदमी किसी कार्यके झंझटमें पड़कर अपने चित्तकी स्थिरताको नहीं खो देते। देवमन्दिरमें जा, जन्माभिषेकके समय इन्द्रकी तरह उन्होंने ऋषभस्वामीकी प्रतिमाको सुगन्धित जलसे स्नान कराया। इसके बाद निःकषाय और परम श्रद्धा-युक्त होकर उन्होंने दिव्य-गन्ध-पूर्ण कषाय-वस्त्रसे, मनमानी श्रद्धाके साथ उस प्रतिमाका मार्जन किया और इसके पश्चात् लालरंगके वस्त्रकी मानों रचना की हो, ऐसा यक्षकर्दमसे उस प्रतिमाका विलेपन किया। सुगन्धमें देववृक्षके पुष्पोंकी मालाकीयहनसी विचित्र पुष्पोंकी मालासे उन्होंने प्रतिमाका अर्चन किया। सोनेकी धूप-दानीमें दिव्य धूप दिया। उसके धुएँसे ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों नीले कमलोंसे पूजाकी जा रही हो। इसके बाद मकर-राशिमें आये हुए सूर्यके समान उत्तरासङ्ग कर, प्रकाशमान आरतीको प्रतापके समान ग्रहण कर, आरती उतार, अन्तमें हाथ जोड़कर आदि भगवान्‌का प्रणाम कर, उन्होंने भक्तिपूर्वक इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की,—

"हे सर्वज्ञ ! मैं अपनी जड़ता दूर कर आपकी स्तुति कर रहा हूँ; क्योंकि आपकी यह दुर्निवार भक्ति मुझे वाचाल कर रही है। हे आदि-तीर्थेश ! आपकी जय हो, आपके चरण-नखकी कान्तियाँ संसाररूपी शत्रुसे त्रास पाये हुए प्राणियोंको वज्र-पंजरका काम देती हैं। हे देव ! आप के चरण-कमलोंके दर्शन करनेके लिये दूर-दूरसे जो लोग राजहंसके समान प्रतिदिन

आया करते हैं, वे धन्य हैं। जाड़ेसे ठिठुरे हुए लोग जैसे सूर्यकी शरणमें आते हैं, वैसेही इस संसारके विकट दुःखोंसे पीड़ित विवेकी व्यक्ति नित्य आपकी ही शरणमें आते हैं। हे भगवन्! जो लोग निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हैं, उनको परलोकमें देवत्व दुर्लभ नहीं है। हे देव! जैसे रेशमी कपड़े पर लगा हुआ अंजनका दाग़ दूधसे धोनेपर मिट जाता है, वैसही पुरुषोंका कर्म-रूपी मैल आपकी देशनारूपी जलसे धुल जाता है। हे स्वामी! जो निरन्तर आपका "ऋषभनाथ" यह नाम जपा करता है, उस जापकको सब सिद्धियोंका आकर्षण-मन्त्र सिद्ध सा हो जाता है। हे प्रभु! जो आपकी भक्तिरूपी कवचको धारण कर लेता है, उस पर वज्र या त्रिशूलका असर नहीं होता।"

इस प्रकार भगवान्की स्तुति कर जिनके सारे शरीरके रोंगटे खड़े हो गये हैं, ऐसे वे नृप शिरोमणि बाहुबली, प्रभुको प्रणाम कर, देवालयसे बाहर निकले।

इसके बाद उन्होंने विजयलक्ष्मीके विवाहके लिये बनी हुई काँचलीके समान सुवर्णमाणिक्य-मण्डित वज्र-कवच धारण कर लिया। जैसे बहुतसे प्रवालोंके समूहसे समुद्र शोभा पाता है, वैसेही वे देदीप्यमान कवच पहननेसे सुशोभित दीखने लगे। तदनन्तर उन्होंने पर्वतकी चोटीपर सोहनेवाले मेघमण्डपकी तरह सिरपर शिरस्त्राण धारण कर लिया। बहुतसे सर्पोंसे भरे हुए पाताल-विवरके समान, लोहके बाणोंसे भरे हुए दो तरकस उन्होंने पीठपर बाँध लिये और युगान्तके समय यमराजके उठाये हुए

दण्डकी तरह बायें हाथमें धनुष ले लिया। इस प्रकार तैयार होनेवाले राजा बाहुबलीको स्वस्तिवाचक पुरुषोंने आपका कल्याण हो,' ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया। नाते-गोतेकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ 'जीओ-जागो' कहकर उन्हें असीसें देने लगीं। बड़े-बूढ़े और श्रेष्ठ पुरुष 'सानन्द रहो-सानन्द रहो' ऐसा कहने लगे और चारण—भाट 'चिरंजीवी हो, चिरंजीवी हो,' कहकर ऊँचे स्वरसे उनका मङ्गल मनाने लगे। तदनन्तर स्वर्गाधिपति जैसे मेरुपर आरूढ़ होते हैं, वैसेही सबके मुँहसे शुभ शब्द सुनते हुए महाभुज बाहुबली महावतका हाथ पकड़कर गजपतिके ऊपर आरूढ़ हुए।

इधर पुण्य-बुद्धि महाराज भरत भी शुभलक्ष्मीके कोषागारके समान अपने देवमन्दिरमें पधारे। वहाँ पहुँचकर महामना महाराजने आदिनाथकी प्रतिमाको, दिग्विजयके समय लाये हुए पद्महृद आदि तीर्थोंके जलसे स्नान कराया; जैसे उत्तम कारीगर मणिका मार्जन करता है, वैसेही देवदूष्य वस्त्रसे उस अप्रतिम प्रतिमाका मार्जन किया; अपने निर्मल यशसे उज्ज्वल बनायी हुई पृथ्वीके समान हिमाचल कुमार आदि देवोंके दिये हुए गोशीर्ष-चन्दनसे उस प्रतिमाका विलेपन किया; लक्ष्मीके सदन-स्वरूप कमलोंके समान प्रफुल्ल कमलोंसे उन्होंने पूजामें नेत्रस्तम्भनकी औषधिके समान प्रतिमाको आँगी रची। धूम्रवल्लीसे मानों कस्तूरीकी पत्र-रचना करते हों, ऐसा धूप उन्होंने प्रतिमाके पास जलाया। इसके बाद मानों सर्व कर्मरूपी समाधिका अग्निकुण्ड हो, ऐसी

प्रदीप्त दीपकवाली आरती ग्रहणकर उस राजदीपकने प्रभुकी आरती उतारी। सबके अन्तमें देवताको प्रणाम कर, हाथ जोड़, उन्होंने इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की,—

"हे जगन्नाथ! मैं अज्ञान हूँ, मैं अज्ञान हूँ, तो भी अपनेको योग्य मानकर मैं आपकी स्तुति करता हूँ; क्योंकि बालकोंकी तोतली बाणी भी गुरुजनोंको उचित ही मालूम पड़ती है। हे देव! सिद्ध रसके स्पर्शसे जैसे लोहा भी सोना हो जाता है, वैसे ही आपका आश्रय करनेवाले प्राणोके चाहे जैसे कर्म हों, तो भी वह सिद्ध-पदको प्राप्त हो जाता है। हे स्वामी! आपका ध्यान, स्तुति और पूजन करनेवाला प्राणी अपने मन, वचन और कायाका फल प्राप्त कर लेता है, और वही धन्यपुरुष है। हे प्रभु! पृथ्वीमें विहार करते हुए आपके चरण-चिह्न पुरुषोंके पापरूपी वृक्षको उखाड़नेके लिये हाथीके समान काम करते हैं। हे नाथ! स्वाभाविक मोहसे जन्मान्ध बने हुए संसारके जीवोंको अकेले आपही विवेकरूपी नेत्र देनेमें समर्थ हो। जैसे मनके लिये मेरु आदि भी कुछ दूर नहीं है, वैसेही आपके चरणकमलोंमें भ्रमर बनकर लिपटे हुए पुरुषोंके लिये मोक्ष पाना कोई बड़ी बात नहीं है। हे देव! जैसे मेघका जल पड़नेसे जम्बू वृक्षके फल गिर जाते हैं, वैसे ही आपकी देशना-रूपी वाणीसे (पानीसे) प्राणिओंके कर्मरूपी पाश छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। हे जगन्नाथ! मैं वारम्वार प्रणाम करता हुआ आपसे यही वर माँगता हूँ कि आपमें मेरी भक्ति वैसेही अक्षय हो, जैसे समुद्रका जल कभी नहीं घटता।"

इस प्रकार आदिनाथकी स्तुतिकर, प्रणाम करनेके अनन्तर चक्रवर्ती भक्ति-भरे हृदयके साथ मन्दिरके बाहर आये।

इसके बाद बारम्बार शिथिल करके रचा हुआ कवच उन्होंने अपने हर्षसे उच्छ्वसित अङ्गोंमें धारण किया। माणिक्यकी पूजासे जैसे देवप्रतिमा सोहती है, वैसेही अपने अङ्गोंमें दिव्य और मणिमय कवच धारण करनेसे वे भी शोभाको प्राप्त हुए। मानों दूसरा मुकुट ही हो, ऐसा बीचमें उठा हुआ और छत्रकी तरह गोलाकार सुवर्ण रत्नवाला शिरस्त्राण उन्होंने पहन लिया। उन्होंने अपनी पीठ पर सर्पकेसे तीक्ष्ण बाणोंसे भरे हुए दो तरकस बाँध लिये और इन्द्र जैसे ऋजुरोहित नामक धनुषको धारण करता है, वैसे ही शत्रुओंको भय देनेवाला कालपृष्ठ नामक धनुष अपने बाँयें हाथमें ले लिया। इसके बाद सूर्यकी तरह अन्य तेजस्वियोंके तेजका हरण करने वाले, भद्र गजेन्द्रकी भाँति मस्तानी चालसे चलने वाले, सिंहकी तरह शत्रुओंको तृणके समान जाननेवाले, सर्पकी तरह अपनी दुर्विषह दृष्टिसे भय देनेवाले, और इन्द्रकी तरह बन्दी बनाये हुए देवताओंसे स्तुति करवाने वाले भरतराज निस्तन्द्र गजेन्द्रके ऊपर आ सवार हुए।

कल्पवृक्षके समान याचकोंको दान देते हुए, सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रकी तरह चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए, अपनी-अपनी सेनाओंको आया हुआ देखकर, हंस कमल-नालको ग्रहण करता है, वैसेही एक-एक बाणको ग्रहण करते हुए, विलासी पुरुष जैसे रतिवार्त्ता करता है, वैसे ही युद्धकी वार्त्ता करते हुए, गगन-मण्डल

के बीचमें आये हुए सूर्यके समान बड़े उत्साह और पराक्रम वाले वे दोनों ऋषभकुमार अपनी-अपनी सेनाओंके बीचमें आ विराजे। उस समय अपनी-अपनी सेनाओंके बीचमें टिके हुए भरत और बाहुबली राजा जम्बूद्वीपमें रहने वाले मेरु पर्वतकी शोभा दिखला रहे थे। उन दोनों सैन्योंके बीचमें पड़ी हुई पृथ्वी, निषध और नील पर्वतोंके बीचमें पड़ी हुई महा विदेहक्षेत्र भूमिकी तरह मालूम पड़ती थी। जैसे कल्पान्तके समय पूर्व और पश्चिम समुद्र आमने-सामने वृद्धि पाते हैं, वैसे ही दोनों आमने-सामने पंक्ति बाँधकर चलने लगे। बाँध जिस प्रकार जलके प्रवाहको रोकता है, उसी प्रकार पंक्तिसे अलग होकर चलनेवाले पैदल सिपाहियोंको राजाके द्वारपाल रोक देते थे। ताल सहित संगीत करनेवाले नाटकीय अभिनेताओंकी तरह वीरगण राजाकी आज्ञासे बराबर पाँव रखेहुए चलते थे। वे वीर अपने स्थानको उल्लंघन किये बिना चल रहे थे, इसी लिये दोनों ओरकी सेनाएं एक शरीर वाली मालूम पड़ती थीं। वीर योद्धागण पृथ्वीको रथोंके लोहेके मुखवालेचक्रोंसे विदीर्ण किये डालतेथे लोहेकी कुदालीकेसमान घोड़ोंके तीखे खुरोंसे खोद डालते थे। मानों लोहेका अर्द्धचन्द्र हो, ऐसे ऊँटोंके खुरोंसे पृथ्वी छिदी जाती थी। वज्रकीसी कठोर एड़ियों वाले पैदल सिपाही अपने पैरोंसे ही पृथ्वीको विदीर्ण किये डालते थे। छुरेके समान तेज़ बाणकेसे महिषों और साँड़ोंके खुरोंसे भी पृथ्वी फटी जाती थी। मुद्गलकेसे हाथियोंके पैर भी पृथ्वीको चूर्ण किये

डालते थे। वे वीरगण अपने पैरोंकी धूलसे अन्धकारको आ-च्छादित कर रहे थे और चमकते हुए हथियारोंसे चारों ओर प्रकाश फैला रहे थे। अपने भारी बोझसे वे कूर्मकी पीठको भी क्लेश पहुँचा रहे थे, महावराहको ऊँची डाढ़ोंको भी झुका रहे थे और शेषनागके फनके फैलावको भी शिथिल कर रहें थे। वे ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों सारे दिग्गजोंको कुबड़ बनाये डालते हों और सिंहनादसे ब्रह्माण्डरूपी पात्रको खूब ऊँचे स्वर से शब्दायमान कर रहे हों। साथ ही वे ऐसे मालूम पड़ते थे, मानो कराघात मात्रसे ही वे सारे ब्रह्माण्डको फोड़ डालेंगे। प्रसिद्ध ध्वजाओंके चिह्न से पहचानकर पराक्रमी शत्रुओंके नाम ले-लेकर उनका वर्णन करते हुए उन्हींकिसे शौर्यशाली वीर उन्हें युद्ध के लिये ललकार रहें थे। इस तरह दोनों सैन्योंके अग्रवीर एक दूसरे से भिड़ गये। फिरतो जैसे मगरके ऊपर मगर टूट पड़ता है, वैसे हो हाथी वालेके सामने हाथीवाला आ गया। तरङ्गके ऊपर जैसे तरङ्ग आपड़ती है, वैसेही घुड़सवार घुड़-सवारके सामने आ डटा। वायुके साथ जैसे वायु टकराती है, वैसेही रथीके साथ रथ की टक्कर हो गयी, और पर्वतके साथ जैसे पर्वत आ-मिला हो, वैसे ही पैदलके साथ पैदलकी भिड़न्त हो गयी। इसी प्रकार सब वोर भाला, तलवार, मुद्गर और दण्ड आदि आयुधोंको परस्पर मिलकर क्रोधयुक्त हो एक दूसरेके निकट आये। इतनेमें त्रैलोक्यके नाशकी आशङ्कासे भयभीत हो, देव-तागण आकाशमें आ इकट्ठा हुए। "अरे इन दोनों ऋषभपुत्रों

का जो, एक ही शरीर की दो भुजाओंके समान हैं, परस्पर संघर्ष क्यों हो रहा है ?" ऐसा विचार कर उन्होंने दोनों ओरके सैनिकों को पुकार-पुकार कर कहा,— "देखो जब तक हम लोग दोनों ओरके मनस्वी स्वामियोंको समझाते हैं, तब तक तुममेंसे भी कोई युद्ध न करे, ऐसी ऋषभदेवजी की आज्ञा है।" देवताओंने जब इस प्रकार तीन लोकोंके स्वामीकी आज्ञा सुनायी, तब दोनों ओर के सैनिक चित्र-लिखेसे चुप चाप खड़े हो गये और यही विचार करने लगे, कि ये देवता बाहुबलीके पक्षमें हैं या भरतराजके। काम भी न बिगड़े और लोक कल्याण भी हो जाये, इसी विचार से देवतागण पहले चक्रवर्तीके पास आये। वहाँ पहुचते ही 'जय-जय' शब्दसे आशीर्वाद करते हुए प्रियवादी देवताओंने मंत्रियोंके समान इस प्रकार युक्तिपूर्ण बातें कहनी आरम्भ की; "हे नरदेव! इन्द्र जैसे दैत्योंको जीतते हैं, वैसे ही आपने छओं खण्ड भरत क्षेत्रके सब राजाओंको जीत लिया, यह बहुत ही अच्छा किया, हे राजेन्द्र! पराक्रम और तेजके कारण सम्पूर्ण राजरूपी मृगोंमें आप शरभके तुल्य हैं— आपका प्रतिस्पर्द्धी कोई नहीं है। जलकुम्भका मथन करनेसे जैसे मक्खनकी साध नहीं मिटती, वैसे ही आपकी युद्धकी साध आजतक नहीं मिटी, इसलिये आपने अपने भाईके साथ लड़ाई छेड़ दी है; परन्तु आपका यह काम अपने ही हाथसे अपने दूसरे हाथको घायल करनेके समान है। जैसे बड़ा हाथी बड़े वृक्षमें अपना गण्डस्थल घिसता है, उसका कारण उसकी खुजली है, वैसे ही भाईके साथ आपके

युद्ध ठाननेका कारण भी आपकी भुजाओं की खुजलीही है ; परन्तु जैसे वनके उन्मत्त गजोंका उत्पात वनके नाशका ही कारण होता है, वैसे ही आपकी भुजाओंकी यह क्रीड़ा जगतमें प्रलय मचा देगी। माँसभक्षी मनुष्य क्षणभरको रसप्रीतिके लिये जिस प्रकार पक्षिओंके समूहका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार आप भी अपनी क्रीड़ा मात्रके लिये इस विश्वका संहार करनेको क्यों तुले हुए हैं ? जैसे चन्द्रमाकी किरणोंसे अग्निकी वृष्टि होनी उचित नहीं, वैसे ही जगत्‌के त्राता और कृपालु श्रीऋषभदेवके पुत्र होकर आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। हे पृथ्वीनाथ! संयमी पुरुष जैसे संगसे विराम ग्रहण कर लेते हैं, वैसे ही आप भी इस घोर संग्रामसे हाथ खींचकर घर लौट जाइये। आप यहाँ तक चले आये, इसलिये आपके छोटे भाई भी आपका साम ना करनेको चले आये ; पर यदि आप लौट जायेंगे तो वे भी लौट जायेंगे , क्योंकि कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है। विश्वक्षय करनेके पापसे आप छुटकारा पा जाइये, रणका त्याग कर देनेसे दोनों ओरके सिपाहियोंका भला हो जाये, आपकी सेनाके भारसे होने वाली भूमिभङ्गका विराम होजानेसे पृथ्वीके गर्भमें रहने वाले भुवनपति इत्यादिको सुख होवे, आपके सैन्यके मर्दनके अभावसे पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, प्रजाजन और सारे जीव-जन्तु क्षोभका त्याग कर दें और आपके संग्रामसे होनेवाले विश्व संहारकी शङ्कासे रहितहोकर सारे देवता सुखी हो जायें।”

देवता इस प्रकारकी पक्षपातपूर्ण बातें कही रहे थे, कि

महाराज भरत मेघकी सी गंभीर गिरामें बोले,— 'हे देवताओं! आप लोगोंके सिवा विश्वके हितकी बात और भला कौन कह सकता है? अधिकतर लोग तमाशा देखनेकी इच्छासे ऐसे २ मामलोंमें उदासीन हो रहते हैं, आप लोगोंने हितकी इच्छासे इस लड़ाईके छिड़नेका जो कारण अनुमान किया है, वह वस्तुतः कुछ और ही है। यदि कोई किसी कामका मूल जाने बिना तर्कसे ही कोई बात कह दे, तो वह भले ही वृहस्पति क्यों न हो, पर उसकी बात बिलकुल बेकार होती है। 'मैं बड़ा बलवान् हूँ, यही सोचकर मैंने सहसा यह लड़ाई नहीं छेड़ी; क्योंकि चाहे कितना भी अधिक तेल क्यों न हो; पर उससे पर्वतके शरीर-का अभ्यङ्ग नहीं किया जाता। भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंके सब राजाओंको जीतनेवाले मुझ भरतका कोई प्रतिस्पर्द्धी न हो, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि शत्रुकी तरह प्रतिस्पर्द्धा करने वाले तथा जय-पराजयके कारणभूत इस बाहुबलीके और मेरे बीचमें विधिवशात् अनबन हो गयी है। पहले तो यह निन्दासे डरने वाला, लज्जाशील, विवेकी, विनयी और विद्वान् बाहुबली मुझ पिताके समान मानता था, परन्तु साठ हज़ार वर्ष बाद दिग्विजय करके आनेपर मैं तो देखता हूँ, कि वह कुछका कुछ हो गया है। हम दोनों बहुत कालतक अलग-अलग रहे यही इसका कारण मालूम पड़ता है। बारह बर्षतक राज्याभिषेकका उत्सव होता रहा पर बाहुबली एकबार भी नहीं आया। मैंने सोचा, वह भूल गया होगा। इसीलिये मैंने उसके पास दूत भेजा; पर इसपर भी

वह नहीं आया। मैंने सोचा, यह उसके मंत्रियोंके विचारका दोष होगा। मैंने उसे किसी लोभसे या उसपर क्रोध करके नहीं बुलवाया था; पर चूंकि जबतक एकभी राजा सिर ऊँचा किये रहेगा, तबतक चक्र नगरमें प्रवेश नहीं करेगा। ऐसी हालतमें मैं क्या करूँ? इधर चक्र नगरमें नहीं प्रवेश करता, उधर बाहुबली मेरे आगे सिर नहीं झुकाता, इससे मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि इन दोनोंमें होड़सी लगी हुई है। मैं इसी संकटमें पड़ा हूँ। यदि मेरा मनस्वी भाई एक बार मेरे पास आये और अतिथिकासा सत्कार ग्रहण करे, तो मैं उसको मनमानी पृथ्वी दे दूँ। इसलिये इस चक्रके नहीं प्रवेश करनेके सिवा मेरे युद्ध करनेका कोई दूसरा कारण नहीं है। मैं अपने उस छोटे भाइसे मान पानेकी इच्छा भी नहीं करता।

देवताओं ने कहा,—"राजन! संग्रामका कारण बहुत बड़ा होना चाहिये; क्योंकि आपकेसे पुरुषों को छोटे-मोटे कारणोंसे ऐसी प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। अब हमलोग बाहुबलीके पास जाकर उन्हें भी समझायेंगे और इस युगान्तके समय होनेवाले जनक्षयके समान लोक संहारको रोकने की चेष्टा करेंगे। कदाचित् वे भी आपकी ही तरह इस युद्धका कोई दूसरा कारण बतलायें, तो भी आपको यह अधम युद्ध नहीं करना चाहिये। महान् पुरुष तो दृष्टि, बाहु और दण्ड आदि उत्तम आयुधोंसे ही युद्ध करते हैं, जिससे निरपराध हाथियों आदिका वध न हो।"

भरत चक्रवर्त्तीने देवताओंकी यह बात स्वीकार करली और

देवतागण उसी समय बाहुबलीके सैनिक पड़ावमें आ पहुँचे। मन-ही-मन यह विचार कर विस्मयमें डूबते हुए, कि यह बाहुबली तो दृढ़ अवष्टम्भवाली मूर्त्तिसे भी दृढ़ है, देवताओंने बाहुबलीसे कहा,—

"हे ऋषभ-नन्दन! हे संसारके नेत्ररूपी चकोरोंको आनन्द देनेवाले चन्द्रमा! आपकी सदा जय हो और आप सदैव सानन्द रहें। आप समुद्रकी भाँति कभी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते, और कायर पुरुष जैसे युद्धसे डरते हैं, वैसेही आप भी लोकापवाद से डरते हैं। आप न तो अपनी सम्पत्तिका गर्व करते हैं, न दूसरोंकी सम्पत्ति पर आपको ईर्षा होती है। आप दुर्विनीत मनुष्योंके दण्डदाता हैं, गुरुजनोंकी विनय करनेवाले हैं और विश्वको अभय करनेवाले ऋषभस्वामीके योग्य पुत्र हैं। इसलिये आपको ऐसे कार्यमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये, जिससे बहुतसे लोगोंका सत्यानाश हो जाये। अपने बड़े भाईके ऊपर चढ़ाई करनेकी ऐसी तैयारी करना आपके लिये उचित नहीं और अमृत से जिस प्रकार मृत्यु नहीं हो सकती, उसी प्रकार आपसे ऐसा काम हो भी नहीं सकता। अभीतक कुछ भी नहीं बिगड़ा है, इसलिये खल पुरुषकी मैत्रीकी तरह आप इस युद्धकी तैयारी से हाथ खींच लीजिये। जैसे मन्त्र द्वारा बड़े-बड़े सर्प भी पीछे लौटा दिये जा सकते हैं, वैसेही आपकी आज्ञासे ये वीर योद्धा युद्धके शोरसे अलग हो जायें और आप अपने बड़े भाई भरतराज के पास आकर उनकी वश्यता स्वीकार कर लीजिये। ऐसा

करनेसे लोग यही कह-कह कर आपकी प्रशंसा करेंगे, कि आप शक्तिमान् होते हुए भी विनयी हैं। भरत राजाने जो भरतक्षेत्रके छहों खण्ड जीत लिये हैं, उनका आप स्वयं जीते हुए देशोंकी तरह भोग कीजिये; क्योंकि आप दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है।

ऐसा कहकर जब मेघकी तरह देवगण चुप हो गये, तब बाहुवलीने जरा मुस्करा कर गम्भीर वाणीसे कहा,—"हे देवताओं! आप लोग हमारे युद्धके असल कारणको जाने बिना ही अपनी स्वच्छहृदयताके कारण ऐसा कह रहे हैं। आप लोग हमारे पिताके भक्त हैं और हम दोनों उनके पुत्र हैं; इस सबन्धसे आप लोगोंका ऐसा कहना उचित ही है। इससे पहले दीक्षा ग्रहण करते समय पिताजीने जिस प्रकार याचकोंको सोना आदि दिया, उसी प्रकार मुझे और भरतको भी देशोंका विभाग करके दिया। मैं तो उनके दिये हुए राज्यसे सन्तुष्ट होकर रहा; क्योंकि महज़ धन के लिये दूसरोंसे द्रोह कौन करे? परन्तु जैसे समुद्रकी बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको निगल जाती हैं। वैसेही इस भरतक्षेत्ररूपी समुद्रके सब राजाओंके राज्योंको राजा भरतने निगल लिया। जैसे मरभुक्खा मनुष्यको कितना भी खानेको मिले, पर वह सन्तुष्ट नहीं होता, वैसेही उतने राज्योंको पाकर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने अपने सब छोटे भाइयोंके राज्य भी हड़प कर लिये। जब उन्होंने पिताके दिये हुए राज्यको छोटे भाइयों से छीन लिया, तब तो उन्होंने अपना बड़प्पन मानों अपने आप ही खो दिया। बड़प्पन केवल उमरसे ही नहीं माना जाता, बल्कि

बड़ेको वैसा ही आचरण भी करना चाहिये। भाइयोंको राज्य से दूर करके उन्होंने अपना बड़प्पन भली भाँति दिखला दिया हैं। जैसे कोई धोखेसे पीतलको सोना और काँचको मणि समझ ले, वैसेही मैं भी अबतक भ्रममें पड़ा हुआ उन्हें बड़ा समझ रहा था। यदि पिता अथवा वंशके किसी अन्य पूर्व-पुरुषने किसीको पृथ्वी दान की हो, तो जबतक वह कोई अपराध नहीं करता, तबतक कोई अल्प राज्यवाला राजा भी उससे वह दानकी हुई पृथ्वी वापिस नहीं लेता। फिर भरतने भाइयोंके राज्य क्यों छीन लिये? छोटे भाइयोंका राज्य हरण कर निश्चय ही वे लज्जित नहीं हुए, इसीसे तो अबके मेरे राज्यको जीत लेनेकी इच्छासे मुझे भी बुला रहे हैं। जैसे नौका समुद्र पार करके किनारे आ लगते-न-लगते किसी पर्वतसे टकरा जाती है, वैसे ही सारे भरतक्षेत्रको जीतने बाद ये मेरे साथ टक्कर लेने आये हैं। लोभी, मर्यादाहीन और राक्षसके समान निर्दय भरतराजको जब मेरे छोटे भाइयोंने ही शर्मके मारे अपना प्रभु नहीं माना, तब मैं ही उनके किस गुणपर रीझ कर उनके वशमें हो जाऊँ? हे देवताओ! आप लोग सभासदोंकी तरह मध्यस्थ होकर विचार करें। यदि भरतराज अपने पराक्रमसे मुझे वशमें कर लेना चाहते हैं, तो भले ही कर देखें, क्योंकि यह तो क्षत्रियोंका स्वाधीन मार्ग ही है। लेकिन इतने पर भी यदि वे समझ बूझ कर पीछे लौट जायें, तो बड़े मजेसे जा सकते हैं। मैं उनकी तरह लोभी नहीं हूँ, कि उनके पीछे लौटनेकी राहमें अड़ङ्गा लगाऊँ। आप जो यह कह रहे हैं, कि

उनके दिये हुए भरत क्षेत्रोंको भोगिये— सो क्या यह भी कहीं हो सकता है ? सिंह भी कभी किसीका दिया हुआ खाता है ? नहीं— हर्गिज़ नहीं। उन्हें तो भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने में साठ हजार वर्ष लग गये, पर मैं यदि चाहूँ, तो बातकी बातमें ले लूँ। परन्तु उनके इतने दिनोंके परिश्रमसे प्राप्त किये हुए समस्त भरत क्षेत्रके वैभवको धनवान्‌के धनकी तरह मैं भाई होकर भी कैसे छीन लूँ ? जैसे चमेलीके फूल तथा जायफल खानेसे हाथी मदान्ध हो जाता है, वैसेही यदि वे वैभव पाकर अन्धे हो गये हों, तो सच जानिये, उन्हें सुखकी नींद नसीब नहीं होगी। मैं तो उस वैभवको नष्ट हो गया हुआ ही समझ रहा हूँ ; पर अपनी उसपर वार नहीं टपकती, इसीलिये उसकी उपेक्षा कर रहा हूँ। इस समय मानों अपनी जमानत देनेके ही लिये वे अपने अमात्यों, भण्डारों, हाथियों, घोड़ों और यशको लिये हुए उन्हें मेरी नज़र करने आये हैं। इसलिये हे देवताओं ! यदि आप लोग उनकी भलाई चाहते हों, तो उन्हें युद्ध करनेसे रोकिये। यदि वे लड़ाई न करेंगे तो मैं भी नहीं लड़ूँगा।"

मेघके गर्जनकी तरह उनके इन उत्कट वचनोंको सुनकर विस्मित हो, देवताओंने उनसे फिर कहा,—"एक ओर चक्रवर्ती अपने युद्ध करनेका कारण यह बतलाते हैं, कि उनके नगरमें चक्र नहीं प्रवेश करता; इसलिये उनके गुरु भी निरुत्तर हो जाते हैं और उन्हें रोकनेमें असमर्थ हैं। इधर आप कहते हैं, कि मैं तो उसीके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ, जिसके साथ युद्ध करना

ही उचित है। फिर तो इन्द्र भी आपको युद्धमें जानेसे नहीं रोक सकते। जो हो, आप दोनों ही श्रीऋषभस्वामीके संसर्गसे सुशोभित हैं; बड़े बुद्धिमान हैं, विवेकी हैं, जगत्के रक्षक हैं और साथ ही दयालु भी हैं। परन्तु चूंकि संसारके भाग्यका क्षय हो गया है, इसीलिये यह युद्धरूपी उत्पात उठ खड़ा हुआ है। तो भी हे वीर! प्रार्थना पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षके समान आपसे हमलोग एक प्रार्थना करते हैं और वह यह, कि उत्तम युद्ध करें, अधम युद्ध नहीं; क्योंकि उग्र तेजवाले आप दोनों भाई यदि अधम युद्ध करने लगेंगे, तो बहुतसे लोगोंका प्रलय हो जायेगा और अकालमे ही प्रलय हुआ मालूम पड़ने लगेगा। इसलिये आप दोनोंके युद्धमें दृष्टि आदिका युद्ध होना चाहिये। इससे आपका भी मान रह जायेगा और लोगोंका प्रलय भी न होगा।" बाहुबलीने इस बातको मान लिया तब उनका युद्ध देखनेके लिये नगरके लोगोंके समान देवता भी पासमें आकर खड़े हो रहे।

इसके बाद बाहुबलीकी आज्ञासे एक बलवान् प्रतिहार हाथी पर बैठकर गजके समान गर्जना करता हुआ अपने सैनिकोंसे कहने लगा,—"हे वीर योद्धाओं! चिरकालसे चिन्तित तुम्हारे वाञ्छित पुत्र लाभके भाँति तुम्हें स्वामीका कार्य करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। परन्तु तुम्हारे अल्प-पुण्यके कारण हमारे बलवान् राजासे देवताओंने प्रार्थना की है, कि भरतके साथ द्वन्द्व-युद्ध कीजिये। एक तो स्वामी स्वयं द्वन्द्व-युद्ध करना चाहते हैं, तिस पर देवताओंका अनुरोध होगया। फिर क्या कहना हैं? इस

लिये हमारे इन्द्रकेसे पराक्रमी महाराज बाहुबली तुमको रण-संग्राम करनेसे मना करते हैं। देवताओंके समान तुम भी तटस्थ होकर, हस्तिमल्लकी तरह अपने एकाङ्गमल्ल जैसे स्वामीका युद्ध करना देखो और वक्र बने हुए ग्रहोंकी तरह अपने रथों, घोड़ों और हाथियोंको पीछे लौटा ले जाओ। साँपको जैसे पिटारीके अन्दर बन्द कर लेते हैं, वैसेही तुम अपने खड्गोंको म्यानमें डाल दो; केतुके सदृश भालेको कोषमें रख दो, हाथीकी सूँड़के समान अपने मुद्गरोंको नीचे डाल दो, ललाटकी भृकुटीकी तरह धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार डालो, भण्डारमें जैसे द्रव्य डाल दिया जाता है, वैसेही अपने बाणोंको तरकसमें रख दो और मेघ जैसे बिजलीका संवरण करता है, वैसेही अपने शल्यका संवरण कर लो।"

प्रतिहारके वज्र-निर्घोषके समान इन वचनोंको सुन, चक्करमें आये हुए बाहुबलीके सैनिक बीच-बीचमें इस प्रकार विचार करने लगे,—"ओह, इन देवताओंने तो न जाने अकस्मात् कहाँसे आकर स्वामीसे प्रार्थना कर, हमारे युद्धोत्सवमें विघ्न डाल दिया। मालूम होता है, कि होनेवाले युद्धसे ये देवता बनियोंकी तरह डर गये अथवा इन्होंने भरत राजाके सैनिकोंसे रिश्वत ले ली है अथवा ये हमारे पूर्व जन्मके वैरी हैं। अरे! हमारे सामने आये हुए इस रणोत्सवको तो दैवने ठीक उसी तरह छीन लिया, जैसे भोजन करनेके लिये बैठे हुए मनुष्यके सामनेसे परोसी हुई थाली हटा ली जाये अथवा प्यार करनेको जाते हुए मनुष्यकी गोदसे कोई उसका बच्चा छीन ले अथवा कुएँमें से बाहर निकल कर

आते हुए मनुष्यके हाथसे कोई रस्सी खींच ले। भला, भरतराजा जैसा दूसरा कौन शत्रु मिलेगा, जिसके साथ युद्ध करके हम अपने महाराजका ऋण चुकायेंगे? भाई-बन्दों, चोर और पिताके घर रहनेवाली पुत्रवती स्त्रीकी तरह हम लोगोंने तो व्यर्थ ही बाहु-बलीका द्रव्य लिया और जङ्गली वृक्षोंके फूलकी सुगन्धकी तरह अपने बाहुदण्डोंका वीर्य भी व्यर्थ ही गया। नपुंसक पुरुषोंके द्वारा किये हुए स्त्री संग्रहके समान अपना यह शस्त्र संग्रह भी बिलकुल बेकार ही गया और तोतेको पढ़ाये हुए शास्त्राभ्यासकी तरह हमारा शस्त्राभ्यास भी व्यर्थ ही हुआ। तापसोंके पुत्रोंको मिला हुआ कामशास्त्रका परिज्ञान जैसे निष्फल होता है, वैसे ही अपनी यह सिपाहीगिरी भी बेकार ही गयी। मूर्खोंकी तरह हमने जो हाथियोंको युद्धमें स्थिर रहनेका अभ्यास करवाया और घोड़ोंको श्रमजय करवाया, वह सब व्यर्थ ही होगया। शरद-ऋतुके मेघोंकी तरह हमारी सारी गरज-तनक निकम्मी निकली और हमने महर्षियोंकी तरह व्यर्थ ही विकट कटाक्ष किये। सामग्री देखनेवालों की तरह अपनी तैयारियाँ व्यर्थ हो गयीं और युद्धकी लालसा नहीं मिटनेसे अपनी सारी हैंकड़ी किरकिरी हो गयी।

इसी प्रकारके विचारोंमें डूबे हुए वे लोग खेदरूपी विषसे गर्भित हो, फुफकार छोड़नेवाले साँपकी तरह लम्बी साँसें लेते हुए पीछेको लौटे। क्षात्रव्रत रूपी धनसे धनवान भरत राजाने भी अपनी सेनाको उसी तरह पीछे लौटाया, जैसे समुद्र भाठेको पीछे लौटाता है। पराक्रमी चक्रवर्त्तीके द्वारा लौटाये हुए

सैनिक पग-पग पर रुक जाते और इकट्ठे होकर विचार करने लगते,—"हमारे स्वामी भरतने भला किस वैरीके समान मंत्रीकी सलाहसे केवल दो भुजाओंसे होनेवाला द्वन्द्व-युद्ध स्वीकार कर लिया ? जब छाँछके भोजनकी तरह स्वामीने ऐसाही युद्ध करना स्वीकार कर लिया, तब अपना क्या काम रहा ? भरतक्षेत्रके छओं खण्डोंके राजाओंसे युद्ध करते समय क्या हमने किसीको नहीं मारा कूटा ? फिर वे क्यों हमें युद्ध करनेसे रोक रहे हैं ! जबतक अपने सिपाही भाग न खड़े हों, लड़ाई जीत न लें या मारे न जायें, तबतक तो स्वामीको युद्ध ही करना चाहिये ; क्योंकि युद्धकी गति बड़ी विचित्र होती है। यदि इस एक बाहुबलीके सिवा और भी कोई शत्रु हो, तो भी अपने मनमे तो स्वामीकी विजयमें शङ्का नहीं हो सकती ; परन्तु बलवान भुजाओंवाले बाहुबलीके साथ युद्ध करनेमें जब इन्द्रको ही जीतनेके लाले पड़ने लगे, तब और क्या कहा जाये। बड़ी नदीकी बाढ़के समान दुःसह वेगवाले उस बाहुबलीके साथ पहले-पहल स्वामीको ही युद्ध नहीं करना चाहिये ; क्योंकि पहले चाबुक सवारोंके द्वारा दमन किये हुए घोड़े पर ही बैठा जाता है।"

अपने वीर पुरुषोंको इस प्रकार बीच-बीचमें रुक-रुककर बातें करते हुए जाते देख चाल-ढालसे उनका भाव ताड़ कर भरत चक्रवर्त्तीने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा,— "हे वीर-पुरुषों ! जैसे अन्धकारका नाश करनेमें सूर्यकी किरणें सदा तत्पर रहती हैं, वैसेही शत्रुओंका नाश करनेमें तुम भी कभी पीछे

पैर देनेवाले नहीं हो। जैसे अगाध खाईमें गिरकर हाथी किले तक नहीं आने पाता, वैसेही जबतक तुमसे योद्धा मेरे पास हैं, तबतक मेरे पास कोई शत्रु नहीं आ सकता। पहले तुमने कभी मुझे लड़ते नहीं देखा, इसीलिये तुम्हें व्यर्थकी शङ्का हो रही है; क्योंकि भक्ति उस स्थानमें भी शङ्का उत्पन्न कर देती है, जहाँ शङ्का करनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं होती। इसलिये हे वीर! योद्धाओ! तुम सब लोग खड़े होकर मेरी भुजाओंका बल देखो, जिसमें तुम्हारी यह शंका मिट जाये, जैसे औषधिमें रोगका क्षय करनेकी शक्ति है या नहीं, यह सन्देह रोग दूर होते ही दूर हो जाता है।"

यह कह कर भरत चक्रवर्त्तीने एक बहुत लम्बा-चौड़ा और गहरा गड्ढा खुदवाया। इसके बाद जैसे दक्षिण-समुद्रके तीर पर सह्याद्रि पर्वत है, वैसे ही वे आप भी उस गड्ढेके ऊपर बैठ रहे और बड़के पेड़के सहारे लटकनेवाली बरोहियों (जटावल्लरी) की तरह उन्होंने बायें हाथमें मजबूत साँकलें एकके ऊपर दूसरी बँधवायी। जैसे किरणोंसे सूर्यकी शोभा होती है और लताओं-से वृक्ष शोभा पाता है, वैसे ही उन एक हजार शृंखलाओंसे महाराज भी शोभित होने लगे। इसके बाद उन्होंने उन सब सैनिकोंसे कहा,— "हे वीरों जैसे बैल गाड़ीको खींचते हैं, वैसे ही तुम भी अपने वाहनोंके साथ पूरा जोर लगा कर मुझे निर्भय होकर खींचो। इस प्रकार तुम सब लोग मिलकर अपने एक-त्रित बलसे मुझे खींचकर इस गड्ढेमें गिरा दो। मेरी भुजाओंमें

कितना बल है, इसकी परीक्षा करनेके लिये तुम इस काममें यह सोचकर ढील न करना, कि इससे अपने स्वामीकी बेइज्जती होगी। मैंने ऐसा ही कुछ दुःस्वप्न देखा है, इसलिये तुमलोग उसका नाश कर दो। क्योंकि स्वप्नको स्वयं सार्थक कर दिखलानेवालेका स्वप्न निष्फल हो जाता है।" जब चक्रवर्त्तीने बारबार यही बात कही, तब सैनिकोंने बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे ऐसा करना स्वीकार कर लिया; क्योंकि स्वामीकी आज्ञा हर हालतमें बलवान् होती हैं। इसके बाद देवासुरोंने जिस प्रकार मन्द्राचल पर्वतके रज्जूभूत सर्पको खैंचा था, उसी प्रकार सब सैनिक मिलकर चक्रवर्त्तीकी भुजामें बाँधी हुई वह शृंखला खींचनी शुरु की। अब तो वे चक्रीकी भुजासे लिपटी हुई शृंखलामें चिपके हुए ऊँचे वृक्षकी डाल पर बैठे हुए बन्दरोंकी तरह मालूम पड़ने लगे। चक्रवर्त्तीने कौतुक देखनेके लिये थोड़ी देरतक पर्वतको भेदनेवाले हाथियोंकी तरह अपनेको खींचनेवाले उन सैनिकोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा। इसके बाद महाराजने उस हाथको अपनी छातीसे लगाया। इतनेमें हाथ खींच लेनेसे पंक्ति बाँधकर खड़े हुए वे सब सैनिक घटीमालाकी तरह एक साथ गिर पड़े। उस समय खजूरका वृक्ष जैसे फलोंसे सोहता है, वैसेही उन लटकते हुए सैनिकोंसे चक्रवर्त्तीकी भुजा सोहने लगी। अपने स्वामीका यह अपूर्व बल-पौरुष देख, हर्षित हो, सैनिकोंने उनकी भुजासे लिपटी हुई उन शृंखलाओंको पूर्वमें की हुई अनुचित शङ्काकी तरह तत्काल तोड़ डाला।

तदनन्तर गीत गानेवाले जैसे पहले कहे हुए टेक पर (ध्रुव-पद) फिर लौट आते हैं, वैसेही चक्रवर्ती फिर हाथी पर बैठ कर रणभूमिमें आये। गङ्गा और यमुनाके बीचमें जैसे वेदिका का भाग सोहता है, वैसेही दोनों सेनाओंके बीचमें विपुलभूमि-तल शोभा दे रहा था। जगतका संहार होते-होते रुक गया, यही सोचकर प्रसन्न हुई वायु न जाने किसकी प्रेरणासे धीरे-धीरे पृथ्वीकी धूलको उड़ाकर जगह साफ करने लगी। समवसरण की भूमिकी तरह उस रणभूमिको पवित्र जाननेवाले देवताओंने सुगन्धित जलकी वृष्टिसे सींचना शुरू किया और जैसे मांत्रिक पुरुष मण्डलकी भूमि पर फूल छोड़ता है, वैसेही रणभूमि पर खिले हुए फूल बरसाये। तदनन्तर गजकी तरह गर्जन करते हुए दोनों राजकुञ्जर हाथी परसे उतरकर रणभूमिमें आये। मस्तानी चालसे चलनेवाले वे महापराक्रमी वीर पग-पग पर कूर्मेन्द्रके प्राणोंको संशयमें डालने लगे।

पहले दृष्टि-युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा कर, दूसरे शक्र और ईशान-इन्द्रकी तरह वे दोनों निर्निमेष नेत्र किये हुए आमने-सामने खड़े हो रहे। रक्त नेत्रवाले वे दोनों वीर सम्मुख खड़े होकर एक दूसरेका मुँह देखने लगे; उस समय वे ऐसे शोभित हुए, मानों सायंकालके समय आमने-सामने रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा हों। बड़ी देरतक वे दोनों वीर ध्यान करनेवाले योगियोंकी भाँति नि-श्चल नेत्र किये स्थिर खड़े रहे। अन्तमें सूर्यकी किरणोंसे आक्रांत नील कमलके समान ऋषभस्वामीके ज्येष्ठ पुत्र भरतके नेत्र मिंच

गये और भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंकी विजय करके प्राप्त की हुई बड़ी कीर्त्तिको उनके नेत्रोंने आँसुओंके बहाने पानीमें डाल दिया, ऐसा मालूम पड़ा। प्रातःकाल हिलते हुए वृक्षोंकी तरह सिर हिलाते हुए देवताओंने उससमय बाहुबलीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। सूर्योदयके समय पक्षी जिस प्रकार कोलाहल कर उठते हैं, वैसेही बाहुबलीकी विजय होते ही सोमप्रभ आदि वीरोंने हर्षसे कोलाहल करना शुरू किया। कीर्त्तिरूपी नर्त्तकीने मानों नृत्य प्रारम्भ कर दिया हो, वैसेही तैयार खड़े बाहुबलीके सैनिकोंने जयके बाजे बजाने शुरू किये। भरत रायके वीर तो ऐसे मन्द-पराक्रम हो गये, मानों सबके सब मूर्च्छित हो गए हों, सो गये हों या रोगातुर हो गये हों। अन्धकार और प्रकाशवाले मेरु-पर्वतके दोनों पार्श्वोंकी तरह एक सेनामें खेद और दूसरीमें हर्ष फैल गया। उस समय बाहुबलीने चक्रवर्त्तीसे कहा,— "देखना, कहीं यह न कह बैठना, कि मैं काकतालीय न्यायसे जीत गया हूँ। यदि जीमें ऐसी ही धारणा हो, तो अबके वाणीसे युद्ध करके देख लो।" बाहुबलीकी यह बात सुन, पैरसे कुचले हुए साँपकी तरह क्रोधसे भरकर चक्रवर्त्तीने कहा,— "भला इस तरह भी तो जीत जाओ।"

तदनन्तर जैसे ईशानइन्द्रका वृषभ नाद करता है, सौधर्म इन्द्रका हाथी गरज़ता है और मेघ ठनकता है, वैसेही भरत राजाने भी घोर सिंहनाद किया। जैसे बड़ी नदीमें बाढ़ आने पर उसके दोनों किनारे पानीसे लबालब भर जाते हैं, वैसेही

उनका वह सिंहनाद चारों दिशाओंमें व्याप्त हो गया। साथ ही ऐसा मालूम पड़ा, मानो वह युद्ध देखनेके लिये आये हुए देवताओंके विमान गिरा रहा हो, आकाशके ग्रह-नक्षत्रों और ताराओंको अपनी जगहसे हटा रहा हो, कुल पर्वतोंके ऊँचे ऊँचे शिखरोंको हिला रहा हो और समुद्रके जलमें खलवली पैदा कर रहा हो। वह सिंहनाद सुनतेही रथके घोड़े वैसेही रासकी परवा नहीं करने लगे, जैसे दुष्टबुद्धिवाले मनुष्य बड़ोंकी आज्ञाकी परवा नहीं करते; पिशुन लोग जैसे सद्वचनको नहीं मानते, वैसे ही हाथी अंकुशको नही मानने लगे; कफ रोगवाले जैसे कड़वे पदार्थको नहीं मानते, वैसेही घोड़े लगामकी परवा नहीं करने लगे; कामी पुरुष जैसे लज्जाको नहीं मानते, वैसेही ऊँट नकेलोंको कुछ नहीं समझने लगे और भूत लगे हुए प्राणीकी तरह खच्चर अपने ऊपर पड़ती हुई चाबुकोंकी मारको भी कुछ नहीं समझने लगे। इस प्रकार चक्रवर्त्ती भरतके सिंहनादको सुनकर कोई स्थिर न रह सका। इसके बाद बाहुबलीने भी बड़ा भयङ्कर सिंहनाद किया। वह आवाज़ सुनते ही सर्प नीचे उतरे हुए गरुड़के पंखो की आवाज़ समझकर पातालसे भी नीचे घुस जानेकी इच्छा करने लगे। समुद्रके बीचमें रहनेवाले जल-जन्तु वह आवाज सुन, समुद्रमें प्रवेश किये हुए मन्दराचलके मथनकी आवाज़ समझ कर डर गये; कुल पर्वत, उस ध्वनिको सुनकर बारम्बार इन्द्रके छोड़े हुए वज्रकी आवाज़ समझ, अपने नाशकी आशङ्कासे काँपने लगे। मृत्यु-लोकवासी सारे मनुष्य वह शब्द सुन, प्रलयके

समय पुष्करावर्त्तसे निकली हुई विद्युत ध्वनिके भ्रममें पड़ कर पृथ्वीपर लोटने लगे। देवतागण वह कर्णकटु शब्द सुन, असमयमें प्राप्त होनेवाले दैत्यके उपद्रवसे पैदा हुए कोलाहलके भ्रममें पड़कर बड़े ही व्याकुल हो गये। वह दुःश्रव सिंहनाद मानों लोकमालिकाके साथ स्पर्द्धा करता हुआ अधिकाधिक फैलने लगा। बाहुबलीका सिंहनाद सुन, भरत राजाने फिर देवताओंकी स्त्रियोंको हरिणीकी तरह डरा देनेवाला सिंहनाद किया। इसी प्रकार भरतराजाका नाद क्रमसे हाथीकी सूँड़के समान होतेहोते साँपके शरीरकी तरह न्यून होता चला गया और बाहुबलीका नाद नदीके प्रवाह और सज्जनके स्नेहकी तरह क्रमशः अधिकाधिक बढ़ता चला गया। इस तरह जैसे शास्त्र—सम्बन्धी वाग्युद्धमें वादी प्रतिवादीको जीत लेता है, वैसेही वीर बाहुबलीने भरत राजाको जीत लिया।

इसके बाद दोनों भाई कमर-बन्द हाथियोंकी तरह बाहुयुद्ध करनेके लिये कमर कस कर तैयार हुए। उस समय उछलते हुए समुद्रकी भाँति गर्जन करते हुए बाहुबलीके एक मुख्य प्रतिहारीने जो सोनेकी छड़ी हाथमें लिये हुए था, कहा,—"हे पृथ्वी! वज्रकी कीलोंके समान पर्वतों तथा अन्य सब प्रकारके बलोंका आश्रय ग्रहण कर तुम स्थिर रहो। हे नागराज! चारों ओरके पवनको ग्रहण कर उसके वेगको रोकनेवाले पर्वतकी भाँति दृढ़ होकर तुम इस पृथ्वीको धारण किये रहो, हे महावराह! समुद्रके कीचड़में लोटकर पूर्व श्रमको दूर कर फिरसे ताज़ादम होकर

तुम पृथ्वीको अपनी गोदमें रख लो। हे कमठ! अपने वज्रकेसे अङ्गोंको चारों ओरसे सिकोड़ कर, पीठको दृढ़कर पृथ्वीका भार वहन करो। हे दिग्गजो! पहलेकी तरह प्रमाद या मदसे निद्राके वशमें न आकर खूब सावधानीके साथ वसुधाको धारण करो। क्योंकि यह वज्रसार बाहुबली चक्रवर्तीके साथ बाहु-युद्ध करने जा रहे हैं।

थोड़ी ही देर बाद वे दोनों महामल्ल बिजलीसे ताड़ित पर्वतके शब्दकी भाँति अपने हाथोंसे तालियाँ पीटने लगे। लीलासे पदन्यास करते और कुण्डलोंको हिलाते हुए वे एक दूसरेके सामने चलने लगे। उस समय वे ऐसे मालूम पड़े, मानों वे धातकी खण्डसे आये हुए दोनो ओर सूर्य-चन्द्रसे शोभित दो मेरु-पर्वत हों। जैसे मदमें आकर दो बलवान् हाथी अपने दाँतोंको टकराते हैं, वैसेही वे दोनों परस्पर हाथ मिलाने लगे। कभी थोड़ी देरके लिये परस्पर भिड़ते और कभी अलग हो जाते हुए वे दोनों वीर प्रचण्ड पवनसे प्रेरित दो बड़े-बड़े वृक्षोंकी तरह दिखाई देने लगे। दुर्दिनमें खलबलाते हुए समुद्रकी तरह वे कभी तो उछल पड़ते और कभी नीचे आ रहते थे। मानों स्नेहसे ही हो, इस प्रकार वे दोनों क्रोधसे एक दूसरेको अङ्ग-से-अङ्ग मिलाकर दबाते और आलिङ्गन करते थे। साथही जैसे कर्मके वशमें पड़ा हुआ प्राणी कभी नीचे और कभी ऊपर आता जाता है, वैसेही वे दोनो भी युद्ध विज्ञानके वशमें होकर ऊपर नीचे आते जाते थे। जलमें रहने वाली मछलीकी तरह वे इतनी जल्दी-जल्दी पहलू

जैसे मैंने न तो आपको जीता है और न मैं विजयी हूँ। अपनी इस विजयको मैं घुणाक्षर न्यायके समान जानता हूँ। हे भुवनेश्वर! अभी तक इस पृथ्वीमें आप ही एक मात्र वीर हैं; क्योंकि देवताओंके द्वारा मथन किये जाने पर भी समुद्र-समुद्र ही कहलाता है। वह कुछ बावली नहीं हो जाता। हे षट्खण्ड-भरतपति! छलाँग मारते समय गिर पड़ने वाले व्याघ्रकी तरह आप चुपचाप खड़े क्यों हो रहे हैं? झटपट युद्धके लिये तैयार हूजिये।"

भरतने कहा,—"यह मेरा भुजदण्ड घूँसेके द्वारा अपना कलङ्क दूर करेगा।" यह कह कर फणीश्वर जैसे अपना फन ऊपरको उठाता है, वैसेही घूँसा तानकर क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये हुए चक्रवर्त्ती तत्काल दौड़े हुये बाहुबलीके सामने आये और हाथी जैसे किवाड़में अपने दाँतका प्रहार करता है, वैसेही वह घूँसा बाहुबलीकी छातीपर मारा। असत्पात्रको किया हुआ दान, बहरेके कानमें किया हुआ जाप, चुगलखोरका सत्कार, खारी जमीन पर बरसने वाली वृष्टि, और बरफके ढेरमें पड़ी हुई अग्नि जैसे व्यर्थ हो जाती ह, उसी प्रकार बाहुबलीकी छातीमें मारा हुआ घूँसा भी बेकार ही हुआ। इसके बाद इसी आशंकासे, कि कहीं मेरे ऊपर क्रोध तो नहीं किया? देवताओंसे देखे जाने वाले सुनन्दा-सुअनने घूँसा ताने हुए भरत राजाके सामने आकर उनकी छातीमें वैसे ही घूंसा मारा, जैसे महावत अङ्कुशसे हाथीके कुम्भस्थल पर प्रहार करता है। उस प्रहारको न सहकर विह्वल

हो, भरतपति मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। पतिके गिर पड़नेसे जैसे कुलाङ्गना चंचल हो जाती है, वैसेही उनके गिरते ही पृथ्वी काँप गयी और बन्धुको गिरते देखकर जैसे बन्धु चंचल हो जाता है, वैसे ही पर्वत चलायमान हो गये।

अपने बड़े भाईको इस प्रकार मूर्छित हुआ देख, बाहुबलीने अपने मनमें विचार किया,—"क्षत्रियोंके वीर-व्रतके आग्रहमें यह कैसी खटाई है, कि वे अपने भाईको भी मार डालनेसे नहीं हिचकते? यदि मेरे ये बड़े भाई नहीं जिये तो मेरा जीना भी व्यर्थ ही है।" इस प्रकार सोचते और नेत्रोंके आँसूसे उनका सिञ्चन करते हुए बाहुबली अपने दुपट्टेसे भरतरायको पंखा झलने लगे। आखिर, भाई भाई ही है। क्षण भर बाद होशमें आने पर चक्रवर्त्ती सोकर उठे हुएके समान उठ बैठे। उन्होंने देखा, कि उनके सामने दासकी तरह उनके भाई खड़े हैं। उस समय दोनों भाइयोंने सिर नीचे कर लिये। सच है, बड़ोंकी हार जीत दोनों ही लज्जा जनक होती हैं। तदनन्तर चक्रवर्त्ती ज़रा पीछे हटे; क्योंकि युद्धकी इच्छा रखने वाले पुरुषोंका यह लक्षण है। बाहुबलीने विचार किया,—"अभीतक भैया भरत किसी-न-किसी तरहका युद्ध करना ही चाहते हैं; क्योंकि मानी पुरुष शरीरमें प्राण रहते ज़रा भी मानको हेठा नहीं होने देते। पर भाईकी हत्यासे जो मेरी बदनामी होगी, वह अन्तकाल तक नहीं मिटेगी।" बाहुबली ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतनेमें भरत-चक्रवर्त्तीने यमराजकी तरह दण्ड हाथमें लिया।

जैसे चोटीसे पर्वत सोहता है और छाया-मार्गसे आकाश शोभा पाता है, वैसेही उस ऊपरको उठाये हुए दण्डसे चक्रवर्त्ती भी शोभा पाने लगे। धूम्रकेतुका धोखा पैदा करनेवाले उस दण्डको चक्रवर्त्तीने थोड़ी देर तक हवामें घुमाया, इसके बाद जैसे युवा सिंह अपनी पूँछको पृथ्वी पर पटकता है, उसी तरह उन्होंने वह दण्ड बाहुबलीके मस्तक पर दे मारा। सह्याद्रि पर्वतके साथ समुद्रकी वेलाका आघात होनेसे जैसा शब्द होता है वैसा ही भयङ्कर शब्द उस दण्डके प्रहारसे भी उत्पन्न हुआ। निहाई पर रखे हुए लोहेको जिस तरह लोहेका घन चूर्ण कर डालता है, उसी तरह उस प्रहारसे बाहुबलीके सिरका मुकुट चूर-चूर हो गया। साथ ही जैसे हवाके झकोरेसे वृक्षोंके अग्रभागके फूल झड़ जाते हैं, वैसेही उस मुकुटके रत्न टुकड़े टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस चोटसे थोड़ी देरके लिये बाहुबलीकी आँखें झप गयीं और उसके घोर निर्घोषसे लोगोंकी भी वही हालत हुई। इसके बाद नेत्र खोल, बाहुबलीने भी संग्रामके हाथीकी तरह लोहेका उद्दण्ड दण्ड ग्रहण किया। उस समय आकाशको यही शंका होने लगी, कि कहींये मुझे गिरा न दें और पृथ्वी भी इसी डरमें पड़ गयी, कि कहीं ये मुझे उखाड़ कर फेंक न दें। पर्वतके अग्रभागमें बने हुए बिलमें रहनेवाले साँपकी तरह वह विशाल दण्ड बाहुबलीकी मुट्ठीमें शोभित होने लगा। दूरसे यमराजको बुलानेका मानों सङ्केत-वस्त्र हो, उसी तरह वे उस लोहदण्डको घुमाने लगे। जैसे ढेंकीकी चोट धान

पर पड़ती है, वैसेही बाहुबलीने उस दण्डका आघात चक्रीके हृदय पर बड़ी निर्भयताके साथ किया। चक्रीका बड़ा ही मज़बूत बख्तर भी इस प्रहारको न सह सका और मिट्टीके घड़ेकी तरह चूर-चूर हो गया। बख्तरके न रहनेसे चक्रवर्ती बादल रहित सूर्य और धूम-हीन अग्निके समान दिखाई देने लगे। सातवीं मदावस्थाको प्राप्त होनेवाले हाथीकी तरह भरत-राज क्षणभर विह्वल होकर कुछ भी न सोच सके। थोड़ी देर बाद सावधान होकर प्रिय मित्रके समान अपनी भुजाओंके पराक्रमका अवलम्बन कर, वे फिर दण्ड उठाये हुए बाहुबली पर लपके। दाँतसे ओठ काटते हुए और भौंहें चढ़ाये भयङ्कर दीखते हुए भरतराजा ने बड़वानलके चक्करकी तरह दण्डको खूब घुमाया और कल्पांत कालका मेघ जैसे बिजलीका दण्ड चलाकर पर्वतका ताड़न करता है, वैसेही बाहुबलीकेमस्तक पर उस दण्डका वार किया। लोहेकी निहाई पर रखे हुए वज्रमणिकी भाँति उस चोटको खा-कर बाहुबली घुटने तक पृथ्वीमें धँस गये। मानों अपने अप-राधसे डर गया हो, ऐसा वह चक्रवर्त्तीका दण्ड वज्रके बने हुएके समान बाहुबली पर प्रहार कर आप भी चूर-चूर हो गया। उधर घुटने तक पृथ्वीमे धँसे हुए बाहुबली-पृथ्वीमें कीलकी तरह गड़े हुए पर्वत और पृथ्वीके बाहर निकलते हुए शेषनागकी तरह शोभित होने लगे। उस प्रहारकी वेदनासे बाहुबली इस प्रकार सिर धुनाने लगे, मानों अपने बड़े भाईका पराक्रम देख कर उन्हे अपने अन्त:करणमें बड़ा अचम्भा हुआ हो। आत्मा-

नन्दमें मग्न योगीकी तरह उन्होंने क्षण भर तक कुछ भी नहीं सुना। इसके बाद जैसे सरिता तटके सूखे हुए कीचड़मेंसे हाथी बाहर निकलता है, वैसेही सुनन्दाके वे पुत्र भी पृथ्वीसे बाहर निकले और लाक्षारसकी सी दृष्टिसे तर्जना करते हुएके समान वे अमर्षाग्रणी अपने भुजदण्ड और दण्डको देखने लगे। इसके बाद तक्षशिलाधिपति बाहुबली तक्षक नागकी तरह उस भयंकर दण्डको एक हाथसे घुमाने लगे। अतिवेगसे घुमाया हुआ उनका वह दण्ड राधा-वेधमें फिरते हुए चक्रकी शोभाको धारण कर रहा था। कल्पान्त-कालके समुद्रके भँवर-जालमें घूमते हुए मत्स्यावतारी कृष्णकी तरह भ्रमण करते हुए उस दण्डको देख-कर देखनेवालोंकी आँखें चौंधिया जाती थी। सैन्यके सब लोग और देवताओंको उस समय शङ्का होने लगी, कि कहीं यह बाहुबलीके हाथसे छूटकर उड़ा, तो फिर सूर्यको कांसेके पात्रकी तरह फोड़ डालेगा, चन्द्रमण्डलको भारंड-पक्षीके अण्डेकी तरह चूर कर डालेगा, तारागणोंको आँवलेके फलकी तरह नीचे गिरा देगा, वैमानिक देवोंके विमानोंको पक्षीके घोंसलोंकी तरह उड़ा देगा, पर्वतके शिखरोंको विलोंकी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, बड़े-बड़े वृक्षोंको नन्हे-नन्हे कुञ्जके तृणोकी तरह तोड़ देगा, और पृथ्वीको कच्ची मिट्टीके गोलेकी तरह भेद कर देगा। इसी शंकासे देखते हुए सब लोगोंके सामने ही उन्होंने वह दण्ड चक्र-वर्तीके मस्तकपर चला दिया। उस बड़े भारी दण्डके आघातसे चक्रवर्त्ती मुद्गलसे ठोंकी हुई कीलकी तरह कण्ठतक पृथ्वीमें

गड़ गये। उनके साथही उनके सब सैनिक भी, मानों ऐसी प्रार्थना करते हुए, कि हमें भी हमारे स्वामीकी ही भाँति बिलमें घुसा दो, खेदके साथ पृथ्वीपर गिर पड़े। राहुसे ग्रास किये हुए सूर्यके समान जब चक्रवर्त्ती पृथ्वीमें मग्न हो गये, तब आकाशमें देवताओंने और पृथ्वीपर मनुष्योंने बड़ा कोलाहल किया। नेत्र मींचे हुए भरतपतिका चेहरा काला पड़ गया और वे क्षणभर लज्जाके मारे चुपचाप पृथ्वीमें गड़े रहे। इसके बाद शीघ्रही रात बीतनेपर उगनेवाले सूर्यके समान देदीप्यमान होकर वे पृथ्वीसे बाहर निकल आये।

उस समय चक्रवर्त्तीने सोचा, "जैसे अंधा जुआड़ी हरएक बाज़ीमें मात हो जाता है, वैसेही इस बाहुबलीने सब प्रकारके युद्धोंमें मुझे पराजित कर डाला। इसलिये जैसे गायके खाये हुए घास-पात दूधके रूपमें सबके काममें आते हैं, वैसेही मेरा इतनी मिहनतसे जीता हुआ भरतक्षेत्र भी क्या इसी बाहुबलीके काम आयेगा? एक म्यानमें दो तलवारोंकी तरह इस भरतक्षेत्रमें एकही समय दो चक्रवर्त्ती तो कभी होते नहीं देखे, न सुने। जैसे गधेको सींग नहीं होता, वैसेही देवताओंसे इन्द्र हार जायें और राजाओंसे चक्रवर्त्ती पराजित हो जाये, ऐसा तो पहले कभी नहीं सुना। तो क्या बाहुबलीसे हारकर मैं अब पृथ्वीमें चक्रवर्त्ती न कहलाऊँ और मुझसे नहीं हारनेके कारण जगत्से भी अजेय होकर यही चक्रवर्त्ती कहलायेगा?" इसी तरहकी चिन्ता करते हुए चक्रवर्त्तीके हाथमें चिन्तामणिकी तरह यक्षराजाओंने चक्र आरो-

पित कर दिया। उसीके विश्वाससे अपनेको चक्रवर्ती मानते हुए चक्रवर्ती भरत, उसी प्रकार उस चक्रको आकाशमें घुमाने लगे, जैसे बवंडर कमलकी रजको आसमानमें नचाता है। ज्वालाओंके जालसे विकराल बना हुआ वह चक्र मानों आकाशमें ही पैदा हुई कालाग्नि, दूसरी वड़वाग्नि, अकस्मात् उत्पन्न हुई वज्राग्नि, उन्नत उल्का-पुञ्ज, गिरता हुआ सूर्य-बिम्ब अथवा बिजली का गोलासा घूमता मालूम पड़ने लगा। अपने ऊपर छोड़नेके लिये उस चक्रको घुमानेवाले चक्रवर्तीको देखकर बाहुबलीने अपने मनमें विचार किया,— "अपनेको श्रीऋषभस्वामीका पुत्र माननेवाले भरत राजाको धिक्कार है— साथही इनके क्षत्रियव्रतको भी धिक्कार है, क्योंकि मेरे हाथमें दण्ड होने पर भी इन्होंने चक्र धारण किया। देवताओंके सामने इन्होंने उत्तम युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, पर अपनी इस काररवाईसे इन्होंने बालकोंकी तरह अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी। इसलिये इन्हें धिक्कार है। जैसे तपस्वी अपने तेजका भय दिखलाते हैं, वैसेही ये भी चक्र दिखलाकर सारी दुनियाकी तरह मुझे भी डरवाना चाहते हैं; पर जैसे इन्हें अपनी भुजाओंके बलकी थाह मिल गयी, वैसे ही इस चक्रका पराक्रम भी भली भाँति मालूम कर लेंगे।" वे ऐसा सोचही रहे थे, कि राजा भरतने सारा जोर लगाकर उनपर चक्र छोड़ दिया। चक्रको अपने पास आते देख, तक्षशिलाधिपतिने सोचा,— "क्या मैं टूटे हुए बर्तनकी तरह इस चक्रको तोड़ डालूँ? गेंदकी तरह इसे उछाल कर फेंक दूँ? पत्थरके

टुकड़ेकी तरह योंही क्रीड़ा-पूर्वक इसे आकाशमें उड़ा दूं ? बालक के नालकी तरह इसे लेकर पृथ्वीमें गाड़ दूँ ? चञ्चल चिड़िया के बच्चेकी तरह हाथसे पकड़ लूँ ? मारने योग्य अपराधीकी भाँति इसे दूरहीसे छोड़ दूं ? अथवा चक्कीमें पड़े हुए किनकोंकी तरह इसके अधिष्ठाता हज़ारों यक्षोंको इस दण्डसे दल-मसल दूँ ? अच्छा, रहो, मैं इन कामोंको अभी न कर, पहले इसके पराक्रमकी परीक्षा तो लूँ।" वह ऐसा सोचही रहे थे, कि उस चक्रने बाहुबलीके पास आकर ठीक उसी तरह उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की, जैसे शिष्य गुरुकी करता है। चक्रीका चक्र जब सामान्य सगोत्री पुरुष पर भी नहीं चल सकता, तब उनकेसे चरम-शरीरी पर कैसे अपना ज़ोर आज़माये ? इसीलिये जैसे पक्षी अपने घोंसलेमें चला आता है और घोड़ा अस्तबलमें, वैसेही वह चक्र लौट आकर भरतेश्वरके हाथके ऊपर बैठ रहा।

"मारनेकी क्रियामें विषधारी सर्पके समान एकमात्र अमोघ-अस्त्र एक यही चक्र था। अब इसके समान दूसरा कोई अस्त्र इनके पास नहीं है, इसलिये दण्डयुद्ध होते समय चक्र छोड़नेवाले इस अन्यायी भरत और इसके चक्रको मैं मारे मुष्टि-प्रहारके ही चूर्ण कर डालूं," ऐसा विचार कर, सुनन्दा-सुत बाहुबली क्रोध से भरकर यमराजकी तरह भयंकर घूँसा ताने हुए चक्रवर्त्ती पर लपके। सूँड़में मुद्गर लिये हुए हाथीकी तरह घूँसा ताने हुए बाहुबली दौड़ कर भरतके पास आये; पर जैसे समुद्र

अपनी मर्यादाके भीतर ही रुका रहता है, वैसेही वे भी चुपचाप खड़े हो गये। उन महाप्राण व्यक्तिने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! यह क्या? क्या मैं भी इन्हीं चक्रवर्त्तीकी तरह राज्यके लोभमें पड़कर बड़े भाईको मारने जा रहा हूँ? तब तो मैं व्याधसे भी बढ़कर पापी हूँ। जिसके लिये भाई और भतीजोंको मारना पड़े, वैसे शाकिनी मंत्रकेसे राज्यके लिये कौन प्रयत्न करने जाये? राज्य श्री प्राप्त हो और उसे इच्छानुसार भोगनेका भी अवसर मिले, तो भी जैसे शराब पीनेसे शराबियों को तृप्ति नहीं होती वैसेही राजाओंको भी उससे सन्तोष नहीं होता। आराधन करने पर भी थोड़ासा बहाना पाकर रूठ जानेवाले क्षुद्र देवताकी भाँति राज्यलक्ष्मी क्षणभरमें ही मुँह मोड़ लेती है। अमावसकी रातकी तरह यह घने अन्धकारसे पूर्ण है, नहीं तो पिताजी इसे किस लिये तृणके समान त्याग देते! उन्हीं पिताजीका पुत्र होते हुए भी मैंने इतने दिनोंमें यह बात जान पायी, कि यह राज्यलक्ष्मी ऐसी बुरी है, तो फिर दूसरा कोई कैसे जान सकता है? अतएव यह राजलक्ष्मी सर्वथा त्याग करने-योग्य है। ऐसा निश्चय कर, उस उदार हृदयवाले बाहु-बलीने चक्रवर्त्तीसे कहा,—"हे क्षमानाथ! हे भ्राता! केवल राज्य के लिये मैंने आपको शत्रुकी भाँति दुःख पहुँचाया, इसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। इस संसाररूपी बड़े भारी तालाबमें त-न्तुपाशके समान भाई, पुत्र और स्त्री तथा राज्य आदिसे अब मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं है। मैं तो अब तीनों जगतके स्वामी

और विश्वको अभयदानका सदाव्रत देनेमें बाँटनेवाले अपने पिताजीके मार्गका ही बटोही होने जा रहा हूँ।”

यह कह साहसी पुरुषोंमें अग्रणी और महाप्राण उन बाहुबलीने अपने तने हुए घूँसेको खोलकर उसी हाथसे अपने सिरके केशोंको तृणकी तरह नोच लिया। उस समय देवताओंने ‘साधु-साधु’ कहकर उनपर फूल बरसाये। इसके बाद पाँच महाव्रत धारण कर उन्होंने अपने मनमें विचार किया,—“ मैं अभी पिताजीके चरण कमलोंके समीप नहीं जाऊँगा ; क्योंकि इस समय जानेसे पहले व्रत ग्रहण करने वाले और ज्ञान पाये हुए छोटे भाइयोंके सामने मेरी हेठी होगी। इस लिये अभी मैं यहीं रहूँ और ध्यान-रूपी अग्निमें सब घाती कर्मोंको जलाकर केवलज्ञान प्राप्त करनेके बाद उनकी सभामें जाऊं।” ऐसा ही निश्चय कर वह मनस्वी बाहुबली अपने दोनों हाथ लम्बे फैलाकर रत्न प्रतिमाके समान वहीं कायोत्सर्ग करके टिक रहे। अपने भाईका यह हाल देख, राजा भरत, अपने कुकर्मोंका विचार कर इस प्रकार नीचे गरदन किये खड़े रहे, मानों वे पृथ्वीमें समा-जानेकी इच्छा कर रहे हो। तदनन्तर भरत राजाने अपने रहे-सहे क्रोधको गरम-गरम आँसुओंके रूपमे बाहर निकाल कर मूर्त्तिमान् शान्तरसके समान अपने भाईको प्रणाम किया। प्रणाम करते समय बाहुबलीके नख-रूपी दर्पणोंमे परछाँई पड़नेसे ऐसा मालूम होने लगा, मानों उन्होंने अधिक उपासना करनेकी इच्छासे अलग-अलग कई रूप धारण कर लिये हैं। इसके बाद

बाहुबली मुनिका गुण गाते हुए, वे अपने अपवाद रूपी रोगकी औषधिके समान अपनेको इस प्रकार धिक्कार देने लगा,— "तुम धन्य हो कि मेरे ऊपर दया करके तुमने अपना राज्य भी छोड़ दिया। मैं पापी और अभिमानी हूँ; क्योंकि मैंने असन्तोषके ही मारे तुम्हारे साथ इस प्रकार छेड़-छाड़ की। जो अपनी शक्ति नहीं जानते, जो अन्याय करनेवाले हैं, जो लोभके फन्दे में फँसे हुए हैं—ऐसे लोगोंमें मैं मुखिया हूँ। इस राज्यको जो संसार-रूपी वृक्षका बीज नहीं जानते, वे अधम हैं। मैं तो उनसे भी बढ़कर हूँ; क्योंकि यह जानता हुआ भी इस राज्यको नहीं छोड़ता। तुम्हीं पिताके सच्चे पुत्र हो—क्योंकि तुमने उन्हींका रास्ता पकड़ लिया। मैं भी यदि तुम्हारे ही जैसा हो जाऊँ, तो पिताका सच्चा पुत्र कहलाऊँ।" इस प्रकार पश्चात्तापरूपी जलसे विषादरूपी कीचड़को दूर कर भरत राजाने बाहुबलीके पुत्र चन्द्रयशाको उनकी गद्दीपर बैठाया। उसी समयसे जगत्‌में सैकड़ों शाखाओंवाला चन्द्रवंश प्रतिष्ठित हुआ। वह बड़े-बड़े पुरुष-रत्नोंकी उत्पत्तिका एक कारण-रूप हो गया।

इसके बाद महाराज भरत बाहुबलीको नमस्कार कर, स्वर्गकी राजलक्ष्मीकी सहोदरा बहनकी भाँति अपनी अयोध्या नगरी में अपने सकल समाजके साथ लौट आये।

भगवान् बाहुबली जहाँ-के-तहाँ अकेले ही कायोत्सर्ग-ध्यान में ऐसे खड़े रहे, मानों पृथ्वीसे निकले हों या आसमानसे उतर आये हों। ध्यानमें एकाग्र चित्त किये हुए बाहुबलीकी दोनों आँखें

नासिका पर गड़ी हुई थीं। साथ ही वे महात्मा बिना हिले डुले ऐसे शोभित हो रहे थे, मानों दिशाओंका साधन करने वाला शंकु * हो। अग्निकी लपटोंकी तरह गरम-गरम बालू चलानेवाली गरमीकी लूको वे वनके वृक्षोंकी भाँति सह लेते थे। अग्नि-कुण्डके मध्याह्न-कालका सूर्य उनके सिर पर तपता रहता था, तो भी शुभ-ध्यान-रूपी अमृत-कुण्डमें निमग्न रहनेवाले उन महात्माको इस बातकी खबर ही नहीं होती थी। सिरसे लेकर पैरके अंगूठे तक धूलके साथ पसीना मिल जानेसे शरीर कीचड़ से लिपटा हुआ मालूम पड़ने लगता था। उस समय वे कीचड़ कादेसे निकले हुए वराहकी तरह शोभित होते थे। वर्षा ऋतुमें बड़े ज़ोरकी आँधी और मूसलधार-वृष्टिसे भी वे महात्मा पर्वतकी तरह अचल बने रहते थे। अक्सर अपने निर्घातके शब्दसे पर्वतके शिखरोंको भी कँपाती हुई बिजली गिर पड़ती; तो भी वे कायोत्सर्ग अथवा ध्यानसे विचलित नहीं होते थे। नीचे बहते हुए पानीमें उत्पन्न सिवारोंसे उनके दोनों पैर निर्जन ग्रामकी बावली की सीढ़ियोंके समान लिप्त हो गये। हिम-ऋतुमें हिमसे उत्पन्न होने वाली मनुष्यका नाश करनेवाली नदी जारी होने पर भी वे ध्यान-रूपी अग्निमें कर्म-रूपी ईंधनको जलानेमें तत्पर रहते हुए बड़े सुखसे रहे। बर्फसे वृक्षको जलादेने वाली हेमन्त ऋतुकी रात्रियोंमें भी बाहुबलीका ध्यान कुन्दके फूलोंकी तरह बढ़ाता ही जाता था। जंगली भैंसे मोटे वृक्षके स्कन्धके समान उनके ध्यान मग्न शरीर

---

* घड़ीकी वह छड़ जिससे दिशाओंका ज्ञान होता है।

पर सींग मारते और अपने कन्धे घिस कर अपनी खुजली मिटाया करते थे। वाघिनोंके झुण्ड अपने शरीरको उनके पर्वतकी तलहटीकेसे शरीर पर टेक कर रातको सोया करते थे। जंगली हाथी सल्लकी-वृक्षके पल्लवके भ्रममें पड़ कर उन महात्माके हाथ-पैरोंको खैंचते थे; पर जब नहीं खैंच सकते थे, तब शर्माकर लौट जाते थे। चँवरी गायें निःशंक चित्तसे वहाँ आकर आरेकी तरह अपनी काँटेदार विकराल जिह्वासे सिर ऊपर उठाकर उन महात्माके शरीरको चाटती थीं। मृदङ्गके ऊपर लगी हुई चमड़े की वद्धियोंकी तरह उनके शरीर पर सैकड़ों शाखाओं वाली लताएँ फैली हुई थीं। उनके शरीर पर चारों ओर शरस्तम्भ-जातिके तृण उगे हुए थे, जो ठीक ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों पुराने स्नेहके कारण बाणोंके तरकस उनके कन्धे पर शोभित हो रहे हों। वर्षा ऋतुके कीचड़में गड़े हुए उनके पैरोंको भेदकर बहुतसे नोकदार दर्भ उग आते थे, जिनमें कनखजूरे चला करते थे। लताओंसे ढके हुए उनके शरीर पर बाज़ और अन्य पक्षी परस्परका विरोध त्याग कर घोंसले बनाकर रहते थे। वनके मोरोंकी ध्वनि सुनकर डरे हुए हज़ारों बड़े-बड़े सर्प घनी लताओं वाले उन महात्माके शरीरके ऊपर चढ़ जाते थे। शरीर पर लटकते हुए लम्बे-लम्बे साँपोंके कारण वे महात्मा बाहुबली हज़ार हाथों वाले मालूम पड़ने लगते थे। उनके चरणके ऊपर बने हुए बिलोंमेंसे निकलते हुए सर्प उनके पैरमें लिपट जाते और ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों उनके पैरोंके कड़े हों।

इस प्रकार ध्यानमग्न बाहुबलीने आहार बिना विहार करते हुए ऋषभस्वामीकी तरह साल भर बिता दिया। साल पूरा होने पर विश्ववत्सल ऋषभस्वामीने ब्राह्मी और सुन्दरीको बुलाकर कहा,— "इस समय बाहुबली अपने प्रचुर कर्मोंका क्षय कर, शुक्लपक्षकी चतुर्दशीकी भाँति तम-रहित हो गया है। परन्तु जैसे परदेमें छिपा हुआ पदार्थ देखनेमें नहीं आता, वैसेही मोहनीय कर्मोंके अंश-रूप मानके कारण उसे केवलज्ञान नहीं प्राप्त होता। अब तुमलोग वहाँ जाओ, तो तुम्हारे उपदेशसे वह मानको त्याग देगा। यहीं उपदेशका ठीक समय है।" प्रभुकी यह आज्ञा सुन, उसे सिर आँखों पर ले, उनके चरणोंमें प्रणाम कर, ब्राह्मी और सुन्दरी बाहुबलीके पास चलीं। महाप्रभु ऋषभदेवजी पहलेसे ही बाहुबलीके मनकी बात जानते थे, तो भी उन्होंने सालभर तक उनकी अपेक्षा की ; क्योंकि तीर्थंकर अमूढ़ लक्ष्यवाले होते हैं, इसीसे अवसर पर ही उपदेश देते हैं। आर्या ब्राह्मी और सुन्दरी उस देशमें गयीं ; पर राख लिपटे हुए रत्नकी तरह घनी लताओंसे छिपे हुए वे महामुनि उनको दिखाई न दिये। बारम्बार खोजते ढूंढ़ते, वे दोनों आर्याएँ वृक्षकी तरह खड़े हुए उन महात्माको किसी-किसी तरह पहचान सकीं। बड़ी चतुराईसे उन्हें पहचान कर वे दोनों आर्याएं महामुनि बाहुबलीको तीन बार प्रदक्षिणा कर,वन्दना करती हुई बोलीं, हे बड़े भाई! भगवान् अर्थात् आपके पिताजीने हमारे द्वारा आपको यही सन्देसा भेजा है, कि हाथी पर चढ़े हुए पुरुषोंको केवल-ज्ञान नहीं प्राप्त होता।"

यही कहकर वे दोनों देवियाँ जिधरसे आयी थीं, उधर ही चली गयीं, उनकी बात सुन मन-ही-मन विस्मित हो महात्मा बाहुबलीने, विचार किया,— "सब प्रकारके सावद्य योगोंका त्याग, वृक्षकी तरह कायोत्सर्ग करने वाला मैं इस जंगलमें हाथी पर चढ़ा हूँ। यह कैसी बात है? वे दोनों आर्याएँ भगवानकी शिष्याएँ हैं, पर किसी तरह झूठ नहीं बोल सकतीं। फिर मैं उनकी इस बातसे क्या समझूँ? ओह! अब मालूम हुआ। व्रतमें बढ़े और वयसमें छोटे भाइयोंको मैं कैसे नमस्कार करूँगा? यही अभिमान जो मेरे मनमें घुसा हुआ है, वही मानों हाथी है, जिस पर मैं निर्भयताके साथ सवार हूँ। मैंने तीनों लोकके स्वामीकी बहुत दिनों तक सेवा की, तो भी जैसे जलचर जीवोंको जलमें तैरना नहीं आता, वैसेही मुझको भी विवेक नहीं हुआ। इसीलिये तो पहलेसे ही व्रत ग्रहण किये हुए महात्मा भाइयोंको छोटा समझ कर ही मैंने उनकी वन्दना करनी नहीं चाही। अच्छा, रहो—मैं आजही वहाँ जाकर उन महामुनियोंकी वन्दना करूँगा।"

ऐसा विचार कर ज्योंही महाप्राण बाहुबलीने अपने पैर उठाये, त्योंही चारों ओरसे लताएँ टूटने लगीं—साथही घाती कर्म भी टूटने लगे और उसी पग पर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो आया। ऐसे केवलज्ञान और केवल-दर्शनवाले सौम्य मूर्त्ति महात्मा बाहुबली उसी प्रकार ऋषभस्वामीके पास आये, जैसे चन्द्रमा सूर्यके पास आता है। तीर्थंकरकी प्रदक्षिणा कर, उन्हें प्रणामकर जगतसे वन्दनीय बाहुबली मुनि, प्रतिज्ञासे मुक्त हो, केवलीकी परिषद्में जा बैठे।

छठा सर्ग

उन दिनों भगवान् ऋषभस्वामीका शिष्य, अपने नामके समान शास्त्रके एकादश अंगोंका जाननेवाला, साधुगणोंसे युक्त, स्वभावसे सुकुमार और हस्तिपतिके साथ-साथ चलनेवाले हाथीके बच्चेकी तरह,स्वामीके साथ विचरण करने वाला, भरतपुत्र मरिचि ग्रीष्म-ऋतुमें स्वामीके साथ विहार कर रहा था। एक दिन मध्याह्नके समय लुहारोंकी धौंकनीसे फूँकी हुई अग्निके समान चारों ओरके मार्गोंकी धूल तक सूर्यकी किरणोंसे तप गयी थी और मानों अदृश्य रहने वाली अग्निकी लपटें हों ऐसी गरम-गरम लू सब रास्तों पर चल रही थी। उस समय अग्निसे तपे हुए किञ्चित गीले काष्ठके समान सिरसे पाँव तक सारी देह पसीनेसे सराबोर हो गयी थी। जलसे भीगे हुए सूखे चमड़ेकी दुर्गन्धके समान पसीनेसे तर बने हुए कपड़ोंके कारण उसके अंगोंसे बड़ी कड़ी बदबू निकल रही थी। उसके पैर जल रहे थे, इसीसे तपे हुए स्थानमें रहनेवाले कुलकी स्थिति बतला थे और गरमीके कारण वह प्याससे व्याकुल हो गया था। इस हालतसे व्याकुल होकर मरीचि अपने मनमें सोचने लगा,—"ऐं!

केवलज्ञान और केवल-दर्शन-रूपी सूर्यचन्द्रसे शोभित मेरुके समान और तीनों लोकके गुरुके समान ऋषभस्वामीका मैं पौत्र हूँ। इसके सिवा अखण्डषट्खण्ड-युक्त महि-मण्डलके इन्द्र और विवेकको अद्वितीय निधिके समान भरत राजाका मैं पुत्र हूँ। साथही मैंने चतुर्विधि संघके सामने ऋषभस्वामीसे पञ्चमहाव्रत का उच्चारण करके दीक्षा ली है; इसलिये जैसे वीर पुरुषोंको युद्धभूमिसे नहीं भागना चाहिये, वैसेही मुझे भी इस स्थानसे लज्जित और पीड़ित होकर घर नहीं चला जाना चाहिये। परन्तु बड़े भारी पर्वतकी तरह इस चारित्रके दुर्वह भारको मुहूर्त्त-मात्र के लिये उठानेको भी मैं समर्थ नहीं हूँ। न तो मुझसे चारित्र-व्रतका पालन करते बनता है, न छोड़ कर घर जानाही बन पड़ता है; क्योंकि इससे कुलको कलंक लगता है। इसलिये मैं तो इस समय एक ओर नदी और दूसरी ओर सिंहवाली हालतमें पड़ाहुआ हूँ। पर हाँ, अब मुझे मालूम हुआ, कि जैसे पर्वतके ऊपर भी पगडण्डी बनी होती है, वैसेही इस विषम मार्गमें भी एक सुगम मार्ग है।

"ये साधु मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्डको जीतनेवाले हैं; पर मैं तो इन्हींसे जीता गया हूँ, इसलिये मैं त्रिदण्डी हूँगा। वे श्रमणकेशका लोच और इन्द्रियोंकी जय कर, सिर मुँड़ाये रहते हैं; पर मैं तो छूरेसे सिर मुड़वाकर शिखाधारी हूँगा। वे स्थूल और सूक्ष्म प्राणियोंके हिंसादिकसे विरत रहते हैं; पर मैं तो केवल स्थूल प्राणियोंका ही वध करने

से हाथ खींचे रहूँगा। वे मुनि अकिंचन होकर रहते हैं ; पर मैं तो अपने पास सुवर्ण-मुद्रादिक रखूँगा। वे ऋषि जूते नहीं पहनते ; पर मैं तो पहनूँगा। वे अठारह हज़ार शीलके अंगोंसे युक्त सुशील होकर सुगन्धित बने रहते हैं ; पर मैं शीलसे रहित होने के कारण दुर्गन्ध-युक्त हूँ, इसलिये चन्दनादिका लेप करूँगा। वे श्रमण मोहरहित हैं और मैं मोहसे ढका हुआ हूँ, इस कारण इस बातकी निशानीके तौर पर मस्तक पर छत्र लगाऊँगा ; वे निष्कषाय होनेके कारण श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और मैं कषायसे युक्त होनेके कारण उसके स्मारक स्वरूप कषाय-वस्त्र धारण करूँगा। वे मुनि पापके भयसे बहुत जीवोंसे भरे हुए संचित जलका त्याग करते हैं, पर मैं तो काफ़ी जलसे नहाऊँगा और खूब पानी पीऊँगा।" इस प्रकार वह अपनी ही बुद्धिसे अपने लिङ्ग (निशानी) की कल्पना कर, वैसा ही वेश धारण कर, स्वामीके साथ विहार करने लगा। खच्चरको जैसे घोड़ा या गधा नहीं कहा जाता ; पर वह है इन दोनोंके ही अंशसे उत्पन्न—इसी तरह मरिचिने न गृहस्थका सा बाना रखा, न मुनियोंका सा ; बल्कि दोनोंसे मिलता-जुलता हुआ एक नया ही बाना पहन लिया। हंसोंके बीचमें कौएकी तरह महर्षियोंके बीचमें इस अद्भुत मरिचिको देखकर बहुतेरे लोग बड़े कौतुकसे उससे धर्मकी बातें पूछते। उसके उत्तरमें वह मूल उत्तर गुणवाले साधु-धर्मका ही उपदेश करता था। उसकी बातें सुनकर यदि कोई पूछ बैठता, कि तुम भी ऐसा ही क्यों नहीं करते ? तो वह

इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट कर देता था। इस प्रकार प्रतिबोध देने पर यदि कोई भव्यजीव दीक्षा लेना चाहता, तो वह उसको प्रभुके पास भेज देता था और उससे प्रतिबोध पाकर आये हुए भव्य-प्राणियोंका भगवान् ऋषभदेव, जो निष्कारण उपकार करनेमें बन्धुके समान हैं, स्वयं दीक्षा दिया करते थे।

इसी प्रकार प्रभुके साथ विहार करते हुए मरिचिके शरीरमें लकड़ीके घुनकी तरह एक बड़ा भारी रोग पैदा हो गया। डाल से चूके हुए बन्दरको तरह, व्रतसे चूके हुए उस मरिचिका उसके साथ वाले साधुओंने प्रतिपालन करना छोड़ दिया। जैसे ईख का खेत बिना रक्षकके सूअर आदि जानवरोंसे विशेष हानि उठाता है, वैसेही बिना दवा-दारूके मरीचिका रोग भी अधिकाधिक पीड़ा देने लगा। तब घने जङ्गलमें पड़े हुए निस्सहाय पुरुषकी भाँति घोर रोगमें पड़े हुए मरिचिने अपने मनमें विचार किया,—"अहा! मालूम होता है, कि मेरे इसी जन्मका कोई अशुभ कर्म उदय हो आया है, जिससे अपनी जमातके साधु भी मेरी परायेके समान उपेक्षा कर रहे हैं; परन्तु उल्लूको दिनके समय दिखलाई नहीं देता, इसमें जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशका कोई दोष नही है, उसी प्रकार मेरे विषयमें इन अप्रतिचारी साधुओंका भी कोई दोष नहीं। क्योंकि उत्तम कुलवाला जैसे म्लेच्छ की सेवा नहीं करता, वैसेही सावद्य कर्मोंसे विराम पाये हुए ये साधु मुझ सावद्य कर्म करनेवालेकी सेवा क्यों कैसे कर सकते हैं?, बल्कि उनसे अपनी सेवा करानी ही मेरे लिये अनुचित है.

क्योंकि उससे मेरा वह पाप, जो व्रतभंगके कारण पैदा हुआ है, वृद्धिको प्राप्त होगा। अब मैं अपने उपचारके लिये किसी अपने ही समान मन्द धर्मवाले पुरुषकी खोज करूं, क्योंकि मृगके साथ मृगका ही रहना ठीक होता है।" इस प्रकार विचार करते हुए कितने ही समय बाद मरिचि रोग-मुक्त हो गया ; क्योंकि खारी जमीन भी कुछ कालमें आप से-आप अच्छी हो जाती है।

एक दिन महात्मा ऋषभस्वामी जगत्का उपकार करनेमें वर्षा-ऋतुके मेघके समान देशना दे रहे थे। उसीसमय वहाँ कपिल नामका कोई दुष्ट राजकुमार आकर धर्मकी बातें सुनने लगा, पर जैसे चक्रवाकको चाँदनी अच्छी नहीं लगती, उल्लूको दिन नहीं अच्छा लगता, अभागे रोगीको दवा नहीं अच्छी लगती, वायु-रोगवालेको ठंढी चीजें नहीं सुहातीं और बकरेको मेघ नहीं अच्छा लगता, वैसेही उसे भी प्रभुका धर्मोपदेश नहीं भाया। दूसरी तरहकी धर्म-देशना सुननेकी इच्छा रखनेवाले उस राज-कुमारने जो इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी, तो उसे विचित्र वेषधारी मरिचि दिखलाई दिया। जैसे बाज़ारमें चीज़ें मोल लेनेको गया हुआ बालक बड़ी दूकानसे हटकर छोटी दूकान पर चला आये, उसी प्रकार दूसरे ढङ्गकी धर्म-देशना सुननेकी इच्छा रखनेवाला कपिल भी स्वामीके निकटसे उठकर मरिचिके पास चला आया। उसने मरिचिसे धर्मका मार्ग पूछा। यह सुन, उसने कहा,—"भाई! मेरे पास धर्म नहीं है। यदि इसकी चाह हो, तो स्वामीजीकी ही शरणमें जाओ।" मरिचिकी यह बात सुन, कपिल

फिर प्रभुके पास आकर धर्म-कथा श्रवण करने लगा। उसके चले जाने पर मरिचिने अपने मनमें विचार किया,—"यह देखो! इस स्वकर्म-दूषित पुरुषको स्वामीकी धर्म-कथा भी नहीं रुची। बेचारे चातकको सारा सरोवर ही मिल जाये, तो उसको इससे क्या होता है?"

थोड़ी देरमें कपिल फिर मरिचिके पास आकर कहने लगा,—"क्या तुम्हारे पास ऐसा-वैसा भी धर्म नहीं है? यदि नहीं है, तो तुम व्रत काहेका लिये हुए हो।"

इसी समय मरिचिने अपने मनमें विचार किया,—"दैवयोग से यह कोई मेरे जैसा मुड्ढ मिला है। बहुत दिनों पर यह जैसेको तैसा मिला है, इसीलिये अब मैं निःसहायसे सहायवाला हो गया।" ऐसा विचार कर उसने कहा,—"वहाँ भी धर्म है और यहाँ भी धर्म है।" बस, इसी एक दुर्भाषणके ऊपर उसने कोटानुकोटि सागरोपम उत्कट प्रपञ्च फैलाया। इसके बाद उसने उसको दीक्षा दी और अपना सहायक बना लिया। बस, उसी दिनसे परिव्राजकताका पाखण्ड शुरू हुआ।

विश्वोपकारी भगवान् ऋषभदेवजी ग्राम, खान, नगर, द्रोण-मुख, करवट, पत्तन, मण्डप, आश्रम और जिले-परगनोंसे भरी हुई पृथ्वीमें विचरण कर रहे थे। विहार करते समय वे चारों दिशाओंमें सौ योजन तकके लोगोंका रोग निवारण करते हुए वर्षाकालके मेघोंकी तरह जगत्के जन्तुओंको शान्ति प्रदान कर रहे थे। राजा जिस प्रकार अनीतिका निवारण कर, प्रजाको

सुख देता है, वैसेही मूषक, शुक आदि उपद्रव करनेवाले जीवों की अपवृत्तिसे वे सबकी रक्षा करते थे। सूर्य जिस प्रकार अन्धकारका नाशकर, प्राणियोंके नैमित्तिक और शाश्वत वैरको शान्त करता हुआ सबको प्रसन्न करता है, वैसेही वे सबको प्रसन्न करते थे। जैसे उन्होंने पहले सब प्रकारसे स्वस्थ करनेवाली व्यवहार-प्रवृत्तिसे लोगोंको आनन्दित किया था, वैसेही अब की विहार प्रवृत्तिसे सबको आनन्द दे रहे थे। जैसे औषधि अजीर्ण और अतिक्षुधाको दूर कर देती है, वैसेही वे अनावृष्टि और अतिवृष्टिके उपद्रवोंको दूर करते थे। अन्तः शल्यके समान स्वचक्र और परचक्रका भय दूर हो जानेसे तत्काल प्रसन्न बने हुए लोग उनके आगमनके उपलक्ष्यमें, उत्सव करते थे। साथही जैसे मान्त्रिक पुरुष भूत—राक्षसोंसे लोगोंको बचाते हैं, वैसेही वे संहार करनेवाले घोर दुर्भिक्षसे सबकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उपकार पाकर सब लोग उन महात्माकी स्तुति किया करते थे। मानों भीतर नहीं समाने पर बाहर आती हुई अनन्त ज्योति हो, ऐसा सूर्यमण्डलको भी जीतनेवाला प्रभामण्डल वे भी धारण किये हुए थे। * जैसे आगे-आगे चलने-

---

* जहाँ-जहाँ तीर्थंकर विचरण करते हैं, उसके चारों ओर सवासौ योजन पर्यन्त उपद्रवकारी रोग शान्त हो जाते हैं, परस्परका वैर मिट जाता है, धान्यादिको हानि पहुंचानेवाले जन्तु नहीं रह जाते, महामारी नहीं होती, अतिवृष्टि नहीं होती, अकाल नहीं पड़ता, स्वचक्र—परचक्रका भय नहीं रहता तथा प्रभुके मस्तकके पीछे प्रभामण्डल रहता है, जो केवलज्ञान प्रकट होनेसे उत्पन्न तथा ग्यारह अतिशयोंमेंसे एक है।

वाले चक्रसे चक्रवर्त्ती शोभित होता है, वैसेही आकाशमें उनके आगे-आगे चलनेवाले असाधारण तेजमय धर्म-चक्रसे वे भी शोभित हो रहे थे। सब कर्मोंको जीतनेके चिह्नस्वरूप ऊँचे जयस्तम्भके समान हज़ारों छोटी-मोटी ध्वजाओंसे युक्त एक धर्म-ध्वजा उनके आगे-आगे भी चलती थी। मानों प्रयाण करते समय उनका कल्याण-मङ्गल करती हो, ऐसी आप-ही-आप नि-भेर शब्द करती हुई दिव्य-दुन्दुभि उनके आगे-आगे बजती चलती थी। मानों उनका यश हो, ऐसा आकाशमें घूमता हुआ पाद-पीठ सहित स्फटिक-रत्नका सिंहासन उनको भी शोभित कर रहा था। देवताओंसे रखे हुए सुवर्ण-कमलके ऊपर राजहंस के समान वे भी लीला सहित चरण-न्यास कर रहे थे। मानों उनके भयसे रसातलमें पैठ जानेकी इच्छा करता हो, ऐसे नीचे मुखवाले उनके तीक्ष्ण-दण्ड-रूपी कण्टकसे उनका परिवार आश्लिष्ट नहीं होता था। मानों कामदेवकी सहायता करनेके पाप का प्रायश्चित करनेकी इच्छा करती हो, इस प्रकार छओं ऋतुएँ एकही समयमें उनकी उपासना करती थीं। मार्गके चारों ओरके नीचेको झुके हुए वृक्ष, जो संज्ञाहीन जड़ वस्तु हैं, दूरही से उनको नमस्कार करते हुए मालूम पड़ते थे। पंखेकी हवा के समान ठंढी, शीतल और अनुकूल वायु उनकी निरन्तर सेवा करती रहती थी। स्वामीके प्रतिकूल चलनेवालेकी भलाई नहीं होती, मानों यही सोचकर पक्षीगण नीचे उतर, उनकी प्रदक्षिणा कर, उनकी दाहिनी तरफ होकर चलने लगते थे। जैसे चंचल

तरङ्गोंसे समुद्र शोभित होता है, वैसेही जघन्यकोटि संख्यावाले और बारम्बार गमनागमन करते हुए सुरासुरोंसे वे भी शोभित हो रहे थे। मानों भक्तिवश दिनमें भी प्रभासहित चन्द्रमा उदय हो आया हो, ऐसा उनका छत्र आकाशमें शोभा दे रहा था। और मानों चन्द्रमासे पृथक् की हुई समस्त किरणोंका कोष हो, ऐसा गङ्गाकी तरंगोंके समान श्वेत चमर उनपर ढुल रहा था। नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान, तपसे प्रदीप्त और सौम्य, लाखों उत्तम श्रमणोंसे वे घिरे रहते थे। जैसे सूर्य प्रत्येक सागर और सरोवरमे कमलको खिलाता है, वैसेही वे महात्मा प्रत्येक नगर और ग्राममें भव्य जीवोंको प्रतिबोध दिया करते थे। इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान ऋषभदेवजी एक दिन अष्टापद पर्वतपर आये। मानों बढ़ी-चढ़ी हुई सुफेदी के कारण शरदऋतुके बादलोंका एक स्थान पर जमा किया हुआ ढेर हो, स्थिर हुए क्षीर समुद्रका लाकर छोड़ा हुआ वेलाकूट हो अथवा प्रभुके जन्माभिषेकके समय इन्द्रके विक्रय किये हुए चार वृषभोंमेंसे एक वृषभ हो—ऐसाही वह पर्वत मालूम होता था। साथही वह पर्वत नन्दीश्वर-द्वीपकी पुष्करिणीमें रहनेवाले दधि-मुख-पर्वतोंमेंसे एक पर्वत, जम्बुद्वीप-रूपी कमलकी एक नाल, अथवा पृथ्वीके ऊँचे श्वेतवर्ण मुकुटकी भाँति शोभा पा रहा था। उसकी निर्मलता और प्रकाशको देखकर यही मालूम होता था, मानों देवतागण उसे सदा जलसे नहलाते और वस्त्रसे पोंछते रहते हैं। वायुसे उड़ायी हुई कमल-रेणुओंसे निर्मल

बने हुए उसके स्फटिक-मणिके तटको स्त्रियाँ नदीके जलके समान देखती रहती थीं। उसके शिखरोंके अग्रभागमें विश्राम लेनेको बैठी हुई विद्याधरोंकी स्त्रियोंको वह पर्वत वैताढ्य और क्षुद्र हिमालयकी याद दिलाता था। वह ऐसा मालूम पड़ता था, मानों स्वर्ग-भूमिका अन्तरिक्षमें टिका हुआ दर्पण हो, दिग्वधुओंका अतुलनीय हास्य हो और ग्रह-नक्षत्रोंके निर्माणके काममें आनेवाली मिट्टीका अक्षय आश्रय-स्थल हो। उसके शिखरोंके मध्यभागमें दौड़-धूप करके थके हुए मृग बैठा करते थे, इससे वह अनेक मृगलाञ्छनों (चन्द्रों) का धोखा दे रहा था। उससे जो बहुतसे झरने जारी थे, वे उसके छोड़े हुए निर्मल वस्त्रसे मालूम पड़ते थे और सूर्यकान्त-मणियोंकी फैलती हुई किरणोंसे वह ऊँची-ऊँची पताकाओंवाला मालूम होता था। उसके ऊँचे शिखरके अग्रभागमें जब सूर्यका संक्रमण होता था, तब वह सिद्धोंकी स्त्रियोंको उदयाचलका भ्रम पैदा करता था। मानों मोरपंखोंका बना हुआ छत्र तना हो, इस प्रकार उसपर हरे-हरे पत्तोंवाले वृक्षोंकी छाया निरन्तर छायी रहती थी। खेचरोंकी स्त्रियाँ कौतुकसे मृगोंके बच्चोंका लालन-पालन करती थीं, इससे हरिणियोंके झरते हुए दूधसे उनकी सब लता-कुञ्जें सिंच जाती थीं। कदलीपत्रकी लँगोटियाँ पहने हुई शबरियोंका नाच देखनेके लिये वहाँ नगरकी स्त्रियाँ आँखोंकी पंक्ति लगाये रहती थीं। रतिसे थकी हुई साँपिनें वहाँ जंगलकी मन्द-मन्द हवा पिया करतीं; पवन-नटकी तरह लताओंको नचा-नचा

कर खेल करता था ; किन्नरोंकी स्त्रियाँ रतिके आरम्भसे ही उसकी गुफाओंको मन्दिर बना लेतीं और स्नान करनेके लिये आयी हुई अप्सराओंकी भीड़-भाड़के मारे उसके सरोवरका जल तरङ्गित होता रहता था। कहीं चौपड़ खेलते हुए, कहीं पान-गोष्ठी करते हुए, कहीं जुआ खेलते हुए यक्षोंसे उसके मध्य-भागमें कोलाहल होता रहता था। उस पर्वत पर कहीं किन्नरों की स्त्रियाँ, कहीं भीलोंकी स्त्रियाँ और कहीं विद्याधरोंकी स्त्रियाँ क्रीड़ा करती हुई गीत गाया करती थीं। कहीं पके हुए दाखके फल खाकर उन्मत्त बने हुए शुक-पक्षी शब्द कर रहे थे, कहीं आमकी मोजरें खाकर मस्त कोयलें पंचम स्वरमें अलाप रही थीं, कहीं कमल-तन्तुके आस्वादसे उन्मत्त बने हुए हंस मधुर शब्द कर रहे थे, कहीं नदीके किनारे मदोन्मत्त क्रौञ्च-पक्षी क़िलकारियाँ सुना रहे थे, कहीं बिल्कुल पास आकर लटके हुए मेघोंको देखकर बेसुध हो जानेवाले मोर शोर कर रहे थे और कहीं सरोवरमें तैरते हुए सारस-पक्षियोंका शब्द सुनाई दे रहा था। इन सब बातोंसे वह पर्वत बड़ा ही मनोहर मालूम होता था। कहीं तो वह पर्वत अशोकके लाल-लाल,पत्तोंसे कुसुंबी वस्त्रवाला, कहीं ताल-तमाल और हिन्तालके वृक्षोंसे श्याम वस्त्र-वाला, कहीं सुन्दर पुष्पवाले पलास-वृक्षोंसे पीले वस्त्रवाला, और कहीं मालती और मल्लिकाके समूहसे श्वेत वस्त्रवाला मा-लूम पड़ता था। आठ योजन ऊंचा होनेके कारण वह आकाश जैसा ऊंचा मालूम पड़ता था। ऐसे उस अष्टापद-पर्वतके

ऊपर गिरिकी तरह गरिष्ठ जगत्गुरु आ विराजे। हवाके झोंके से गिरनेवाले फूलों और झरनोंके जलसे वह पर्वत मानों जगत्पति प्रभुको अर्घार्घ्या-पाद्य दे रहा हो, ऐसा मालूम पड़ता था। प्रभुके चरणोंसे पवित्र बना हुआ वह पर्वत, प्रभुके जन्म-स्नात्र से पवित्र बने हुए मेरुसे अपनेको कम नहीं समझता था। हर्षित कोकिलादिकके शब्दोंके मिषसे वह पर्वत मानों जगत्पति का गुण गान कर रहा था।

अब उस पर्वतके ऊपर वायुकुमार देवोंने एक योजन प्रदेश में मार्जन करनेवाले सेवकोंसे ऐसी सफाई करवा दी, कि कहीं तृणकाष्ठादि नहीं रहे। इधर मेघकुमारोंने पानी ढोनेवाले भैंसोंकी तरह बादलोंको लाकर उस भूमिको सुगन्धित जलसे सींच दिया। इसके बाद देवताओंने सुवर्ण रत्नोंकी विशाल शिलाओंसे दर्पण जैसी समतल (चौरस) भूमि बना ली। उसपर व्यन्तर, देवताओंने इन्द्र-धनुषके खण्डकी भाँति पाँच रंगोंवाले फूलोंकी घुटने भर वृष्टि कर डाली और यमुना नदी की तरंगोंकी शोभा धारण करनेवाले वृक्षोंके आर्द्र-पल्लवोंके तोरण चारों ओर बाँधे। चारों ओर स्तम्भों पर बाँधे हुए मकराकृति तोरण, सिन्धुके दोनों तटोंमें रहनेवाले मगरकी तरह दिखला रहे थे। उसके बीचमें मानों चारों दिशाओंरूपिणी देवियोंके दर्पण हों, ऐसे चार छत्र और आकाश गङ्गाकी चञ्चल तरङ्गोंका धोखा देनेवाली पवनसे सञ्चालित ध्वजा-पताकाएं शोभा दे रही थीं। उन तोरणोंके नीचे मोतीका बना हुआ

स्वस्तिक "सारे जगत्का यहाँ मङ्गल है" ऐसी चित्र-लिपिका भ्रम उत्पन्न कर रहा था। चौरस बनायी हुई भूमि पर विमान-चारी देवताओंने रत्नाकरकी शोभाके सर्वस्वके समान रत्नमय गढ़ बनाया और उस पर मानुषोत्तर-पर्वतकी सीमा पर रहने वाली सूर्य चन्द्रकी किरणोंकी मालाके समान माणिक्यके कङ्गूरों की पंक्तियाँ बनायीं। इसके बाद ज्योतिषपति देवताओंने वलयाकार बने हुए हिमाद्रि-पर्वतके शिखरके समान एक निर्मल सुवर्णका मध्यम गढ़ बनाया और उसके ऊपर रत्नमय कँगूरे लगाये! उन कँगूरों पर दर्शकोंकी परछाई' पड़नेपर वे ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों उनमें चित्र खिंचे हुए हों। उसके बाद भुवन-पतियोंने, कुण्डलाकार बने हुए शेषनागके शरीरका धोखा पैदा करनेवाला चाँदीका गढ़ अन्तमें तैयार किया और उसपर क्षीर-सागरके तटके जलपर बैठी हुई गरुड़श्रेणीकी भाँति सोनेके कँगूरोंकी श्रेणी बैठायी। इसके बाद यक्षोंने अयोध्याके किलेकी तरह इन गढ़ोंमें से भी प्रत्येकमें चार-चार दरवाजे लगाये और उनपर मानिकके तोरण बँधवाये। अपनी फैलती हुई किरणोंसे वे तोरण सौगुने से मालूम पड़ते थे प्रत्येक द्वार पर व्यन्तरोंने नेत्रोंकी कोरमें लगे हुए काजलकी रेखाके समान धुएँ की तरंगें उठानेवाली धूपदानी रख दी थी। मध्यम गढ़के भीतर, ईशान-कोणमें, घरमें बने हुए देवमन्दिरकी तरह प्रभुके विश्राम करनेके लिये एक "देवच्छन्द" (देवालय) रचाया गया। जैसे जहाज़के बीचमें मास्तूल होता है, वैसे ही व्यन्तरोंने उस समवसरणके बीचोबीच तीन कोस

ऊँचा चैत्य-वृक्ष बनाया। उस चैत्य-वृक्षके नीचे अपनी किरणों से मानों वृक्षको मूलसे ही पल्लवित करता हुआ एक रत्नमय पीठ बनाया और उस पीठ पर चैत्य—वृक्षकी शाखाओंके पल्लवोंसे बार-बार स्वच्छ होता हुआ एक रत्नच्छन्द बनाया। उसके मध्यमें पूर्वकी ओर विकसित कमलकी कलीके मध्यमें कर्णिकाकी तरह पादपीठ सहित एक रत्न-सिंहासन तैयार किया और उस पर गङ्गाकी तीन धाराओंके समान तीन छत्र बनाये। इस प्रकार वहाँ देवों और असुरोंने झटपट समवसरण बनाकर रख दिया, मानों वे पहलेसे ही सब कुछ तैयार रखे हुए हों अथवा कहींसे उठा लाये हों।

जगत्पतिने भव्य-जनोंके हृदयकी तरह मोक्षद्वार-रूपी इस समवसरणमें पूर्व दिशाके द्वारसे प्रवेश किया। पहुँचते ही उन्होंने उस अशोककी प्रदक्षिणा की, जिसके डालके अन्तमें निकलने-वाले पल्लवोंको उन्होंने कर्ण-भूषण बना रखा था। इसके बाद पूर्व दिशाकी ओर आ, "नमस्तीर्थाय" कह कर, जैसे राजहंस कमल पर आ बैठे, वैसेही वे भी सिंहासन पर आ विराजे। तत्काल ही शेष तीनों दिशाओंके सिंहासनों पर व्यन्तर देवोंने भगवान्के तीन रूप बना रखे। फिर साधु, साध्वी और वैमानिक देवताओंकी स्त्रियोंने पूर्व-द्वारसे प्रवेश कर, प्रदक्षिणा करके भक्ति-पूर्वक जिनेश्वर और तीर्थको नमस्कार किया और प्रथम गढ़में प्रथम धर्म-रूपी उद्यानके वृक्षरूप साधु, पूर्व और दक्षिण दिशाके बीचमें बैठे। उसी प्रकार पृष्ठ-भागमें वैमानिक देवताओंकी स्त्रियाँ

खड़ी रहीं और उनके पीछे उन्हींकी सी साध्वियोंका समूह खड़ा था। भुवनपति, ज्योतिषी और व्यन्तरोंकी स्त्रियाँ, दक्षिण-द्वार से प्रवेश कर, पूर्व विधिके अनुसार प्रदक्षिणा और नमस्कार कर, नैऋत-दिशामें बैठीं और इन तीनों श्रेणियोंके देव, पश्चिम द्वारसे प्रवेश कर, उसी प्रकार नमस्कार कर क्रमसे वायव्य दिशामें बैठे। इस प्रकार प्रभुको समवसरणमें आया हुआ जान कर, अपने बिमानोंके समूहसे आकाशको आच्छादित करते हुए इन्द्र वहाँ तत्काल आ पहुँचे। उत्तर द्वारसे समवसरणमें प्रवेश कर, स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दे, नमस्कार कर, भक्तिमान इन्द्र इस प्रकार स्तुति करने लगे,— "हे भगवन्! जब बड़े-बड़े योगी भी आपके गुणोंको ठीक-ठीक नहीं जानते, तब आपके उन स्तुति योग्य गुणोंका मैं नित्य-प्रमादी होकर कैसे बखान करूँ? तो भी हे नाथ! मैं यथाशक्ति आपके गुणोंका बखान करूँगा ; क्योंकि लँगड़ा आदमी भी लम्बी मंज़िल मारनेके लिये तैयार हो जाये, तो उसे कोई रोक थोड़े ही सकता है? हे प्रभो! इस संसाररूपी आतापके तापसे परवश बने हुए प्राणियोंको आपके चरणोंकी छाया, छत्रछायाका काम देती है, इसलिये आप मेरी रक्षा करें। हे नाथ! सूर्य जैसे केवल परोपकारके ही लिये उदय होता है, वैसेही केवल लोकोपकारके ही लिये आप विहार करते हैं, इस लिये धन्य हैं। मध्याह्न-कालके सूर्यकी तरह आप प्रभुके प्रकट होनेपर देहकी छायाकी भाँति प्राणियोंके कर्म चारों ओरसे संकुचित हो जाते हैं। जो सदा आपके दर्शन करते रहते हैं, वे पशु

पक्षी भी धन्य हैं और जो आपके दर्शनोंसे वञ्चित हैं, वे स्वर्गमें रहते हुए भी अधन्य हैं। हे तीनों लोकके स्वामी! जिनके हृदय-मन्दिरमें आपही अधिष्ठाता देवताकी भाँति निवास करते हैं, वे भव्य जीव श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं। बस आपसे मेरी केवल यही एक प्रार्थना है, कि नगर-नगर और ग्राम-ग्राम विहार करते हुए आप कदापि मेरे हृदयको नहीं त्यागें।"

इस प्रकार प्रभुकी स्तुति कर, पाँचों अङ्गोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए प्रणाम कर स्वर्गपति इन्द्र पूर्व और उत्तर दिशाओंके मध्यमें बैठे। प्रभु अष्टापद-पर्वत पर पधारे हैं, यह समाचार शीघ्रही शैल-रक्षक पुरुषोंने चक्रवर्त्तीसे जाकर कह सुनाया ; क्योंकि वे इसी कामके लिये वहाँ रखे गये थे। भगवानके आगमनका समाचार सुननेवाले लोगोंको उदार चक्रवर्त्तीने साढ़े बारह करोड़ सुवर्ण दान किया। भला ऐसे अवसर पर वे जो न दे देते, कम ही था। फिर महाराजने सिंहासनसे उठकर उस दिशाकी ओर सात आठ कदम चलकर विनयके साथ प्रभुको प्रणाम किया और फिर सिंहासन पर बैठ कर इन्द्र जैसे देवताओंको बुलाते हैं, वैसेही प्रभुकी वन्दना करनेको जानेके लिये चक्रवर्त्तीने अपने सैनिकोंको बुलवाया, वेलासे समुद्रकी ऊँची तरङ्ग पंक्तिके समान भरत राजाकी आज्ञासे सम्पूर्ण राजा चारों ओरसे आकर एकत्रित हो गये। हाथी ऊँचे स्वरसे गर्जना करने लगे। घोड़े हिनहिनाने लगे। उनका इस प्रकार शब्द करना ऐसा मालूम होता था मानों वे अपने सवारोंको स्वामीके पास जानेके लिये

जल्दी तैयार होनेको कह रहे हों। पुलकित अंगोंवाले रथी और पैदल लोग तत्काल हर्षपूर्वक चल पड़े। क्योंकि एक तो भगवान्‌के पास जाना, दूसरे, राजाकी आज्ञाका पालन, मानों सोने में सुगन्ध आ गयी बड़ी नदीके दोनों तटोंमें भी जैसे बाढ़का जल नहीं समाता, वैसेही अयोध्या और अष्टापदपर्वतके बीचमें वह सेना नहीं समाती थी। आकाशमें श्वेत छत्र और मयूरछत्र का सङ्गम होनेसे गङ्गा यमुनाके वेणी-सङ्गमकी तरह शोभा दिखाई दे रही थी। घुड़सवारोंके हाथमें सोहनेवाले भाले, अपनी किरणोंके कारण, ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों उन्होंने भी अपने हाथमें भाले लिये हों। हाथियों पर चढ़े हुए, वीरकुञ्जर हर्षसे उत्कट गर्जन करते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों हाथीपर दूसरा हाथी सवार हो। सभी सैनिक जगत्पतिके दर्शन करनेके लिये भरत चक्रवर्तीसे भी बढ़कर उत्सुक हो रहे थे; क्योंकि तलवार की अपेक्षा उसकी म्यान और भी तेज होती है। उन सबके मिले हुए कोलाहलने मानों द्वारपालकी तरह मध्यमें विराजित भरत राजासे यह निवेदन किया, कि सब सैनिक इकट्ठे हो गये। इसके बाद जैसे मुनीश्वर राग-द्वेषको जीतकर मनको पवित्र कर लेते हैं, वैसेही महाराजने स्नान करके अङ्गोंको पवित्र किया और प्रायश्चित्त तथा मंगल कर अपने चरित्रके समान उज्ज्वल वस्त्र धारण किये। मस्तक पर श्वेत छत्र और दोनों ओर श्वेत चंवरोंसे शोभित वे महाराज अपने महलके आँगनमें आये और सूर्य जैसे पूर्वाचल पर आरूढ होता है, वैसेही आँगनमें पधारे हुए

महाराज, आकाशके मध्यमें आनेवाले सूर्यकी भाँति महागज पर आरूढ़ हुए। भेरी, शङ्ख और नगाड़े आदिके उत्तम बाजोंके ऊँचे शब्दसे फव्वारेके जलके समान आकाशको व्याप्त करते हुए, हाथियोंके मद-जलसे दिशाओंको पूर्ण करते हुए, तरंगोंसे आच्छादित समुद्रकी तरह तुरङ्गोंसे पृथ्वीको आच्छादित करते हुए और कल्पवृक्षसे युक्त युगलियोंके समान हर्ष और त्वरा (जल्दी) से युक्त महाराज, थोड़ी देरमें अन्तःपुर और परिवारके लोगोंके साथ अष्टापदमें आ पहुँचे।

जैसे संयम स्वीकार करनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष गृहस्थ-धर्म से उतर कर ऊँचे चरित्र-धर्मपर आरूढ़ होता है, वैसेही महागज से उतर कर महाराज उस महागिरि पर चढ़े। उत्तर दिशावाले द्वारसे समवसरणके भीतर प्रवेश करतेही उन्होंने आनन्द-रूपी अंकुर उत्पन्न करनेवाले मेघके समान प्रभुको देखा। प्रभुकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, उनके चरणोंमें नमस्कार कर, हाथोंकी अंजलि बना, सिरसे लगाकर भरतने उनकी इस प्रकार स्तुति की,—"हे प्रभु! मेरे जैसे मनुष्यका आपकी स्तुति करना, घड़ेसे समुद्र का पान करनेके समान है। तथापि मैं आपकी स्तुति करता हूँ; क्योंकि मैं भक्तिके कारण निरंकुश हूँ। हे प्रभो! जैसे दीपकके सम्पर्कसे वत्ती भी दीपक ही कहलाती है, वैसेही आपके आश्रित भव्यजन भी आपके तुल्य ही हो जाते हैं। हे स्वामिन्! मदसे उन्मत्त इन्द्रियरूपी हाथियोंका मद उतारनेमें औषधिके समान और सच्चे मार्गको बतलानेवाला आपका शासन सर्वत्र विजय

पाता है। हे त्रिभुवनेश्वर! मैं तो यही मानता हूँ, कि आप जो चार घातीकर्मोंका नाश कर, बाकी चार कर्मोंकी उपेक्षा करते हैं, वह लोगोंके कल्याणके निमित्त ही करते हो। हे प्रभु! गरुड़के पंखोंके नीचे रहनेवाले पुरुष जैसे समुद्रको लाँघजाते हैं, वैसे ही आपके चरणोंमें लिपटे हुए भव्य-जन इस संसार समुद्रको पार कर जाते हैं। हे नाथ। अनन्त कल्याणरूपी वृक्षको उल्लसित करनेमें दोहद स्वरूप और मोहरूपी महानिद्रामें पड़े हुए विश्वके लिये प्रातःकालके समान आपका दर्शन सदाही जय-युक्त है। आपके चरण कमलोंके स्पर्शसे प्राणियोंका कर्म-विदारण हो जाता है; क्योंकि चन्द्रमाकी शीतल किरणोंसे भी हाथीके दाँत फूटते हैं। मेघोंसे झरनेवाली वृष्टिकी तरह और चन्द्रमाकी चाँदनीके समान ही, हे जगन्नाथ! आपका प्रसाद सबके लिये समान है।"

इस तरह प्रभुकी स्तुति कर, प्रणाम करनेके अनन्तर भरत-पति सामानिक देवताकी भाँति इन्द्रके पीछे बैठ रहे। देवताओंके पीछे अन्य पुरुषगण बैठे और पुरुषोंके पीछे स्त्रियाँ खड़ी हो रहीं। प्रभुके निर्दोष शासनमें जिस प्रकार चतुर्विध-धर्म रहता है, उसी प्रकार समवसरणके पहले गढ़में यह चतुर्विध-संघ बैठा। दूसरे गढ़में परस्पर-विरोधी होते हुए भी सब जीव-जन्तु सहोदर भाइयोंकी तरह सहर्ष बैठ रहे। तीसरे किलेमें आये हुए राजाओंके हाथी-घोड़े आदि वाहन देशना सुननेके लिये कान ऊपरको उठाये हुए थे। फिर त्रिभुवनपतिने सब भाषाओंमें प्रवर्त्तित

होनेवाली और मेघके शब्दकी भाँति गम्भीर वाणीमें देशना देनी आरम्भ की। देशना सुनते हुए सभी पशु-पक्षी मनुष्य और देवता-गण हर्षके मारे ऐसे स्थिर हो रहे, मानों वे किसी बड़े भारी बोझसे छुटकारा पा गये हों, इष्ट-पदको प्राप्त हो गये हो, कल्याण-अभिषेक कर चुके हो, ध्यानमें डूबे हों, अहमिन्द्र-पदको प्राप्त कर चुके हों, अथवा परब्रह्मको ही पा लिया हो। देशना समाप्त होनेपर, महाव्रतका पालन करनेवाले अपने भाइयोंको देखकर मनमे दुःखित होते हुए भरतराजने विचार किया,—"अहा! अग्निकी तरह सदा असन्तुष्ट रहते हुए मैंने अपने इन भाइयोंका राज्य लेकर क्या किया? अब इस भोगफलवाली लक्ष्मीको दूसरोंको दे देना, तो राखमें घी छोड़नेके ही समान और मेरे लिये निष्फल है। कौए भी दूसरे कौओंको खिलाकर अन्नादिक भक्षण करते हैं, पर मैं तो अपने इन भाइयोंको भी हटाकर भोग भोग रहा हूँ, इसलिये कौओंसे भी गया-बीता हूँ। मासक्षपणक * जिस प्रकार किसी दिन भिक्षा ग्रहण करते हैं,वैसेही यदि मैं फिर उनको उनकी भोगी हुई सम्पत्ति वापिस कर दूँ, तो मेरा बड़ाही पुण्योदय होगा, यदि वे उसे ग्रहण कर लें।" ऐसा विचार कर, प्रभुके चरणोंके पास जा, अंजलि-बद्ध होकर उन्होंने अपने भाइयोंसे उस सम्पत्ति को भोगनेके लिये कहा।

तब प्रभुने कहा,—"हे सरलहृदय राजा! तुम्हारे ये भाई बड़े ही सतोगुणी हैं और इन्होंने महाव्रतका पालन करनेकी प्रतिज्ञा

---

* महीने भर उपवास करनेवाला।

की है। अतएव संसारको असारताको जानते हुए ये लोग वमन किये हुए अन्नकी तरह त्याग किये हुए भोगको फिर नहीं ग्रहण कर सकते।"

जब प्रभुने इस प्रकार भोगसम्बन्धी उनके आमन्त्रणका निषेध किया, तब फिर पश्चात्ताप-युक्त होकर चक्रवर्तीने विचार किया,—"यदि मेरे ये सर्व-सङ्ग-विहीन भाई कदापि भोगका संग्रह नहीं कर सकते, तो भी प्राण-धारणके लिये आहार तो करेंगे ही?" ऐसा विचारकर उन्होंने ५०० गाड़ियोंमें भरकर आहार मँगवाया और अपने छोटे भाइयोंसे फिर पहलेकी तरह उन्हें स्वीकार कर लेनेको कहा। इसके उत्तरमे प्रभुने कहा,—"हे भरतपति! यह आधाकर्मी * आहार यतियोंके योग्य नहीं है।"

प्रभुने जब इस प्रकार निषेध किया। तब उन्होंने अकृत और अकारित † अन्नके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया; क्योंकि सरलता में सब कुछ शोभा देता है। उस समय "हे राजेन्द्र! मुनियोंको राजपिण्ड नहीं चाहिये।" यह कह कर धर्म-चक्रवर्त्तीने फिर मना कर दिया। तब ऐसा विचारकर, कि प्रभुने तो मुझे सब प्रकारसे निषेधही करदिया, महाराज भरत पश्चात्तापके कारण राहुग्रस्तचन्द्रमा की भाँति दुःखित होगये। उनको इसप्रकार उदास होते देखकर इन्द्रने प्रभुसे पूछा,—"हे स्वामी! अवग्रह ‡ कितने तरहका होता है?"

---

* मुनियोंके लिये तैयार किया हुआ। † मुनिके लिये नहीं किया हुआ और नहीं कराया हुआ। ‡ रहने और विचरनेके स्थानके लिये जो आज्ञा लेनी पड़ती है, उसे अवग्रह कहते हैं।

प्रभुने कहा,—"इन्द्र-सम्बन्धी, चक्री-सम्बन्धी, राजा-सम्बन्धी, गृहस्थ-सम्बन्धी और साधु-सम्बन्धी—ये पाँच प्रकारके अवग्रह होते हैं। ये अवग्रह उत्तरोत्तर पूर्व पूर्वको बाधा देते हैं। इनमें—पूर्वोक्त और परोक्त विधियोंमें पूर्वोक्तही बलवान् है।"

इन्द्रने कहा,—"हे देव ! जो साधु मेरे अवग्रहमें विहार करते हैं, उन्हें मैंने अपने अवग्रहके लिये आज्ञा दे रखी है।"

यह कह, इन्द्र प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना कर, खड़े हो रहे। यह सुन भरतराजाने पुनः विचार किया,—"यद्यपि इन मुनियोंने मेरे लाये हुए अन्नादिको स्वीकार नहीं किया, तथापि अवग्रहके अनुग्रहकी आज्ञासे तो आज कृतार्थ हो जाऊँ !" ऐसा विचार कर, श्रेष्ठ हृदयवाले चक्रवर्त्तीने इन्द्रकी तरह प्रभुके चरणोंके पास पहुँचकर अपने अवग्रहकी आज्ञा दी। तदनन्तर अपने सहधर्मी (सामान्य धर्मबन्धु) इन्द्रसे पूछा,—"अब मैं यहां लाये हुए अपने अन्न जल आदिकी कौनसी व्यवस्था करूँ ?"

इन्द्रने कहा,—"वह सब गुणोंमें बढ़े-चढ़े हुए पुरुषोंको दे डालो।"

भरतने विचार किया,—"साधुओंके सिवाय विशेष गुणवान् पुरुष और कौन होगा ? अच्छा, अब मुझे मालूम हुआ। देश-विरतिके समान श्रावक विशेष गुणोत्तर हैं, इसलिये यह सब उन्हींको अर्पण कर देना चाहिये।"

यही निश्चय कर, भरत चक्रवर्त्तीने स्वर्गपति इन्द्रके प्रकाशमान और मनोहर आकृतिवाले रूपको देख, विस्मित होकर उनसे

पूछा,—"हे देव ! स्वर्गमें भी आप इसी रूपमें रहते हैं या किसी और रूपमें ? क्योंकि देवता तो कामरूपी कहलाते हैं—अर्थात् वे जब जैसा चाहें, वैसा रूप बना लेते हैं।"

इन्द्रने कहा,—"हे राजन् ! स्वर्गमें मेरा यह रूप नहीं रहता। वहाँ जो रूप रहता है, उसे कोई मनुष्य नहीं देख सकता।"

भरतने कहा,—"आपका वह रूप देखनेकी मेरी बड़ी प्रबल इच्छा हो रही है। इसलिये हे स्वर्गेश्वर ! चन्द्रमा जैसे चकोरको आनन्द देता है, वैसेही आप भी मुझे अपनी वह दिव्यमूर्त्ति दिखला कर मेरी आँखोंको आनन्द दीजिये।"

इन्द्रने कहा,—"हे राजन् ! तुम उत्तम पुरुष हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जानी चाहिये, अतएव लो, मैं तुम्हें अपने एक अङ्गका दर्शन कराता हूँ।" यह कह, इन्द्रने उचित अलङ्कार से सोहती हुई और जगत्रूपी मन्दिरमें दीपकके समान अपनी एक उँगली राजा भरतको दिखलायी, उस चमकती हुई कान्तिवाली इन्द्रकी उँगलीको देख, मेदिनीपतिको वैसाही आनन्द हुआ, जैसा चन्द्रमाको देखकर समुद्रको होता है। भरतराजाका इस प्रकार मान रखकर, भगवान्‌को प्रणामकर, इन्द्र सन्ध्या-कालके मेघकी भाँति तत्काल अन्तर्ध्यान हो गये। चक्रवर्त्ती भी, स्वामीको प्रणाम कर, करने योग्य कामका मन-ही-मन विचार कर, अपनी अयोध्या-नगरीको लौट आये। रातको इन्द्रकी अंगुलीका आरोपण कर, उन्होंने वहाँ अष्टाहिका-उत्सव किया, सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य भक्ति और स्नेहमें एकसाँही होता है। उस दिनसे इन्द्रका

स्तम्भ आरोपित कर लोग सर्वत्र इन्द्रोत्सव करने लगे। यह रीति अब तक लोकमें प्रचलित है।

सूर्य जैसे एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जाता है, वैसेही भव्य-जन-रूपी कमलोंको प्रबुद्ध करनेके (खिलानेके) लिये भगवान् ऋषभ-स्वामीने भी अष्टापद-पर्वतसे अन्यत्र विहार किया।

इधर अयोध्यामें भरत राजाने सब श्रावकोंको बुलाकर कहा,—"तुम लोग सदा भोजनके लिये मेरे घर आया करो और कृषि आदि कार्योंमें न लग कर, स्वाध्यायमें निरत रहते हुए निरन्तर अपूर्व ज्ञानको ग्रहण करनेमें तत्पर रहा करो। भोजन करनेके बाद मेरे पास आकर प्रतिदिन तुम्हें यही कहना होगा, कि—जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान् माहन माहन (अर्थात् तुम जीते गये हो—भय वृद्धिको प्राप्त होता है, इसलिये 'आत्मगुण' को न मारो, न मारो)।" चक्रवर्तीकी यह बात मान, वे लोग सदा उनके घर आकर जीमने लगे और पूर्वोक्त वचनका स्वाध्यायमें तत्पर मनुष्यकी भाँति पाठ करने लगे। देवताओंकी तरह रतिमें मग्न और प्रमादी चक्रवर्तीने उन शब्दोंको सुनकर, अपने मनमें विचार किया,—"अरे! मैं किससे जीता गया हूं और किससे मेरा भय बढ़ता है? हाँ, अब जाना। कषायोंने मुझे जीत लिया है और इन्हींकि करते भय वृद्धिको प्राप्त होता है। इसीलिये ये विवेकी पुरुष मुझे नित्य इस बातकी याद दिलाया करते हैं, कि आत्माकी हत्या न करो—न करो, परन्तु तो भी मेरी यह कैसी प्रमादशीलता और विषय-लुब्धता है। धर्मके विषयमें मेरी यह कैसी उदासीनता है! इस

संसारमें मेरा कैसा अनुराग है! और यह सब महापुरुषोंके आचारसे कैसा उलटा पड़ता है!" इस प्रकारकी बातें सोचनेसे राजाके मनमें ठीक उसी प्रकार धर्मका ध्यान क्षण भरके लिये समा गया, जैसे समुद्रमें गङ्गाका प्रवाह प्रवेश करता है। परन्तु पीछे वे वारम्बार शब्दादिक इन्द्रियोंमें आसक्त हो जाते थे; क्योंकि भोग-फल-कर्मको अन्यथा कर डालनेको कोई समर्थ नहीं होता।

एक दिन पाक-शालाके अध्यक्षने महाराजके पास आकर कहा,—"महाराज! इतने लोग भोजन करने आते हैं, कि यह समझमें नहीं आता, कि ये सबके सब श्रावकही हैं या और भी कोई हैं?" यह सुन, राजा भरतने आज्ञा दी, कि तुम भी तो श्रावक ही हो, इसलिये आजसे परीक्षा करके भोजन दिया करो। अबतो पूछने लगा, कि तुम कौन हो? जब वह बतलाता, कि मैं श्रावक हूँ, तब वह पूछता, कि तुममें श्रावकोंके कौन-कौनसे व्रत हैं। ऐसा पूछने पर जब वे बतलाते, कि हमारे निरन्तर पाँच अणुव्रत और सात शिक्षा-व्रत हैं, तब वह संतुष्ट होता। इसी प्रकार परीक्षा करके वह श्रावकोंको भरत राजाको दिखलाता और महाराज भरत, उनकी शुद्धिके लिये उनमें काँकिणी-रत्नसे उत्तरासङ्गकी भाँति तीन रेखाएँ ज्ञान, दर्शन और चारित्रकेचिह्न-स्वरूप करने लगे। इसी प्रकार प्रत्येक छठे महीने नये-नये श्रावकोंकी परीक्षा की जाती और उनपर काँकिणी-रत्नके चिह्न अङ्कित किये जाते। उसी चिह्नको देखकर उन्हें भोजन दिया जाता और वे "जितोभवान्" इत्यादि वचनका ऊँच स्वरसे पाठ करने लगते। इसीका पाठ

करनेके कारण वे क्रमशः "माहना" नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे अपने बालक साधुओंको देने लगे। उनमेंसे कितनेही स्वेच्छापूर्वक विरक्त होकर व्रत ग्रहण करने लगे और कितने ही परिषह सहन करनेमें असमर्थ होकर श्रावक होगये। काँकिणी-रत्नसे अङ्कित होनेके कारण उन्हें भी भोजन मिलने लगा। राजा उनको इस प्रकार भोजन देते थे, इसीलिये और-और लोग भी उनको जिमाने लगे। क्योंकि बड़ों से पूजित मनुष्य सबसे पूजित होने लगते हैं। उनके स्वाध्यायके लिये चक्रवर्त्तीने अर्हन्तों की स्तुति और मुनियों तथा श्रावकोंकी समाचारीसे पवित्र चार वेद रचे। क्रमशः वे ही माहनासे ब्राह्मण कहलाने लगे और काँकिणी-रत्नकी तीन रेखाओं के बदले यज्ञोपवीत धारण करने लगे। भरत राजाके बाद जब उनके पुत्र सूर्ययशा गद्दी पर बैठे, तब उन्होंने काँकिणी-रत्नके अभावमें सुवर्णके यज्ञोपवीतकी चाल चलायी। उनके बाद महायशा आदि राजा हुए। इन लोगोंने चाँदीका यज्ञोपवीत चलाया। पीछे पट्ट-सूत्रमय यज्ञोपवीत जारी हुआ और अन्तमें साधारण सूतकेही यज्ञोपवीत रह गये।

भरत राजाके बाद सूर्ययशा राजा हुए। उनकेबाद महायशा, तब अतिबल, तब बलभद्र, तब बलवीर्य तब कीर्त्तिवीर्य तब जलवीर्य और उनके बाद दण्डवीर्य इन—आठ पुरुषों तक ऐसाही आचार जारी रहा। इन्होंनेभी इस भरतार्द्धका राज्य भोगा और इन्द्रके रचे हुए भगवानके मुकुटको धारण किया। फिर दूसरे राजाओंने मुकुटकी बड़ी लम्बाई-चौड़ाई देख, उसे नहीं धारण

किया; क्योंकि हाथीका भार हाथी ही सह सकता है, दूसरेसे नहीं सहा जा सकता। नवें और दसवें तीर्थङ्करके बीचमें साधुका विच्छेद हुआ और इसी प्रकार उनके बाद सात प्रभुओंके बीचमें शासनका विच्छेद हुआ। उस समय भरत-चक्रवर्त्तीकी रची हुई अर्हन्त-स्तुति तथा यति एवं श्रावकोंके धर्मसे पूर्ण वेद आदि बदले गये। इसके बाद सुलस और याज्ञवल्क्य आदि ब्राह्मणोंने अनार्य वेदोंकी रचना की।

इन दिनों चक्रधारी राजा भरत, श्रावकोंको दान देते और कामक्रीड़ा सम्बन्धी विनोद करते हुए दिन बिता रहे थे। एक दिन चन्द्रमा जैसे आकाशको पवित्र करता है, वैसेही अपने चरणोंसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए भगवान् आदीश्वर, अष्टापद-गिरि पर पधारे। देवताओंने तत्काल वहाँ समवसरणकी रचना की और उसीमें बैठकर जगत्पति देशना प्रदान करने लगे। प्रभुके वहाँ आनेकी बात संवाद-दाताओंने झटपट भरतराजाके पास जाकर कह सुनायी। भरतने पहलेकी ही भाँति उन्हें इनाम दिया। सच है, कल्पवृक्ष सदा दान देता है, तो भी क्षीण नहीं होता। इसके बाद अष्टापद-गिरिपर समवसरणमें बैठे हुए प्रभुके पास आ, उनकी प्रदक्षिणाकर नमस्कार करते हुए भरतराजाने उनकी इसप्रकार स्तुति की,—"हे जगत्पति! मै अज्ञ हूँ, तथापि आपके प्रभावसे मैं आपकी स्तुति करता हूँ; क्योंकि चन्द्रमाको देखनेवालोंकी दृष्टि मन्द होनेपर भी काम देने लगती है। हे स्वामिन्! मोह-रूपी अन्धकारमें पड़े हुए इस जगत्‌को प्रकाश देनेमें दीपकके समान और

आकाशकी भाँति अनन्त जो आपका केवल-ज्ञान है, वह सदा सब जगह जय पाता है। हे नाथ! प्रमाद-रूपी निद्रामें पड़े हुए मुसाफिरोंसे मनुष्योंकेही लिये आप सूर्यकी तरह बारम्बार आते-जाते रहते हैं। जैसे समय पाकर (जाड़ेके दिनोंमें) पत्थरकी तरह जमा हुआ घी भी आगकी आँचसे पिघल जाता है, वैसेही लाखों जन्मों के उपार्जन किये हुए कर्म भी आपके दर्शनोंसे नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभु! एकान्त 'सुखम्-काल' से तो यह 'सुखं-दुःखम्-काल' ही अच्छा है, जिसमें कल्पवृक्षसे भी विशेष फलके देनेवाले आप उत्पन्न हुए हैं। हे समस्त भुवनोंके स्वामी! जैसे राजा गाँवों और भवनोंसे अपनी नगरीकी शोभा बढ़ाता है, वैसेही आप भी इस भुवनको भूषित करते हैं। जैसा हित माता-पिता, गुरु और स्वामी भी नहीं कर सकते, वैसा अकेला होनेपर भी अनेक-रूप होकर आप किया करते हैं। जैसे चन्द्रमासे रात्रि शोभा पाती है, हंससे सरोवर शोभा पाता है और तिलकसे मुखकी शोभा होती है, वैसेही आपसे यह सारा भुवन शोभा पाता है।

इस प्रकार विधि-पूर्वक भगवान्‌की स्तुति कर, विनयी राजा भरत अपने योग्य स्थानपर बैठ रहे।"

इसके बाद भगवान्‌ने योजन-भरतक फैलती हुई और सब भाषाओंमें समझी जानेवाली वाणीमें विश्वके उपकारके लिये देशना दी। देशनाके अन्तमें भरतराजाने प्रभुको प्रणामकर, रोमाञ्चित शरीरसे साथ हाथ जोड़े हुए कहा,—'हे नाथ! जैसे इस भरत-क्षेत्र में आप विश्वका हित करते फिरते हैं, वैसे और कितने धर्म-चक्री

और चक्रवर्त्ती होंगे। हे प्रभु! आप कृपाकर उनके नगर, गोत्र, माता-पिताके नाम, आयुवर्ण, शरीरका मान, परस्पर अन्तर, दीक्षा-पर्याय और मति आदि मुझे बतला दीजिये।"

भगवानने कहा,—"हे चक्री! मेरे बाद इस भरतखण्डमें तेईस अर्हन्त और होंगे और तुम्हारे बाद और भी ग्यारह चक्रवर्त्ती होंगे। उनमें बीसवें और बाईसवें तीर्थङ्कर गौतम-गोत्रके होंगे और शेष सब कश्यप-गोत्रके। वे सब मोक्षगामी होंगे। अयोध्यामें जितशत्रु राजा और विजयारानीके पुत्र अजित दूसरे तीर्थङ्कर होंगे। उनकी बहत्तर लाख पूर्वकी आयु, सुवर्णकीसी कान्ति और साढ़े चार सौ धनुषोंकी काया होगी और वे पूर्वाङ्ग* से न्यून लक्षपूर्वके दीक्षा-पर्यायवाले होंगे। मेरे और अजितनाथके निर्वाणकालमें पचास लाख कोटि सागरोपमका अन्तर होगा। श्रावस्ती-नगरीमें जितारि राजा और सेनारानीके पुत्र सम्भव तीसरे तीर्थङ्कर होंगे। उनका सोनेका सा वर्ण, साठ लाख पूर्वकी आयु और चार-चार सौ धनुषोंकी ऊँचाईका शरीर होगा। वे चार पूर्वाङ्गसे हीन लाख पूर्वका दीक्षा-पर्याय पालन करेंगे और अजितनाथ तथा उनके निर्वाणके बीचमें तीस लाख कोटि सागरोपमका अन्तर होगा। विनीतापुरीमें राजा संवर और रानी सिद्धार्थाके पुत्र, अभिनन्दन नामसे चौथे तीर्थङ्कर होंगे। उनकी पचास लाख पूर्वकी आयु, साढ़े तीन सौ धनुषकी काया और सोनेकीसी शरीरकी कान्ति होगी। उनका दीक्षा-पर्याय आठ

* चौरासी लाख वर्षको पूर्वाङ्ग कहते हैं।

पूर्वाङ्गसे कम लाख पूर्वका होगा और दस लाख कोटि सागरोपमका अन्तर होगा। उसी नगरीमें मेघराजा और मङ्गलारानीके पुत्र सुमति नामसे पाँचवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका सुवर्ण जैसा वर्ण, चालीस लाख पूर्वका आयुष्य और तीनसौ धनुषोंकी काया होगी। व्रत-पर्याय द्वादश पूर्वसे कम लाख पूर्वका होगा और अन्तर नौ लाख कोटि सागरोपमका होगा। कौशाम्बी-नगरीमें धर राजा और सुसीमा देवीके पुत्र पद्मप्रभ नामके छठे तीर्थङ्कर होंगे। उनका लाल रंग, तीस लाख पूर्वका आयुष्य और ढाई सौ धनुषकी काया होगी। इनका व्रतपर्याय सोलह पूर्वाङ्गसे न्यून लाख पूर्वका और अन्तर नब्बे हजार कोटि सागरोपमका होगा। वाराणसी-नगरीमें राजा प्रतिष्ठ और रानी पृथ्वीके पुत्र सुपार्श्व नामके सातवें तीर्थङ्कर होंगे। उनकी सोनेकीसी कान्ति, बीस लाख पूर्वकी आयु और दो सौ धनुषकी काया होगी। उनका व्रत-पर्याय बीस पूर्वाङ्गसे कम लाख पूर्वका और अन्तर नौव हज़ार कोटि सागरोपमका होगा। चन्द्रानन नगरमें महासेन राजा और लक्ष्मणादेवीके पुत्र चन्द्रप्रभ नामसे आठवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका वर्ण श्वेत, आयु दश लाख पूर्वकी और काया डेढ़ सौ धनुषोंके बराबर होगी। उनका व्रतपर्याय चौबीस पूर्वाङ्गसे तीन लक्ष पूर्वका और नौ सौ कोटि सागरोपमका अन्तर होगा। काकन्दी नगरीमें सुग्रीव राजा और रामादेवीके पुत्र सुविधि नामके नवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका वर्ण श्वेत, आयु दो लाख पूर्वकी और काया एक सौ धनुषोंकी होगी। उनका व्रतपर्याय अट्ठाईस पूर्वाङ्ग

से हीन लक्ष पूर्व का और अन्तर नव्वे कोटि सागरोपमका होगा। भद्दिलपुरमें दृढ़रथ राजा और नन्दादेवीके पुत्र शीतल नामसे दसवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका सुवर्ण जैसा वर्ण, लक्ष पूर्वकी आयु, नव्वे धनुषकी काया, पच्चीस हज़ार पूर्वका व्रतपर्याय और नौ कोटि सागरोपमका अन्तर होगा। सिंहपुरमें विष्णु राजा और विष्णुदेवीके पुत्र श्रेयांस नामसे ग्यारहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनकी सुवर्ण जैसी कान्ति, अस्सी धनुषोंकी काया, चौरासी लाख वर्षकी आयु, इक्कीस लाख वर्षका व्रतपर्याय तथा छत्तीस हज़ार और छाछठ लाख वर्षसे तथा सौ सागरोपमसे न्यून एक करोड़ सागरोपमका अन्तर होगा। चम्पापुरीमें वसुपूज्य राजा और जयादेवीके पुत्र वासुपूज्य नामसे बारहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका वर्ण लाल, आयु बहत्तर लाख वर्षकी और काया सत्तर धनुषके समान, दीक्षा पर्याय चौवन लाख वर्षकी और अन्तर चौवन सागरोपमका होगा। काम्पिल्य नगरमें राजा कृतवर्मा और श्यामादेवीके पुत्र विमल नामके तेरहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनकी साठ लाख वर्षकी आयु, सुवर्णकी सी कान्ति और साठ धनुष की काया होगी। इनके व्रतमें पन्द्रह लाख वर्ष व्यतीत होंगे और वासुपूज्य तथा इनके मोक्षमें तीस सागरोपमका अन्तर होगा। अयोध्यामें सिंहसेन राजा और सुयशादेवीके पुत्र अनन्त नामके चौदहवें तीर्थङ्कर होंगे। इनकी सुवर्णकीसी कान्ति, तीस लाख वर्षकी आयु, और पचास धनुषोंकीसी ऊँची काया होगी। इनका व्रत-पर्याय साढ़े सात लाख वर्षका और विमलनाथ तथा

इनके मोक्षके बीचमें नौ सागरोपमका अन्तर होगा। रत्नपुरमें भानु राजा और सुव्रतादेवीके पुत्र धर्म नामके पन्द्रहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका सुवर्णकासा वर्ण, दश लाख वर्षकी आयु और पैंतालिस धनुषोंकीसी काया होगी। उनका व्रत-पर्याय ढाई लाख वर्षका और अनन्तनाथ तथा उनके मोक्षके बीच चार सागरोपम का अन्तर होगा। इसी तरह गजपुर नगरमें विश्वसेन राजा और अचिरादेवीके पुत्र शान्ति नामके सोलहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका सुवर्ण समान वर्ण, आठ लाख वर्षकी आयु, चालीस धनुषोंकी काया पच्चीस हज़ार वर्षका व्रतपर्याय और पौन पल्योपम न्यून तीन सागरोपमका अन्तर होगा। उसी गजपुरमें शूर राजा और श्रीदेवी रानीके पुत्र कुन्थु नामके सत्रहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका सुवर्णकासा वर्ण, पञ्चानवें हज़ार वर्षकी आयु, पैंतीस धनुषोंकी काया, तेईस हज़ार साढ़ेसात सौ वर्षोंका व्रतपर्याय और शान्तिनाथ तथा इनके मोक्षमें अर्द्ध पल्योपमका अन्तर होगा। उसी गजपुरमें सुदर्शन राजा और देवीरानीके अर नामक पुत्र अठारहवें तीर्थङ्कर होंगे। उनकी सुवर्ण जैसी कान्ति, चौरासी हज़ार वर्षकी आयु और तीस धनुषोंकी काया होगी। उनका व्रत-पर्याय इक्कीस हज़ार वर्षका तथा कुन्थुनाथ और उनके मोक्षकाल में एक हज़ार करोड़ वर्ष न्यून पल्योपमके चौथाई हिस्सेका अन्तर होगा। मिथिलापुरीमें कुम्भ राजा और प्रभावती देवीके पुत्र मल्लिनाथ नामके उन्नीसवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका नील वर्ण पचपन हज़ार वर्षकी आयु और पच्चीस धनुषकी काया होगी।

उनका व्रतपर्याय बीस हज़ार नौ सौ वर्ष तथा मोक्षमें एक हज़ार कोटि वर्षका अन्तर होगा। राजगृह नगरमें सुमित्र राजा और पद्मादेवीके पुत्र सुव्रत नामके बीसवें तीर्थंकर होंगे। उनका रङ्ग काला, आयु तीस हज़ार वर्षकी और काया बीस धनुषों की होगी। उनका व्रतपर्याय बीस हज़ार नौ सौ वर्ष तथा मोक्ष में चौवन लाख वर्षका अन्तर होगा। मिथिला-नगरीमें विजय राजा और वप्रादेवीके पुत्र नमि नामके इक्कीसवें तीर्थङ्कर सुवर्ण जैसे वर्णवाले, दस हज़ार वर्षकी आयुवाले और पन्द्रह धनुषके समान उन्नत शरीरवाले होंगे। इनका व्रतपर्याय ढाई हज़ार वर्षका तथा इनके और मुनि सुव्रतके मोक्षमें छः लाख वर्षका अन्तर होगा। शौर्यपुरमें समुद्रविजय राजा और शिवादेवीके पुत्र नेमि नामके बाईसवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका वर्ण श्याम, आयु हज़ार वर्षकी और काया दस धनुषकी होगी। इनका व्रतपर्याय सातसौ वर्षका और इनके तथा नमिनाथके मोक्षमें पाँच लाख वर्षका अन्तर होगा। वाराणसी (काशी) नगरीमें राजा अश्व-सेन और वामा रानीके पुत्र पार्श्वनाथ नामकेतेईसवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका नील वर्ण, सौ वर्षकी आयु, नौ हाथकी काया, सत्तर वर्षका व्रतपर्याय और मोक्षमें तिरासी हज़ार साढ़ेसात सौ वर्षका अन्तर होगा। क्षत्री-कुण्ड ग्राममें सिद्धार्थ राजा और त्रिशलादेवीके पुत्र महावीर नामके चौबीसवें तीर्थङ्कर होंगे। उनका वर्ण सुवर्णके समान, आयु बहत्तर वर्षकी, काया सात हाथ की, व्रतपर्याय बयालीस वर्ष का और पार्श्वनाथ तथा उनके बीच ढाई सौ वर्षका अन्तर होगा।

"सब चक्रवर्त्ती कश्यपगोत्रके और सुवर्णकी सी कान्तिवाले होंगे। उनमें आठ चक्री तो मोक्षको प्राप्त होंगे, दो स्वर्गको जायेंगे और दो नरकको। मेरे समयमें जैसे तुम हुए हो, वैसेही अयोध्या नगरीमें अजितनाथके समयमें सगर नामके दूसरे चक्रवर्त्ती होंगे। वे सुमित्र राजा और यशोमती रानीके पुत्र होंगे। उनकी साढ़ेचार सौ धनुषकी काया और बहत्तर लाख पूर्वकी आयु होगी। श्रावस्ती नगरीमें समुद्रविजय राजा और भद्रारानीके पुत्र माघवा नामके तीसरे चक्रवर्त्ती होंगे। उनकी साढ़े चालीस धनुषकी काया और पाँच लाख वर्षकी आयु होगी। हस्तिनापुरमें अश्वसेन राजा और सहदेवी रानीके पुत्र सनत्कुमार नामक चौथे चक्रवर्त्ती तीन लाख वर्षकी आयुवाले और साढ़े उन्तालीस धनुषकी कायावाले होंगे। धर्मनाथ और शान्तिनाथके बीचमें होनेवाले ये दोनों चक्रवर्त्ती तीसरे देवलोकमें जायेंगे। शान्ति, कुन्थु, और अर—ये तीन तो अर्हन्त ही चक्रवर्त्ती होंगे। इनके बाद हस्तिनापुरमें कृतवीर्य राजा और तारा रानीके पुत्र-सुभूम नामके आठवें चक्रवर्त्ती होंगे। उनकी साठ हज़ार वर्षकी आयु और अट्ठाईस धनुषकी काया होगी। वे अरनाथ और मल्लिनाथके समयके बीचमें होंगे और सातवें नरकमें जायेंगे। इनके बाद वाराणसीमें पद्मोत्तर राजा और ज्वाला रानीके पुत्र पद्म नामके नवें चक्रवर्त्ती होंगे। उनकी तीस हज़ार वर्षकी आयु और बीस धनुषकी काया होगी। काम्पिल्य-नगरमें राजा महाहरि और मेरा देवीके पुत्र हरिषेण नामक दसवें चक्रवर्त्ती दस

हज़ार वर्षकी आयुवाले और पन्द्रह धनुषकी कायावाले होंगे। ये दोनों चक्रवर्त्ती मुनि सुव्रत और नमिनाथ अर्हन्तके समयमें होंगे। तदनन्तर राजगृह नगरमें विजय राजा और वप्रा देवीके पुत्र जय नामके ग्यारहवें चक्रवर्त्ती होंगे। उनकी तीस हज़ार वर्षकी आयु और बारह धनुषकी काया होगी। वे नमिनाथ और नेमिनाथके समयके बीचमें होंगे। वे तीनों चक्रवर्त्ती मोक्षको प्राप्त होंगे। सबसे पीछे काम्पिल्य-नगरमें ब्रह्म राजा और चुलनी रानी के पुत्र ब्रह्मदत्त नामके बारहवें चक्रवर्त्ती नेमिनाथ और पार्श्व-नाथके समयके बीचमें होंगे। उनकी सात सौ वर्षोंकी आयु और सात धनुषोंकी काया होगी। वे रौद्र ध्यानमें तत्पर रहते हुए सातवीं नरक-भूमिमें जायेंगे।"

ऊपर लिखी बातें कह, प्रभुने, भरतके कुछ भी नहीं पूछने पर भी कहा,—"चक्रवर्त्तीसे आधे पराक्रमवाले और तीनखण्ड पृथ्वी के भोग करनेवाले नौ वासुदेव भी होंगे, जो काले रङ्गके होंगे। उनमें आठवाँ वासुदेव कश्यपगोत्री और बाकीके आठ गौतम-गोत्री होंगे। उनके नौ सौतेले भाई भी होंगे, जो बलदेव कह-लायेंगे और गोरे रङ्गके होंगे। उनमें पहले पोतनपुर नगरमें त्रिपृष्ठ नामक वासुदेव होंगे, जो प्रजापति राजा तथा मृगावती रानी के पुत्र और अस्सी धनुषोंकी कायावाले होंगे। श्रेयांस जिनेश्वर जिस समय पृथ्वीमें विहार करते होंगे, उसी समय वे चौरासी लाख वर्षकी आयु भोग कर, अन्तिम नरकमें जायेंगे। द्वारका नगरीमें ब्रह्म राजा और पद्मा देवीके पुत्र द्विपृष्ठ नामके दूसरे वासु-

देव होंगे। उनकी सत्तर धनुषोंकी काया और बहत्तर लाख वर्षकी आयु होगी। वे वासुपूज्य जिनेश्वरके विहारके समयमें होंगे और अन्तमें छठी नरक-भूमिको जायेंगे। द्वारकामें ही भद्रराजा और पृथ्वीदेवीके पुत्र स्वयंभु तीसरे वासुदेव होंगे, जो साठ धनुष की कायावाले, साठ लाख वर्षकी आयुवाले और त्रिमल प्रभुकी वन्दना करनेवाले होंगे। वे आयु पूरी होने पर छठी नरकभूमि में जायेंगे। उसी नगरीमें पुरुषोत्तम नामके चौथे वासुदेव सोम राजा और सीता देवीके पुत्र होंगे। उनकी पचास धनुषकी काया होगी। वे अनन्तनाथ प्रभुके समयमें तीस लाख वर्षकी आयु पूरी कर, अन्तमें छठी नरकभूमिमें जायेंगे। अश्वपुर नगरमें शिवराज और अमृता देवीके पुत्र पुरुषसिंह पाँचवे वासुदेव होंगे। वे चालीस धनुषकी काया और दस लाख वर्षकी आयुवाले होंगे। धर्मनाथ जिनेश्वरके समयमें आयु पूरी कर, वे छठी नरक-भूमिमें जायेंगे। चक्रपुरीमें महाशिर राजा और लक्ष्मीवती रानीके पुत्र पुरुष-पुण्डरीक नामक छठे वासुदेव होंगे। जो उनतीस धनुषकी काया और पैंसठ हज़ार वर्षकी आयुवाले होंगे। अरनाथ और मल्लीनाथके समयके बीच अपनी आयु पूरीकर वे छठी नरकभूमिमें जायेंगे। काशी नगरीमें राजा अग्निसिंह और रानी शेषवतीके पुत्र दत्त नामक सातवे' वासुदेव होंगे। वे छब्बीस धनुषकी काया और छप्पन हज़ार वर्षकी आयुवाले होंगे। वे भी अरनाथ तथा मल्लीनाथके समयके बीच आयु पूरी कर, पाँचवीं नरकभूमिमें जायेंगे। अयोध्या (राजगृह) में राजा दशरथ

सुमित्रा रानीके पुत्र लक्ष्मण (नारायण) नामके आठवें वासुदेव होंगे। उनकी सोलह धनुषकी काया और बारह हज़ार वर्षकी आयु होगी। मुनि सुव्रत और नमि तीर्थंकरके समयके बीचमें अपनी आयु पूरी कर चौथी नरकभूमिमें जायेंगे। मथुरा नगरीमें वसुदेव और देवकीके पुत्र कृष्ण नवें वासुदेव दस धनुषकी काया और हज़ार वर्षकी आयुवाले होंगे। नेमिनाथके समयमें मृत्युको प्राप्त होकर वे भी तीसरी नरक भूमिको जायेंगे।

"भद्रा नामकी मातासे उत्पन्न अचल नामक पहले बलदेव * पचासी लाख वर्षकी आयुवाले होंगे। सुभद्रा नामकी मातासे उत्पन्न विजय नामके दूसरे बलदेव होंगे। उनकी भी पचहत्तर लाख वर्षकी आयु होगी। सुप्रभा नामकी माताके पुत्र भद्र नामक तीसरे बलदेव पैंसठ लाख वर्षकी आयुवाले होंगे। सुदर्शना नामकी माताके लड़के सुप्रभ नामके चौथे बलदेव पचपन लाख वर्षकी आयु वाले होंगे। विजया नामकी माताके सुदर्शन नामक पाँचवे बलदेव सत्तर लाख वर्षकी आयुवाले होंगे। वैजयन्ती नामकी माताके पुत्र आनन्द नामके छठे बलदेव पचासी हज़ार वर्षकी आयुवाले होंगे। जयन्ती नामकी माताके पुत्र नन्दन नामके सातवे बलदेव पचास हज़ार वर्षकी आयुवाले होंगे। अपराजिता कौसल्या नामकी माताके पुत्र पद्म (रामचन्द्र) नामके आठवें बलदेव पन्द्रह हज़ार वर्षकी आयुवाले होंगे। रोहिणी नामक माताके पुत्र राम

* वासुदेव और बलदेवके पिता एक ही थे, इसलिये बलदेवकी काया वासुदेव की काया के ही समान जानना

(वलभद्र) नामके नवें बलदेव बारह सौ वर्षकी आयुवाले होंगे। इन नवोंमेंसे आठ बलदेव मोक्षको प्राप्त होंगे और नवें राम(बलभद्र) ब्रह्म नामक पाँचवें देवलोकमें जायेंगे और वहांसे आनेवाली उत्सर्पिणीमें इसी भरतक्षेत्रमें अवतार लेकर कृष्ण नामक प्रभुके तीर्थमें सिद्ध हो जायेंगे। अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु, निष्कुम्भ, बलि, प्रहलाद, रावण और मगधेश्वर (जरासन्ध) ये नौ प्रति वासुदेव* होंगे। वे चक्र चलानेवाले, चक्रधारी होंगे, अतएव वासुदेव उनको उन्हींके चक्रसे मार गिरायेंगे।"

ये सब बातें सुन और भव्य जीवोंसे भरी हुई उस सभाको देख, हर्षित होते हुए भरतपतिने प्रभुसे पूछा,— "हे जगत्पति! मानों तीनों लोक यहीं आकर इकट्ठे हो गये हैं, ऐसी इस सभामें जहाँ तिर्यञ्च, नर और देव तीनों आये हुए हैं, क्या कोई ऐसा पुरुष है, जो आपकी ही भाँति तीर्थको प्रवृत्त कर, इस भरतक्षेत्रको पवित्र करेगा?"

प्रभुने कहा,— "यह तुम्हारा पुत्र मरिचि, जो पहला परिव्राजक (त्रिदण्डी) हुआ है, वह आर्त्त और रौद्र ध्यानसे रहित हो समकितसे शोभित हो, चतुर्विध धर्मध्यानका एकान्तमें ध्यान करता हुआ स्थित है। उसका जीव अभी कीचड़ लगे हुए रेशमी वस्त्रकी तरह और मुँहको भाप लगनेसे दर्पणकी तरह मलिन हो रहा है; पर अग्निसे शुद्ध किये हुए वस्त्र तथा अच्छी आँचवाले सुवर्णकी तरह शुक्ल ध्यान-रूपी अग्निके संयोगसे वह धीरे-

* ये प्रतिवासुदेव बादमें आनेवाले होंगे।

धीरे शुद्धिको प्राप्त हो जायेगा। इसके बाद वह पहले तो इस भरतक्षेत्रके पोतनपुर नामक नगरमें त्रिपृष्ठ नामका प्रथम वासुदेव होगा। पीछे पश्चिम महाविदेहमें धनंजय और धारिणी नामक दम्पतीका पुत्र प्रियमित्र नामक चक्रवर्त्ती होगा। तदनन्तर बहुत दिनों तक संसारमें भ्रमण करनेके बाद इसी भरतक्षेत्रमें महावीर नामका चौवीसवाँ तीर्थङ्कर होगा।"

यह सुन, स्वामीकी आज्ञा ले, भरतराजा भगवानकी ही भाँति मरिचिकी वन्दना करने गये। वहाँ जाकर उसकी वन्दना करते हुए भरतने उससे कहा,—"तुम त्रिपृष्ठ नामक प्रथम वासुदेव होगे अथवा महाविदेहक्षेत्रमें प्रियमित्र नामके चक्रवर्त्ती होंगे, यह जानकर मैं तुम्हारे वासुदेव-पद या चक्रवर्त्तित्वको सिर नहीं झुकाता और न तुम्हारे परिव्राजकपनेकी ही वन्दना करता हूँ; बल्कि तुम चौबीसवें तीर्थङ्कर होगे, इसीसे मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं।" यह कह, हाथ जोड़, प्रदक्षिणा कर, सिर झुकाकर भरतेश्वरने मरीचिकी वन्दना की। इसके बाद पुनः जगत्पतिकी वन्दना कर, सर्पराज जैसे भोगवती-पुरीमें चला जाता है, वैसेही भरतराजाभी अयोध्या नगरीमें चले आये।

भरतेश्वरके चले जाने बाद, उनकी बातें सुनकर प्रसन्न बने हुए मरिचिने तीन बार तालियाँ बजायीं और अधिक हर्षित हो, इस प्रकार कहना आरम्भ किया,—"अहा! मैं सब वासुदेवोंमें पहला हूँगा, विदेहमें चक्रवर्त्ती हूंगा, सबसे पिछला तीर्थंकर हूँगा,—अब बाकी क्या रहा? सब अर्हन्तोंमें मेरे दादाही आदि-तीर्थंकर

हैं, सब चक्रवर्त्तियोंमें मेरे पिता ही पहले चक्रवर्त्ती हुए; सब वासुदेवोंमें मैं ही पहला वासुदेव हूँगा। अहा! मेरा कुल भी कैसा श्रेष्ठ है। जैसे हाथियोंमें ऐरावत श्रेष्ठ है, वैसेही तीनों लोकके सब कुलोंसे मेरा कुल श्रेष्ठ है। जैसे सब ग्रहोंमें सूर्य बड़ा है, सब ताराओंसे चन्द्रमा बड़ा है, वैसेही सब कुलोंसे मेरा कुल गौरवमें बढ़ा हुआ है।" जैसे मकड़ी आपही अपने जालमें फँस जाती है, वैसेही मरिचिने भी इस प्रकार कुलाभिमान करके नीच गोत्र बाँधा।

पुण्डरीक आदि गणधरोंसे घिरे हुए ऋषभस्वामी विहारके बहाने पृथ्वीको पवित्र करते हुए वहाँसे चल पड़े। कोशलदेशके लोगों पर पुत्रकी तरह कृपा करके उन्हें धर्ममें कुशल बनाते हुए, बड़े पुराने मुलाकातियोंकी तरह मगध देशवालोंको तपमें प्रवीण करते हुए कमलकी कलियोंको जैसे सूर्य खिला देता है, वैसेही काशीके लोगोंको प्रबोध देते हुए, समुद्रको आनन्द देनेवाले चन्द्रमाकी भाँति दशार्ण देशको आनन्दित करते हुए, मूर्च्छा पाये हुएको होशमें लानेके समान चेदी देशको सचेत (ज्ञानवान्) बनाते हुए बड़े-बड़े बैलोंकी तरह मालव देशवालोंसे धर्म-धुराको वहन कराते हुए, देवताओंकी तरह गुर्जर-देशको पाप-रहित शुद्ध आशय वाला बनाते हुए और वैद्यकी तरह सौराष्ट्र देशवासियोंको पटु (सावधान) बनाते हुए महात्मा ऋषभदेवजी शत्रुञ्जय पर्वत पर आ पहुँचे।

अपने अनेक रौप्यमय शिखरोंके कारण वह पर्वत ऐसा

मालूम पड़ता था, मानों विदेशमें लाकर खड़ा किया हुआ वैताढ्य पर्वत हो; अपने सुवर्णमय शिखरोंके कारण वह मेरु पर्वतसा दिखायी दे रहा था ; रत्नोंकी खानोंसे दूसरा रत्नाचल ही जान पड़ता था और औषधियोंके समूहके कारण दूसरे स्थानमें आया हुआ हिमाद्रि-पर्वत ही प्रतीत होता था। नीचेको झुक आये हुए बादलोंके कारण वह वस्त्रोंसे शरीर ढके हुएके समान मालूम पड़ता था और उसपरसे जारी होनेवाले झरनेके सोते उसके कन्धे पर पड़े हुए दुपट्टोंकी तरह दिखाई देते थे। दिनके समय निकट आये हुए सूर्यसे वह मुकुट-मण्डित मालूम पड़ता था और रातको पास पहुँचे हुए चन्द्रमाके कारण वह माथेमें चन्दनका तिलक लगाये हुए मालूम होता था। आकाश तक पहुँचनेवाले उसके शिखर उसके अनेकानेक मस्तकसे जान पड़ते थे और ताड़के वृक्षोंसे वह अनेक भुजाओंवाला मालूम होता था। वहाँ नारियलोंके वनमें उनके पक जानेसे पीले पड़े हुए फलोंको अपने बच्चे समझकर बन्दरोंकी टोली दौड़-धूप करती दिखाई देती थी और आमके फलोंको तोड़नेमें लगी हुई सौराष्ट्र-देशकी स्त्रियोंके मधुर गानको हरिण कान खड़ा करके सुना करते थे। उसकी ऊपरी भूमि शुलियोंके मिषसे मानों श्वेत केश हो गये हों, ऐसे केतकीके जीर्ण वृक्षोंसे भरी हुई रहती थी। हरएक स्थानमें चन्दन वृक्षकी रसकी तरह पाण्डुवर्णके बने हुए सिन्धुवारके वृक्षोंसे वह पर्वत ऐसा मालूम पड़ता था, मानों उसने अपने समस्त अंगोंमें माङ्गलिक तिलक कर रखे हों। वहाँ शाखामा

पर रहने वाले बन्दरोंकी पूँछोंसे वेष्टित इमलीके वृक्ष पीपल और बड़के वृक्षोंका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। अपनी अद्भुत विशालता -की सम्पत्तिसे मानों हर्षित हुए हों, ऐसे निरन्तर फलनेवाले पनस वृक्षोंसे वह पर्वत शोभित हो रहा था। अमावस्याकी रात्रिके अन्धकारकी भाँति श्लेष्मान्तक वृक्षसे वह पर्वत ऐसा मालूम होता था, मानों वहाँ अञ्जनाचलकी चोटियाँ ही चली आयी हों। तोतेकी चोंचकी तरह लाल फूलोंवाले केसुड़ीके वृक्षोंसे वह पर्वत लाल तिलकोंसे सुशोभित हाथीकी तरह शोभायमान मालूम होता था। कहीं दारूकी, कहीं खजूरकी और कहीं ताड़ की ताड़ी पीनेमें लगी हुई भीलोंकी स्त्रियाँ उस पर्वतके ऊपर पान-गोष्ठी जमाये रहती थीं। सूर्यके अचूक किरणरूपी बाणोंसे अ-भेद्य ताम्बूल-लताके मण्डपोंसे वह पर्वत कवचावृत्तसा मालूम होता था। वहाँ हरी-हरी दूबोंको खाकर हर्षित हुए मृगोंका समूह बड़े-बड़े वृक्षोंके नीचे बैठकर जुगाली करता रहता था। मानों अच्छी जातिके वैडूर्य-मणि हों, ऐसे आम्र-फलोंके स्वादमें जिनकी चोंचें मग्न हो रही हैं, ऐसे शुक पक्षियोंसे वह पर्वत बड़ा मनोहर दिखाई देता था। चमेली, अशोक, कदम्ब, केतकी और मौल-सिरीके वृक्षोंका पराग उड़ाकर ले आनेवाले पवनने उस पर्वत-की शिलाओंको रजोमय बना दिया था और पथिकोंके फोड़े हुए नारियलोंके जलसे उसके ऊपरकी भूमि पंकिल हो गयी थी। मानों भद्रशाल आदि वनमेंसे ही कोई वन यहाँ लाया गया हो, ऐसे अनेक बड़े-बड़े वृक्षोंसे शोभित वनके कारण वह पर्वत बड़ा सुन्दर

लगता था। मूलमें पचास योजन, शिखरमें दस योजन और ऊँचाईमें आठ योजन ऐसे उस शत्रुञ्जय-पर्वत पर भगवान् ऋषभदेवजी आरूढ़ हुए।

वहाँ देवताओं द्वारा तत्काल बनाये हुए समवसरणमें सर्वहितकारी प्रभु बैठे हुए देशना देने लगे। गम्भीर गिरासे देशना देते हुए प्रभुके पीछे वह पर्वत भी मानों गुफाओंसे उत्पन्न होते हुए प्रतिशब्दोंके बहाने बोल रहा हो, ऐसा मालूम पड़ता था। चौमासेके अन्तमें जैसे मेघ वृष्टिसे विराम पा जाते हैं, वैसेही प्रथम पौरुषी होने पर प्रभुने भी देशनासे विश्राम पाया और वहाँसे उठकर मध्यम.गढ़के मण्डलमें बने हुए देवच्छन्दके ऊपर जा बैठे। इसके बाद जैसे माण्डलिक राजाओंके पास युवराज बैठते हों, वैसेही सब गणधरोंमें प्रधान श्रीपुण्डरीक गणधर स्वामीके मूल सिंहासनके नीचेवाले पाद-पीठपर बैठ रहे और पूर्ववत् सारी सभा बैठी। तब वे भी भगवानकी ही भाँति धर्म-देशना देने लगे। सवेरेके समय पवन जिस प्रकार ओसकी बूँदोंके रूपमें अमृतकी वर्षा करता है, वैसेही दूसरी पौरुषी पूरी होने तक वे महात्मा गणधर देशना देते रहे। प्राणियोंके उपकारके लिये इसी प्रकार देशना देते हुए प्रभु अष्टापदकी तरह यहाँ भी कुछ काल तक ठहरे रहे। एक दिन दूसरी जगह विहार करनेकी इच्छासे जगद्गुरुने गणधरोंमें पुण्डरीकके समान पुण्डरीक गणधरको आज्ञा दी,—"हे महामुनि! मैं यहाँसे अन्यत्र विहार करूँगा और तुम कोटि मुनियोंके साथ यहीं रहो।

इस क्षेत्रके प्रभावसे तुम्हें परिवार-सहित थोड़े ही समयमें केवल-ज्ञान उत्पन्न हो जायगा और शैलेशो-ध्यान करते हुए तुम्हें परिवार सहित इसी पर्वत पर मोक्ष प्राप्त होगा।"

प्रभुकी यह आज्ञा अङ्गीकार कर, प्रणाम करनेके अनन्तर पुण्डरीक गणधर कोटि मुनियोंके साथ वहीं रहे। जैसे उद्वेलित समुद्र किनारोंके खण्डोंमें रत्न-समूहको फेंक कर चला जाता है, वैसेही उन सब लोगोंको वहीं छोड़कर महात्मा प्रभुने परिवार सहित अन्यत्र विहार किया। उदयाचल पर्वत पर नक्षत्रोंके साथ रहनेवाले चन्द्रमाकी तरह अन्य मुनियोंके साथ पुण्डरीक गणधर उस पर्वत पर रहने लगे। इसके बाद परम संवेगवाले वे भी प्रभुकी तरह मधुरवाणीसे अन्यान्य श्रमणोंके प्रति इस प्रकार कहने लगे,—

"हे मुनियों! जयकी इच्छा रखनेवालेको जैसे सीमा-प्रान्तकी भूमिको सुरक्षित बनानेवाला किला सिद्धि-दायक है, वैसेही मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको यह पर्वत क्षेत्रके ही प्रभावसे सिद्धि देनेवाला है। तो भी अब हमलोगोंको मुक्तिके दूसरे साधनके समान संलेखना करनी चाहिये। यह संलेखना दो तरहसे होती है,— द्रव्यसे और भावसे। साधुओंके सब प्रकारके उन्माद और महारोगके निदानका शोषण करना ही द्रव्य-संलेखना कहलाती है और राग, द्वेष, मोह और सब कषायरूपी स्वाभाविक शत्रुओं-का विच्छेद करना ही भाव-संलेखना कही जाती है।" इस प्रकार कहकर पुण्डरीक गणधरने कोटि श्रमणोंके साथ प्रथमतः सब

प्रकारके सूक्ष्म और बादर अतिचारोंकी आलोचना की और पुनः अति शुद्धिके निमित्त महाव्रतका आरोपण किया; क्योंकि वस्त्रको दो बार बार धोनेसे जैसे विशेष निर्मलता आतीहै, वैसेही अतिचारसे विशेषरूपसे शुद्ध होना भी निर्मलताका कारण होता है। इसके बाद "सब जीव मुझे क्षमा करें, मैं सबका अपराध क्षमा करता हूं। मेरी सब प्राणियोंके साथ मैत्री है, किसीके साथ मेरा वैर नहीं है।" यही कहकर उन्होंने आगार-रहित और दुष्कर भव चरित्र अनशनव्रत उन सब श्रमणोंके साथ ग्रहण किया। क्षपक-श्रेणीमें आरूढ़ हुए उन पराक्रमी पुण्डरीकके सभी घाती कर्म पुरानी रस्सीकी तरह चारों तरफसे क्षीण हो गये। अन्यान्य साधुओंके भी घाती कर्म तत्काल क्षयको प्राप्त हो गये। क्योंकि तप सबके लिये समान होता है। एक मासकी संलेखनाके अन्तमें चैत्र मासकी पूर्णिमाके दिन सबसे पहले पुण्डरीक गणधर को केवल-ज्ञान हुआ। इसके बाद अन्य सब साधुओंको भी केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। शुक्ल-ध्यानके चौथे चरण पर स्थित होकर वे अयोगी शेष अघाती कर्मोंका क्षय कर मोक्ष-पदको प्राप्त हुए। उस समय स्वर्गसे आकर मरुदेवीके समान भक्तिके साथ उनके मोक्ष-गमनका उत्सव मनाया। जैसे भगवान् ऋषभस्वामी पहले तीर्थङ्कर कहलाये, वैसेही वह पर्वत भी उसी दिनसे प्रथम तीर्थ हो गया। जहाँ एक साधुको सिद्धि प्राप्त हो, वही जब पवित्र तीर्थ कहलाने लगता है, तब वहाँ अनगिनत महर्षि सिद्ध हुए हों, उस स्थानकी पवित्रताकी उत्कृष्टताके सम्बन्धमें और क्या कहा जाये?

उस शत्रुञ्जय-पर्वत पर भरत राजाने मेरु-पर्वतकी चूलिकाकी रावबरीका दावा करनेवाला एक रत्न-शिलामय चैत्य बनवाया और जैसे अन्तःकरणमें चेतना विराजती है, वैसेही उसके मध्यमें पुण्डरीकजीके साथ-ही-साथ भगवान् ऋषभस्वामीकी प्रतिमा स्थापित करवायी।

भगवान् ऋषभदेवजीकी भिन्न-भिन्न देशोंमें विहार कर, अन्धे को आँख देनेकी तरह भव्य प्राणियोंको बोधिबीज (समकित) का दान कर अनुगृहीत कर रहे थे। केवल-ज्ञान प्राप्त होनेके बादसे प्रभुके परिवारमें चौरासी हज़ार साधु, तीन लाख साध्वियाँ, तीन लाख पचास हजार श्रावक, पाँच लाख चौवन हज़ार श्राविकाएँ चार हज़ार सात सौ पचास चौदह पूर्वी, नौ हज़ार अवधि-ज्ञानी, बीस हज़ार केवलज्ञानी और छः सौ वैक्रिय लब्धिवाले, बारह हज़ार छः सौ मनःपर्यव ज्ञानी, इतने ही वादी और बाईस हज़ार अनुत्तर विमानवासी महात्मा हुए। उन्होंने व्यवहारमें जैसे प्रजाका स्थापन किया था, वैसेही आदि-तीर्थङ्कर होनेपर उन्होंने धर्म-मार्गमें चतुर्विध संघका स्थापन किया। दीक्षाके समयसे लेकर लक्ष पूर्व बीत जाने पर उन्होंने जाना, कि अब मेरा मोक्ष-काल समीप आ गया है, तब महात्मा प्रभु झटपट अष्टापद पर्वत पर आ पधारे। पास पहुँचने पर प्रभु मोक्षरूपी महलकी सीढ़ियोंके समान उस पर्वत पर अपने परिवारके साथ चढ़ने लगे। तब प्रभुने वहाँ दस हजार मुनियोंके साथ चतुर्दश तप (छः उपवास) करके पादपोपगमन अनशन किया।

पर्वतके रक्षकोंने विश्वपतिके इस अवस्थामें रहनेका हाल तत्काल ही महाराज भरतसे जाकर कह सुनाया। प्रभुने चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान कर दिया हैं, यह सुनकर भरतको ऐसा दुःख हुआ, मानों उनके कलेजेमें तीर चुभ गया हो। साथ ही जैसे वृक्षसे जलबिन्दु टपकते है, वैसेही शोकाग्निसे पीड़ित होनेके कारण उनकी आँखों से भी आँसू टपकने लगे। तदनन्तर दुर्वार दुःखसे पीड़ित होकर वे भी अन्तःपुर परिवारके साथ पाँव प्यादे ही अष्टापदकी ओर चल पड़े। उन्होंने रास्तेके कठोर कङ्कड़ोंकी कुछ परवा नहीं की, क्योंकि हर्ष या शोकमे किसी तरहकी शारीरिक वेदना मालूम नहीं होती। कङ्कड़ गड़ जानेसे उनके पैरोंसे रुधिरकी धारा निकलने लगी, जिससे महावरके चिह्नकी तरह उनके पैरोंकी सर्वत्र निशानी पड़ती गयी। जिसमें पर्वत पर आरोहण करनेमें छिन भरकी भी देर न हो, इसीलिये वे अपने सामने आ पड़नेवाले लोगोंका भी कुछ ख्याल नहीं करते थे। उनके सिर पर छत्र था, तो भी वे धूपमे ही चल रहे थे, क्योंकि जीकी जलन तो अमृतकी वर्षासे भी ठण्ढी नहीं होती। शोकग्रस्त चक्रवर्त्ती हाथका सहारा देनेवाले सेवकोंको भी रास्तेमें आड़े आनेवाली वृक्ष-शाखाकी भाँति दूर कर देते थे। सरिता या नदके मध्यमें चलती हुई नाव जैसे तीरके वृक्षोंको पीछे छोड़ जाती है, वैसेही वे भी अपनी तेज चालके कारण आगे—आगे चलनेवाले छड़ीबरदारोंको पीछे छोड़ देते थे। चित्तके वेगकी तरह तेज़ीके साथ चलनेमें उत्सुक राजा भरत पग-पग पर ठोकरें

खानेवाली चमर डुलाने वालियोंकी राह भी नहीं देखते थे। बड़ी तेज़ीके साथ चलनेके कारण उछल-उछल कर छातीसे टकराने-वाला मोतियोंका हार टूट गया, सो भी उन्हें नहीं मालूम हुआ। उनका मन प्रभुके ध्यानमें लगे होनेके कारण वे बार-बार प्रभुका समाचार पूछनेके लिये छड़ीबरदारोंके द्वारा पर्वतके रखवालोंको अपने पास बुलवाते थे। ध्यान-स्थित योगीके समान राजाको और कुछ भी नहीं दीख पड़ता था। वे किसीकी बात भी नहीं सुनते थे—केवल प्रभुकाही ध्यान करते हुए चले जा रहे थे। मानों अपने वेगसे रास्तेको कम कर दिया हो, इस प्रकार हवासे बातें करते हुए तेज़ीके साथ चलकर वे अष्टापदके पास आ पहुँचे। साधारण मनुष्योंकी तरह-पाँव प्यादे चल कर आनेपर भी परि-श्रमकी कुछ भी परवा नहीं करते हुए वे चक्रवर्त्ती अष्टापद पर चढ़े। वहाँ पहुँचकर शोक और हर्षसे व्याकुल हुए राजाने जग-त्पतिको पर्येङ्कासन पर बैठा देखा। प्रभुकी प्रदक्षिणा कर, वन्दना करनेके अनन्तर चक्रवर्त्ती देहकी छायाके समान उनके पास बैठकर उनकी उपासना करने लगे।

"प्रभुका ऐसा प्रभाव वर्त्तते हुए भी इन्द्रगण अपने स्थान पर कैसे बैठे हुए हैं?" मानों यही बात सोच कर उस समय इन्द्रोंके आसन डोल गये। अवधिज्ञानसे आसन डोल जानेके कारणको जान-कर इन्द्रगण उसी समय प्रभुके पास आ पहुँचे। जगत्पतिकी प्रदक्षिणा कर, वे विषादकी मूर्त्ति बने, चित्र-लिखेसे चुपचाप भगवानके पास बैठ रहे।

इस अवसर्पिणीके तीसरे आरेमें जब निन्यानवे पक्ष बाक़ी रह गये थे, उसी समय माघ मासकी कृष्ण-त्रयोदशीके दिन, पूर्वाह्निमें ही, जब चन्द्रमाका योग अभिजित-नक्षत्रमें आया हुआ था, तभी पर्यङ्कासन पर बैठे हुए उन महात्मा प्रभुने बादर-काय-योग में रहकर बादर मनोयोग और बादर वचनयोगका रोध कर लिया। इसके बाद सूक्ष्म काय-योगका आश्रय ग्रहण कर, बादर काय-योग, सूक्ष्म मनोयोग और सूक्ष्म वचनयोगका रोध कर डाला। अन्तमें सूक्ष्म काययोगको भी लुप्त करके सूक्ष्मक्रिय नामके शुक्लध्यानके तीसरे चरणके अन्तमें प्राप्त हुए। इसके बाद उच्छिन्न-क्रिय नामक शुक्लध्यानके चौथे चरणका आश्रय लिया, जिसका काल परिमाण पाँच ह्रस्वाक्षरके उच्चारणमे जितना समय लगता है, उतना ही है। इसके बाद केवलज्ञानी, केवलदर्शनी सब दुःखोंसे परे, अष्टकर्मोका क्षय कर सब अर्थोके सिद्ध करनेवाले, अनन्तवीर्य,अनन्तसुख और अनन्त ऋद्धिसे युक्त प्रभु, बन्धके अभावसे एरण्ड-फलके बीजके समान ऊर्द्ध-गति पाकर, स्वभावसेही सरल मार्गसे लोकाग्रको प्राप्त हुए। दस हज़ार श्रमणोंने भी, अनशन-व्रत ग्रहण कर, क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ हो, केवलज्ञान लाभकर, मन-वचन और कायाके योगको सब प्रकारसे रुद्ध कर, स्वामीकी ही भाँति तत्काल परमपद लाभ किया।

प्रभुके निर्वाण-कल्याणकके समय, सुखका नाम भी नहीं जाननेवाले नारकीयोंकी दुःखाग्नि भी क्षणभरके लिये शान्त हो गयी। उस समय शोकसे विह्वल होकर चक्रवर्त्ती वज्रसे ढाये हुए पर्वत-

की तरह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भगवान्‌के विरहका महान् दुःख सिरपर आ पड़ा था, तोभी दुःखका भार कम करने में सहायक होनेवाले रोदनको मानों लोग भूल ही गये थे। इसी लिये चक्रवर्त्तीको यह बतलाने और इस तरह हृदयका भार हलका करनेकी सलाह देनेके लिये ही मानों इन्द्रने चक्रवर्त्तीके पास बैठे-बैठे ज़ोर-ज़ोरसे रोना शुरू किया। इन्द्रके बाद और सब देवता भी रोने लगे। क्योंकि एकसाँ दुःख अनुभव करनेवालोंकी चेष्टा भी एकसी होती है। उन लोगोंका रोना सुन, होशमें आकर चक्रवर्त्ती भी ऐसे ऊँचे स्वरसे रोने लगे, कि ब्रह्माण्ड फट पड़ने लगा। मोटी धारकी तेज़ीसे जैसे नदीका बाँध टूट जाता है, वैसेही दिल खोलकर रो पड़नेसे महाराजको शोक-ग्रन्थि भी टूट गयी। उस समय देवों, असुरों और मनुष्योंके रोदन---काण्डसे तीनों लोकमें करुण-रसका एकच्छत्र राज्यसा हो गया। उस दिनसे ही जगत् में प्राणियोंके शोकसे उत्पन्न कठिन शल्यको निकाल बाहर करने-वाले रोदनका प्रचार हुआ। महाराज भरत, स्वाभाविक धैर्यको छोड़, दुःखसे पीड़ित होकर, इस प्रकार पशु-पक्षियोंको भी रुला देनेवाला विलाप करने लगे,—

"हे पिता! हे जगद्बन्धु! हे कृपारसके समुद्र! मुझ अज्ञानीको इस संसार-रूपी अरण्यमें अकेले क्यों छोड़े जा रहे हो? जैसे बिना दीपकके अन्धकारमें नहीं रहा जाता, वैसेही बिना आपके मैं इस संसारमें कैसे रह सकूँगा? हे परमेश्वर! छद्मवेशी प्राणीकी तरह तुमने आज मौन क्यों स्वीकार कर लिया है? मौन त्यागकर

देशना क्यों नहीं देते ? देशना देकर मनुष्योंपर दया क्यों नहीं करते ? हे भगवन् ! तुम तो लोकाग्रको चले जा रहे हो, इसीलिये नहीं बोलते ; पर मुझे दुखी देखकर भी मेरे ये भाई मुझसे क्यों नहीं बोलते ? हाँ, अब मैंने जाना। वे भी तो स्वामीकेही अनुगामी हैं। जब स्वामीही नहीं बोलते, तब ये कैसे बोलें ? अहो, अपने कुलमें मेरे सिवा और कोई तुम्हारा अनुगामी नहीं हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। तीनों जगत्‌की रक्षा करनेवाले तुम, बाहुबलि आदि मेरे छोटे भाई, ब्राह्मी और सुन्दरी बहनें, पुण्डरीकादिक मेरे पुत्र, श्रेयांस आदि पौत्र—ये सब लोग कर्म-रूपी शत्रुकी हत्याकर, लोकाग्रको चले गये ; केवल मैंही आजतक जीवनको प्रिय मानता हुआ जी रहा हूं !"

इस प्रकार शोकसे निर्वेदको प्राप्त हुए चक्रवर्त्तीको मानों मरनेको तैयार देख, इन्द्रने उन्हें इस प्रकार समझाना शुरू किया,— " हे महाप्राण भरत ! हमारे ये स्वामी स्वयं भी संसार-रूपी समुद्र से पार उतर गये और औरोंको भी उतार दिया। महानदीके किनारेके समान इनके प्रवर्त्तित किये हुए शासनसे सांसारिक प्राणी संसार-समुद्रके पार पहुँच जायेंगे। प्रभु आप तो कृतकृत्य हुएही, साथही वे औरोंको भी कृतार्थ करनेके लिये लक्ष-पूर्व पर्यन्त दीक्षावस्थामें रहे। हे राजा ! सब लोगोंपर अनुग्रह करके मोक्ष स्थानको गये हुए जगत्पतिके लिये तुम क्यों शोक करते हो ? जो मृत्यु पाकर महादुःखके भण्डारके समान चौरासी लाख योनियों में बहुत कालतक घूमते रहते हैं, उनके लिये शोक करना ठीक

है; परन्तु मृत्यु पाकर मोक्षस्थानको प्राप्त होनेवालेके लिये शोक करना उचित नहीं। इसलिये हे राजा! साधारण मनुष्योंकी तरह प्रभुके लिये शोक करते हुए क्या लज्जा नहीं आती? शोक करनेवाले तुमको और शोचनीय प्रभुको देखते हुए यह शोक उचित नहीं है। जो एक बार प्रभुकी धर्म-देशना सुन चुका है, उसे भी हर्ष या शोक नहीं व्यापता, फिर तुम तो न जाने कितनी बार देशना सुन चुके हो, तब तुम क्यों हर्ष-शोकसे विचलित होते हो? जैसे समुद्रका सूखना, पर्वतका हिलना, पृथ्वीका उलटना, वज्रका कुण्ठित होना, अमृतका नीरस होना और चन्द्रमामें गरमी होना असम्भव है, वैसेही तुम्हारा यह रोना भी असम्भवसा ही मालूम पड़ता है। हे धराधिपति! धैर्य धरो और अपनी आत्माको पहचानो; क्योंकि तुम तीनों लोकके स्वामी, परम धीर भगवान्‌के पुत्र हो।" इस प्रकार घरके बड़े-बूढ़ेकी तरह इन्द्रके समझाने-बुझानेसे भरतराजाने जल जैसी शीतलता धारण की और अपने स्वाभाविक धैर्यको प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् इन्द्रने आभियोगिक देवताओंको, प्रभुके अंग-संस्कार के लिये सामग्री लानेकी आज्ञा दी। वे झटपट नन्दन-वनसे गोशीर्ष चन्दनकी लकड़ियाँ उठा लाये। इन्द्रके आज्ञानुसार देवताओंने पूर्व-दिशामें प्रभुके शरीर-संस्कारके लिये गोशीर्ष-चन्दन-काष्ठ की एक गोलाकार चिता रचायी। इक्ष्वाकु-कुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले महर्षियोंके लिये दक्षिणदिशामें एक दूसरी त्रिकोणाकार चिता रची गयी। साथही अन्यान्य साधुओंके लिये पश्चिम दिशामें

इन्द्रने प्रभुके चरणोंमें सिर झुका, स्वामीके शरीरको सिरपर उठाकर शिविकामें बैठाया।

[पृष्ठ ५३३]

Press Calcutta

एक तीसरी चौकोर चिता प्रस्तुत की गयी। फिर मानों पुष्करावर्त्त मेघ हों, ऐसे उन देवताओंसे इन्द्रने उसी समय क्षीर-समुद्रका जल मँगवाया। उसी जलसे भगवान्‌के शरीरको नहलाकर उसपर गोशीर्ष-चन्दनका रस लेपन किया गया। तदनन्तर हंसकेसे उज्ज्वल देवदुर्लभ वस्त्रोंसे परमेश्वरके शरीरको ढक कर इन्द्रने उसे दिव्य माणिक्यके आभूषणोंसे ऊपरसे नीचे तक विभूषित किया। अन्यान्य देवताओंने भी इन्द्रकी ही भाँति अन्य मुनियोंके शरीरोंकी स्नानादिक क्रियाएँ भक्तिके साथ सम्पन्न कीं। तदनन्तर मानों देवतागण अपने-अपने साथ लेते आये हों, ऐसे तीनों लोकके चुने हुए रत्नोंसे सजी हुई, सहस्र पुरुषोंके वहन करने योग्य तीन शिविकाएँ तैयार हुईं। इन्द्रने प्रभुके चरणोंमे सिर झुका, स्वामीके शरीरको सिरपर उठाकर शिविकामें बैठाया। अन्यान्य देवताओंने मोक्ष-मार्गके पथिकोंके समान इक्ष्वाकु-वंशके मुनियोंके शरीर सिरपर ढो-ढोकर दूसरी शिविकामे ला रखे और तीसरी शिविकामें शेष साधुओंके शरीर रखे गये। प्रभुका शरीर जिस शिविकापर था, उसे इन्द्रने स्वयं उठाया और अन्य मुनियोंकी शिविकाएँ अन्याय देवताओंने उठायीं। उस समय एक ओर अप्सराएँ ताल दे-देकर नाच रही थीं और दूसरी ओर मधुर स्वरसे गीत गा रही थीं। शिविकाके आगे-आगे देवता धूपदान लिये हुए चल रहे थे। धूपदानसे निकलते हुए धुएँको देखकर ऐसा मालूम होता था, मानों वे भी रो रहे हों। कुछ देवता उस शिविका पर फूल फेंक रहे थे और कोई उन्हें शेषा (निर्माल्यप्रसाद) समझ कर चुन लेते थे।

कोई आगे-आगे देव-दूष्य वस्त्रोंका तोरण बनाये हुए थे तो कोई यक्षकर्दमसे छिड़काव करते चलते थे। कोई गोफणसे * फेंके हुए पत्थरकी तरह शिविकाके आगे लोट रहे थे और कोई भंग पिये हुए मस्तानेकी तरह पीछेकी तरफ़ दौड़ रहे थे। कोई तो "हे नाथ! मुझे शिक्षा दो!" ऐसी प्रार्थना कर रहा था और कोई "अब हमारे धर्म-संशयोंका छेदन कौन करेगा?" ऐसा कह रहा था। कोई यही कह-कहकर पछता रहा था, कि अब मैं अन्धेकी तरह होकर कहाँ जाऊँ? कोई बार-बार धरतीसे यही वर माँगता हुआ मालूम पड़ता था, कि वह फट जाये और वह उसमें समा जाये।

इस प्रकार बरसते और बाजे बजाते हुए इन्द्र और देवतागण उन शिविकाओंको चिताओंके पास ले आये। वहाँ आकर कृतज्ञता-पूर्ण हृदयसे इन्द्रने, पुत्रके समान, प्रभुके शरीरको धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी चितापर ला रखा। दूसरे देवताओंने भी भाईकी तरह इक्ष्वाकु-कुलके मुनियोंके शरीरको दक्षिण दिशावाली चितामें ला रखा और उचितानुचितका विचार रखनेवाले अन्यान्य देवताओंने भी शेष साधुओंके शरीर पश्चिम दिशावाली चितामें लाकर रख दिये। पीछे अग्निकुमार देवताओंने इन्द्रके आज्ञानुसार उन चिताओंमें अग्नि प्रकट की और वायुकुमार देवोंने हवा चलाकर चारों ओर धाँय-धाँय आग जला दी। देवता ढेर-का-ढेर कपूर और घड़े भर-भर कर घी तथा मधु चितामें छोड़ने लगे। जब सिवा हड्डीके और सब

---

* गोफण—अकसर लड़के खेलमें रस्सी आदिमें ईंट या पत्थर बाँधकर फेंकते हैं। उसीको गोफण कहते हैं।

धातुयें जल गयीं, तब मेघकुमार देवताओंने क्षीर-समुद्रके जलसे चिताग्निको शान्त कर दिया। इसके बाद अपने विमानमें प्रतिमाकी तरह रखकर पूजा करनेके लिये सौधर्मेन्द्रने प्रभुकी ऊपरवाली दाहिनी डाढ़ ले ली, ईशानेन्द्रने ऊपरकी बायीं डाढ़ ले ली, चमरेन्द्रने नीचेकी दाहिनी डाढ़ ली, बलि-इन्द्रने नीचेकी बायीं डाढ़ ली, अन्यान्य इन्द्रोंने प्रभुके शेष दाँत ले लिये और अन्य देवताओंने और-और हड्डियाँ ले लीं। उस समय जिन श्रावकोंने अग्नि माँगी, उन्हें देवताओंने तीनों कुण्डोंकी अग्नि दी। वे ही लोग अग्निहोत्री ब्राह्मण कहलाये। वे उस चिताग्निको अपने घर ले जाकर पूजने लगे और धनपति जिस प्रकार निर्वात प्रदेशमें रख कर लक्ष-दीपकी रक्षा करते हैं, वैसेही उस अग्निकी रक्षा करने लगे। इक्ष्वाकु-वंशके मुनियोंकी चिताग्नि शान्त हो जाती तो उसे स्वामीकी चिताग्निसे जाग्रत कर लेते और अन्य मुनियोंकी शान्त हुई चिताग्निको इक्ष्वाकु-वंशके मुनियोंकी चिताग्निसे चेता देते थे ; परन्तु दूसरे साधुओंकी चिताग्निका वे अन्य दोनों चिताग्नियोंके साथ संक्रमण नहीं होने देते थे। वही विधि अब तक ब्राह्मणोंमें प्रचलित है। कितनेही प्रभुकी चिताग्निकी भस्मको भक्तिके साथ प्रणाम करते हुए देहमें लगाते थे। उसी समयसे भस्म-भूषाधारी तापस होने लगे।

फिर मानों अष्टापद पर्वतके तीन नये शिखर हों, ऐसे उन चिताओंके स्थानपर तीन-रत्न-स्तूप देवताओंने बना दिये। वहाँसे नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर उन लोगोंने शाश्वत प्रतिमाके समीप अ-

ष्टाह्निका-उत्सव किया और फिर इन्द्र सहित सारे देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। वहाँ पहुँच कर इन्द्रोंने अपने-अपने विमानोंमें सुधर्मा-सभाके अन्दर माणवक-स्तम्भ पर वज्रमय गोल डिब्बियोंमें प्रभुकी डाढ़ोंको रखकर प्रतिदिन उनकी पूजा करनी आरम्भकी, जिसके प्रभावसे उनका सदैव विजय-मङ्गल होनेलगा।

महाराज भरतने प्रभुका जहाँ संस्कार हुआ था, वहाँकी भूमिके पासवाली भूमिमें छः कोस ऊँचा मोक्ष-मन्दिरकी वेदिकाके समान 'सिंहनिषद्या' नामका प्रासाद रत्नमय पाषाणों और वार्द्धकि-रत्नोंसे बनवाया। उसके चारों तरफ़ उन्होंने प्रभुके समवसरणकी तरह स्फटिक रत्नोंके चार द्वार बनवाये और प्रत्येक द्वारके दोनों तरफ़ शिव-लक्ष्मीके भाण्डारकी भाँति रत्न-चन्दनके सोलह कलश बनवाये। प्रत्येक द्वारपर साक्षात् पुण्यवल्लीके समान सोलह-सोलह रत्नमय तोरण बनवाये। प्रशस्त लिपिकी भाँति अष्टमाङ्गलिकको सोलह-सोलह पंक्तियाँ बनवायीं और मानों चारों दिक्पालोंकी सभा ही वहाँ लायी गयी हो, ऐसे विशाल मुखमण्डप बनवाये। उन चारों मुखमण्डपके आगे चलते हुए श्रीवल्ली मण्डपके अन्दर चार प्रेक्षासदन-मण्डप बनवाये। उन प्रेक्षा-मण्डपोंके बिचोंबीचमें सूर्यबिम्बको लजानेवाले वज्रमय अक्षवाट रचाये और प्रत्येक अक्षवाटके मध्यमें कमलकी कर्णिकाकी भाँति एक-एक मनोहर सिंहासन बनवाया। प्रेक्षामण्डपके आगे एक एक मणि-पीठिका बनायी गयी, उसके ऊपर रत्नोंका मनोहर चैत्य-स्तूप बना और प्रत्येक चैत्य-स्तूपमें आकाशको प्रकाशित

करनेवाली बड़ीसी मणि-पीठिका प्रत्येक दिशामें बनायी गयी। उन मणि-पीठिकाओंके ऊपर चैत्य-स्तूपके सम्मुख पाँच सौ धनुषों के प्रमाणवाली, रत्ननिर्मित अङ्गवाली, ऋषभानन, वर्द्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण— इन चार नामोंवाली; पर्यङ्कासनपर बैठी हुई, मनोहर नेत्ररूपी कुमुदोंके लिये चन्द्रिकाके समान, नन्दीश्वर-महाद्वीपके चैत्यके अन्दर जैसी हैं वैसी, शाश्वत जिन प्रतिमाएँ बनवा कर स्थापित करवायीं। प्रत्येक चैत्य-स्तूपके आगे अमूल्य माणिक्यमय विशाल एवं सुन्दर पीठिकाएँ तैयार करवायीं। उस प्रत्येक पीठिकाके ऊपर एक-एक चैत्यवृक्ष बनवाया और हरएक चैत्यवृक्षके पास एक-एक मणि-पीठिका और बनवायी, जिसके ऊपर एक-एक इन्द्रध्वज भी रखा गया। वे इन्द्रध्वज ऐसे मालूम होते थे, मानों धर्मने प्रत्येक दिशामें अपना जयस्तम्भ स्थापित कर रखा हो। प्रत्येक इन्द्रध्वजके आगे तीन सीढ़ियों और तोरणोंवाली नन्दा नामकी पुष्करिणी बनवायी गयी। स्वच्छ और शीतल जलसे भरी हुई तथा विचित्र कमलोंसे सोहती हुई वे पुष्करिणियाँ, दधि-मुख-पर्वतकी आधार-भूता पुष्करिणीकी भाँति मनोहर मालूम होती थी।

महाराजने उस सिंहनिषद्या नामक महाचैत्यके मध्यभागमें एक बड़ीसी मणि-पीठिका बनवायी और समवसरणकी तरह उसके मध्यमें एक विचित्र रत्नमय देवच्छन्द बनवाया। उसके ऊपर उन्होंने विविध वर्णोंके वस्त्रोंके चँदवे तनवाये, जो अकालमें ही सन्ध्या समयके बादलोंकी शोभा दिखलाते थे। उन चँदवों

के बीचमें और आसपास वज्रमय अङ्कुश बने हुए थे, तथापि उनकी शोभा निरंकुश हो रही थी। उन अंकुशोंमें कुम्भके सदृश गोल और आँवलेके फलके समान स्थूल मुक्ताफलोंके बने हुए अमृतधाराके समान हार लटक रहे थे। उन हारोंके प्रान्त-भाग में निर्मल मणि मालिकाएँ बनवायी गयी थीं। वे मणियाँ ऐसी मालूम होती थीं, मानों तीनों लोककी मणियोंकी खानोंसे बतौर नमूनेके लायी गयी हों। मणिमालिकाओंके प्रान्तभागमें रहनेवाली निर्मल वज्रमालिकाएँ ऐसी मालूम होती थीं,मानों सखियाँ अपनी कान्ति-रूपिणी भुजाओंसे एक दूसरेको आलिङ्गन कर रही हों। उस चैत्यकी दीवारोंमे विचित्र मणिमय गवाक्ष (खिड़कियाँ) बनवाये गये थे, जिनमें लगे हुए रत्नोंके प्रभा-पटलसे ऐसा मालूम होता था मानों उनपर परदे पड़े हुए हों। उसके अन्दर जलते हुए अगुरुधूपके धुएँसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों पर्वतके ऊपर नयी नील-चूलिकाएँ पैदा हो आयी हों।

अब पूर्वोक्त मध्य देवच्छन्दके ऊपर शैलेशी-ध्यानमें मग्न, प्रत्येक प्रभुकी देहके बराबर मानवाली, उनकी देहके रंगकेही समान रंगवाली, ऋषभस्वामी आदि चौबीसों तीर्थङ्करोंकी निर्मल रत्नमय प्रतिमाएँ बनवा कर उन्होंने रखवा दीं, जो ठीक ऐसी मालूम होती थीं, मानों प्रत्येक प्रभु स्वयं ही वहाँ आकर विराज रहे हों। उनमें सोलह प्रतिमाएं सुवर्णकी, दो राजवर्त्त रत्नकी (श्याम), दो स्फटिक रत्नकी (उज्ज्वल), दो वैडूर्य-मणिकी (नील) और दो शोणमणिकी (लाल) थीं। उन सब प्रतिमाओंके नख रोहिताक्ष-

मणिके (लाल) रंगके समान अङ्क-रत्नमय (श्वेत) थे और नाभि, केश-मूल, जिह्वा, तालु, श्रीवत्स, स्तनभाग तथा हाथ-पैरोंके तलभाग सुवर्णके (लाल) थे। बरौनी, आँखकी पुतली, रोंगटे भौहें और मस्तकके केश रिष्टरत्नमय (श्याम) थे। ओठ प्रवाल-मय (लाल), दांत स्फटिक रत्नमय (श्वेत) ; मस्तकका भाग वज्रमय और नासिका भीतरसे रोहिताक्ष-मणिके आभासको— सुवर्णकी-बनी हुई थी। प्रतिमाओंकी दृष्टियाँ लोहिताक्षमणिके प्रान्त भागवाली और अङ्कमणिकी बनवायी गयी थीं। ऐसी अनेक प्रकारकी मणियोंसे तैयार की हुई वे प्रतिमाएँ बहुत ही शोभाय-मान मालूम होती थीं।

उन प्रतिमाओंमेंसे प्रत्येकके पीछे एक-एक यथायोग्य मानवाली छत्रधारिणी, रत्नमय प्रतिमा बनायी गयी थी। वे छत्रधारिणी प्रतिमाएँ कुरंटक-पुष्पकी मालाओंसे युक्त, मोतियों और लालोंसे गुथे हुए तथा स्फटिक-मणिके डंडोंवाले श्वेत छत्र धारण किये हुए थीं। प्रत्येक प्रतिमाके दाहिने-बायें रत्नोंके चँवर धारण करने-वाली दो प्रतिमाएँ और आगे नाग, यक्ष, भूत और कुण्डधार की दो-दो प्रतिमाएँ थीं। हाथ जोड़े हुई, सर्वाङ्गमे उज्ज्वल शोभा धारण किये हुई, वे नागादिक देवोंकी रत्नमयी प्रतिमाएँ ऐसी शोभायमान मालूम होती थीं, मानों वे वहाँ साक्षात बैठी हुई हों।

देवच्छन्दके ऊपर उज्ज्वल रत्नोंके चौवीस घण्टे, संक्षित किये हुए सूर्य-बिम्बके समान माणिक्यके दर्पण, उनके पास उचित स्थानपर रखी हुई सुवर्णकी दीपिकाएँ, रत्नोंकी पिटारियाँ, नदीके

भँवरकी तरह गोल-गोल चँगेरियाँ, उत्तम रूमाल, आभूषणोंके डब्बे, सोनेकी धूपदानी और आरती, रत्नोंके मङ्गलदीप, रत्नोंकी झारियाँ, मनोहर रत्नमय थाल, सुवर्णके पात्र, रत्नोंके चन्दन कलश, रत्नोंके सिंहासन, रत्नमय अष्टमाङ्गलिक, सुवर्णका बना तेल भरनेका डब्बा, सोनेका बना धूप रखनेका पात्र, सोनेका कमल-हस्तक—ये सब चीज़ें प्रत्येक अर्हन्तकी प्रतिमाके पास रखी हुई थीं। इसलिये प्रत्येक वस्तुकी गिनती चौबीस थी।

इस प्रकार नाना रत्नोंका बनाया हुआ वह तीनों लोकसे सुन्दर चैत्य, भरतचक्रीकी आज्ञा होतेही, सब कलाओंके जाननेवाले कारीगरोंने तत्काल विधिके अनुसार बनाकर तैयार कर दिया। मानों मूर्त्तिमान् धर्म हो ऐसे चन्द्रकान्त-मणिके परकोटेसे तथा चित्रमें लिखे हुए सिंह, वृषभ, मगर, अश्व, नर, किन्नर, पक्षी, बालक, हरिण, अष्टापद, चमरी-मृग, हाथी, वन-लता और कमलोंके कारण अनेक वृक्षोंवाले उद्यानकी तरह मालूम होनेवाला वह विचित्र तथा अद्भुत रचनावाला चैत्य बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता था। उसके आस-पास रत्नोंके खम्भे गड़े हुए थे। वह मन्दिर आकाश-गङ्गाकी तरङ्गोंकी तरह मालूम पड़नेवाली ध्वजाओंसे बड़ा मनोहर दिखाई देता था, ऊँचे किये हुए सुवर्णके ध्वजदण्डोंसे वह ऊँचा मालूम होता था और निरन्तर फहराती हुई ध्वजाओंमें लगे हुए घुंघरूकी आवाज़से वह विद्याधरोंकी स्त्रियोंकी कटि-मेखलाओंकी ध्वनिका अनुसरण करता हुआ मालूम होता था। उसके ऊपर विशाल कान्तिवाली पद्मरागमणिके कलशसे वह ऐसा मालूम होता

था। मानों माणिक्य जड़ी हुई मुद्रिका पहनेहुए हो। कहीं तो पल्लवित होता हुआ, कहीं कवच धारण किये, कहीं रोमाञ्चित बना हुआ और कहीं किरणोंसे लिप्त मालूम पड़ता था। गोशीर्ष-चन्दनके रसके तिलकसे वह जगह-जगह चिह्नित किया गया था। उसकी सन्धियाँ इस कारीगरीसे मिलायी गयी थीं, कि सारा मन्दिर एक ही पत्थरका बना हुआ मालूम पड़ता था। उस चैत्यके नितम्ब-भागपर अपनी विचित्र चेष्टासे बड़ी मनोहर दीखती हुई माणिककी पुतलियाँ बैठायी हुई थीं। इससे वह ऐसा मालूम होता था, मानों अप्सराओंसे अधिष्ठित मेरुपर्वत हो। उससे द्वारके दोनों ओर चन्दनसे लेपे हुए दो कुम्भ रखे हुए थे। उनसे वह ऐसा मालूम होता था, मानों द्वार-स्थलपर दो पुण्डरीक-कमल उग आये हों और उसकी शोभाको बढ़ा रहे हों। धूपित करके तिरछी बाँधी हुई लटकती मालाओंसे वह रमणीय मालूम होता था। पँचरंगे फूलोंसे उसके तलभागपर मण्डल भरे हुए थे। जैसे यमुना-नदीसे कलिन्द-पर्वत सदा प्लावित होता रहता है, वैसेही कपूर, अगर और कस्तूरीसे बने हुए धूपके धूएँसे वह भी सदैव व्याप्त रहता था। आगे-पीछे और दाहिने-बाँयें सुन्दर चैत्यवृक्ष और माणिककी पीठिकाएँ बनी हुई थीं। इनसे वह ऐसा मालूम होता था, मानों गहने पहने हुए हों और अपनी पवित्रताके कारण वह ऐसा शोभायमान दीखता था, मानो अष्टापदपर्वतके शिखरपर मस्तकके मुकुटका माणिक्य-भूषण हो तथा नन्दीश्वरादि चैत्योंकी स्पर्द्धा कर रहा हो।

उसी चैत्यमें भरतराजाने अपने निम्यानवे भाइयोंकी दिव्यरत्नों की बनी हुई प्रतिमाएँ स्थापित कीं और प्रभुकी सेवा करती हुई अपनी भी एक प्रतिमा वहाँ प्रतिष्ठित की। भक्तिको अतृप्तिका यह भी एक लक्षण है। उन्होंने चैत्यके बाहर भगवान्‌का एक स्तूप और उसीके पास अपने भाइयोंके भी स्तूप बनवाये। वहाँ आनेवाले लोग आते-जाते हुए उन प्रतिमाओंकी आशातना (अपमान) न करने पायें, इसके लिये उन्होंने लोहेके बने, कल-पुर्ज़े लगे हुए पहरेदार भी खड़े कर दिये। इन लोहेके बने पहरेदारोंके कारण वह स्थान मनुष्योंके लिये ऐसा दुर्गम हो गया, मानों मर्त्यलोकके बाहर हो। तब चक्रवर्त्तीने अपने दण्डसे उस पर्वतके ऊबड़-खाबड़ पत्थरोंको तोड़कर गिरा दिया। उससे वह पर्वत सीधे और ऊँचे स्तम्भके समान लोगोंके चढ़ने योग्य नहीं रह गया। तब महाराजने उस पर्वतकी टेढ़ी-मेढ़ी मेखलाके समान और मनुष्योंसे नहीं लाँघने योग्य आठ सीढ़ियाँ एक-एक योजनके अन्तरपर बनवायीं। तभीसे उस पर्वतका नाम अष्टापद पड़ा और लोकमें वह हराद्रि,कैलास और स्फटिकाद्रि आदि नामोंसे भी प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार चैत्य-निर्माण कर, उसमें प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाकर, श्वेतवस्त्रधारी चक्रवर्त्तीने उसमें उसी तरह प्रवेश किया, जिस तरह चन्द्रमा बादलोंमें प्रवेश करता है। परिवार-सहित उन प्रतिमाओंकी प्रदक्षिणा कर, महाराजने उन्हें सुगन्धित जलसे नहलाया और देवदूष्य वस्त्रोंसे उनका मार्जन किया। इससे वे प्रतिमाएँ रत्नके आईनेकी तरह अधिक उज्ज्वल हो गयीं। इसके

बाद उन्होंने चन्द्रिकाके समूहकी तरह निर्मल, गाढ़े और सुगन्धित गोशीर्ष-चन्दनके रससे उनका विलेपन किया तथा विचित्र रत्नोंके आभूषणों, चमकती हुई दिव्य मालाओं और देवदूष्य वस्त्रोंसे उनकी अर्चना की। घंटा बजाते हुए महाराजने उनको धूप दिखाया, जिससे उठते हुए धुएँकी कुण्डलीसे उस चैत्यका अन्तर्भाग नील-वल्लीसे अङ्कित किया हुआ मालूम पड़ने लगा। इसके बाद मानों संसार-रूपी शीत-कालसे भय पाये हुए लोगोंके लिये जलता हुआ अग्नि-कुण्ड हो, ऐसी कपूरको आरती उतारी।

इस प्रकार पूजनकर, ऋषभस्वामीको नमस्कार कर, शोक और भयसे आक्रान्त होकर, चक्रवर्तीने इस प्रकार स्तुति की,—"हे जगत्सुधाकर! हे त्रिजगत्पति! पाँच कल्याणकोंसे नारकीयोंको भी सुख देनेवाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे स्वामिन्! जैसे सूर्य संसारका उपकार करनेके लिये भ्रमण करते रहते हैं, वैसेही आप भी जगत्के हितके लिये सर्वत्र विहार करते हुए चराचर-जीवोंको अनुगृहीत कर चुके हैं। आर्य और अनार्य, दोनों पर आपकी प्रीति थी, इसीलिये आप चिरकाल विहार करते फिरे। अतएव आपकी और पवनकी गति परोपकारके ही लिये हैं। हे प्रभु! इस लोकमें तो आप मनुष्योंके उपकारके लिये सदा विहार करते रहे ; पर मोक्षमें आप किसका उपकार करनेके लिये गये हैं? आपने जिस लोकाग्र (मोक्ष) को अपनाया है, वह आज सच-मुच लोकाग्र (सब लोकोंसे बढ़कर) हो गया और आपसे छोड़ दिया हुआ यह मर्त्यलोक सचमुच मर्त्यलोक (मृत्यु पाने योग्य)

हो गया है। हे नाथ! जो आपकी विश्वोपकारिणी देशनाको स्मरण करते हैं, उन भव्य प्राणियोंको आप आज भी प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ते हैं। जो आपके रूपको ध्यान करते हैं, उन्हें भी आप प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। हे परमेश्वर! जैसे आपने ममता-रहित होकर इस सारे संसारको त्याग दिया है, वैसेही कभी मेरे मनका भी त्याग न कर दें।"

इस प्रकार आदीश्वर भगवान्‌की स्तुति करनेके बाद अन्य जिनेन्द्रोंको नमस्कार कर, उन्होंने प्रत्येक तीर्थङ्करकी इसप्रकार स्तुति की,—"हे विषय-कषायोंसे अजित, विजयामाताकी कोखके माणिक और जितशत्रुराजाके पुत्र, जगत्स्वामी अजीतनाथ! तुम्हारी जय हो।

"हे संसार-रूपी आकाशको अतिक्रमण करनेमें सूर्यके समान, श्रीसेना देवीके उदरसे उत्पन्न, जितारि राजाके पुत्र सम्भवनाथ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

"हे संवर-राजाके वंशके आभूषण स्वरूप, सिद्धार्था देवी-रूपिणी पूर्व-दिशाके सूर्य और विश्वके आनन्ददायक अभिनन्दन स्वामी तुम मुझे पवित्र कर दो।

"हे मेघराजाके वंशरूपी वनमें मेघके समान और मङ्गला-माता-रूपिणी मेघमालामें मोतीके समान सुमतिनाथजी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

"हे धर-राजा-रूपी समुद्रके लिये चन्द्रमाके समान और सुसीमा देवी-रूपिणी गङ्गानदीमें उत्पन्न कमलके समान पद्मप्रभु! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

"हे श्रीप्रतिष्ठ राजाके कुलरूपी गृहके प्रतिष्ठा-स्तम्भ-स्वरूप और पृथ्वी माता-रूपी मलयाचलके चन्दनके समान सुपार्श्वनाथ! मेरी रक्षा करो।

"हे महासेन राजाके वंशरूपी आकाशके चन्द्रमा और लक्ष्मणा देवीके कोख-रूपी सरोवरके हंस चन्द्रप्रभुजी! तुम्हीं मेरी रक्षा करो

"हे सुग्रीव राजाके पुत्र और श्रीरामादेवी-रूपिणी नन्दन-वन के कल्पवृक्षस्वरूप सुविधिनाथजी मेरा शीघ्र कल्याण कीजिये

"हे दृढ़रथ राजाके पुत्र, नन्दादेवीके हृदयको आनन्द देनेवाले और जगत्को आह्लादित करनेमें चन्द्रमाके समान शीतलस्वामी! तुम मेरे लिये हर्षकारी हो।

"हे श्रीविष्णुदेवीके पुत्र, विष्णु राजाके वंशमें मोतीके समान और मोक्षरूपिणी लक्ष्मीके स्वामी श्रेयांस प्रभु! तुम मेरे कल्याणके निमित्त हो।

"हे वसुपूज्यराजाके पुत्र, जयादेवी-रूपिणी विदूर-पर्वतकी भूमिमें उत्पन्न रत्नके समान और जगत्में पूजनीय वासुपूज्यस्वामीजी तुम मुझे मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करो।

"हे कृतवर्म राजाके पुत्र और श्यामादेवी-रूपिणी शमीवृक्षसे उत्पन्न अग्निके समान विमलस्वामी! तुम मेरा मन निर्मल बना दो।

"हे सिंहसेन राजाके कुलमें मङ्गल-दीपकके समान, सुयशा देवीके पुत्र अनन्तभगवान्! मुझे अनन्त सुख दो।

"हे सुव्रतादेवी-रूपिणी उदयाचल तटीके सूर्यस्वरूप, भानु-राजाके पुत्र धर्मनाथ प्रभु! तुम मेरी बुद्धिको धर्ममें लगा दो।

"हे विश्वसेन राजाके कुलभूषण स्वरूप, अचिरादेवीके पुत्र शान्तिनाथ भगवान्! तुम मेरे कर्मोंकी शान्तिके निमित्त होओ।

"हे शूरराजाके वंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान, श्रीदेवीके उदरसे उत्पन्न और कामदेवका उन्मथन करनेवाले जगत्पति कुन्थुनाथजी! तुम्हारी जय हो।

"सुदर्शन राजाके पुत्र, और देवी-माता-रूपिणी शरद्लक्ष्मीमें कुमुदके समान अरनाथजी! तुम मुझे संसारसे पार उतरनेका वैभव प्रदान करो।

"हे कुम्भराजा-रूपी समुद्रमें अमृत कुम्भके समान और कर्म-क्षय करनेमें महामल्लके समान प्रभावती देवीसे उत्पन्न मल्लिनाथजी तुम मुझे मोक्षलक्ष्मी प्रदान करो।

"हे सुमित्र-राजा-रूपी हिमाचलमें पद्मद्रहके समान और पद्मावतीके पुत्र मुनिसुव्रत प्रभु! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

"हे वप्रादेवी-रूपिणी वज्रकी खानसे निकले हुए वज्रके समान, विजय राजाके पुत्र और जगत्से वन्दनीय चरण-कमलों वाले नमिप्रभु! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

"हे समुद्र (समुद्रविजय) को आनन्द देनेवाले चन्द्रमाके समान, शिवादेवीके पुत्र और परम दयालु, मोक्षगामी अरिष्टनेमि भगवान! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

"हे अश्वसेन राजाके कुलमें चूड़ामणि स्वरूप, वामादेवीके पुत्र पार्श्वनाथजी! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

"हे सिद्धार्थ राजाके पुत्र, त्रिशला माताके हृदयको आश्वासन

देनेवाले और सिद्धि-प्राप्तिके अर्थको सिद्ध करनेवाले महावीर प्रभु! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।"

इस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकरकी स्तुति कर, प्रणाम करते हुए महाराज भरत उस सिंहनिषद्या-चैत्यसे बाहर निकले और प्यारे मित्रकी तरह पीछे मुड़-मुड़ कर तिरछी नज़रोंसे उसे देखते हुए, अष्टापद-पर्वतसे नीचे उतरे। उनका मन उसी पर्वतमें अटका हुआ था, इसीलिए अयोध्याधिपति ऐसी मन्द-मन्द गतिसे अयोध्याकी ओर चले, मानों उनके वस्त्रका छोर वहीं अँटक रहा हो। शोककी बाढ़की तरह सैनिकोंकी उड़ायी हुई धूलसे दिशाओंको व्याकुल करते हुए शोकार्त्त चक्रवर्त्ती अयोध्याके समीप आपहुँचे, मानो चक्रवर्त्तीके सहोदर हों, इस प्रकार उनके दुःखसे अत्यन्त दुःखित नगर-निवासियों द्वारा आँसू भरी आँखोंसे देखे जाते हुए महाराज अपनी विनीता नगरीमें आये। फिर भगवान्‌का स्मरणकर, वृष्टिके बाद बचे हुए मेघकी तरह अश्रुजलके बूंद बरसाते हुए वे अपने राजमहलके अन्दर आये। जिसका धन छिन जाता है, वह जिस प्रकार द्रव्यका ही ध्यान किया करता है, वैसेही प्रभुरूपी धनके छिन जानेसे वे भी उठते-बैठते चलते-फिरते, सोते-जागते, बाहर-भीतर, रात-दिन प्रभुका ही ध्यान करने लगे। यदि कोई किसी और ही मतलबसे उनके पास अष्टापद-पर्वतकी ओरसे आ जाता, तो वे यही समझते, मानों वह भी पहलेहीकी भाँति प्रभुका ही कोई संदेसा लेकर आया है।

महाराजको ऐसा शोकाकुल देखकर मन्त्रियोंने उनसे कहा—

"हे महाराज! आपके पिता श्रीऋषभदेव प्रभुने पहले गृहस्थाश्रममें रहकर भी पशुके समान अज्ञ मनुष्योंको व्यवहार नीतिमें प्रवृत्त किया था। इसके बाद दीक्षा लेकर थोड़े ही समयमें केवलज्ञान प्राप्त कर, इस जगतके लोगोंको भवसागरसे उबारनेके लिए धर्ममें प्रवृत्त किया। अन्तमें स्वयं कृतार्थ हो औरोंको भी कृतार्थ कर उन्होंने परम-पद प्राप्त किया। फिर ऐसे परम-प्रभुके लिये आप क्यों शोक करते हैं?" इस प्रकार समझानेपर चक्रवर्त्ती धीरे-धीरे राजकाजमें मन लगाने लगे।

राहुसे छुटकारा पाये हुए चन्द्रमाकी भाँति धीरे-धीरे शोकमुक्त होकर भरत चक्रवर्त्ती बाहर विहार भूमिमें विचरण करने लगे। विन्ध्याचलकी याद करनेवाले गजेन्द्रकी तरह प्रभुके चरणोंका स्मरण करते हुए विषादको प्राप्त होनेवाले महाराजके पास आ-आकर बड़े-बूढ़े लोग उनका दिल बहलाने लगे। इसीसे वे कभी कभी अपने परिजनोंके आग्रहसे विनोद उत्पन्न करनेवाली उद्यान भूमिमें जाने लगे। और वहाँ मानो स्त्रियोंकाही राज्य हो वैसी सुन्दरी स्त्रियोंकी टोलीके साथ लता-मण्डपकी रमणीक शय्यापर क्रीड़ा करने लगे। वहाँ फूल चुननेवाले विद्याधरोंकी भाँति जवान पुरुषोंको उन्होंने फूल चुननेकी क्रीडा करते देखा। उन्होंने और भी देखा कि, वाराङ्गनाएँ फूलोंकी पोशाक बना-बनाकर उनको अर्पण कर रही हैं। मानो इसी प्रकार वे कामदेवकी पूजा कर रही हों मानों उनकी उपासना करनेके लिये असंख्य श्रुतियाँ आ इकट्ठी हुई हों, ऐसी नगर-नारियाँ अंग-अंगमें फूलोंके गहने पहने उनके-

आसपास क्रीड़ा करने लगी। फिर तो मानो ऋतुदेवताओंमें सेही कोई देवता आ गया हो, उसी प्रकार सर्वाङ्गमें फूलोंकेगहने पहने हुई उन स्त्रियोंके मध्यमें महाराज भरत शोभित होने लगे।

किसी-किसी दिन वे भी अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर राज-हंसकी तरह क्रीड़ावापीमें स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करनेके लिये जाने लगे। जैसे गजेन्द्र अपनी कामिनियोंके साथ नर्मदा-नदीमें क्रीड़ा करता है, वैसेही वे भी उन सुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे। मानों उन सुन्दरियोंकी ही सिखलायी पढ़ायी हुई हों, ऐसी उस जलकी तरंगे कभी महाराजके कण्ठको, कभी भुजा-ओंको और कभी हृदयको आलिंगन करने लगीं। उस समय कमलके कर्णाभरण और मोतियोंके कुण्डल पहने हुए महाराज जलमें साक्षात् वरुणदेवके समान शोभा पाने लगे, मानो लीला-विलासके राज्य पर उनका अभिषेक कर रही हों, इसी ढंगसे वे स्त्रियाँ, "मैं पहले मैं पहले" कहती हुई उनके ऊपर पानीके छींटे छोड़ रही थीं। उन्हें चारों ओरसे घेरे हुई जलक्रीड़ामें तत्पर उन रमणियोंके साथ जो अप्सराएँ या जलदेवियाँसी मालूम पड़ती थीं। महाराजने बड़ी देरतक जलक्रीड़ा की। अपनी होड़ करनेवाले कमलोंको देखकर ही मानो उन मृगाक्षियोंकी आँखें कोपसे लाल-लाल हो आयीं और उन अङ्गनाओंके अंगोंसे गिरे हुए घने अङ्ग-रागके कारण वह सारा जल यक्ष-कर्दमसा मालूम पड़ने लगा। इसी प्रकार वे अक़सर क्रीड़ा किया करते थे।

किसी समय इसी प्रकार जलक्रीड़ाकर महाराज भरत, इन्द्र-की तरह सङ्गीत करानेके लिये विलास-मण्डपमें आये। वहाँ वंशी बजानेमें चतुर पुरुष वैसेही वंशीमें पहले मधुर स्वर भरने लगे, जैसे मन्त्रोंमें पहले ओङ्कारका उच्चारण किया जाता है। वे वंशी बजानेवाले कानोंको सुख देनेवाली और व्यञ्जन धातुओंसे स्पष्ट, पुष्पादिक स्वरसे ग्यारह प्रकारकी वंशी बजाने लगे। सूत्रधार उन-के कवित्वका अनुसरण करते हुए नृत्य तथा अभिनयकी माताके समान प्रस्तारसुन्दर नामका ताल देने लगे। मृदङ्ग और प्रणव नामके बाजे बजाने वाले प्रिय मित्रकी तरह, ज़रा भी ताल-सुरमें फ़र्क़ नहीं आने देते हुए अपने-अपने बाजे बजाने लगे। हाहा और हूहू नामके गन्धर्वोंके अहङ्कारको हरनेवाले गायक स्वर-गीतिसे सुन्दर और नयी-नयी तरहके राग गाने लगे। नृत्य तथा ताण्डव-में चतुर नटियाँ विचित्र प्रकारकी नाज़ो अदासे सबको आश्चर्यमें डालती हुई नाचने लगीं। महाराज भरत उस देखने योग्य नाटकको निर्विघ्न देखते रहे; क्योंकि उनकेसे समर्थ पुरुष चाहे जो करें, उसमें कौन रोक-टोक कर सकता है? इस प्रकार संसार-सुखको भोगते हुए भरतेश्वरने प्रभुके मोक्ष-दिवसके पश्चात् पाँच लाख पूर्व बिता दिये।

एक दिन भरतेश्वर, स्नान कर, बलि कर्म कर, देवदूष्य वस्त्रसे शरीरको साफ़ कर, केशोंमें पुष्पमाला गूँथ, गोशीर्षचंदन का सब अङ्गोंमें लेपकर, अमूल्य और दिव्यरत्नोंके आभूषण सब अंगोंमें धारण कर, अन्तःपुरकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंका समूह साथ लिये

छड़ीवरदारोंके दिखलाये हुए रास्तेसे, अन्तःपुरके मध्यमें रत्नोंके आदर्शगृहमें आये। वहाँ आकाश और स्फटिकमणिकी भाँति निर्मल तथा जिसमें अपने सब अङ्गोंकी परछाईं पूरी तरह दिखायी देती हो, ऐसे शरीर-प्रमाण (कदआदम) आईनेमें अपना रूप देखते हुए महाराजकी एक अङ्गुलीमेंसे अंगूठी गिर पड़ी। जैसे मयूरके कलापमेंसे एक पङ्ख गिर जाने पर उसे इसकी ख़बर नहीं होती, वैसेही उस अँगूठीका गिरना भी महाराजको नही मालूम हुआ। क्रमसे शरीरके सब भागोंको देखते-देखते उन्होंने दिनमें चाँदनीके बिना फीकी पड़ी हुई चन्द्रकलाके समान अपनी मुद्रिका-रहित अँगुलीको कान्ति-रहित देखा, "ओह! यह अँगुली ऐसी शोभाहीन क्यों है?" यह सोचते हुए भरत राजाने ज़मीन पर पड़ी हुई अँगूठी देखी, तब उन्होंने सोचा,—"क्या और-और अङ्ग भी आभूषणके बिना शोभा हीन लगते होंगे।"

यह ख़याल पैदा होते ही उन्होंने अन्य आभूषणोंको भी उतारना शुरू किया।

सबसे पहले उन्होंने सिर परसे माणिकका मुकुट उतारा। उतारते ही सिर भी अँगूठी बिना अँगुलीकी तरह मालूम पड़ने लगा। कानोंके माणिकवाले कुण्डल उतार दिये, तब वे भी चंद्र-सूर्यके बिना श्रीहीन दिखायी देनेवाली पूर्व और पश्चिम दिशाओंके समान मालूम पड़ने लगे। कण्ठाभूषण अलग करते ही ग्रीवा बिना जलके नदीकी भाँति शोभाहीन मालूम पड़ने लगी। वक्षस्थलसे हार उतरने पर वह तारा-रहित आकाशकी

भाँति शून्य प्रतीत होने लगा। बाजूबन्द निकालतेही दोनों हाथ अर्द्धलतापाशसे हीन दो शालके वृक्ष जैसे दिखने लगे। दोनों हाथोंके कड़े निकाल डाले, तब वे बिना कड़ी काठके प्रासाद से दिखायी देने लगे। और-और अँगुलियोंकी भी अँगूठियाँ उतार दीं, तब वे मणि-रहित सर्पके फणके समान मालूम होने लगीं। पैरोंमेंसे पाद्-कंटक दूर कर देने पर वे गजेन्द्रके सुवर्ण कंकण विहीन दाँतके समान दिखाई देने लगे। इस प्रकार सर्वाङ्गके आभूषणोंका त्याग करनेसे अपने शरीरको पत्र-रहित वृक्षके समान शोभाहीन होते देख, महाराजने एक बार सारे शरीरको देखकर कहा,—"आह! इस शरीरको धिक्कार है। जैसे दीवार पर चित्र आदि अंकित कराकर बनावटी शोभा लायी जाती है, वैसेही इस शरीरकी भी गहनों आदिसे बनावटी शोभा की जाती है। अन्दर विष्ठादिक मलसे और बाहर मूत्रादिक प्रवाहसे मलिन इस शरीरमें यदि विचार कर देखा जाय, तो कोई वस्तु शोभाकारी नहीं है। खारी ज़मीन जैसे बरसातके पानीको भी बिगाड़ देती है, वैसेही यह शरीर अपने ऊपर विलेपन किये हुए कपूर और कस्तूरी आदिको भी दूषित कर देता है। जिन्होंने विषयोंसे विरक्त होकर मोक्षफलको देनेवाली तपस्या की है, उन्होंने ही इस शरीरका लाभ उठाया है।" इसी प्रकार विचार करते हुए, सम्यक् प्रकार से अपूर्व-करणके अनुक्रमणसे, क्षपक-श्रेणीमें आरूढ़ हो, शुक्ल ध्यानको पाये हुए महाराजको घाती कर्मोंके क्षय हो जानेके कारण वैसेही

केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया, जैसे बादल हट जानेसे सूर्यका प्रकाश निकल आता है।

ठीक उसी समय इन्द्रका आसन काँप गया, क्योंकि अचेतन वस्तुएँ भी महत् पुरुषोंकी विशाल समृद्धिकी बात कह देती हैं। अवधिज्ञानसे असल हाल मालूम कर, इन्द्र भरत राजाके पास आये। भक्तजन स्वामीकी ही तरह स्वामीके पुत्रकी भी सेवा करनी स्वीकार करते हैं; फिर वे स्वामीके पुत्रको केवल-ज्ञान उत्पन्न होनेपर भी उसकी सेवा क्यों नहीं करते? इन्द्रने वहाँ आकर कहा,—"हे केवलज्ञानी! आप द्रव्यलिंग स्वीकार कीजिये, जिसमें मैं आपकी वन्दना करूँ और आपका निष्क्रमण-उत्सव करू।" भरतेश्वरने उसी समय बाहुबलीकी भाँति पाँच मुट्ठी केश उखाड़ कर दीक्षाका लक्षण अङ्गीकार किया अर्थात् पाँच मुट्ठी केश नोंचकर देवताओंके दिये हुए रजोहरण आदि उपकरणोंको स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रने उनकी वन्दना की; क्योंकि भले ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया हो तो भी अदीक्षित पुरुषकी वन्दना नहीं की जाती—ऐसा ही आचार है। उस समय भरत राजाके आश्रित दस हज़ार राजाओंने भी दीक्षा ले ली; क्योंकि उनके समान स्वामीकी सेवा परलोकमें भी सुख देनेवाली होती है।

इसके बाद इन्द्रने पृथ्वीका भार सहनेवाले भरतचक्रवर्तीके पुत्र आदित्ययशाका राज्याभिषेक-उत्सव किया।

ऋषभस्वामीकी तरह भरत मुनिने भी केवलज्ञान उत्पन्न

होनेके बाद ग्राम, खान, नगर, अरण्य, गिरि और द्रोणमुख आदि सभी स्थानोंमें जा-जाकर धर्मदेशनासे भव्य प्रणियोंको प्रबोध देते हुए परिवार सहित लक्ष-पूर्व पर्यन्त विहार किया। अन्तमें उन्होंने भी अष्टापद पर्वत पर जाकर विधिसहित चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान किया। एक मासके अन्तमें जब चन्द्रमा श्रवण-नक्षत्रमें आया, तब अनन्त चतुष्क (अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-चारित्र और अनन्त-वीर्य) सिद्ध हुआ है जिनका, ऐसे वे महर्षि सिद्धिक्षेत्रको प्राप्त हुए।

इस प्रकार भरतेश्वरने सतहत्तर पूर्वलक्ष कुमारावस्थामें बिताया। उस समय भगवान् ऋषभदेवजी पृथ्वीका प्रतिपालन कर रहे थे। भगवान् दीक्षा लेकर हज़ार वर्षतक छद्मस्थ अवस्थामें रहे। इन्होंने एक हज़ार वर्ष मांडलिकतामें बिताये। हज़ार वर्ष कम छः लाख पूर्व तो इन्होंने चक्रवर्त्ती रहकर बिताये। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद विश्वके कल्याणके लिये वे दिवसमें प्रकाशित होने वाले सूर्यकी तरह एक पूर्व तक पृथ्वीपर विहार करते रहे। इस कार चौरासी पूर्वलक्षकी आयु भोगकर, महाराज भरतने मोक्ष पाया। तत्काल उसी समय हर्षसे भरे हुए देवताओंके साथ-साथ स्वर्ग-पति इन्द्रने भी उनकी मोक्षमहिमा गायी।
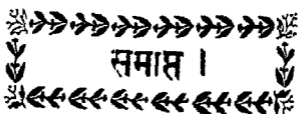
शान्ति के समय मनोरञ्जन करने योग्य
हिन्दी जैन साहित्य की

सर्वोत्तम पुस्तकें

आदिनाथ चरित्र

इस पुस्तकमें जैनोंके पहले तीर्थङ्कर भगवान आदिनाथ स्वामीका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र दिया गया है, इसको साद्यन्त पढ़ जानेसे जैनधर्मका पूर्ण तत्व मालूम हो जाता है, भाषा भी ऐसी सरल शैली से लिखी गई है, कि साधारण हिन्दी जानने वाला बालक भी बड़ी आसानीके साथ पढ़ सक्ता है, सचित्र होनेके कारण पुस्तक खिल उठी है, जैन समाज मे आजतक ऐसी अनोखी पुस्तक कहीं नही प्रकाशित हुई। अगर आप ऋषभदेव भगवान का सम्पूर्ण चरित्र पढ़नेकी इच्छा रखते हैं, अगर आप जैन धर्म के प्राचीन रीति रिवाजों को जानना चाहते हैं, अगर आप अपने को उपदेशक बनाकर समाज का भला करना चाहते हैं, अगर आप अपनी सन्तानों को जैन धर्मकी शिक्षा प्रदान कराना चाहते हैं, अगर आप लोक-परलोक-साधन करना चाहते हैं। अगर आप धर्म क्रिया के समय शान्ति का आश्रय लेना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को मंगवाने

करना चाहते हैं, अगर आप अपनी पुत्री को अपने सम्प्रदायमें ही दृढ़ रखना चाहते हैं, अगर आप अपनी पुत्रियोंसे, अपनी बूढ़ी माताओं को धर्मोपदेश प्रदान करवाना चाहते हैं; अगर आप अपनी पुत्रियों को सुलक्षणा करना चाहते हैं, तो इस पुस्तकको अवश्य मँगवाकर पढ़ाइये। इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा भी ऐसी सरल शैलीसे लिखी गई है, कि साधारण हिन्दी लिखने पढ़नेवाली बालिका भी अतीव सरलता से पढ़ सकती है। एक समय हमारी बातपर विश्वासकर कम-से-कम एक पुस्तक अवश्य मँगवाकर अपनी स्त्रियोको दीजिये; अगर आप को हमारी बात प्रमाणित मालूम हो जाय तो दूसरी पुस्तक मँगवाइये। मूल्य रेशमी सुनहरी जिल्द ५) अजिल्द सादा कवर ४) डाकखर्च अलग।

अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश

इस पुस्तकमें योग सम्बन्धी सर्वविषयोंकी व्यक्तता की गई है, योगके विषयको समझानेवाली, हिन्दी साहित्यमें आजतक ऐसी सरल पुस्तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई। इस पुस्तकमें हठयोग तथा राजयोगका साङ्गोपाङ्ग वर्णन, चित्तको स्थिर करने आदिके उपाय ऐसी सरल शैलीसे लिखे गये हैं, जिन्हे सामान्य बुद्धिवाला बालक भी बड़ी आसानीके साथ समझ सकता है, इस ग्रन्थ-रत्नके कर्त्ता एक प्रखर विद्वान् जैनाचार्य हैं, जिन्होंने निष्पक्षपात दृष्टिसे प्रत्येक विषयोंको खूब अच्छी

तरह खोल-खोल कर समझा दिया है। पाठकोंसे हमारी विनीत प्रार्थना है, कि एक बार हमारी बात पर विश्वास कर एक प्रति अवश्य मंगवावें। अगर आपको हमारी बात पर प्रतीति हो जाय तो फिर अपने इष्ट मित्रोंसे भी मँगवानेके लिये प्रेरणा करें। मूल्य अजिल्द ३॥) सजिल्द ४॥)

सती शिरोमणी—

चन्दनबाला

इस पुस्तकमें सुश्राविका सती-शिरोमणी चन्दनबाला का चरित्र बड़ीही मनोहर भाषा में लिखा गया है, चन्दनबाला को सतीत्व की रक्षा करने के लिये जो-जो विपत्तियें सहनी पड़ी हैं और सतीत्व के प्रभाव से उनके जीवन में जो-जो घटनायें हो गई हैं, सो इस पुस्तक में खूब अच्छी तरह खोल-खोल कर समझा दिया गया है। जैनी व अजैनी सब को यह पुस्तक देखनी चाहिये। सती-शिरोमणी चन्दनबाला की जीवनी प्रत्येक कुल लक्ष्मियों को पढ़ना चाहिये। बालक, स्त्री, पुरुष सभी इस पुस्तकको पढ़ कर मनोरञ्जन और शिक्षा लाभ कर सकते हैं। सारी पुस्तक उपन्यास के ढङ्ग पर लिखी गई है, जिससे पढ़ने में अधिकाधिक आनन्द आता है। और पाठक को पढ़ने में ऐसा जी लगता है, कि पुस्तक छोड़ते नहीं बनती। आपने चन्दनबाला का चरित्र और कहीं पढ़ा सुना भी होगा, पर हम दावेके साथ कहते हैं

कि ऐसा सरल और सर्वाङ्ग सुन्दर चरित्र आपने कहीं नहीं पढ़ा होगा। अतः पाठको से हमारा निवेदन है, कि हमारी बात पर विश्वास कर एक प्रति अवश्य मँगवाइये।

पुस्तक की छपाई सफाई बड़ी ही नयनाभिराम है। एण्टीक कागज पर सुन्दर सुवाच्य अक्षरों में छापी गई है। इस के अतिरिक्त स्थान-स्थानपर नयनानन्दकर उत्तमोत्तम छ चित्र दिये गये हैं, जिनसे सारी पुस्तक खिल उठी है। जैनसंप्रदाय में यह एक नवीन शैली निकाली गई है अवश्य देखिये, यह पुस्तक अपने ढङ्ग की पहली है। मूल्य ॥≈) आने) डाक खर्च अलग।

नलदमयती

इस पुस्तकमें नल और दमयन्तीकी जीवनी मय चित्रोंके दी गई है, अधिकांश तो इस पुस्तक में पतिव्रता-धर्म-सूचक ज्ञानका भण्डार भर दिया गया है, इसको पढ़कर स्त्रियों को अपने आपेका ख़याल हो आता है। इस पुस्तक को प्रत्येक बालक, युवा और वृद्ध नारियों को अवश्य देखना चाहिये, संसार में नल-दमयन्ती की जीवनियाँ अनेकानेक प्रकाशित हो चुकी हैं, पर आजतक जैनाचार्यकी कलम से लिखी हुई पुस्तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई, अतएव पाठक और पाठिका-ओंसे हमारा सानुरोध निवेदन है, कि एक बार इस पुस्तक को मँगवाकर अवश्य देखें। मूल्य ॥।) डाकखर्च अलग।

सुदर्शन सेठ

इस पुस्तक में सुदर्शन सेठ का चरित्र दिया गया है, जैन समाज में ऐसा कोई पुरुष न होगा जिसने सुदर्शन सेठकी जीवनी न सुनी हो। ब्रह्मचर्यव्रत पर सुदर्शन सेठकी कथा सुप्रसिद्ध है, शील को बचानेके कारण सुदर्शन सेठ को असह्य विपत्ति का सामना करना पड़ा। पूर्व के महापुरुषों ने शील की रक्षा के लिये प्राणत्याग करना स्वीकार किया, पर शील को त्यागना नहीं स्वीकार किया, इसी विषय पर सुदर्शन सेठ के जीवन में अनेकानेक घटनायें हो गई हैं, जिनके पढ़ने से प्रत्येक नर नारी को अपने शील के विषय में ख़याल हो आता है। अगर आप अपनी समाज में लोगों को कुसङ्ग से बचाना चाहते हैं। अगर आप अपनी समाज में शीलका महत्व बतलाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य मंगवाइये मूल्य ॥≠) डाकखर्च अलग।

कयवन्ना सेठ

इस पुस्तकमें कयवन्ना सेठ की जीवनी दी गई है। सचित्र होने के कारण कयवन्ना सेठ की अनोखी घटना आँखों के सामने दिख आती है। चारित्र सुधार के विषय में यह पुस्तक अतीव लाभदायक है। दुर्जन और सज्जन-पुरुषों

के संसर्गसे मनुष्य को क्या-क्या लाभ और क्या क्या हानियाँ उ-ठानी पड़ती हैं। इसी विषय पर कयवन्ना के जीवन में अनेकानेक आश्चर्यजनक घटनायें हो गई हैं, जिसके पढ़ जाने से मनुष्य मात्र को, अपने आपे का ख्याल हो आता है। अगर आप अपने पुत्र को चारित्र सुधार की शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं, अगर आप अपने पुत्र को सदाचारी बनाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य मँगवाइये। मूल्य ||) डाक खर्च अलग।

रतिसार कुमार

इस पुस्तक में रतिसार कुमार का चरित्र अतीव सरल और सुन्दर भाषा में लिखा गया है। प्रत्येक नर नारी को इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिये। पुस्तक की छपाई सफाई बड़ी ही नयनाभिराम है चित्रों के कारण रतिसार कुमार का चरित्र अपनी आँखों के सामने दिख आता है। मूल्य |||) डाक खर्च अलग।

लीजिये ! लीजिये !! लीजिये !!!

हिन्दी भाषामें छपा हुआ—

ज्योतिषसार

पुस्तक का विषय नाम से ही मालूम हो जाता है, जैसा नाम हैं, वैसा ही गुण है, ग्रन्थकर्त्ताने भी इस छोटीसी पुस्तक में सारे ज्योतिष शास्त्र का निचोड़ भर दिया है। अनुवादक ने भी

एकदम नवीन शैली के अनुसार हिन्दी भाषा में खूब खुलासा कर दिया है; जिससे साधारण लिखा पढ़ा बालक भी बड़ी आसानी के साथ समझ सकता है।

अगर आप बिना गुरु के ज्योतिष का ज्ञान करना चाहते हैं अगर आपको नये कारोबार, नये मकान बनवानेके, विदेश जानेके, देव प्रतिष्ठा, नई दीक्षा, आदि प्रत्येक शुभ कार्योंके मुहूर्त्त देखने हों तो आज ही "ज्योतिषसार" मंगवानेको आर्डर दीजिये।

बड़ी खूबी—

यह की गई है, कि इस पुस्तक में छाया लक्ष और शुभाशुभ योगोंका वर्णन यंत्रों के साथ दिया गया है, जिससे देखने वाला बड़ी आसानी के साथ देख सकता है।

एक और बड़ी खूबी—

यह की गई है, कि इस पुस्तकमें स्वरोदय ज्ञानका विवरण दिया गया है। वर्तमान समय में मनुष्यमात्र के लिये स्वरोदय ज्ञानकी पूर्ण आवश्यकता हुआ करती है, अतएव अनुवादकने स्वरोदय ज्ञान का भी खूब खुलासा दे दिया है, इस पुस्तकको प्रत्येक नर नारी को अपने पास रखना चाहिये। मूल्य ॥।) डाक खर्च अलग।

पुस्तक मिलने का पता—

पंडित काशीनाथ जैन

प्रिंटर पब्लिशर बुकसेलर नरसिंह प्रेस,

२०१, हरीसन रोड, (कलकत्ता)